आचार्य नेमीचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार कर्मकाण्ड की
आचार्यकल्प पण्डित प्रवर टोडरमलजी कृत भाषाटीका

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

(द्वितीय खण्ड पूर्वार्द्ध)

गोम्मटसार कर्मकाण्ड एवं उसकी भाषा टीका

प्रकाशक
सत्साहित्य प्रकाशन एवं प्रचार विभाग
श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट
ए-४, बापूनगर, जयपुर - ३०२०१५

मूल्य पच्चीस रुपया

प्रथम संस्करण : २२००
(२६ जनवरी १९९४)

मुद्रक श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, जयपुर - १८

प्रस्तुत पुस्तक गोम्मटसार कर्मकाण्ड की कीमत करने वाले दातारों की सूची

१. श्री भभूतमलजी चम्पालालजी भण्डारी, बैंगलोर — १००१/-
२. श्रीमती अमृतावेन प्रेमजी भाई जैन, वम्बई — ५०१/-
३. श्रीमती आरती अतुल जैन, वम्बई — ५०१/-
४. श्री शामजी भाणजी शाह
   द्वारा श्री प्रेमजी भाई, वम्बई — ५०१/-
५. श्रीमती नलिनी प्रफुल्ल दोशी, वम्बई — ५०१/-
६. श्री चिन्तामणी जैन, एडवोकेट, कोलारस — ५०१/-
७. विनयदक्ष चेरिटेवल ट्रस्ट, वम्बई — ५०१/-
८. श्री शान्तिनाथ सोनाज, अक्लूज — ५०१/-
९. श्रीमती पुष्पावाई जैन (जीजी वाई) — ५०१/-
१०. श्रीमती पतासीदेवी पाटनी, लाडनूं — ५०१/-
११. श्री तखतराजजी जैन, कलकत्ता — ५०१/-
१२. सुश्री ज्योति सोगानी
    पुत्री श्री विनय कुमार सोगानी, जयपुर — ५०० /-
१३. श्रीमती हीरावाई, इन्दौर — ५००/-
१४. श्री महेन्द्र कुमार सेठी, जयपुर — ३५०/-
१५. श्रीमती शान्तिदेवी, जयपुर — ३०१/-
१६. श्रीमती कान्तावाई पूनमचन्द छावडा परिवार,
    इन्दौर — ३०१/-
१७. श्री प्रकाशचन्द गम्भीरचन्दजी जैन, अहमदावाद — ३०१/-
१८. श्रीमती रतनप्रभा ध. प. श्री मोतीचन्दजी
    जैन, जोधपुर — ३००/-
१९. श्रीमती मनोहरवाई, भीलवाड़ा — २५१/-
२०. श्रीमती पुष्पावहन कान्तिभाई मोटाणी, वम्बई — २५१/-
२१. श्रीमती सुनीता नितिन शाह, वम्बई — २५१/-
२२. श्री चन्दूभाई मेघाणी, कलकत्ता — २५१/-
२३. मुमुक्षु मण्डल, गुना — २५१/-
२४. मुमुक्षु मण्डल, उदयपुर — २५१/-
२५. [illegible] वन्डी, उदयपुर — २५१/-
२६. श्री [illegible] गोसावी औरंगावाद — २५१/-
२७. श्री [illegible] जोधपुर — २०१/-
२८. श्रीमती [illegible] वाई [illegible] — २०१/-
२९. श्री [illegible] जैन, भिण्ड — २०१/-
३०. श्रीमती [illegible] वाई
    ध. प. [illegible] विदिशा — २०१/-
३१. श्रीमती [illegible] गोधा
    ध. प. श्री [illegible] गोधा, जयपुर — २०१/-
३२. श्री प्रेमचन्दजी वड़जात्या
    द्वारा श्री रोशनलालजी, दिल्ली — २०१/-
३३. श्रीमती सुशीला वाई नन्दकुमार सिंघई, इन्दौर — २०१/-
३४. श्रीमती वसन्तीदेवी, सूरत — २००/-
३५. श्रीमती वादाम वाई
    चिरंजीलाल ट्रस्ट, अकोला — २००/-
३६. श्रीमती कुंतीदेवी
    ध. प. मन्नुलालजी वकील, सागर — १५१/-
३७. श्री सुन्दरलालजी जैन, नागपुर — १५१/-
३८. श्री प्रेमचन्दजी जैन, अजमेर — १५१/-
३९. श्री प्रेमचन्द जैन
    महावीर टेन्ट हाऊस, अजमेर — १५१/-
४०. श्रीमती कमलादेवी, जयपुर — १५१/-
४१. श्री कुन्दनलालजी, नागपुर — १२५/-
४२. श्री निर्मलकुमारजी जैन, नागपुर — १२५/-
४३. श्रीमती मनोरमादेवी
    ध. प. गजेन्द्रकुमारजी जैन, फिरोजावाद — १११/-
४४. स्व. श्रीमती कुसुमलता वसल एव
    सुनन्द वसल स्मृति निधि
    द्वारा डॉ राजेन्द्रकुमार वसल, अमलाई — १११/-
४५. श्री जयन्तीभाई धनजी भाई दोशी, वम्बई — १११/-
४६. नन्दराम सूरजमल, दिल्ली — १११/-
४७. श्रीमती त्रिशलादेवी
    ध. प. निर्मलकुमारजी, अलीगंज — १०१/-
४८. श्रीमती आशादेवी ध. प. प्रेमचन्दजी, दिल्ली — १०१/-
४९. श्री धन्यकुमारजी जैन, सागर — १०१/-
५०. श्री सन्तोषीलालजी जैन, भोपाल — १०१/-
५१. कुन्दकुन्द मूलचन्द चे. वे. ट्रस्ट, अजमेर — १०१/-
५२. मास्टर चन्द्रभानजी जैन, धुवारा — १०१/-
५३. श्री गणपतलाल जी जैन, ग्वालियर — १०१/-
५४. श्री सुशीलकुमार धनकुमार, खतोली — १०१/-
५५. चौधरी फूलचन्दजी जैन
    द्वारा मनोज एण्ड कम्पनी, वम्बई — १०१/-
५६. श्री सुरेशचन्द सुनीलकुमार
    द्वारा अशोक वैंगल्स, वैंगलोर — १०१/-
५७. श्री मिश्रीलालजी विनाला, जयपुर — ५१/-

योग · १४९८९/-

प्रकाशकीय

आचार्य नेमीचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार कर्मकाण्ड की आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी कृत भाषाटीका, जो सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका के नाम से विख्यात है, के द्वितीय खण्ड का पूर्वार्द्ध प्रकाशन करते हुए हमे हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

दिगम्बराचार्य नेमीचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती करणानुयोग के महान् आचार्य थे। गोम्मटसार जीवकाण्ड, गोम्मटसार कर्मकाण्ड, लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकसार तथा द्रव्यसग्रह ये महत्त्वपूर्ण कृतियाँ आपकी प्रमुख देन है। पण्डितप्रवर टोडरमलजी ने गोम्मटसार जीवकाण्ड व कर्मकाण्ड तथा लब्धिसार व क्षपणासार की भाषाटीकाएँ पृथक-पृथक बनाई थी। चूँकि ये चारों टीकाएँ परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित तथा सहायक थी, अत सुविधा की दृष्टि से उन्होने उक्त चारो टीकाओ को मिलाकर एक ही ग्रन्थ के रूप मे प्रस्तुत कर दिया तथा इस ग्रन्थ का नामकरण उन्होने "सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका" किया।

इस सम्बन्ध मे पण्डित टोडरमलजी स्वय लिखते है --

या विधि गोम्मटसार, लब्धिसार ग्रन्थनिकी,
भिन्न-भिन्न भाषाटीका कीनी अर्थ गायकै।
इनिकै परस्पर सहायकपनौ देख्यौ
तातै एककर दई हम तिनकौ मिलायकै॥
सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका धर्यो है याकौ नाम,
सोई होत है सफल ज्ञानानन्द उपजायकै।
कलिकाल रजनी में अर्थ को प्रकाश करै,
यातै निजकाय कीजे इष्टभाव भायकै॥

इस ग्रन्थ की पीटिका के सम्बन्ध मे मोक्षमार्ग प्रकाशक की प्रस्तावना लिखते हुए डॉ हुकमचन्द भारिल्ल लिखते है --

"सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका विवेचनात्मक गद्यशैली मे लिखी गई है। प्रारम्भ मे इकहतर पृष्ठ की पीठिका है। आज नवीन शैली के क्षेत्र मे लगभग दो सौ बीस वर्ष पूर्व लिखी गई सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका की पीठिका आधुनिक भूमिका का आरम्भिक रूप है। किन्तु भूमिका का आद्यरूप होने पर भी उसमे प्रौढ़ता पाई जाती है, उसमे हल्कापन कही भी देखने को नही मिलता। इसके पढ़ने से ग्रन्थ का पूरा हार्द खुल जाता है एव इस गूढ ग्रन्थ के पढने मे आनेवाली पाठक की समस्त कठिनाइयाँ दूर हो जाती है। हिन्दी आत्मकथा के साहित्य मे जो महत्त्व महाकवि पण्डित बनारसीदास के "अर्द्धकथानक" को प्राप्त है, वही महत्त्व हिन्दी भूमिका साहित्य मे सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका की पीठिका का है।"

इस ट्रस्ट द्वारा गतवर्ष सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका का प्रथम भाग (गोम्मटसार जीवकाण्ड) प्रकाशित किया गया था, जिसका समाज ने बडे आदर के साथ स्वागत किया और अल्पकाल मे ही इस बृहत ग्रन्थ की हजारो प्रतियाँ बिक गई। अब इसका यह द्वितीय भाग का पूर्वार्द्ध (कर्मकाण्ड) प्रकाशित किया जा रहा है।

गोम्मटसार कर्मकाण्ड के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भाग करने की हमारी मजबूरी रही है। कर्मकाण्ड को लैटरप्रेस पर मुद्रण हेतु दिया था पर लम्बे अन्तराल के पश्चात् भी वह आधा ही छप सका। मुद्रण की

तकनीक मे इस वीच वडा वदलाव आया और अब कम्प्यूटर से तत्काल कम्पोज होकर सालो मे होने वाला काम कुछ ही महिनो मे होने लग गया है। तकनीक मे आये इस बदलाव को देखते हुए यही निश्चय किया कि अव जितना छप चुका है उसका विषय वही समाप्त कर नए विषय से उत्तरार्द्ध का भाग कम्प्यूटर से कम्पोज करवाकर ऑफसैट पद्धति से मुद्रित करा लिया जाए। फलत यह भाग पूर्वार्द्ध के रूप मे आपके समक्ष प्रस्तुत है। इस कर्मकाण्ड का उत्तरार्द्ध भी प्रेस मे दे दिया गया है जो शीघ्र ही आपके हाथो मे होगा। तृतीय खण्ड लब्धिसार तो प्रकाशित हो ही चुका है।

इस ग्रन्थ का प्रकाशन बडा ही श्रम साध्य कार्य था। इसके प्रथम खण्ड जीवकाण्ड एवं लब्धिसार-क्षपणसार के तो सतोषजनक सपादन होकर पहले प्रकाशित हो ही चुके हैं। इस द्वितीय खण्ड कर्मकाण्ड के संपादन के लिये वहुत परिश्रम के साथ हस्तलिखित प्रतियों से पाठभेद मिलाकर एव अशुद्धियाँ निकालकर सामग्री तैयार करने का कठिन कार्य ब्र वहिन श्री कल्पनावहन एम ए. ने किया था लेकिन भाग्ययोग से वह समस्त सामग्री हमे प्राप्त होने से पूर्व ही खो गई, फलत इसका सपादन कार्य नही हो सका। अन्ततोगत्वा पिछली प्रकाशित प्रति से इस प्रकाशन का मिलान कर ही इसको प्रकाशित करना पडा। इस कार्य को सम्पन्न करने मे एव अन्तिम प्रूफ देखने का कार्य श्री सौभागमलजी वोहरा, बापूनगर, जयपुर ने किया, यदि वे यह काम नही देखते तो फिर न मालूम यह कवतक प्रकाशित हो पाता। अत वे दोनो महानुभाव धन्यवाद के पात्र हैं।

ग्रन्थ का प्रकाशन इस विभाग के प्रभारी श्री अखिल वसल ने सम्हाला है, अत. उनका आभार मानते हुए जिन महानुभावो ने इस ग्रन्थ की कीमत कम करने मे आर्थिक सहयोग दिया है उनके नाम ग्रन्थ के अन्त मे दिये गये है, उन्हे धन्यवाद देता हूँ।

इस ट्रस्ट के विषय मे तो कया कहूँ, ट्रस्ट की गतिविधियो से सारा समाज परिचित ही है। तीर्थक्षेत्रो का जीर्णोद्धार एवं उनका सर्वेक्षण तो इस ट्रस्ट के माध्यम से हुआ ही है। इसकी सबसे वडी उपलब्धि है श्री टोडरमल दिगम्वर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जिसके माध्यम से सैकडो विद्वान जैन समाज को मिले हैं और निरन्तर मिल रहे है।

साहित्य प्रकाशन एवं प्रचार विभाग के माध्यम से अनुकरणीय कार्य इस ट्रस्ट द्वारा हो रहा है। आचार्य कुन्दकुन्द के पंचपरमागम समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, अष्टपाहुड़ तथा पचास्तिकायसंग्रह जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो का प्रकाशन तो इस विभाग द्वारा हुआ ही है, साथ ही मोक्षशास्त्र, मोक्षमार्ग प्रकाशक, श्रावकधर्मप्रकाश, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव, छहढाला, समयसार-नाटक, चिद्विलास, वीतराग-विज्ञान प्रवचन भाग-१, २, ३ व ४ आदि का प्रकाशन भी इस विभाग ने किया है। प्रचार कार्य को भी गति देने के लिए विद्वानो को नियुक्त किया गया है, जो गॉव-गॉव मे जाकर विभिन्न माध्यमो से तत्त्वप्रचार मे सलग्न हैं।

इस अनुपम ग्रन्थ के माध्यम से आप अपना आत्मकल्याण कर भव का अभाव करे ऐसी मंगलकामना के साथ।

– नेमीचन्द पाटनी

विषय-सूची

गोम्मटसार कर्मकाण्ड

सत्त्व वर्णन

सत्त्वस्थान भंगाधिकार ३६९-३९९

आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजीकृत

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

पीठिका

॥ मंगलाचरण ॥

बंदौ ज्ञानानदकर, नेमिचन्द गुणकंद ।
माधव वंदित विमलपद, पुण्यपयोनिधि नंद ॥ १ ॥
दोष दहन गुन गहन घन, अरि करि हरि अरहंत ।
स्वानुभूति रमनी रमन, जगनायक जयवत ॥ २ ॥
सिद्ध सुद्ध साधित सहज, स्वरससुधारसधार ।
समयसार शिव सर्वगत, नमत होहु सुखकार ॥ ३ ॥
जैनी वानी विविध विधि, वरनत विश्वप्रमान ।
स्यातपद-मुद्रित अहित-हर, करहु सकल कल्यान ॥ ४ ॥
मै नमो नगन जैन जन, ज्ञान-ध्यान धन लीन ।
मैन मान बिन दान घन, एन हीन तन छीन ॥ ५ ॥ [१]
इहविधि मंगल करन तै, सबविधि मंगल होत ।
होत उदंगल दूरि सब, तम ज्यौ भानु उदोत ॥ ६ ॥

सामान्य प्रकरण

अथ मंगलाचरण करि श्रीमद् गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ, ताकी देशभाषामयी टीका करने का उद्यम करौ हौ। सो यहु ग्रंथसमुद्र तौ ऐसा है जो सातिशय बुद्धि-बल सयुक्त जीवनि करि भी जाका अवगाहन होना दुर्लभ है। अर मै मदबुद्धि अर्थ प्रकाशनेरूप याकी टीका करनी विचारौ हौ।

सो यहु विचार ऐसा भया जैसै कोऊ अपने मुख तै जिनेद्रदेव का सर्व गुण वर्णन किया चाहै, सो कैसे बनै ?

इहां कोऊ कहै – नाही बनै है तो उद्यम काहे कौ करौ हौ ?

ताको कहिये है – जैसै जिनेद्रदेव के सर्व गुण कहने की सामर्थ्य नाही, तथापि भक्त पुरुष भक्ति के वश तै अपनी बुद्धि अनुसार गुण वर्णन करै, तैसै इस ग्र थ का संपूर्ण अर्थ प्रकाशने की सामर्थ्य नाही। तथापि अनुराग के वश तै मैं अपनी बुद्धि अनुसार (गुण)[२] अर्थ प्रकाशोगा।

---

१. यह चित्रालकारयुक्त है।
२ गुण शब्द घ प्रति मे मिला।

बहुरि कोऊ कहै कि – अनुराग है तो अपनी बुद्धि अनुसार ग्रंथाभ्यास करो, मंदबुद्धिनि कौ टीका करने का अधिकारी होना युक्त नाहीं ।

ताकौं कहिये है – जैसै किसी शिष्यशाला विषै बहुत बालक पढै है । तिनिविषै कोऊ बालक विशेष ज्ञान रहित है, तथापि अन्य बालकनि तै अधिक पढ्या है, सो आपतै थोरे पढने वाले बालकनि कौ अपने समान ज्ञान होने के अर्थि किछू लिखि देना आदि कार्य का अधिकारी हो है । तैसै मेरे विशेष ज्ञान नाही, तथापि काल दोष तै मोतै भी मंदबुद्धि है, अर होंहिगे । तिनिकै मेरे समान इस ग्रंथ का ज्ञान होने के अर्थि टीका करने का अधिकारी भया हौ ।

बहुरि कोऊ कहै कि – यहु कार्य करना तो विचार्या, परन्तु जैसै छोटा मनुष्य वडा कार्य करना विचारै, तहां उस कार्य विषै चूक होई ही, तहा वह हास्य कौं पावै है । तैसै तुम भी मंदबुद्धि होय, इस ग्रंथ की टीका करनी विचारो हौ सो चूक होइगी, तहा हास्य कौ पावोगे ।

ताकौं कहिये है – यहु तौ सत्य है कि मैं मंदबुद्धि होइ ऐसै महान ग्रंथ की टीका करनी विचारौ हौ, सो चूक तौ होइ, परन्तु सज्जन हास्य नाही करैंगे । जैसै औरनि तै अधिक पढ्या बालक कही भूलै तब बड़े ऐसा विचारै है कि बालक है, भूलै ही भूलै, परंतु और बालकनि तै भला है, ऐसै विचारि हास्य नाही करै है । तैसै मैं इहां कही भूलोंगा तहा सज्जन पुरुष ऐसा विचारैगे कि मंदबुद्धि था, सो भूलै ही भूलै, परंतु केतेइक अतिमदबुद्धीनि तै भला है, ऐसै विचारि हास्य न करैंगे ।

सज्जन तो हास्य न करेगे, परन्तु दुर्जन तौ हास्य करैंगे ?

ताकौं कहिये है कि – दुष्ट तौ ऐसै ही है, जिनके हृदय विषै औरनि के निर्दोष भले गुण भी विपरीतरूप ही भासै । सो उनका भय करि जामै अपना हित होय ऐसे कार्य कौं कौन न करैगा ?

बहुरि कोऊ कहै कि – पूर्व ग्रंथ थे ही, तिनिका अभ्यास करने-करावने तै ही हित हो है, मदबुद्धिनि करि ग्रंथ की टीका करने की महंतता काहेकौ प्रगट कीजिये ?

ताकौं कहिये है कि – ग्रंथ अभ्यास करने तै ग्रंथ की टीका रचना करने विषैं उपयोग विशेष लागै है, अर्थ भी विशेष प्रतिभासै है । बहुरि अन्य जीवनि कौ ग्रंथ अभ्यास करावने का सयोग होना दुर्लभ है । अर संयोग होइ तौ कोई ही जीवं के अभ्यास होइ । अर ग्रंथ की टीका बनै तौ परंपरा अनेक जीवनि कै अर्थ का ज्ञान होइ । तातै अपना अर अन्य जीवनि का विशेष हित होने के अर्थि टीका करिये है, महंतता का तौ किछू प्रयोजन नाहीं ।

बहुरि कोऊ कहै कि इस कार्य विषै विशेष हित हो है सो सत्य, परंतु मंदबुद्धि तै कही भूलि करि अन्यथा अर्थ लिखिए, तहा महत् पाप उपजने तै अहित भी तो होइ ?

ताकौं कहिए है – यथार्थ सर्व पदार्थनि का ज्ञाता तौ केवली भगवान है। औरनि कै ज्ञानावरण का क्षयोपशम के अनुसारी ज्ञान है, तिनिकौ कोई अर्थ अन्यथा भी प्रतिभासै, परंतु जिनदेव का ऐसा उपदेश है – कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्रनि के वचन की प्रतीति करि वा हठ करि वा क्रोध, मान, माया, लोभ करि वा हास्य, भयादिक करि जो अन्यथा श्रद्धान करै वा उपदेश देइ, सो महापापी है। अर विशेष ज्ञानवान गुरु के निमित्त बिना, वा अपने विशेष क्षयोपशम बिना कोई सूक्ष्म अर्थ अन्यथा प्रतिभासै अर यहु ऐसा जानै कि जिनदेव का उपदेश ऐसै ही है, ऐसा जानि कोई सूक्ष्म अर्थ कौ अन्यथा श्रद्धै है वा उपदेश दे तौ याकौ महत् पाप न होइ। सोइ इस ग्रंथ विषै भी आचार्य करि कहा है –

सम्माइट्ठी जीवो, उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं, अजाणमाणो गुरुणियोगा ।।२७।। जीवकाड ।।

बहुरि कोऊ कहै कि – तुम विशेष ज्ञानी तै ग्रंथ का यथार्थ सर्व अर्थ का निर्णय करि टीका करने का प्रारंभ क्यों न कीया ?

ताकौ कहिये है – काल दोष तै केवली, श्रुतकेवली का तौ इहां अभाव ही भया। बहुरि विशेष ज्ञानी भी विरले पाइए। जो कोई है तौ दूरि क्षेत्र विषै है, तिनिका संयोग दुर्लभ। अर आयु, बुद्धि, बल, पराक्रम आदि तुच्छ रहि गए। तातै जो बन्या सो अर्थ का निर्णय कीया, अवशेष जैसै है तैसै प्रमाण हैं।

बहुरि कोऊ कहै कि – तुम कही सो सत्य, परतु इस ग्रथ विषै जो चूक होइगी, ताके शुद्ध होने का किछू उपाय भी है ?

ताकौ कहिये है – एक उपाय यहु कीजिए है – जो विशेष ज्ञानवान पुरुपनि का प्रत्यक्ष तौ सयोग नाही, तातै परोक्ष ही तिनिस्यो ऐसी वीनती करौ हौ कि मै मंद बुद्धि हौ, विशेषज्ञान रहित हौ, अविवेकी हौ, शब्द, न्याय, गणित, धार्मिक आदि ग्रथनि का विशेष अभ्यास मेरे नाही है, तातै शक्तिहीन हौ, तथापि धर्मानुराग के वश तै टीका करने का विचार कीया, सो या विषै जहा-जहा चूक होइ, अन्यथा अर्थ होइ, तहां-तहां मेरे ऊपरि क्षमा करि तिस अन्यथा अर्थ कौ दूरि करि यथार्थ अर्थ लिखना। ऐसै विनती करि जो चूक होइगी, ताके शुद्ध होने का उपाय कीया है।

बहुरि कोऊ कहै कि तुम टीका करनी विचारी सो तौ भला कीया, परंतु ऐसे महान ग्रंथनि की टीका सस्कृत ही चाहिये। भाषा विषै याकी गभीरता भासै नाही।

ताकौं कहिये है – इस ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामा संस्कृत टीका तौ पूर्वें है ही। परन्तु तहा संस्कृत, गणित, आम्नाय आदि का ज्ञान रहित जे मंदबुद्धि हैं, तिनिका प्रवेश न हो है। वहुरि इहां काल दोष तैं बुद्ध्यादिक के तुच्छ होने करि संस्कृतादि ज्ञान रहित घने जीव हैं। तिनिके इस ग्रंथ के अर्थ का ज्ञान होने के अर्थि भाषा टीका करिए है। सो जे जीव संस्कृतादि विशेषज्ञान युक्त है, ते मूलग्रंथ वा संस्कृत टीका तैं अर्थ धारैंगे। वहुरि जे जीव संस्कृतादि विशेष ज्ञान रहित है, ते इस भाषा टीका तैं अर्थ धारौ। वहुरि जे जीव संस्कृतादि ज्ञान सहित हैं, परंतु गणित आम्नायादिक के ज्ञान के अभाव तैं मूलग्रंथ वा संस्कृत टीका विषै प्रवेश न पावै हैं, ते इस भाषा टीका तैं अर्थ कौं धारि, मूल ग्रंथ वा संस्कृत टीका विषै प्रवेश करहु। वहुरि जो भाषा टीका तैं मूल ग्रंथ वा संस्कृत टीका विषै अधिक अर्थ होइ, ताके जानने का अन्य उपाय वनै सो करहु।

इहां कोऊ कहै – संस्कृत ज्ञानवालों के भाषा अभ्यास विषै अधिकार नाहीं।

ताकौं कहिये है – संस्कृत ज्ञानवालों कौ भाषा वांचने तें कोई दोष तौ नाहीं उपजै है, अपना प्रयोजन जैसैं सिद्ध होइ तैसें हीं करना। पूर्वे अर्धमागधी आदि भाषामय महान ग्रंथ थे। वहुरि बुद्धि की मंदता जीवनि के भई, तव संस्कृतादि भाषामय ग्रंथ वने। अव विशेष बुद्धि की मंदता जीवनि कैं भई तातै देश भाषामय ग्रंथ करने का विचार भया। वहुरि संस्कृतादिक का अर्थ भी अव भाषाद्वार करि जीवनि कौं समझाइये है। इहां भाषाद्वार करि ही अर्थ लिख्या तो किछू दोष नाहीं है।

ऐसें विचारि श्रीमद् **गोम्मटसार** द्वितीयनामा **पंचसंग्रह** ग्रंथ की 'जीवतत्त्व प्रदीपिका' नामा संस्कृत टीका, ताकै अनुसारि **'सम्यग्ज्ञानचंद्रिका'** नामा यहु देशभाषामयी टीका करने का निश्चय किया है। सो श्री अरहंत देव वा जिनवाणी वा निर्ग्रंथ गुरुनि के प्रसाद तैं वा मूल ग्रंथकर्ता नेमिचद्र आदि आचार्यनि के प्रसाद तै यहु कार्य सिद्ध होहु।

अब इस शास्त्र के अभ्यास विषै जीवनि कौं सन्मुख करिए है। हे भव्यजीव हौ! तुम अपने हित कौं वांछौ हौ तौ तुमकौं जैसें वनैं तैसें या शास्त्र का अभ्यास करना। जातैं आत्मा का हित मोक्ष है। मोक्ष विना अन्य जो है, सो परसंयोगजनित हैं, विनाशीक है, दुःखमय है। अर मोक्ष है सोई निज स्वभाव है, अविनाशी है, अनंत सुखमय है। तातैं मोक्ष पद पावने का उपाय तुमकौं करना। सो मोक्ष के उपाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र हैं। सो इनकी प्राप्ति जीवादिक के स्वरूप जानने ही तै हो है।

सो कहिए है – जीवादि तत्त्वनि का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है । सो बिना जानै श्रद्धान का होना आकाश का फूल समान है । पहिलै जानै तब पीछै तैसै ही प्रतीति करि श्रद्धान कौ प्राप्त हो है । तातै जीवादिक का जानना श्रद्धान होने तै पहिलै जो होइ सोई तिनके श्रद्धान रूप सम्यग्दर्शन का कारण जानना । बहुरि श्रद्धान भए जो जीवादिक का जानना होइ, ताही का नाम सम्यग्ज्ञान है । बहुरि श्रद्धानपूर्वक जीवादि जानै स्वयमेव उदासीन होइ, हेय कौ त्यागै, उपादेय कौ ग्रहै, तब सम्यक् चारित्र हो है । अज्ञानपूर्वक क्रियाकाड तै सम्यक्चारित्र होइ नाही । ऐसै जीवादिक कौ जानने ही तै सम्यग्दर्शनादि मोक्ष के उपायनि की प्राप्ति निश्चय करनी । सो इस शास्त्र के अभ्यास तै जीवादिक का जानना नीकै हो है । जातै ससार है सोई जीव अर कर्म का सबध रूप है । बहुरि विशेष जानै इनका सबध का जो अभाव होइ सोई मोक्ष है । सो इस शास्त्र विषै जीव अर कर्म का ही विशेष निरूपण है । अथवा जीवादिक षड् द्रव्य, सप्त तत्त्वादिकनि का भी या विषै नीकै निरूपण है । तातै इस शास्त्र का अभ्यास अवश्य करना ।

अब इहां केइ जीव इस शास्त्र का अभ्यास विषै अरुचि होने कौ कारण विपरीत विचार प्रकट करै है । तिनिकौं समझाइए है । तहा जीव प्रथमानुयोग वा चरणानुयोग वा द्रव्यानुयोग का केवल पक्ष करि इस करणानुयोगरूप शास्त्र विषै अभ्यास कौ निषेधै है ।

तिनिविषै प्रथमानुयोग का पक्षपाती कहै है कि – इदानी जीवनि की बुद्धि मंद बहुत है, तिनिकै ऐसै सूक्ष्म व्याख्यानरूप शास्त्र विषै किछु समझना होइ नाही तातै तीर्थंकरादिक की कथा का उपदेश दीजिए तौ नीकै समझै, अर समझि करि पाप तै डरै, धर्मानुरागरूप होइ, तातै प्रथमानुयोग का उपदेश कार्यकारी है ।

ताकौ कहिये है – अब भी सर्व ही जीव तौ एक से न भए है । हीनाधिक बुद्धि देखिए है । तातै जैसा जीव होइ, तैसा उपदेश देना । अथवा मदबुद्धि भी सिखाए हुए अभ्यास तै बुद्धिमान होते देखिए है । तातै जे बुद्धिमान है, तिनिकौ तौ यहु ग्रथ कार्यकारी है ही अर जे मदबुद्धि हैं, ते विशेषबुद्धिनि तै सामान्य-विशेष रूप गुणस्थानादिक का स्वरूप सीखि इस शास्त्र का अभ्यास विषै प्रवर्तौ ।

इहां मंदबुद्धि कहै है कि – इस गोम्मटसार शास्त्र विषै तौ गणित समस्या अनेक अपूर्व कथन करि बहुत कठिनता सुनिए है, हम कैसै या विषै प्रवेश पावै ?

तिनकौ कहिये है – भय मति करौ, इस भाषा टीका विषै गणित आदि का अर्थ सुगमरूप करि कह्या है, तातै प्रवेश पावना कठिन रह्या नाही । बहुर या

शास्त्र विषै कथन कही सामान्य है, कही विशेष है, कही सुगम है, कही कठिन है; तहा जो सर्व अभ्यास बनै तौ नीकै ही है, अर जो न बनै तो अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा बनै तैसा ही अभ्यास करो। अपने उपाय मे आलस्य करना नाही।

बहुरि तै कह्या – प्रथमानुयोग सवंधी कथादिक सुनै पाप तै डरै है, अर धर्मानुरागरूप हो है।

सो तहा तौ दोऊ कार्य शिथिलता लीए हो हैं। इहां पाप-पुण्य के कारणकार्यादिक विशेष जानने तै ते दोऊ कार्य दृढता लिए हो हैं। तातै याका अभ्यास करना। ऐसें प्रथमानुयोग के पक्षपाती कौ इस शास्त्र का अभ्यास विषै सन्मुख कीया।

अब चरणानुयोग का पक्षपाती कहै है कि – इस शास्त्र विषै कह्या जीव-कर्म का स्वरूप, सो जैसे है तैसे है ही, तिनिकौ जाने कहा सिद्धि हो है ? जो हिंसादिक का त्याग करि व्रत पालिए, वा उपवासादि तप करिए, वा अरहंतादिक की पूजा, नामस्मरण आदि भक्ति करिए, वा दान दीजिए, वा विषयादिक स्यो उदासीन हूजै इत्यादि शुभ कार्य करिए तो आत्महित होइ। तातै इनका प्ररूपक चरणानुयोग का उपदेशादिक करना।

ताकौं कहिए है – हे स्थूलबुद्धि ! तै व्रतादिक शुभ कार्य कहे, ते करने योग्य ही है। परतु ते सर्व सम्यक्त्व विना ऐसै है जैसै अंक विना बिंदी। अर जीवादिक का स्वरूप जानें विना सम्यक्त्व का होना ऐसा जैसे बाझ का पुत्र। तातै जीवादिक जानने के अर्थि इस शास्त्र का अभ्यास अवश्य करना। बहुरि तै जैसें व्रतादिक शुभ कार्य कहे अर तिनितै पुण्यबध हो है। तैसै जीवादिक का स्वरूप जाननेरूप ज्ञानाभ्यास है, सो प्रधान शुभ कार्य है। यातै सातिशय पुण्य का बध हो है। बहुरि तिन व्रतादिकनि विषै भी ज्ञानाभ्यास की ही प्रधानता है, सो कहिए है–

जो जीव प्रथम जीव समासादि जीवादिक के विशेष जानै, पीछै यथार्थ ज्ञान करि हिंसादिक कौ त्यागि व्रत धारै, सोई व्रती है। बहुरि जीवादिक के विशेष जानै विना कथचित् हिंसादिक का त्याग तै आपकौ व्रती मानै, सो व्रती नाही। तातै व्रत पालने विषै ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है।

बहुरि तप दोय प्रकार है – एक बहिरग, एक अतरग। तहां जाकरि शरीर का दमन होइ, सो बहिरग तप है, अर जातै मन का दमन होइ, सो अतरग तप है। इनि विषै बहिरग तप तै अतरग तप उत्कृष्ट है। सो उपवासादिक तौ बहिरंग तप है। ज्ञानाभ्यास अंतरंग तप है। सिद्धात विषै भी छह प्रकार अतरग तपनि विषै चौथा स्वाध्याय नाम तप कह्या है। तिसतै

उत्कृष्ट व्युत्सर्ग अर ध्यान ही है । तातै तप करने विषै भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है । बहुरि जीवादिक के विशेषरूप गुणस्थानादिकनि का स्वरूप जानै ही अरहंतादिकनि का स्वरूप नीकै पहिचानिए है, वा अपनी अवस्था पहिचानिए है। ऐसी पहिचानि भए जो तीव्र अतरग भक्ति प्रकट हो है, सोई बहुत कार्यकारी है । बहुरि जो कुलक्रमादिक तै भक्ति हो है, सो किंचिन्मात्र ही फल की दाता है । तातै भक्ति विषै भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है ।

बहुरि दान चार प्रकार है – तिनिविषै आहारदान, औषधदान, अभयदान तौ तात्कालिक क्षुधा के दुःख कौ वा रोग के दुःख कौ, वा मरणादि भय के दुःख ही कौ दूर करै है । **अर ज्ञानदान है सो अनंत भव संतान संबंधी दुःख दूर करने कौ कारण है ।** तीर्थंकर, केवली, आचार्यादिकनि कै भी ज्ञानदान की प्रवृत्ति है । तातै ज्ञानदान उत्कृष्ट है, सो अपनै ज्ञानाभ्यास होइ तो अपना भला करै, अर अन्य जीवनि कौ ज्ञानदान देवै । ज्ञानाभ्यास बिना ज्ञानदान देना कैसे होइ ? तातै दान विषै भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है ।

बहुरि जैसे जन्म तै ही केई पुरुष ठिगनि के घर गए – तहा तिन ठिगनि कौ अपने मानै है । बहुरि कदाचित् कोऊ पुरुष किसी निमित्त स्यो अपने कुल का वा ठिगनि का यथार्थ ज्ञान होनै ते ठिगनि स्यो अंतरंग विषै उदासीन भया, तिनिकौ पर जानि सबध छुडाया चाहै है । बाह्य जैसा निमित्त है तैसा प्रवर्त्तै है । बहुरि कोऊ पुरुष तिन ठिगनि कौ अपना ही जानै है अर किसी कारण तै कोऊ ठिग स्यो अनुरागरूप प्रवर्तै है । कोई ठिग स्यो लडि करि उदासीन भया आहारादिक का त्यागी होइ है ।

तैसै अनादि तै सर्व जीव ससार विषै प्राप्त है, तहा कर्मनि कौ अपने मानै है । बहुरि कोइ जीव किसी निमित्त स्यो जीव का अर कर्म का यथार्थ ज्ञान होनै तै कर्मनि स्यो उदासीन भया, तिनिकौ पर जानने लगा, तिनस्यो सबध छुडाया चाहै है । बाह्य जैसै निमित्त है तैसे वर्त्तै है। ऐसे जो ज्ञानाभ्यास तै उदासीनता होइ सोई कार्यकारी है । बहुरि कोई जीव तिन कर्मनि कौ अपने जानै है । अर किसी कारण तै कोई शुभ कर्म स्यो अनुराग रूप प्रवर्तै है । कोई अशुभ कर्म स्यो दुःख का कारण जानि उदासीन भया विषयादिक का त्यागी हो है । ऐसे ज्ञान विना जो उदासीनता होइ सो पुण्यफल की दाता है, मोक्ष कार्य कौ न साधे है । तातै उदासीनता विषै भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है । याही प्रकार अन्य भी शुभ कार्यनि विषै ज्ञानाभ्यास ही प्रधान जानना । देखो ! महामुनीनि कै भी ध्यान-अध्ययन दोय ही कार्य मुख्य है । तातै शास्त्र अध्ययन तै जीव-कर्म का स्वरूप जानि स्वरूप का ध्यान करना ।

बहुरि इहां कोऊ तर्क करै कि – कोई जीव शास्त्र अध्ययन तौ बहुत करै है। अर विषयादिक का त्यागी न हो है, ताकै शास्त्र अध्ययन कार्यकारी है कि नाही ? जो है तौ महंत पुरुष काहेकौ विषयादिक तजे, अर नाहीं है तो ज्ञानाभ्यास का महिमा कहा रह्या ?

ताका समाधान – शास्त्राभ्यासी दोय प्रकार हैं, एक लोभार्थी, एक धर्मार्थी । तहा जो अंतरंग अनुराग विना-ख्याति-पूजा-लाभादिक के अर्थि शास्त्राभ्यास करै, सो लोभार्थी है, सो विषयादिक का त्याग नाही करै है । अथवा ख्याति, पूजा, लाभादिक कै अर्थि विषयादिक का त्याग भी करै है, तौ भी ताका शास्त्राभ्यास कार्यकारी नाही ।

बहुरि जो अंतरंग अनुराग तै आत्म हित के अर्थि शास्त्राभ्यास करै है, सो धर्मार्थी है । सो प्रथम तौ जैन शास्त्र ऐसे है जिनका धर्मार्थी होइ अभ्यास करै, सो विषयादिक का त्याग करै ही करै । ताकै तौ ज्ञानाभ्यास कार्यकारी है ही । बहुरि कदाचित् पूर्वकर्म का उदय की प्रबलता तै न्यायरूप विषयादिक का त्याग न बनै है तौ भी ताकै सम्यग्दर्शन, ज्ञान के होने तै ज्ञानाभ्यास कार्यकारी हो है । जैसै असंयत गुणस्थान विषै विषयादिक का त्याग विना भी मोक्षमार्गपना संभवै है ।

इहां प्रश्न – जो धर्मार्थी होइ जैन शास्त्र अभ्यासै, ताकै विषयादिक का त्याग न होइ सो यहु तौ बनै नाहीं । जातै विषयादिक के सेवन परिणामनि तै हो है, परिणाम स्वाधीन है ।

तहाँ समाधान – परिणाम ही दोय प्रकार है । एक बुद्धिपूर्वक, एक अबुद्धिपूर्वक । तहा अपने अभिप्राय के अनुसारि होइ सो बुद्धिपूर्वक । अर दैव – निमित्त तै अपने अभिप्राय तै अन्यथा होइ सो अबुद्धिपूर्वक । जैसै सामायिक करतै धर्मात्मा का अभिप्राय ऐसा है कि मैं मेरे परिणाम शुभरूप राखो । तहां जो शुभपरिणाम ही होइ सो तौ बुद्धिपूर्वक । अर कर्मोदय तै स्वयमेव अशुभ परिणाम होइ, सो अबुद्धिपूर्वक जानने । तैसै धर्मार्थी होइ जो जैन शास्त्र अभ्यासै है ताको अभिप्राय तौ विषयादिक का त्याग रूप वीतराग भाव का ही होइ, तहा वीतराग भाव होइ, तौ बुद्धिपूर्वक हैं । अर चारित्रमोह के उदय तै सराग भाव होइ तौ अबुद्धिपूर्वक है । तातै विना वश जे सरागभाव हो हैं, तिनकरि ताकै विषयादिक की प्रवृत्ति देखिये है। जातैं बाह्य प्रवृत्ति को कारण परिणाम है ।

इहां तर्क – जो ऐसै है तो हम भी विषयादिक सेवेगे अर कहेगे – हमारे उदयाधीन कार्य हो है ।

ताकौं कहिये है – रे मूर्ख ! किछू कहने तै तौ होता नाही ! सिद्धि तौ अभिप्राय के अनुसारि है। तातै जैन शास्त्र के अभ्यास तै अपना अभिप्राय कौ सम्यक्रूप करना। अर अंतरग विषै विषयादिक सेवन का अभिप्राय होतै तौ धर्मार्थी नाम पावै नाही।

ऐसै चरणानुयोग के पक्षपाती कौ इस शास्त्र का अभ्यास विषै सन्मुख कीया।

अब द्रव्यानुयोग का पक्षपाती कहै है कि – इस शास्त्र विषै जीव के गुणस्थानादिक रूप विशेष अर कर्म के विशेष वर्णन किए, तिनकौ जानै अनेक विकल्प तरग उठै, अर किछू सिद्धि नाही। तातै अपने शुद्धस्वरूप कौ अनुभवना वा अपना अर पर का भेदविज्ञान करना – इतना ही कार्यकारी है। अथवा इनके उपदेशक जे अध्यात्मशास्त्र, तिनका ही अभ्यास करना योग्य है।

ताकौ कहिये है – हे सूक्ष्माभासबुद्धि ! तै कह्या सो सत्य, परतु अपनी अवस्था देखनी। जो स्वरूपानुभव विषै वा भेदविज्ञान विषै उपयोग निरतर रहै, तौ काहेकौ अन्य विकल्प करने। तहा ही स्वरूपानदसुधारस का स्वादी होइ सतुप्ट होना। परन्तु नीचली अवस्था विषै तहा निरन्तर उपयोग रहै नाही। उपयोग अनेक अवलबनि कौ चाहै है। तातै जिस काल तहा उपयोग न लागै, तब गुणस्थानादि विशेष जानने का अभ्यास करना।

बहुरि तै कह्या कि - अध्यात्मशास्त्रनि का ही अभ्यास करना, सो युक्त ही है। परन्तु तहा भेदविज्ञान करने के अर्थि स्व-पर का सामान्यपनै स्वरूप निरूपण है। अर विशेष ज्ञान बिना सामान्य का जानना स्पप्ट होइ नाही। तातै जीव के अर कर्म के विशेष नीकै जानै ही स्व-पर का जानना स्पष्ट हो है। तिस विशेष जानने कौ इस शास्त्र का अभ्यास करना। जातै सामान्य शास्त्र तै विशेप शास्त्र बलवान है। सो ही कह्या है– **"सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान् भवेत् ।"**

इहां वह कहै है कि – अध्यात्मशास्त्रनि विषै तौ गुणस्थानादि विशेषनिकरि रहित शुद्धस्वरूप का अनुभवना उपादेय कह्या है। इहा गुणस्थानादि सहित जीव का वर्णन है। तातै अध्यात्मशास्त्र अर इस शास्त्र विषै तौ विरुद्ध भासै है, सो कैसै है ?

ताकौ कहिये है नय दोय प्रकार है – एक निश्चय, एक व्यवहार। तहा निश्चयनय करि जीव का स्वरूप गुणस्थानादि विशेष रहित अभेद वस्तु मात्र ही है। अर व्यवहारनय करि गुणस्थानादि विशेष संयुक्त अनेक प्रकार है। तहा जे जीव सर्वोत्कृष्ट, अभेद, एक स्वभाव कौ अनुभवै है, तिनकौ तौ तहा शुद्ध उपदेश रूप जो शुद्ध निश्चयनय सो ही कार्यकारी है।

बहुरि जे स्वानुभव दशा कौं न प्राप्त भए, वा स्वानुभवदशा तैं छूटि सविकल्प दशा कौं प्राप्त भए ऐसे अनुत्कृष्ट जो अशुद्ध स्वभाव, तिहि विषै तिष्ठते जीव, तिनकौं व्यवहारनय प्रयोजनवान है। सोई आत्मख्याति अध्यात्मशास्त्र विषै कह्या है—

सुद्धो सुद्धादेसो, णादव्वो परमभावदरसीहिं।
ववहारदेसिदो पुण जे दु अपरमेट्ठिदा भावे॥ १

इस सूत्र की व्याख्या का अर्थ विचारि देखना।

बहुरि मुनि! तेरे परिणाम स्वरूपानुभव दशा विषै तौ प्रवर्तै नाही। अर निरन्तर जानि गुणस्थानादि भेदनि का विचार न करैगा तौ तू इतो भ्रष्ट ततो भ्रष्ट होय अशुभोपयोग ही (विषै) प्रवर्त्तैगा, तहां तेरा बुरा होयगा।

बहुरि मुनि! सामान्यपनै तौ वेदात आदि शास्त्राभासनि विषै भी जीव का स्वरूप शुद्ध कहै है, तहा विशेष जानै विना यथार्थ-अयथार्थ का निश्चय कैसै होय? तातैं गुणस्थानादि विशेष जानै जीव की शुद्ध, अशुद्ध, मिश्र अवस्था का ज्ञान होइ, तब निर्णय करि यथार्थ का अगीकार करै। **बहुरि मुनि! जीव का गुण ज्ञान है, सो विशेष जानैं आत्मगुण प्रकट होइ, अपना श्रद्धान भी दृढ़ होय। जैसे सम्यक्त्व है,** सो केवलज्ञान भए परमावगाढ नाम पावै है। तातैं विशेष जानना।

बहुरि वह कहे है — तुम कह्या सो सत्य, परतु करणानुयोग तैं विशेष जानैं भी द्रव्यलिंगी मुनि अध्यात्म श्रद्धान विना ससारी ही रहै। अर अध्यात्म अनुसारि तिर्यंचादिक कै स्तोक श्रद्धान तै भी सम्यक्त्व हो है। वा तुपमाष भिन्न इतना ही श्रद्धान तै शिवभूति मुनि मुक्त भया। तातै हमारी तौ बुद्धि तैं विशेष विकल्पनि का [illegible] नाहीं। प्रयोजनमात्र अध्यात्म अभ्यास करेंगे।

शुद्धभाव सवर, निर्जरा, मोक्ष का कारण कह्या, ताकौ द्रव्यलिगी पहिचानै ही नाही। बहुरि शुद्धात्मस्वरूप मोक्ष कह्या, ताका द्रव्यलिगी के यथार्थ ज्ञान नाही। ऐसै अन्यथा साधन करै तौ शास्त्रनि का कहा दोष है ?

बहुरि तै तिर्यंचादिक कै सामान्य श्रद्धान तै कार्यसिद्धि कही, सो उनकै भी अपना क्षयोपशम अनुसारि विशेप का जानना हो है। अथवा पूर्व पर्यायनि विषै विशेष का अभ्यास कीया था, तिस सस्कार के बल तै हो है। बहुरि जैसै काहूने कही गडचा धन पाया, सो हम भी ऐसै ही पावैगे, ऐसा मानि सब ही कौ व्यापारादिक का त्यजन न करना। तैसै काहूनै स्तोक श्रद्धान तै ही कार्य सिद्ध किया तो हम भी ऐसे ही कार्य सिद्धि करैगे – ऐसै मानि सर्व ही कौ विशेष अभ्यास का त्यजन करना योग्य नाही, जातै यहु राजमार्ग नाहीं। **राजमार्ग तौ यहु ही है – नानाप्रकार विशेष जानि तत्त्वनि का निर्णय भए ही कार्यसिद्धि हो है।**

बहुरि तै कह्या, मेरी बुद्धि तै विकल्पसाधन होता नाही, सो जेता बनै तेता ही अभ्यास कर। बहुरि तू पापकार्य विषै तौ प्रवीण, अर इस अभ्यास विषै कहै मेरी बुद्धि नाही, सो यहु तौ पापी का लक्षण है।

ऐसै द्रव्यानुयोग का पक्षपाती कौ इस शास्त्र का अभ्यास विषै सन्मुख कीया।

अब अन्य विपरीत विचारवालो कौ समझाइए है।

तहां शब्द-शास्त्रादिक का पक्षपाती बोलै है कि – व्याकरण, न्याय, कोश, छद, अलकार, काव्यादिक ग्रथनि का अभ्यास करिए तो अनेक ग्रथनि का स्वयमेव ज्ञान होय वा पडितपना प्रगट होय। अर इस शास्त्र के अभ्यास तै तो एक याही का ज्ञान होय वा पडितपना विशेष प्रकट न होय, तातै शब्द-शास्त्रादिक का अभ्यास करना।

ताकौ कहिये है – जो तू लोक विषै ही पडित कहाया चाहै हैं तौ तू तिन ही का अभ्यास किया करि। अर जो अपना कार्य किया चाहै है तो ऐसे जैनग्रन्थनि का अभ्यास करना ही योग्य है। बहुरि जैनी तौ जीवादिक तत्त्वनि के निरूपक जे जैनग्रन्थ तिन ही का अभ्यास भए पडित मानैगे।

बहुरि वह कहै है कि – मै जैनग्रथनि का विशेष ज्ञान होने ही के अर्थि व्याकरणादिकनि का अभ्यास करौ हौ।

ताकौ कहिए है – ऐसै है तो भलै ही है, परतु इतना है जैसै स्याना खितहर अपनी शक्ति अनुसारि हलादिक तै थोडा बहुत खेत कौ सवारि समय विषै वीज

खोवै तौ ताकौं फल की प्राप्ति होइ। वैसे तू भी जो अपनी शक्ति अनुसारि व्याकरणादिक का अभ्यास तैं थोरी बहुत बुद्धि कौं संवारि यावत् मनुष्य पर्याय वा इंद्रियनि की प्रबलता इत्यादिक वर्ते है, तावत् समय विषै तत्त्वज्ञान कौं कारण जे शास्त्र, तिनिका अभ्यास करेगा तौ तुझकौं सम्यक्त्वादि की प्राप्ति होयगी।

बहुरि जैसे अयाना खितहर हलादिक तैं खेत कौं सवारता सवारता ही समय कौ खोवै, तौ ताकौं फलप्राप्ति होने की नाही, वृथा ही खेदखिन्न भया। तैसे तू भी जो व्याकरणादिक तैं बुद्धि कौं सवारता संवारता ही समय खोवेगा तौ सम्यक्त्वादिक की प्राप्ति होने की नाही। वृथा ही खेदखिन्न भया। बहुरि इस काल विषै आयु बुद्धि आदि स्तोक है, तातैं प्रयोजनमात्र अभ्यास करना, शास्त्रनि का तौ पार है नाही। बहुरि सुनि! केई जीव व्याकरणादिक का ज्ञानविना भी तत्त्वोपदेशरूप भाषा शास्त्रनि करि, वा उपदेश सुनने करि, वा सीखने करि तत्त्वज्ञानी होते देखिये है। अर केई जीव केवल व्याकरणादिक का ही अभ्यास विषै जन्म गमावै है, अर तत्त्वज्ञानी न होते देखिये है।

बहुरि सुनि! व्याकरणादिक का अभ्यास करने तै पुण्य न उपजै है। धर्मार्थी होइ तिनका अभ्यास करै तौ किंचित् पुण्य उपजै। बहुरि तत्त्वोपदेशक शास्त्रनि का अभ्यास तैं सातिशय महत् पुण्य उपजै है। तातैं भला यहु है — ऐसे तत्त्वोपदेशक शास्त्रनि का अभ्यास करना। ऐसे शब्द शास्त्रादिक का पक्षपाती कौं सन्मुख किया।

बहुरि अर्थ का पक्षपाती कहै है कि - इस शास्त्र का अभ्यास किए कहा है? सर्व कार्य धन तैं बनै है, धन करि ही प्रभावना आदि धर्म निपजै है। धनवान के निकट अनेक पंडित आनि (आय) प्राप्त होइ। अन्य भी सर्वकार्यसिद्धि होइ। तातैं धन उपजावने का उद्यम करना।

ताकौं कहिए है - रे पापी! धन किछू अपना उपजाया तौ न हो है। भाग्य तैं हो है, सो ग्रथाभ्यास आदि धर्म साधन तैं जो पुण्य निपजै, ताही का नाम भाग्य है। बहुरि धन होना है तौ शास्त्राभ्यास किए कैसे न होगा? अर न होना है तौ शास्त्राभ्यास न किए कैसे होगा? तातैं धन का होना, न होना तौ उदयाधीन है। शास्त्राभ्यास विषै काहे कौं शिथिल हूजे। बहुरि सुनि! धन है सो तौ विनाशीक है, भय सयुक्त है, पाप तैं निपजै है, नरकादिक का कारण है।

अर यहु शास्त्राभ्यासरूप ज्ञानधन है सो अविनाशी है, भय रहित है, धर्मरूप है, स्वर्ग मोक्ष का कारण है । सो महत पुरुष तौ धनकादिक कौ छोड़ि शास्त्राभ्यास विषै लगै है । तू पापी शास्त्राभ्यास कौ छुड़ाय धन उपजावने की बडाई करै है, सो तू अनत ससारी है ।

बहुरि तै कह्या - प्रभावना आदि धर्म भी धन ही तै हो है । सो प्रभावना आदि धर्म है सो किंचित् सावद्य क्रिया सयुक्त है । तिसतै समस्त सावद्य रहित शास्त्राभ्यास रूप धर्म है, सो प्रधान है । ऐसै न होइ तौ गृहस्थ अवस्था विषै प्रभावना आदि धर्म साधते थे, तिनि कौ छांडि संजमी होइ शास्त्राभ्यास विषै काहे को लागै है ? बहुरि शास्त्राभ्यास तै प्रभावनादिक भी विशेष हो है ।

बहुरि तै कह्या - धनवान के निकट पंडित भी आनि प्राप्त होइ । सो लोभी पंडित होंइ, अर अविवेकी धनवान होइ तहा ऐसै हो है । अर शास्त्राभ्यासवालौ की तौ इंद्रादिक सेवा करै है । इहा भी बडे बडे महत पुरुष दास होते देखिए है । तातै शास्त्राभ्यासवालौ तै धनवान कौ महत मति जानै ।

बहुरि तै कह्या – धन तै सर्व कार्यसिद्धि हो है । सो धन तै तौ इस लोक संबधी किछू विषयादिक कार्य ऐसा सिद्ध होइ, जातै बहुत काल पर्यत नरकादि दुःख सहने होइ । अर शास्त्राभ्यास तै ऐसा कार्य सिद्ध हो है जातै इहलोक विषै अर परलोक विषै अनेक सुखनि की परपरा पाइए । तातै धन उपजावने का विकल्प छोड़ि शास्त्राभ्यास करना । अर जो सर्वथा ऐसै न बनै तौ सतोप लिए धन उपजावने का साधनकरि शास्त्राभ्यास विषै तत्पर रहना । ऐसै अर्थ उपजावने का पक्षपाती कौ सन्मुख किया ।

बहुरि कामभोगादिक का पक्षपाती बोलै है कि - शास्त्राभ्यास करने विषै सुख नाही, बडाई नाही । तातै जिन करि इहा ही सुख उपजै ऐसे जे स्त्रीसेवना, खाना, पहिरना, इत्यादि विषय, तिनका सेवन करिए । अथवा जिन करि यहा ही बडाई होइ ऐसे विवाहादिक कार्य करिए ।

ताकौं कहिए है – विषयजनित जो सुख है सो दु ख ही है । जातै विषय सुख है, सो परनिमित्त तै हो है । पहिले, पीछै, तत्काल आकुलता लिए है, जाके नाश होने के अनेक कारण पाइए है । आगामी नरकादि दुर्गति कौ प्राप्त करणहारा है । ऐसा है तौ भी तेरा चाह्या मिलै नाही, पूर्व पुण्य तै हो है, तातै विषम है । जैसे खाजि करि पीड़ित पुरुष अपना अग कौ कठोर वस्तु तै खुजावै, तैसे इद्रियनि करि

पीडित जीव, तिनकी पीडा सही न जाय तब किञ्चिन्मात्र तिस पीडा के प्रतिकार से भासै – ऐसै जे विषयसुख तिन विषे झंपापात लेवे है, परमार्थरूप सुख है नाही ।

बहुरि शास्त्राभ्यास करनेतै भया जो सम्यग्ज्ञान, ताकरि निपज्या जो आनन्द, सो सांचा सुख है । जातै सो सुख स्वाधीन है, आकुलता रहित है, काहू करि नष्ट न हो है, मोक्ष का कारण है, विषम नाही । जैसे खाजि न पीडै, तब सहज ही सुखी होइ, तैसे तहा इंद्रिय पीड़ने कौ समर्थ न होइ, तब सहज ही, सुख कौ प्राप्त हो है । तातै विषय सुख छोडि शास्त्राभ्यास करना । (जो) सर्वथा न छूटे तौ जेता बनै तेता छोडि, शास्त्राभ्यास विषै तत्पर रहना ।

बहुरि तै विवाहादिक कार्य विषे बडाई होने की कही, सो केतेक दिन बड़ाई रहेगी ? जाकै अर्थि महापापारंभ करि नरकादि विषै बहुतकाल दुःख भोगना होइगा । अथवा तुझ तै भी तिन कार्यनि विषे धन लगावनेवाले बहुत है, तातै विशेष बड़ाई भी होने की नाही ।

बहुरि शास्त्राभ्यास तै ऐसी बडाई हो है, जाकी सर्वजन महिमा करे, इंद्रादिक भी प्रशंसा करैं अर परंपरा स्वर्ग मुक्ति का कारण है । तातै विवाहादिक कार्यनि का विकल्प छोड़ि, शास्त्राभ्यास का उद्यम राखना । सर्वथा न छूटै तो बहुत विकल्प न करना । ऐसें काम भोगादिक का पक्षपाती कौ शास्त्राभ्यास विषे सन्मुख किया । या प्रकार अन्य जीव भी जे विपरीत विचार तै इस ग्रंथ अभ्यास विषै अरुचि प्रगट करै, तिनकौ यथार्थ विचार तै इस शास्त्र के अभ्यास विषे सन्मुख होना योग्य है ।

इहां अन्यमती कहै है कि – तुम अपने ही शास्त्र अभ्यास करने कौ दृढ किया । हमारे मत विषै नाना युक्ति आदि करि संयुक्त शास्त्र है, तिनका भी अभ्यास क्यो न कराइए ?

ताकौं कहिए है – तुमारे मत के शास्त्रनि विषै आत्महित का उपदेश नाही । जातै कही शृंगार का, कही युद्ध का, कही काम सेवनादि का, कही हिंसादि का कथन है । सो ए तो विना ही उपदेश सहज ही बनि रहे है । इनकौ तजै हित होई, ते तहा उलटे पोषे हैं, तातै तिनतै हित कैसे होइ ?

तहां वह कहै है – ईश्वरनै ऐसैं लीला करी है, ताकौ गावै है, तिसतै भला हो है ।

तहां कहिये है – जो ईश्वर कै सहज सुख न होगा, तब संसारीवत् लीला करि सुखी भया । जो (वह) सहज सुखी होता तौ काहेकौ विषयादि सेवन वा

युद्धादिक करता ? जातै मदबुद्धि हू बिना प्रयोजन किञ्चिन्मात्र भी कार्य न करै। तातै जानिए है – वह ईश्वर हम सारिखा ही है, ताका जस गाए कहा सिद्धि है ?

बहुरि वह कहै है कि – हमारे शास्त्रनि विषै वैराग्य, त्याग, अहिंसादिक का भी तौ उपदेश है।

तहां कहिए है – सो उपदेश पूर्वापर विरोध लिए है। कही विषय पोषे है, कही निषेधे है। कही वैराग्य दिखाय, पीछै हिंसादि का करना पोष्या है। तहा वातुलवचन-वत् प्रमाण कहा ?

बहुरि वह कहै है कि वेदात आदि शास्त्रनि विषै तो तत्त्व ही का निरूपण है।

तहां कहिए है – सो निरूपण प्रमाण करि बाधित, अयथार्थ है। ताका निराकरण जैन के न्यायशास्त्रनि विषै किया है, सो जानना। तातै अन्यमत के शास्त्रनि का अभ्यास न करना।

ऐसैं जीवनि कौ इस शास्त्र के अभ्यास विषै सन्मुख किया, तिनकौ कहिए हैं–

हे भव्य ! शास्त्राभ्यास के अनेक अंग है। शब्द का वा अर्थ का वांचना, या सीखना, सिखावना, उपदेश देना, विचारना, सुनना, प्रश्न करना, समाधान जानना, बार बार चरचा करना, इत्यादि अनेक अंग है। तहां जैसैं बनै तैसै अभ्यास करना। जो सर्व शास्त्र का अभ्यास न बनै तौ इस शास्त्र विषै सुगम वा दुर्गम अनेक अर्थनि का निरूपण हैं। तहां जिसका बनै तिसही का अभ्यास करना। परतु अभ्यास विषै आलसी न होना।

देखो ! शास्त्राभ्यासकी महिमा, जाकौ होतैं परंपरा आत्मानुभव दशा कौं प्राप्त होइ – सो मोक्ष रूप फल निपजै है, सो तौ दूर ही तिष्ठौ। शास्त्राभ्यास तैं तत्काल ही इतने गुण हो है। १ क्रोधादि कषायनि की तौ मदता हो है। २. पंचइंद्रियनि की विषयनि विषैं प्रवृत्ति रुकै है। ३. अति चञ्चल मन भी एकाग्र हो है। ४. हिंसादि पंच पाप न प्रवर्तै है। ५ स्तोक ज्ञान होतैं भी त्रिलोक के त्रिकाल संबंधी चराचर पदार्थनि का जानना हौ है। ६ हेयोपादेय की पहिचान हो है। ७. आत्मज्ञान सन्मुख हो है.(ज्ञान आत्मसन्मुख हो है) । ८ अधिक-अधिक ज्ञान होतै आनद निपजै है। ९. लोकविषैं महिमा, यश विशेष हो है।१०. सातिशय पुण्य का बंध हो है – इत्यादिक गुण शास्त्राभ्यास करतैं तत्काल ही प्रगट होई है।

तातै शास्त्राभ्यास अवश्य करना। बहुरि हे भव्य! शास्त्राभ्यास करने का समय पावना महादुर्लभ है। काहे तैं ? सो कहिए हैं—

एकेंद्रियादि असज्ञी पर्यंत जीवनिकैं तौ मन ही नाही। अर नारकी वेदना पीड़ित, तिर्यंच विवेक रहित, देव विषयासक्त, तातै मनुष्यनि कै अनेक सामग्री मिले शास्त्राभ्यास होइ। सो मनुष्य पर्याय का पावना ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करि महादुर्लभ है।

तहा द्रव्य करि लोक विषै मनुष्य जीव बहुत थोरे है, तुच्छ संख्यात मात्र ही हैं। अर अन्य जीवनि विषै निगोदिया अनंत है, और जीव असंख्याते हैं।

बहुरि क्षेत्र करि मनुष्यनि का क्षेत्र बहुत स्तोक है, अढाई द्वीप मात्र ही है। अर अन्य जीवनि विषै एकेंद्रिनि का सर्व लोक है, औरनिका केते इक राजू प्रमाण है। बहुरि काल करि मनुष्य पर्याय विषै उत्कृष्ट रहने का काल स्तोक है, कर्मभूमि अपेक्षा पृथक्त्व कोटि पूर्व मात्र ही है। अर अन्य पर्यायनि विषै उत्कृष्ट रहने का काल — एकेंद्रिय विषै तो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन मात्र, अर और विषै संख्यातपल्य मात्र है।

बहुरि भाव करि तीव्र शुभाशुभपना करि रहित ऐसे मनुष्य पर्याय कौं कारण परिणाम होने अति दुर्लभ हैं। अन्य पर्याय कौं कारण अशुभरूप वा शुभरूप परिणाम होने सुलभ है। ऐसै शास्त्राभ्यास का कारण जो पर्याप्त कर्मभूमिया मनुष्य पर्याय, ताका दुर्लभपना जानना।

तहा सुवास, उच्चकुल, पूर्णआयु, इंद्रियनि की सामर्थ्य, नीरोगपना, सुसंगति, धर्मरूप अभिप्राय, बुद्धि की प्रबलता इत्यादिक का पावना उत्तरोत्तर महादुर्लभ है। सो प्रत्यक्ष देखिए है। अर इतनी सामग्री मिले विना ग्रंथाभ्यास बनै नाही। सो तुम भाग्यकरि यहु अवसर पाया है। तातै तुमकौं हठ करि भी तुमारे हित होने के अर्थि प्रेरै है। जैसै बनै तैसै इस शास्त्र का अभ्यास करो। बहुरि अन्य जीवनि कौं जैसे बनै तैसे शास्त्राभ्यास करावौ। बहुरि जे जीव शास्त्राभ्यास करते होइ, तिनकी अनुमोदना करहु। बहुरि पुस्तक लिखावना, वा पढने, पढावनेवालो की स्थिरता करनी, इत्यादिक शास्त्राभ्यास कौं बाह्यकारण, तिनका साधन करना। तातै इनकरि भी परंपरा कार्यसिद्धि हो है वा महत्पुण्य उपजै है।

ऐसै इस शास्त्र का अभ्यासादि विषै जीवनि कौं रुचिवान किया।

—※—

गोम्मटसार जीवकाण्ड सम्बन्धी प्रकरण

बहुरि जो यहु **सम्यग्ज्ञानचंद्रिका** नामा भाषा टीका, तिहिविषै संस्कृत टीका तै कही अर्थ प्रकट करने के अर्थि, वा कही प्रसंगरूप, वा कही अन्य ग्रंथ का अनुसारि लेइ अधिक भी कथन करियेगा। अर कही अर्थ स्पष्ट न प्रतिभासैगा, तहा न्यून कथन होइगा ऐसा जानना। सो इस भाषा टीका विषै मुख्यपनै जो-जो मुख्य व्याख्यान है, ताकौ अनुक्रमतै संक्षेपता करि कहिए है। जातै याके जानै अभ्यास करने-वालौ कै सामान्यपनै इतना तौ जानना होइ जो या विषै ऐसा कथन है। अर क्रम जानै जिस व्याख्यान कौ जानना होइ, ताकौ तहां शीघ्र अवलोकि अभ्यास करै, वा जिनने अभ्यास किया होइ, ते याकौ देखि अर्थ का स्मरण करै, सो सर्व अर्थ की सूचनिका कीए तौ विस्तार होई, कथन आगै है ही, तातै मुख्य कथन की सूचनिका क्रम तै करिए है।

तहाँ इस भाषा टीका विषै सूचनिका करि कर्माष्टक आदि गणित का स्वरूप दिखाइ संस्कृत टीका के अनुसारि मगलाचरणादि का स्वरूप कहि मूल गाथानि की टीका कीजिएगा। तहा इस शास्त्र विषै दोय महा अधिकार है – एक जीवकाड, एक कर्मकाड। तहा जीवकांड विषै बाईस अधिकार है।

तिनिविषै **प्रथम गुणस्थानाधिकार** है। तिस विषै गुणस्थाननि का नाम, वा सामान्य लक्षण कहि तिनिविषै सम्यक्त्व, चारित्र अपेक्षा औदयिकादि संभवते भावनि का निरूपण करि क्रम तै मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थाननि का वर्णन है। तहा मिथ्यादृष्टि विषै पच मिथ्यात्वादि का सासादन विषै ताके काल वा स्वरूप का, मिश्र विषै ताके स्वरूप का वा मरण न होने का, असंयत विषै वेदकादि सम्यक्त्वनि का वा ताके स्वरूपादिक का, देश संयत विषै ताके स्वरूप का वर्णन है। बहुरि प्रमत्त का कथन विषै ताके स्वरूप का अर पद्रह वा अस्सी वा साढे सैतीस हजार प्रमाद भेदनि का अर तहा प्रसंग पाइ सख्या, प्रस्तार, परिवर्तन, नष्ट, समुद्दिष्ट करि वा गूढ यंत्र करि अक्षसचार विधान का कथन है। जहा भेदनि कौ पलटि पलटि परस्पर लगाइए तहा अक्षसचार विधान हो है। बहुरि अप्रमत्त का कथन विषै स्वस्थान अर सातिशय दोय भेद कहि, सातिशय अप्रमत्त कै अध करण हो है, ताके स्वरूप वा काल वा परिणाम वा समय-समय सबधी परिणाम वा एक-एक समय विषै अनुकृष्टि विधान, वा तहां संभवते च्यारि आवश्यक इत्यादिक का विशेष वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ श्रेणी व्यवहार रूप गणित का कथन है। तिसविषै सर्वधन, उत्तरधन, मुख,

भूमि, चय, गच्छ इत्यादि संज्ञानि का स्वरूप वा प्रमाण ल्यावने कौं करणसूत्रनि का वर्णन है। बहुरि अपूर्वकरण का कथन विषै ताके काल, स्वरूप, परिणाम, समय-समय संबंधी परिणामादिक का कथन है। बहुरि अनिवृत्तिकरण का कथन विषै ताके स्वरूपादिक का कथन है। बहुरि सूक्ष्मसापराय का कथन विषै प्रसंग पाइ कर्मप्रकृतिनि के अनुभाग अपेक्षा अविभागप्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्द्धक, गुणहानि, नाना-गुणहानिनि का अर पूर्वस्पर्द्धक, अपूर्वस्पर्धक, बादरकृष्टि, सूक्ष्मकृष्टि का वर्णन है। इत्यादि विशेष कथन है सो जानना। बहुरि उपशांतकषाय, क्षीणकषाय का कथन विषै तिनके दृष्टांतपूर्वक स्वरूप का, सयोगी जिन का कथन विषै नव केवललब्धि आदिक का, अयोगी विषै शैलेश्यपना आदिक का कथन है। ग्यारह गुणस्थाननि विषै गुणश्रेणी निर्जरा का कथन है। तहां द्रव्य कौ अपकर्षण करि उपरितन स्थिति अर गुणश्रेणी आयाम अर उदयावली विषै जैसे दीजिए है, ताका वा गुणश्रेणी आयाम के प्रमाण का निरूपण है। तहां प्रसंग पाइ अंतर्मुहूर्त के भेदनि का वर्णन है। बहुरि सिद्धनि का वर्णन है।

बहुरि दूसरा जीवसमास अधिकार विषै – जीवसमास का अर्थ वा होने का विधान कहि चौदह, उगणीस, वा सत्तावन, जीवसमासनि का वर्णन है। बहुरि च्यारि प्रकारि जीवसमास कहि, तहा स्थानभेद विषै एक आदि उगणीस पर्यंत जीवस्थाननि का, वा इन ही के पर्याप्तादि भेद करि स्थाननि का वा अठ्याणवै वा च्यारि सै छह जीवसमासनि का कथन है। बहुरि योनि भेद विषै शंखावर्तादि तीन प्रकार योनि का, अर सम्मूर्च्छनादि जन्म भेद पूर्वक नव प्रकार योनि के स्वरूप वा स्वामित्व का अर चौरासी लक्ष योनि का वर्णन है। तहा प्रसग पाइ च्यारि गतिनि विषै सम्मूर्च्छनादि जन्म वा पुरुषादि वेद संभवै, तिनका निरूपण है। बहुरि अवगाहना भेद विषै सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त आदि जीवनि की जघन्य, उत्कृष्ट शरीर की अवगाहना का विशेष वर्णन है। तहां एकेंद्रियादिक की उत्कृष्ट अवगाहना कहने का प्रसंग पाइ गोलक्षेत्र, सखक्षेत्र, आयत, चतुरस्रक्षेत्र का क्षेत्रफल करने का, अर अवगाहना विषै प्रदेशनि की वृद्धि जानने के अर्थि अनतभाग आदि चतु स्थानपतित वृद्धि का, अर इस प्रसंग तै दृष्टांतपूर्वक षट्स्थानपतित आदि वृद्धि-हानि का, सर्व अवगाहना भेद जानने के अर्थि मत्स्यरचना का वर्णन है। बहुरि कुल भेद विषै एक सौ साढा निण्याणवै लाख कोडि कुलनि का वर्णन है।

बहुरि तीसरा पर्याप्त नामा अधिकार विषै – पहलै मान का वर्णन है। तहां लौकिक-अलौकिक मान के भेद कहि। बहुरि द्रव्यमान के दोय भेदनि विषै, सख्या

मान विषै सख्यात, असख्यात, अनंत के इकईस भेदनि का वर्णन है । बहुरि संख्या के विशेष रूप चौदह धारानि का कथन है। तिनि विषै द्विरूपवर्गधारा, द्विरूपघनधारा द्विरूपघनाघनधारानि कै स्थाननि विषै जे पाइए है, तिनका विशेष वर्णन है । तहा प्रसंग पाइ पणट्ठी, बादाल, एकट्ठी का प्रमाण, अर वर्गशलाका, अर्धच्छेदनि का स्वरूप, वा अविभागप्रतिच्छेद का स्वरूप, वा उक्तम् च गाथानि करि अर्धच्छेदादिक के प्रमाण होनें का नियम, वा अग्निकायिक जीवनि का प्रमाण ल्यावने का विधान इत्यादिकनि का वर्णन है । बहुरि दूसरा उपमा मान के पल्य आदि आठ भेदनि का वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ व्यवहारपल्य के रोमनि की संख्या ल्यावने कौ परमाणू तै लगाय अंगुल पर्यंत अनुक्रम का, अर तीन प्रकार अंगुल का, अर जिस जिस अगुल करि जाका प्रमाण वर्णिए ताका, अर गोलगर्त के क्षेत्रफल ल्यावने का वर्णन है । अर उद्धारपल्य करि द्वीप-समुद्रनि की सख्या ल्याइए है । अद्धापल्य करि आयु आदि वर्णिए है, ताका वर्णन है । अर सागर की सार्थिक सज्ञा जानने कौ, लवण समुद्र का क्षेत्रफल कौ आदि देकर वर्णन है । अर सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनागुल, जगत्श्रेणी, जगत्-प्रतर, (जगत्घन) लोकनि का प्रमाण ल्यावने कौ विरलन आदि विधान का वर्णन है। बहुरि पल्यादिक की वर्गशलाका अरु अर्धच्छेदनि का प्रमाण वर्णन है । तिनिके प्रमाण जानने कौ उक्तम् च गाथा रूप करणसूत्रनि का कथन है । बहुरि पीछै पर्याप्ति प्ररूपणा है । तहां पर्याप्त, अपर्याप्त के लक्षण का, अर छह पर्याप्तिनि के नाम का, स्वरूप का, प्रारंभ सपूर्ण होने के काल का, स्वामित्व का वर्णन है । बहुरि लब्धिअपर्याप्त का लक्षण, वा ताके निरतर क्षुद्रभवनि के प्रमाणादिक का वर्णन है । तहा ही प्रसग पाइ प्रमाण, फल, इच्छारूप त्रैराशिक गणित का कथन है । बहुरि सयोगी जिन कै अपर्याप्तपना संभवने का, अर लब्धि अपर्याप्त, निर्वृति अपर्याप्त, पर्याप्त के सभवते गुणस्थाननि का वर्णन है ।

बहुरि चौथा प्राणाधिकार विषै – प्राणनि का लक्षण, अर भेद, अर कारण अर स्वामित्व का कथन है ।

बहुरि पांचमां संज्ञा अधिकार विषै – च्यारि संज्ञानि का स्वरूप, अर भेद, अर कारण, अर स्वामित्व का वर्णन है ।

बहुरि छट्ठा मार्गणा महा अधिकार विषै – मार्गणा की निरुक्ति का, अर चौदह भेदनि का, अर सातर मार्गणा के अतराल का, अर प्रसंग पाइ तत्त्वार्थसूत्र टीका के अनुसारि नाना जीव, एक जीव अपेक्षा गुणस्थाननि विषै, अर गुणस्थान

अपेक्षा लिऐ मार्गणानि विषै काल का, अर अंतर का कथन करि छट्ठा गति मार्गणा अधिकार है। तहा गति के लक्षण का, अर भेदनि का अर च्यारि भेदनि के निरुक्ति लिए लक्षणनि का, अर पाँच प्रकार तिर्यच, च्यारि प्रकार मनुष्यनि का अर सिद्धनि का वर्णन है। बहुरि सामान्य नारकी, जुदे-जुदे सात पृथ्वीनि के नारकी, अर पाँच प्रकार तिर्यंच, च्यारि प्रकार मनुष्य, अर व्यतर, ज्योतिषी, भवनवासी, सौधर्मादिक देव, सामान्य देवराशि इन जीवनि की सख्या का वर्णन है। तहा पर्याप्त मनुष्यनि की सख्या कहने का प्रसंग पाइ "कटपयपुरस्थवर्णं" इत्यादि सूत्र करि ककारादि अक्षररूप अंक वा बिंदी की संख्या का वर्णन है।

बहुरि सातमां इंद्रियमार्गणा अधिकार विषै – इन्द्रियनि का निरुक्ति लिए लक्षण का, अर-लब्धि उपयोगरूप भावेंद्रिय का, अर बाह्य अभ्यन्तर भेद लिए निवृत्ति-उपकरणरूप द्रव्येन्द्रिय का, अर इन्द्रियनि के स्वामी का, अर तिनके विषयभूत क्षेत्र का, अर तहां प्रसंग पाइ सूर्य के चार क्षेत्रादिक का अर इन्द्रियनि के आकार का वा अवगाहना का, अर अतींद्रिय जीवनि का वर्णन है। बहुरि एकेन्द्रियादिकनि का उदाहरण रूप नाम कहि, तिनकी सामान्य संख्या का वर्णन करि, विशेषपने सामान्य एकेन्द्री, अर सूक्ष्म बादर एकेंद्री, बहुरि सामान्य त्रस, अर बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइंद्रिय, पचेन्द्रिय इन जीवनि का प्रमाण, अर इन विषै पर्याप्त-अपर्याप्त जीवनि का प्रमाण वर्णन है।

बहुरि आठमां कायमार्गणा अधिकार विषै – काय के लक्षण का वा भेदनि का वर्णन है। बहुरि पंच स्थावरनि के नाम, अर काय, कायिक जीवरूप भेद, अर बादर, सूक्ष्मपने का लक्षणादि, अर शरीर की अवगाहना का वर्णन है।

बहुरि वनस्पती के साधारण-प्रत्येक भेदनि का, प्रत्येक के सप्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित भेदनि का, अर तिनकी अवगाहना का अर एक स्कंध विषै तिनके शरीरनि के प्रमाण का, अर योनीभूत बीज विषैं जीव उपजने का, वा तहां सप्रतिष्टित-अप्रतिष्टित होने के काल का, अर प्रत्येक वनस्पती विषैं सप्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित जानने कौं तिनके लक्षण का, बहुरि साधारण वनस्पती निगोदरूप तहां जीवनि के उपजने, पर्याप्ति धरने, मरने के विधान का, अर निगोद शरीर की उत्कृष्ट स्थिति का, अर स्कंध, अंडर, पुलवी, आवास, देह, जीव इनके लक्षण प्रमाणादिक का अर नित्यनिगोदादि के स्वरूप का वर्णन है। बहुरि त्रस जीवनि का अर तिनके क्षेत्र का वर्णन है। बहुरि वनस्पतीवत् औरनि के शरीर विषै सप्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठितपने का, अर स्थावर, त्रस

जीवनि के आकार का, अर काय सहित, काय रहित जीवनि का वर्णन है। बहुरि अग्नि, पृथ्वी, अप्, वात, प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित प्रत्येक-साधारण वनस्पती जीवनि की, अर तिनविषै सूक्ष्म-बादर जीवनि की, अर तिनविषै भी पर्याप्त-अपर्याप्त जीवनि की सख्या का वर्णन है। तहा प्रसंग पाइ पृथ्वी आदि जीवनि की उत्कृष्ट आयु का वर्णन है। बहुरि त्रस जीवनि की, अर तिनविषै पर्याप्त-अपर्याप्त जीवनि की सख्या का वर्णन है। बहुरि बादर अग्निकायिक आदि की सख्या का विशेष निर्णय करने के अर्थि तिनके अर्धच्छेदादिक का, अर प्रसग पाइ "दिण्णछेदेणवहिद" इत्यादिक करणसूत्र का वर्णन है।

बहुरि नवमां योगमार्गणा अधिकार विषै – योग के सामान्य लक्षण का अर सत्य आदि च्यारि-च्यारि प्रकार मन, वचन योग का वर्णन है। तहा सत्य वचन का विशेष जानने कौं दश प्रकार सत्य का, अर अनुभय वचन का विशेष जानने कौं आमंत्रणी आदि भाषानि का, अर सत्यादिक भेद होने के कारण का, अर केवली के मन, वचन योग संभवने का अर द्रव्य मन के आकार का इत्यादि विशेष वर्णन है। बहुरि काय योग के सात भेदनि का वर्णन है। तहां औदारिकादिकनि के निरुक्ति पूर्वक लक्षण का, अर मिश्रयोग होने के विधान का, अर आहारक शरीर होने के विशेष का, अर कार्माणयोग के काल का विशेष वर्णन है। बहुरि युगपत् योगनि की प्रवृत्ति होने का विधान वर्णन है। अर योग रहित आत्मा का वर्णन है। बहुरि पच शरीरनि विषै कर्म-नोकर्म भेद का, अर पच शरीरनि की वर्गणा वा समय प्रबद्ध विषै परमाणूनि का प्रमाण वा क्रम तै सूक्ष्मपना वा तिनकी अवगाहना का वर्णन है। बहुरि विस्रसोपचय का स्वरूप वा तिनकी परमाणुनि के प्रमाण का वर्णन है। बहुरि कर्म-नोकर्म का उत्कृष्ट सचय होने का काल वा सामग्री का वर्णन है। बहुरि औदारिक आदि पच शरीरनि का द्रव्य तौ समय प्रबद्धमात्र कहि। तिनकी उत्कृष्ट स्थिति, अर तहाँ संभवती गुणहानि, नाना गुणहानि, अन्योन्याभ्यस्तराशि, दो गुणहानि का स्वरूप प्रमाण कहि, करणसूत्रादिक तै तहा चयादिक का प्रमाण ल्याय समय-समय सबधी निषेकनि का प्रमाण कहि, एक समय विषै केते परमाणू उदयरूप होइ निर्जरै, केते सत्ता विषै अवशेष रहै, ताके जानने कौं अंकसदृष्टि की अपेक्षा लिये त्रिकोण यत्र का कथन है। बहुरि वैक्रियिकादिकनि का उत्कृष्ट सचय कौनकै कैसै होइ सो वर्णन है। बहुरि योगमार्गणा विषै जीवनि की सख्या का वर्णन विषै वैक्रियिक शक्ति करि संयुक्त बादर पर्याप्त अग्निकायिक, वातकायिक अर पर्याप्त पचेन्द्रिय तिर्यच, मनुष्यनि के प्रमाण का, अर भोगभूमिया आदि

जीवनि कै पृथक् विक्रिया, अर औरनि कै अपृथक् विक्रिया हो है, ताका कथन है। बहुरि त्रियोगी, द्वियोगी, एकयोगी जीवनि का प्रमाण कहि त्रियोगीनि विषै आठ प्रकार मन-वचनयोगी अर काययोगी जीवनि का, अर द्वियोगीनि विषै वचन-काययोगीनि का प्रमाण वर्णन है। तहां प्रसग पाइ सत्यमनोयोगादि वा सामान्य मन-वचन-काय योगनि के काल का वर्णन है। बहुरि काययोगीनि विषै सात प्रकार काययोगीनि का जुदा-जुदा प्रमाण वर्णन है। तहा प्रसंग पाइ औदारिक, औदारिकमिश्र, कार्माण के काल का, वा व्यंतरनि विषै सोपक्रम, अनुपक्रम काल का वर्णन है। बहुरि यहु कथन है (जो)जीवनि की सख्या उत्कृष्टपनै युगपत् होने की अपेक्षा कही है।

बहुरि दशवां वेदमार्गणा अधिकार विषै – भाव-द्रव्यवेद होने के विधान का, अर तिनके लक्षण का, अर भाव-द्रव्यवेद समान वा असमान हो है ताका, अर वेदनि का कारण दिखाई ब्रह्मचर्य अगीकार करने का अर तीनो वेदनि का निरुक्ति लिये लक्षण का, अर अवेदी जीवनि का वर्णन है। बहुरि तहा सख्या का वर्णन विषै देव राशि कही। तहा स्त्री-पुरुषवेदीनि का, अर तिर्यचनि विषै द्रव्य-स्त्री आदि का प्रमाण कहि समस्त पुरुष, स्त्री, नपुसकवेदीनि का प्रमाण वर्णन है। बहुरि सैनी पंचेन्द्री गर्भज, नपुंसकवेदी इत्यादिक ग्यारह स्थाननि विषै जीवनि का प्रमाण वर्णन है।

बहुरि ग्यारहवां कषायमार्गणा अधिकार विषै – कषाय का निरुक्ति लिये लक्षण का, वा सम्यक्त्वादिक घातने रूप दूसरे अर्थ विषै अनन्तानुबधी आदि का निरुक्ति लिए लक्षण का वर्णन है। बहुरि कषायनि के एक, च्यारि, सोलह, असख्यात लोकमात्र भेद कहि क्रोधादिक की उत्कृष्टादि च्यारि प्रकार शक्तिनि का दृष्टात वा फल की मुख्यता करि वर्णन है। बहुरि पर्याय धरने के पहलै समय कषाय होने का नियम है वा नाही है सो वर्णन है। बहुरि अकषाय जीवनि का वर्णन है। बहुरि क्रोधादिक के शक्ति अपेक्षा च्यार, लेश्या अपेक्षा चौदह, आयुबंध अर अबध अपेक्षा बीस भेद हैं, तिनका अर सर्व कषायस्थाननि का प्रमाण कहि तिन भेदनि विषै जेते-जेते स्थान सभवै तिनका वर्णन है। बहुरि इहा जीवनि की सख्या का वर्णन विषै नारकी, देव, मनुष्य, तिर्यच गति विषै जुदा-जुदा क्रोधी आदि जीवनि का प्रमाण वर्णन है। तहा प्रसंग पाइ तिन गतिनि विषै क्रोधादिक का काल वर्णन है।

बहुरि बारहवां ज्ञानमार्गणा अधिकार विषै – ज्ञान का निरुक्ति पूर्वक लक्षण कहि, ताके पंच भेदनि का अर क्षयोपशम के स्वरूप का वर्णन है। बहुरि तीन मिथ्या ज्ञाननि का, अर मिश्र ज्ञाननि का अर तीन कुज्ञाननि के परिणमन के उदाहरण का

वर्णन है । बहुरि मतिज्ञान का वर्णन विषै याके नामांतर का, अर इंद्रिय-मन तै उपजने का अर तहा अवग्रहादि होने का, अर व्यंजन-अर्थ के स्वरूप का, अर व्यंजन विषैं नेत्र, मन वा ईहादिक न पाइए ताका, अर पहले दर्शन होइ पीछै अवग्रहादि होने के क्रम का अर अवग्रहादिकनि के स्वरूप का, अर अर्थ-व्यंजन के विषयभूत बहु, बहुविध आदि बारह भेदनि का, तहा अनिसृति विषै च्यारि प्रकार परोक्ष प्रमाण गर्भितपना आदि का, अर मतिज्ञान के एक, च्यारि, चौबीस, अट्ठाईस अर इनतै बारह गुणे भेदनि का वर्णन है । बहुरि श्रुतज्ञान का वर्णन विषै श्रुतज्ञान का लक्षण निरुक्ति आदि का, अर अक्षर-अनक्षर रूप श्रुतज्ञान के उदाहरण वा भेद वा प्रमाण का वर्णन है । बहुरि भाव श्रुतज्ञान अपेक्षा बीस भेदनि का वर्णन है । तहा पहिला जघन्यरूप पर्याय ज्ञान का वर्णन विषैं ताके स्वरूप का, अर तिसका आवरण जैसै उदय हो है ताका, अर यहु जाकै हो हैं ताका, अर याका दूसरा नाम लब्धि अक्षर है, ताका वर्णन है । अर पर्यायसमास ज्ञान का वर्णन विषै षट्स्थानपतित वृद्धि का वर्णन है । तहा जघन्य ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण कहि । अर अनतादिक का प्रमाण अर अनंत भागादिक की सहनानी कहि, जैसै अनंतभागादिक षट्स्थानपतित वृद्धि हो है, ताके क्रम का यत्र द्वार तै वर्णन करि अनंत भागादि वृद्धिरूप स्थाननि विषै अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण ल्यावने कौ प्रक्षेपक आदि का विधान, अर तहा प्रसंग पाइ एक बार, दोय बार, आदि सकलन धन ल्यावने का विधान, अर साधिक जघन्य जहा दूणा हो है, ताका विधान, अर पर्याय समास विषै अनतभाग आदि वृद्धि होने का प्रमाण इत्यादि विशेष वर्णन है । बहुरि अक्षर आदि अठारह भेदनि का क्रम तै वर्णन है । तहां अर्थाक्षर के स्वरूप का, अर तीन प्रकार अक्षरनि का अर शास्त्र के विषयभूत भावनि के प्रमाण का, अर तीन प्रकार पदनि का अर चौदह पूर्वनि विषै वस्तु वा प्राभृत नामा अधिकारनि के प्रमाण का इत्यादि वर्णन है । बहुरि बीस भेदनि विषै अक्षर, अनक्षर श्रुतज्ञान के अठारह, दोय भेदनि का अर पर्यायज्ञानादि की निरुक्ति लिए स्वरूप का वर्णन है ।

बहुरि द्रव्यश्रुत का वर्णन विषै द्वादशांग के पदनि की अर प्रकीर्णक के अक्षरनि की संख्यानि का, बहुरि चौसठ मूल अक्षरनि की प्रक्रिया का, अर अपुनरुक्त सर्व अक्षरनि का प्रमाण वा अक्षरनि विषै प्रत्येक द्विसंयोगी आदि भंगनि करि तिस प्रमाण ल्यावने का विधान अर सर्व श्रुत के अक्षरनि का प्रमाण वा अक्षरनि विषै अंगनि के पद अर प्रकीर्णकनि के अक्षरनि के प्रमाण ल्यावने का विधान इत्यादि वर्णन है । बहुरि आचाराग आदि ग्यारह अंग, अर दृष्टिवाद अग के पांच भेद, तिनमैं परिकर्म के पाच

भेद, तहा सूत्र अर प्रथमानुयोग का एक-एक भेद, अर पूर्वगत के चौदह भेद, चूलिका के पांच भेद, इन सबनि के जुदा-जुदा पदनि का प्रमाण अर इन विषै जो-जो व्याख्यान पाइए, ताकी सूचनिका का कथन है। तहां प्रसंग पाइ तीर्थंकर की दिव्यध्वनि होने का विधान, अर वर्द्धमान स्वामी के समय दश-दश जीव अंत कृत केवली अर अनुत्तरगामी भए तिनकानाम अर तीन सौ तिरेसठि कुवादनि के धारकनि विषै केई कुवादीनि के नाम अर सप्त भंग का विधान, अर अक्षरनि के स्थान-प्रयत्नादिक, अर बारह भाषा अर आत्मा के जीवादि विशेषण इत्यादि घने कथन हैं। बहुरि सामायिक आदि चौदह प्रकीर्णकनि का स्वरूप वर्णन है। बहुरि श्रुतज्ञान की महिमा का वर्णन है।

बहुरि अवधिज्ञान का वर्णन विषै निरुक्ति पूर्वक स्वरूप कहि, ताके भवप्रत्यय-गुणप्रत्यय भेदनि का, अर ते भेद कौनकै होय, कौन आत्मप्रदेशनि तै उपजै ताका, अर तहां गुणप्रत्यय, के छह भेदनि का, तिनविषै अनुगामी, अननुगामी के तीन-तीन भेदनि का वर्णन हैं। बहुरि सामान्यपनै अवधि के देशावधि, परमावधि, सर्वावधि भेदनि का, अर तिन विषै भवप्रत्यय-गुणप्रत्यय के संभवपने का, अर ए कौनकै होइ-ताका, अर तहां प्रतिपाती, अप्रतिपाती, विशेष का, अर इनके भेदनि के प्रमाण का, वर्णन है। बहुरि जघन्य देशावधि का विषयभूत द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का वर्णन करि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अपेक्षा द्वितीयादि उत्कृष्ट पर्यंत क्रम तै भेद होने का विधान, अर तहां द्रव्यादिक के प्रमाण का अर सर्व भेदनि के प्रमाण का वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ ध्रुवहार, वर्ग, वर्गणा, गुणकार इत्यादिक का अनेक वर्णन है। अर तहां ही क्षेत्र-काल अपेक्षा तिस देशावधि के उगणीस कांडकनि का वर्णन है।

बहुरि परमावधि के विषयभूत द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अपेक्षा जघन्य तैं उत्कृष्ट पर्यन्त क्रम तै भेद होने का विधान, वा तहा द्रव्यादिक का प्रमाण वा सर्व भेदनि के प्रमाण का वर्णन है। तहा प्रसंग पाइ संकलित धन ल्यावने का अर "इच्छिदरासिच्छेदं" इत्यादि दोय करणसूत्रनि का आदि अनेक वर्णन है।

बहुरि सर्वावधि अभेद है। ताकै विषयभूत द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का वर्णन है। बहुरि जघन्य देशावधि तैं सर्वावधि पर्यंत द्रव्य अर भाव अपेक्षा भेदनि की समानता का वर्णन है। बहुरि नरक विषै अवधि का वा ताके विषयभूत क्षेत्र का, अर मनुष्य, तिर्यंच विषै जघन्य-उत्कृष्ट अवधि होने का, अर देव विषै भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषीनि के अवधिगोचर क्षेत्रकाल का, सौधर्मादि द्विकनि विषै क्षेत्रादिक का, वा द्रव्य का भी वर्णन है।

बहुरि मन पर्ययज्ञान का वर्णन विषै ताके स्वरूप का, अर दोय भेदनि का अर तहा ऋजुमति तीन प्रकार, विपुलमति छह प्रकार ताका, अर मन.पर्यय जहातै उपजै है अर जिनकै हो है ताका, अर दोय भेदनि विषै विशेष है ताका, अर जीव करि चितया हुवा द्रव्यादिक कौ जानै ताका, अर ऋजुमति का विषयभूत द्रव्य का अर मनःपर्यय संबंधी ध्रुवहार का, अर विपुलमति के जघन्य तै उत्कृष्ट पर्यन्त द्रव्य अपेक्षा भेद होने का विधान, वा भेदनि का प्रमाण, वा द्रव्य का प्रमाण कहि, जघन्य उत्कृष्ट क्षेत्र, काल, भाव का वर्णन है ।

बहुरि केवलज्ञान सर्वज्ञ है, ताका वर्णन है । बहुरि इहा जीवनि की सख्या का वर्णन विषै मति, श्रुति, अवधि, मन.पर्यय, केवलज्ञानी का अर च्यारो गति सबधी विभंगज्ञानीनि का, अर कुमति-कुश्रुत-ज्ञानीनि का प्रमाण वर्णन है ।

बहुरि तेरहवां संयममार्गणा अधिकार विषै – ताके स्वरूप का, अर सयम के भेद के निमित्त का वर्णन है । बहुरि सयम के भेदनि का स्वरूप वर्णन है । तहा परिहारविशुद्धि का विशेष, अर ग्यारह प्रतिमा, अट्ठाईस विषय इत्यादिक का वर्णन है । बहुरि इहा जीवनि की सख्या का वर्णन विषै सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहार-विशुद्धि, सूक्ष्मसापराय, यथाख्यात सयमधारी, अर सयतासयत, अर असयत जीवनि का प्रमाण वर्णन है ।

बहुरि चौदहवां दर्शनमार्गणा अधिकार विषै – ताके स्वरूप का, अर दर्शन भेदनि के स्वरूप का वर्णन है । बहुरि इहा जीवनि की सख्या का वर्णन विषै शक्ति चक्षुर्दर्शनी, व्यक्त चक्षुर्दर्शनीनि का अर अवधि, केवल, अचक्षुर्दर्शनीनि का प्रमाण वर्णन है ।

बहुरि पंद्रहवां लेश्यामार्गणा अधिकार विषै – द्रव्य, भाव करि दोय प्रकार लेश्या कहि, भावलेश्या का निरुक्ति लिए लक्षण अर ताकरि बध होने का वर्णन है । बहुरि सोलह अधिकारनि के नाम है । बहुरि निर्देशाधिकार विषै छह लेश्यानि के नाम है । अर वर्णाधिकार विषै द्रव्य लेश्यानि के कारण का, अर लक्षण का, अर छहो द्रव्य लेश्यानि के वर्ण का दृष्टात का, अर जिनकै जो-जो द्रव्य लेश्या पाइए, ताका व्याख्यान है । बहुरि प्रमाणाधिकार विषै कषायनि के उदयस्थाननि विषै संक्लेशविशुद्धि स्थाननि के प्रमाण का, अर तिनविषै भी कृष्णादि लेश्यानि के स्थाननि के प्रमाण का, अर सक्लेशविशुद्धि की हानि, वृद्धि तै अशुभ, शुभलेश्या होने के

अनुक्रम का वर्णन है। बहुरि संक्रमणाधिकार विषैं स्वस्थान-परस्थान संक्रमण कहि संक्लेशविशुद्धि का वृद्धि-हानि तैं जैसै संक्रमण हो है ताका, अर सक्लेशविशुद्धि विषै जैसै लेश्या के स्थान होइ, अर तहा जैसै षट्स्थानपतित वृद्धि-हानि संभवै, ताका वर्णन है। बहुरि कर्माधिकार विषै छहों लेश्यावाले कार्य विषै जैसै प्रवर्तै, ताके उदाहरण का वर्णन है। बहुरि लक्षणाधिकार विषै छहो लेश्यावालेनि का लक्षण वर्णन है।

बहुरि गति अधिकार विषै लेश्यानि के छब्बीस अंश, तिनविषै आठ मध्यम अंश आयुबंध कौ कारण, ते आठ अपकर्षकालनि विषै हौइ, तिन अपकर्षनि का उदाहरणपूर्वक स्वरूप का अर तिनविषै आयु न बधै तौ जहां बधै ताका, अर सोपक्रमायुष्क, निरुपक्रमायुष्क, जीवनि कै अपकर्षणरूप काल का, वा तहां आयु बधने का विधान वा गति आदि विशेष का, अर अपकर्षनि विषै आयु बधनेवाले जीवनि के प्रमाण का वर्णन करि पीछै लेश्यानि के अठारह अंशनि विषै जिस-जिस अंश विषै मरण भए, जिस-जिस स्थान विषै उपजै ताका वर्णन है।

बहुरि स्वामी अधिकार विषै भाव लेश्या की अपेक्षा सात नरकनि के नारकीनि विषै, अर मनुष्य-तिर्यच विषै, तहा भी एकेंद्रिय-विकलत्रय विषै, असैनी पचेंद्रिय विषै लब्धि अपर्याप्तक तिर्यच-मनुष्य विषै, अपर्याप्तक तिर्यच-मनुष्य-भवनत्रिकदेव सासादन वालों विषै, पर्याप्त-अपर्याप्त भोगभूमियां विषै, मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थाननिनि विषै, पर्याप्त भवनत्रिक-सौधर्मादिक आदि देवनि विषै जो-जो लेश्या पाइए ताका वर्णन हैं। तहां असैनी के लेश्यानिमित्त तैं गति विषै उपजने का आदि विशेष कथन है।

बहुरि साधन अधिकार विषै द्रव्य लेश्या अर भाव लेश्यानि के कारण का वर्णन है।

बहुरि संख्याधिकार विषै द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, मान करि कृष्णादि लेश्यावाले जीवनि का प्रमाण वर्णन है।

बहुरि क्षेत्राधिकार विषै सामान्यपनै स्वस्थान, समुद्घात, उपपाद अपेक्षा, विशेषपनै दोय प्रकार स्वस्थान, सात प्रकार समुद्घात, एक उपपाद इन दश स्थाननि विषै संभवतै स्थाननि की अपेक्षा कृष्णादि लेश्यानि का (स्थान वर्णन कहिए) क्षेत्र वर्णन है। तहा प्रसंग पाइ विवक्षित लेश्या विषै संभवतै स्थान, तिन विषै जीवनि के प्रमाण का, तिन स्थाननि विषै क्षेत्र के प्रमाण का, समुद्घातादिक के विधान का, क्षेत्रफलादिक का, मरने वाले आदि देवनि के प्रमाण का, केवल समुद्घात विषै दंड-कपाटादिक का, तहां लोक के क्षेत्रफल का इत्यादिक का वर्णन है।

बहुरि स्पर्शाधिकार विषै पूर्वोक्त सामान्य-विशेषपनै करि लेश्यानि का तीन काल संबंधी क्षेत्र का वर्णन है। तहाँ प्रसग पाइ मेरु तै सहस्रार पर्यंत सर्वत्र पवन के सद्भाव का, अर जंबूद्वीप समान लवणसमुद्र के खड, लवणसमुद्र के समान अन्य समुद्र के खंड करने के विधान का, अर जलचर रहित समुद्रनि का मिलाया हुआ क्षेत्रफल के प्रमाण का, अर देवादिक के उपजने, गमन करने का इत्यादि वर्णन है।

बहुरि काल अधिकार विषै कृष्णादि लेश्या जितने काल रहै ताका वर्णन है।

बहुरि अंतराधिकार विषै कृष्णादि लेश्या का जघन्य, उत्कृष्ट जितने काल-अभाव रहै, ताका वर्णन है। तहां प्रसग पाइ एकेंद्री, विकलेंद्री विषै उत्कृष्ट रहने के काल का वर्णन है।

बहुरि भावाधिकार विषै छहौ लेश्यानि विषै औदयिक भाव के सद्भाव का वर्णन है।

बहुरि अल्पबहुत्व अधिकार विषै सख्या के अनुसारि लेश्यानि विषै परस्पर अल्प-बहुत्व का व्याख्यान है, ऐसैं सोलह अधिकार कहि लेश्या रहित जीवनि का व्याख्यान है।

बहुरि सोलहवां भव्यमार्गणा अधिकार विषै – दोय प्रकार भव्य अर अभव्य अर भव्य-अभव्यपना करि रहित जीवनि का स्वरूप वर्णन है। बहुरि इहा संख्या का कथन विषै भव्य-अभव्य जीवनि का प्रमाण वर्णन है। बहुरि इहा प्रसग पाइ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावरूप पचपरिवर्तननि के स्वरूप का, वा जैसे क्रम तै परिवर्तन हो है ताका, अर परिवर्तननि के काल का, अनादि तै जेते परिवर्तन भए, तिनके प्रमाण का वर्णन है। तहा गृहीतादि पुद्गलनि के स्वरूप सदृष्टि का, वा योग स्थान आदिकनि का वर्णन पाइए है।

बहुरि सतरहवां सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार विषै – सम्यक्त्व के स्वरूप का, अर सराग-वीतराग के भेदनि का अर षट् द्रव्य, नव पदार्थनि के श्रद्धानरूप लक्षण का वर्णन है। बहुरि षट् द्रव्य का वर्णन विषै सात अधिकारनि का कथन है।

तहा नाम अधिकार विषै द्रव्य के एक वा दोय भेद का, अर जीव-अजीव के दोय-दोय भेदनि का, अर तहा पुद्गल का निरुक्ति लिए लक्षण का, पुद्गल परमाणु के आकार का वर्णनपूर्वक रूपी-अरूपी अजीव द्रव्य का कथन है।

बहुरि उपलक्षणानुवादाधिकार विषै छहो द्रव्यनि के लक्षणनि का वर्णन है। तहां गति आदि क्रिया जीव-पुद्गल कै है, ताका कारण धर्मादिक है, ताका दृष्टांत-

पूर्वक वर्णन है । अर वर्तनाहेतुत्व काल के लक्षण का दृष्टांतपूर्वक वर्णन है । अर मुख्य काल के निश्चय होने का, काल कै धर्मादिक कौ कारणपने का, समय, आवली आदि व्यवहारकाल के भेदनि का, तहा प्रसग पाइ प्रदेश के प्रमाण का, वा अतर्मुहूर्त के भेदनि का, वा व्यवहारकाल जानने कौ निमित्त का, व्यवहारकाल के अतीत, अनागत, वर्तमान भेदनि के प्रमाण का, वा व्यवहार निश्चय काल के स्वरूप का वर्णन है ।

बहुरि स्थिति अधिकार विषै सर्व अपने पर्यायनि का समुदायरूप अवस्थान का वर्णन है ।

बहुरि क्षेत्राधिकार विषै जीवादिक जितना क्षेत्र रोकै, ताका वर्णन है । तहां प्रसंग पाइ तीन प्रकार आधार वा जीव के समुद्घातादि क्षेत्र का वा संकोच विस्तार शक्ति का वा पुद्गलादिकनि की अवगाहन शक्ति का वा लोकालोक के स्वरूप का वर्णन है ।

बहुरि सख्याधिकार विषै जीव द्रव्यादिक का वा तिनके प्रदेशनि का, वा व्यवहार काल के प्रमाण का, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव मान करि वर्णन है ।

बहुरि स्थान स्वरूपाधिकार विषै (द्रव्यनि का वा) द्रव्य के प्रदेशनि का चल, अचलपने का वर्णन है । बहुरि अणुवर्गणा आदि तेईस पुद्गल वर्गणानि का वर्णन है । तहा तिन वर्गणानि विषै जेती-जेती परमाणू पाइए, ताका आहारादिक वर्गणा तै जो-जो कार्य निपजै है ताका जघन्य, उत्कृष्ट, प्रत्येकादि वर्गणा जहां पाईए ताका, महास्कध वर्गणा के स्वरूप का, अणुवर्गणा आदि का वर्गणा लोक विषै जितनी जितनी पाइए ताका इत्यादि का वर्णन है । बहुरि पुद्गल के स्थूल-स्थूल आदि छह भेदनि का, वा स्कध, प्रदेश, देश इन तीन भेदनि का वर्णन है ।

बहुरि फल अधिकार विषै धर्मादिक का गति आदि साधनरूप उपकार, जीवनि के परस्पर उपकार, पुद्गलनि का कर्मादिक वा सुखादिक उपकार, तिनका प्रश्नोत्तरादिक लिए वर्णन है । तहा प्रसग पाइ कर्मादिक पुद्गल ही है ताका, अर कर्मादिक जिस-जिस पुद्गल वर्गणा तै निपजै है ताका, अर स्निग्ध-रूक्ष के गुणनि के अंशनि करि जैसे पुद्गल का सबध हो है, ताका वर्णन है । असै षट् द्रव्य का वर्णन करि तहा काल बिना पचास्तिकाय है, ताका वर्णन है । बहुरि नव पदार्थनि का वर्णन विषै जीव-अजीव का तौ षट् द्रव्यनि विषै वर्णन भया । बहुरि पाप जीव पुण्य जीवनि का वर्णन है । तहा प्रसग पाइ चौदह गुण-स्थाननि विषै जीवनि का

प्रमाण वर्णन है । तहा उपशम, क्षपक श्रेणीवाले निरतर अष्ट समयनि विषै जेते जेते हौइ ताका, वा युगपत् वोधितबुद्धि आदि जीव जेते-जेते होंइ ताका, अर सकल संयमीनि के प्रमाण का वर्णन है। बहुरि सात नरक के नारकी, भवनत्रिक, सौधर्मद्विकादिक देव, तिर्यंच, मनुष्य ए जेते-जेते मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थाननि विषै पाइए, तिनका वर्णन है । बहुरि गुणस्थाननि विषै पुण्य जीव, पाप जीवनि का भेद वर्णन है । बहुरि पुद्गलीक द्रव्य पुण्य-पाप का वर्णन है । बहुरि आस्रव, बंध, सवर निर्जरा, मोक्षरूप पुद्गलनि का प्रमाण वर्णन है । ऐसै षट् द्रव्यादिक का स्वरूप कहि, तिनके श्रद्धानरूप सम्यक्त्व के भेदनि का वर्णन है ।

तहां क्षायिक सम्यक्त्व के भेदनि का वर्णन है ।[1] तहा क्षायिक सम्यक्त्व होने के कारण का, ताके स्वरूप का, ताकौ पाऐ जेते भवनि विषै मुक्ति होइ ताका, तिसकी महिमा का, अर तिसका प्रारंभ, निष्ठापन जहा होइ, ताका वर्णन है ।

बहुरि वेदकसम्यक्त्व के कारण का वा स्वरूप का वर्णन है । बहुरि उपशम सम्यक्त्व के स्वरूप का, कारण का, पचलब्धि आदि सामग्री का, वा जाके उपशम सम्यक्त्व होइ ताका वर्णन है । तहा प्रसंग पाइ आयुवध भए पीछै सम्यक्त्व, व्रत होने न होने का वर्णन है । बहुरि सासादन, मिश्र, मिथ्यारुचि का वर्णन है । बहुरि इहा जीवनि की संख्या का वर्णन विषै क्षायिक, उपशम, वेदक सम्यग्दृष्टिनि का अर मिथ्यादृष्टि, सासादन, मिश्र जीवनि का प्रमाण वर्णन है । बहुरि नव पदार्थनि का प्रमाण वर्णन है । तहा जीव अर अजीव विषै पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल अर पुण्य-पाप रूप जीव, अर पुण्य-पाप रूप अजीव अर आस्रव, संवर, निर्जरा, बध, मोक्ष इनके प्रमाण का निरूपण है ।

बहुरि अठारहवां संज्ञी मार्गणा अधिकार विषै – सज्ञी के स्वरूप का, सज्ञी असज्ञी जीवनि के लक्षण का वर्णन है । अर इहा सख्या का वर्णन विषै संज्ञी-असज्ञी जीवनि का प्रमाण वर्णन है ।

बहुरि उगणीसवां आहारमार्गणा अधिकार विषै – आहारक के स्वरूप वा निरुक्ति का अर अनाहारक जिनके हो है ताका, तहा प्रसग पाइ सात समुद्घातनि के नाम वा समुद्घात के स्वरूप का, अर आहारक अनाहारक के काल का वर्णन है । बहुरि तहा आहारक-अनाहारक जीवनि का प्रमाण वर्णन है । तहा प्रसग पाइ **प्रक्षेपयोगोद्धृतिमिश्रपिंड** इत्यादि सूत्र करि मिश्र के व्यवहार का कथन है ।

---

१. यह वाक्य छपी प्रति मे मिलता है, किन्तु इसका अर्थ स्पष्ट नहीं होता ।

बहुरि बीसवां उपयोग अधिकार विषै – उपयोग के लक्षण का, साकार-अनाकार भेदनि का, उपयोग है सो व्याप्ति, अव्याप्ति, असंभवी दोष रहित जीव का लक्षण है ताका, अर केवलज्ञान-केवलदर्शन बिना साकार-अनाकार उपयोगनि का काल अंतर्मूहुर्त मात्र है, ताका वर्णन है। बहुरि इहां जीवनि की संख्या साकारोपयोग विषै ज्ञानमार्गणावत् अर अनाकारोपयोग विषै दर्शनमार्गणावत् है ताका वर्णन है।

बहुरि इक्कीसवां ओघादेशयो प्ररूपणा प्ररूपण अधिकार विषै – गति आदि मार्गणानि के भेदनि विषैं यथासंभव गुणस्थान अर जीवसमासनि का वर्णन है। तहां द्वितीयोपशम सम्यक्त्व विषै पर्याप्त-अपर्याप्त अपेक्षा गुणस्थाननि का विशेष कह्या है। बहुरि गुणस्थाननि विषै संभवते जे जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, चौदह मार्गणानि के भेद, उपयोग, तिनका वर्णन है। तहा मार्गणा वा उपयोग के स्वरूप का भी किछू वर्णन है। तहां योग भव्यमार्गणानि के भेदनि का, वा सम्यक्त्वमार्गणा विषै प्रथम द्वितीयोपशम सम्यक्त्व का इत्यादि विशेष-सा वर्णन है। अर गति आदि केई मार्गणानि विषै पर्याप्त, अपर्याप्त अपेक्षा कथन है।

बहुरि बावीसवां आलाप अधिकार विषै – मंगलाचरण करि सामान्य, पर्याप्त, अपर्याप्त करि तीन आलाप, अर अनिवृत्तिकरण विषै पंच भागनि की अपेक्षा पंच आलाप, तिनका गुणस्थाननि विषै वा गुणस्थान अपेक्षा चौदह मार्गणा के भेदनि विषै यथासंभव कथन है। तहा गतिमार्गणा विषै किछू विशेष-सा कथन है। बहुरि गुणस्थान मार्गणास्थाननि विषै गुणस्थानादि बीस प्ररूपणा यथासंभव आलापनि की अपेक्षा निरूपण करनी। तहा पर्याप्त, अपर्याप्त एकेंद्रियादि जीवनी कै संभवते पर्याप्ति, प्राण, जीवसमासादिक का किछू वर्णन करि यथायोग्य सर्व प्ररूपणा जानने का उपदेश है। बहुरि तिनके जानने कौ यंत्रनि करि कथन है। तहां पहिलै यंत्रनि विषै जैसे अनुक्रम है, वा समस्या है, वा विशेष है सो कथन है। पीछै एक-एक रचना विषै बीस-बीस प्ररूपणा का कथन स्वरूप छह सौ चौदह यंत्रनि की रचना है। तहां केई रचना समान जानि बहुत रचनानि की एक रचना है। बहुरि मनः-पर्यय ज्ञानादिक विषै एक होतै अन्य न होय ताका, उपशम श्रेणी तै उतरि मरण भए उपजने का, सिद्धनि विषै संभवती प्ररूपणानि का निक्षेपादिक करि प्ररूपणा जानने के उपदेश का वर्णन है। बहुरि आशीर्वाद है। बहुरि टीकाकार के वचन हैं।

ऐसें जीवकाण्ड नामा महा अधिकार के बावीस अधिकारनि विषै क्रम तैं व्याख्यान की सूचनिका जाननी।

गोम्मटसार कर्मकाण्ड सम्बन्धी प्रकरण

ॐ नमः। अथ कर्म (अजीवकाड) नामा महाअधिकार के नव अधिकार हैं। तिनके व्याख्यान की सूचना मात्र क्रम तै कहिए है –

तहां पहिला **प्रकृतिसमुत्कीर्तन-अधिकार** विपै मगलाचरणपूर्वक प्रतिज्ञा करि प्रतिज्ञा के स्वरूप का, जीव-कर्म के सबंध का, तिनके अस्तित्व का, दृप्टातपूर्वक कर्म-परमाणूनि के ग्रहण का, बंध, उदय, सत्त्वरूप कर्मपरमाणूनि के प्रमाण का वर्णन है। बहुरि ज्ञानावरणादिक आठ मूल प्रकृतिनि के नाम का, इन विपै घाती-अघाती भेद का, इनकरि कार्य हो है ताका, इनके क्रम सभवने का, दृप्टात निरुक्ति लिए इनके स्वरूप का वर्णन है। बहुरि इनकी उत्तर प्रकृतिनि का कथन है। तहा पंच निद्रा का, तीन दर्शनमोह होने के विधान का, पच शरीरनि के पद्रह भगनि का, विवक्षित सहननवाले देव-नरक गतिविषै जहा उपजै ताका, कर्मभूमि की स्त्रीनि कै तीन संहनन है ताका, आताप प्रकृति के स्वरूप वा स्वामित्व का विशेप-व्याख्यान सा है।

बहुरि मतिज्ञानावरणादि उत्तर प्रकृतिनि के निरुक्ति लिए स्वरूप का वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ अभव्य के केवलज्ञान के सद्भाव विषै प्रश्नोत्तर का, सात धातु, सात उपधातु का इत्यादि वर्णन है। बहुरि अभेद विवक्षाकरि जे प्रकृति गर्भित हो हैं, तिनका वर्णनकरि बंध-उदय-सत्तारूप जेती-जेती प्रकृति है, तिनका वर्णन है। बहुरि घातियानि विषै सर्वघाती-देशघाती प्रकृतिनि का, अर सर्व प्रकृतिनि विपै प्रशस्त-अप्रशस्त प्रकृतिनि का वर्णन है। बहुरि अनतानुबधी आदि कपायनि का कार्य वा वासनाकाल का वर्णन है। बहुरि कर्म-प्रकृतिनि विषै पुद्गलविपाकी, भवविपाकी, क्षेत्रविपाकी, जीवविपाकी प्रकृतिनि का वर्णन है।

बहुरि प्रसंग पाइ सशय, विपर्यय, अनध्यवसाय का वर्णनपूर्वक तीन प्रकार श्रोतानि का वर्णनकरि प्रकृतिनि के चार निक्षेपनि का वर्णन है। तहा नामादि निक्षेपनि का स्वरूप कहि नाम निक्षेप का अर तदाकार-अतदाकाररूप दोय प्रकार स्थापना निक्षेप का अर आगम-नोआगम रूप दोय प्रकार द्रव्य निक्षेप का; तहा नो-आगम के ज्ञायक, भावी, तद्व्यतिरिक्तरूप तीन प्रकार का, तहा भी भूत, भावी, वर्तमानरूप ज्ञायकशरीर के तीन भेदनि का, तहा भी च्युत, च्यावित, त्यक्तरूप भूत शरीर के तीन भेदनि का, तहा भी त्यक्त के भक्त, प्रतिज्ञा, इगिनी, प्रायोपगमनरूप भेदनि का, तहा भी भक्त प्रतिज्ञा के उत्कृप्ट, मध्य, जघन्यरूप तीन प्रकारनि का अर तद्व्यतिरिक्त नो-आगम द्रव्य के कर्म-नोकर्म भेदनि का बहुरि भावनिक्षेप के आगम,

नोआगम भेदनि का वर्णन है। तहां मूल प्रकृतिनि विषै इनकौ कहि उत्तर प्रकृतिनि विषै वर्णनहै। तहा औरनि का सामान्यपनै सभवपना कहि, नोकर्मरूप तद्वचतिरिक्त-नो-आगम-द्रव्य का जुदी-जुदी प्रकृतिनि विषै वर्णन है। अर नोआगमभाव का समुच्चयरूप वर्णन है।

वहुरि दूसरा **बंध-उदय-सत्त्वयुक्तस्तवनामा** अधिकार है। तहां नमस्कार पूर्वक प्रतिज्ञाकरि स्तवनादिक का लक्षण वर्णन है। वहुरि वंध-व्याख्यान विषै वंध के प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेशरूप भेदनि का, अर तिनविषै उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्यपने का; अर इनविषै भी सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव संभवने का वर्णन है।

वहुरि प्रकृतिवध का कथन विषै गुणस्थाननि विषै प्रकृतिवंध के नियम का; तहा भी तीर्थकरप्रकृति वंधने के विशेष का, अर गुणस्थाननि विषै व्युच्छित्ति, वध, अवध प्रकृतिनि का, तहा भी व्युच्छित्ति के स्वरूप दिखावने कौ द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा का, अर गति आदि मार्गणा के भेदनि विषै सामान्यपनैं वा संभवते गुणस्थान अपेक्षा व्युच्छित्ति-वध-अवध प्रकृतिनि के विशेष का, अर मूल-उत्तर प्रकृतिनि विषै सभवते सादिनै आदि देकर वध का, तहां अध्रुव-प्रकृतिनि विषै सप्रतिपक्ष-नि प्रतिपक्ष प्रकृतिनि का, अर निरंतर वंध होने के काल का वर्णन है।

वहुरि स्थितिवंध का वर्णन विषै मूल-उत्तर प्रकृतिनि के उत्कृष्ट स्थितिवंध का, अर उत्कृष्ट स्थितिबध सज्ञी पचेंद्रिय ही के होय ताका, अर जिस परिणाम तै वा जिस जीव कै जिस प्रकृति का उत्कृष्ट स्थितिवध होय ताका, तहां प्रसग पाय उत्कृष्ट ईपत् मध्यम सक्लेश परिणामनि के स्वरूप दिखावने कौ अनुकृष्टि आदि विधान का, अर मूल-उत्तर प्रकृतिनि के जघन्य स्थितिवध के प्रमाण का, अर जघन्य-स्थितिबध जाकै होय ताका वर्णन है। अर एकेंद्री, वेइंद्री, तेइद्री, चौइद्री, असंज्ञी, सज्ञी पचेंद्री जीवनि कै मोहादिक की उत्कृष्ट-जघन्यस्थिति के प्रमाण का, तहा प्रसंग पाइ तिनके आवाधा के कालभेदकाण्डकनि के प्रमाण कौ कहि भेद प्रमाण करि गुणितकाडक प्रमाण कौ उत्कृष्टस्थिति विषै घटाएं जघन्यस्थिति का प्रमाण होने का वर्णन है।

वहुरि एकेंद्रियादि जीवनि के स्थितिभेदनि कौ स्थापनकरि तहां चौदह जीवसमासनि विषै जघन्य-उत्कृष्ट-स्थितिवध अर अवाधा अर भेदनि के प्रमाण अर तिनके जानने का विधान वर्णन है। तहां प्रकृतिनि का जघन्य स्थितिवंध जिनकै होइ

ताका, अर जघन्य आदि स्थितिबध विषै सादि नै आदि देकर सभवपने का, अर विशुद्ध-सक्लेशपरिणामनि तै जैसै जघन्य-उत्कृष्ट स्थितिबध होय ताका, अर आबाधा के लक्षण का, मोहादिक की आबाधा के काल का, आयु की आबाधा के विशेष का, तहां प्रसग पाइ देव, नारकी, भोगभूमिया, कर्मभूमियानि के आयुबंध होने के समय का, उदीर्णा अपेक्षा आबाधाकाल के प्रमाण का, प्रसग पाइ अचलावली, उदयावली, उपरितन स्थिति विषै कर्मपरमाणु खिरने का, उदीर्णा के स्वरूप का, आयु वा अन्य कर्मनि के निषेकनि के स्वरूप का, अंकसदृष्टिपूर्वक निषेकनि विषै द्रव्यप्रमाण का, तहा गुणहानि आदि का वर्णन है ।

बहुरि अनुभागबंध का व्याख्यान विषै प्रकृतिनि का अनुभाग जैसै संक्लेश-विशुद्धिपरिणामनिकरि बधै है ताका, अर जिस प्रकृति का जाकै तीव्र वा जघन्य अनुभाग बंधै है ताका, तहा प्रसग पाइ अपरिवर्तमान, परिवर्तमान मध्यम परिणामनि के स्वरूपादिक का अर उत्कृष्टादि अनुभागबंध विषै सादि नै आदि देकरि भेदनि के संभवपने का वर्णन है । बहुरि घातियानि विषै लता, दारु, अस्थि शैलभागरूप अनुभाग का, तहा देशघातिया स्पर्द्धकनि का मिथ्यात्व विषै विशेष है ताका, अर जिन प्रकृतिनि विषै जेते प्रकार अनुभाग प्रवर्त्तै ताका, अर अघातियानि विषै प्रशस्त प्रकृतिनि का गुड, खांड, शर्करा, अमृतरूप, अप्रशस्त प्रकृतिनि का निब, कांजीर, विष, हलाहलरूप अनुभाग का, अर इन प्रकृतिनि कै तीन-तीन प्रकार अनुभाग प्रवर्त्तै, ताका वर्णन है ।

बहुरि प्रदेशबध का कथन विषै एकक्षेत्र, अनेकक्षेत्रसंबधी वा तहा कर्मरूप होनै कौ योग्य-अयोग्यरूप, तिनविषै भी जीव का ग्रहण की अपेक्षा सादि-अनादिरूप पुद्गलनि का प्रमाणादिक कहि, तहा जिन पुद्गलनि कौ समयप्रबद्ध विषै ग्रहै है ताका, अर ग्रहे जे परमाणु तिनके प्रमाण कौ कहि तिनका आठ वा सात मूल प्रकृतिनि विषै जैसै विभाग हो है ताका, तहा हीनाधिक विभाग होने के कारण का वर्णन है । अर उत्तर प्रकृतिनि विषै विभाग के अनुक्रम का अर ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय विषै सर्वघाती-देशघाती द्रव्य के विभाग का, तहा प्रसग पाइ मतिज्ञानावरणादि प्रकृतिनि विषै सर्वघाती-देशघाती स्पर्द्धकनि का, तहा अनुभागसबधी नानागुणहानि, अन्योन्याभ्यस्त-द्रव्य-स्थिति-गुणहानि का प्रमाण कहि, तहा वर्गणानि का प्रमाण ल्याइ तिनविषै जहा सर्वघाती-देशघातीपना पाइए ताका वर्णनकरि च्यारि घातिया कर्मनि की उत्तर प्रकृतिनि विषै कर्मपरमाणुनि के विभाग का वर्णन है ।

तहां संज्वलन अर नोकषाय विषै विशेष है ताका, अर नोकषायनि विषै जिनका युगपत् बंध होइ तिनका, अर तिनके निरंतर बंधने के काल का, अर अंतराय की प्रकृतिनि विषै सर्वघातीपना नाही ताका वर्णन है। वहुरि युगपत् नामकर्म की तेईस आदि प्रकृति बंधै तिनविषै विभाग का, अर वेदनीयादिक की एक-एक ही प्रकृति बंधै; तातै तहां विभाग न करने का वर्णन है।

बहुरि मूल-उत्तर प्रकृतिनि का उत्कृष्टादि प्रदेशबंध विषै सादि इत्यादि भेद संभवने का, अर जिस प्रकृति का उत्कृष्ट-जघन्य प्रदेशबंध जाकै होय ताका, अर तहा प्रसंग पाइ स्तोकसा एक जीव के युगपत् जेते-जेते प्रकृति बंधे, ताका वर्णन है। वहुरि इहां प्रसंग पाइ योगनि का कथन है। तहां उपपाद, एकांतवृद्धि, परिणामरूप योगनि के स्वरूपादिक का वर्णन है। अर योगनि के अविभागप्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्द्धक, गुणहानि, नानागुणहानि स्थाननि के स्वरूप, प्रमाण, विधान का योगशक्ति या प्रदेश अपेक्षा विशेष वर्णन है। अर योगनि का जघन्य स्थान तै लगाय स्थाननि विषैं वृद्धि के अनुक्रम कौ आदि देकरि वर्णन है। अर सूक्ष्मनिगोदिया लब्धि-अपर्याप्तक का जघन्य उपपादयोगस्थान कौ आदि देकरि चौरासी स्थाननि का, अर बीचि-बीचि जिनका स्वामी न पाइए तिनका, अर तिनविषै गुणकार के अनुक्रम का, अर जघन्य स्थान तै उत्कृष्ट स्थान के गुणकार का वर्णन है। अर तीन प्रकार योग निरंतर जेते काल प्रवर्त्तै ताका, अर पर्याप्त त्रस संबंधी परिणामयोगस्थाननि विषै जे-जे जेते-जेते योगस्थान दोय आदि आठ समयपर्यंत निरंतर प्रवर्त्तै तिनके प्रमाण ल्यावने कौं कालयवमध्य रचना का, अर पर्याप्त त्रससंबंधी परिणामयोगस्थाननि विषै जेते-जेते जीव पाइए तिनके प्रमाण जानने कौ गुणहानि आदि विशेष लीए जीवयवमध्य रचना का अर योगस्थाननि तैं जेता-जेता प्रदेशबंध होय ताका, अर जघन्य तै उत्कृष्ट स्थान पर्यंत बंधने के क्रम का बीचि-बीचि जेते अविभागप्रतिच्छेद होइ तिनका वर्णन है।

वहुरि च्यारि प्रकार बंध के कारणनि का वर्णन है। बहुरि योगस्थानादिक के अल्पबहुत्व का वर्णन है। तहां योगस्थान श्रेणी के असंख्यातवां भागमात्र तिनका वर्णनकरि तिनतै असख्यात लोकगुणे कर्मप्रकृतिनि के भेदनि का वर्णन विषै मतिज्ञानादिकनि के भेदनि का, अर क्षेत्र अपेक्षा आनुपूर्वी के भेदनि का कथन है। वहुरि तिनतै असंख्यातगुणे कर्मस्थिति के भेदनि का वर्णन विषै तिन एक-एक प्रकृति

की जघन्यादि उत्कृष्ट पर्यंत स्थिति भेदनि का कथन है। बहुरि तिनतैं असंख्यातगुणे स्थितिबंधाध्यवसायनि का वर्णन विषै द्रव्यस्थिति, गुणहानि, निषेक, चयादिककरि स्थितिबंध कौं कारण परिणामनि का स्तोकसा कथन है। बहुरि तिनतैं असंख्यात लोकगुणे अनुभागबंधाध्यवसायस्थाननि का वर्णन विषै द्रव्यस्थिति-गुणहान्यादिककरि अनुभाग कौ कारण परिणामनि का स्तोकसा कथन है। बहुरि तिनतैं अनंतगुणे कर्मप्रदेशनि का वर्णन विषै द्रव्यस्थिति, गुणहानि, नानागुणहानि, चय, निषेकनि का अंकसंदृष्टि वा अर्थकरि कथन है। तहा एक समय विषै समय-प्रबद्धमात्र पुद्गल बंधै, एक-एक निषेक मिलि समयप्रबद्धमात्र ही निर्जरैं, ऐसें होतैं द्वयर्द्धगुणहानिगुणित समयप्रबद्धमात्र सत्त्व रहै, ताका विधान जानने कै अर्थि त्रिकोणयंत्र की रचना करी है।

बहुरि ऐसें बंध वर्णनकरि उदय का वर्णन विषै उदय-प्रकृतिनि का नियम कहि गुणस्थाननि विषै व्युच्छित्ति, उदय, अनुदय प्रकृतिनि का वर्णन है। बहुरि इहां ही उदीर्णा विषै विशेष कहि गुणस्थाननि विषै व्युच्छित्ति, उदीर्णा, अनुदीर्णारूप प्रकृतिनि का वर्णन है। बहुरि मार्गणा विषै उदय प्रकृतिनि का नियम कहि गति आदि मार्गणानि के भेदनि विषै संभवते गुणस्थाननि की अपेक्षा लीए व्युच्छित्ति, उदय, अनुदय प्रकृतिनि का वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ अनेक कथन है।

बहुरि सत्त्व का कथन विषै तीर्थंकर, आहारक की सत्ता का, मिथ्यादृष्टयादि विषै विशेष अर आयुबंध भए पीछै सम्यक्त्व-व्रत होने का विशेष, क्षायिक-सम्यक्त्व होने का विशेष कहि मिथ्यादृष्टि आदि सात गुणस्थाननि विषै सत्त्व प्रकृतिनि का वर्णन करि, ऊपरि क्षपकश्रेणी अपेक्षा व्युच्छित्ति, सत्त्व, असत्त्व प्रकृतिनि का वर्णन है। बहुरि मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थाननि विषै सत्त्व, असत्त्व प्रकृतिनि का वर्णनकरि उपशम-श्रेणी विषै इकईस मोहप्रकृति उपशमावने का क्रम का, अर तहा सत्त्व-प्रकृतिनि का कथन है। बहुरि मार्गणानि विषै सत्ता-असत्ता प्रकृतिनि का नियम कहि गति आदि मार्गणानि के भेदनि विषै संभवते गुणस्थाननि की अपेक्षा लीए व्युच्छित्ति, सत्त्व, असत्त्व प्रकृतिनि का वर्णन है। तहा प्रसंग पाइ इन्द्रिय-काय मार्गणा विषै प्रकृतिनि की उद्वेलना का इत्यादि अनेक वर्णन है।

बहुरि विशेष सत्तारूप तीसरा सत्त्वस्थान-अधिकार विषै एक जीव कै एकै कालि प्रकृति पाइए, तिनके प्रमाण की अपेक्षा स्थान, अर स्थान विषै प्रकृति बदलने की अपेक्षा भंग, तिनका वर्णन है। तहा नमस्कारपूर्वक प्रतिज्ञाकरि स्थानभंगनि का

स्वरूप कहि गुणस्थाननि विषै सामान्य सत्त्व प्रकृतिनि का वर्णन करि विशेष वर्णन विषै मिथ्यादृष्ट्यादि गुणस्थाननि विषै जेते स्थान वा भग पाइए तिनकौ कहि जुदा-जुदा कथन विषै तिनका विधान वा प्रकृति घटने, वधने, वदलने के विशेष का वद्धायु-अवद्धायु अपेक्षा वर्णन है । तहा प्रसंग पाइ मिथ्यादृष्टि विषै तीर्थकर सत्तावाले कै नरकायु ही का सत्त्व होइ ताका, वा एकेंद्रियादिक कै उद्वेलना का अर सासादन विषै आहार सत्ता के विशेष का, मिश्र विषै अनंतानुवंधीरहित सत्त्वस्थान जैसे संभवै ताका, असंयत विषै मनुष्यायु-तीर्थकर सहित एक सौ अडतीस प्रकृति की सत्तावाले कै दोय वा तीन ही कल्याणक होइ ताका, अपूर्वकरणादि विषै उपशमक-क्षपक श्रेणी अपेक्षा का इत्यादि अनेक वर्णन है । वहुरि आचार्यनि के मतकरि जो विशेष है ताकौ कहि तिस अपेक्षा कथन है ।

वहुरि चौथा त्रिचूलिका नामा अधिकार है । तहां प्रथम नव प्रश्नकरि चूलिका का व्याख्यान है । तिसविषै पहिलै तीन प्रश्नकरि तिनका उत्तर विषैं जिन प्रकृतिनि की उदयव्युच्छित्ति तै पहिले वधव्युच्छित्ति भई तिनका, अर जिनकी उदयव्युच्छित्ति तै पीछै वंवव्युच्छित्ति भई तिनका, अर जिनकी उदयव्युच्छित्ति-वधव्युच्छित्ति युगपत् भई तिनका वर्णन है । वहुरि दूसरा – तीन प्रश्नकरि तिनका उत्तर विषै जिनका अपना उदय होतै ही वध होइ तिनका, अर जिनका अन्य प्रकृतिनि का उदय होतै ही वंध होइ तिनका, अर जिनका अपना वा अन्य प्रकृतिनि का उदय होतै वंध होय तिन प्रकृतिनि का वर्णन है । वहुरि तीसरा – तीन प्रश्नकरि तिनका उत्तर विषैं जिनका निरन्तर वध होइ तिनका, अर जिनका सातर वंध होइ तिनका, अर जिनका सांतर वा निरंतर वंध होइ तिनका कथन है । इहा तीर्थकरादि प्रकृति निरतर वंधी जैसै है ताका, अर सप्रतिपक्ष-नि.प्रतिपक्ष अवस्था विषै सातर-निरंतर वंध जैसै सभवै है ताका वर्णन है ।

वहुरि दूसरी पंचभागहारचूलिका का व्याख्यान विषै मंगलाचरणकरि उद्वेलन, विध्यात, अधःप्रवृत्त, गुणसक्रम, सर्वसंक्रम – इन पंच भागहारनि के नाम का, अर स्वरूप का, अर ते भागहार जिनि-जिनि प्रकृतिनि विषै वा गुणस्थाननि विषै संभवै ताका वर्णन है । अर सर्वसक्रमभागहार, गुणसंक्रमभागहार, उत्कर्षण वा अपकर्षणभागहार, अध प्रवृत्तभागहार, योगनि विषै गुणकार, स्थिति विषै नानागुणहानि, पल्य के अर्वच्छेद, पल्य का वर्गमूल, स्थिति विषै गुणहानि-आयाम, स्थिति विषै अन्योन्याभ्यस्त राशि, पल्य, कर्म की उत्कृष्ट स्थिति, विध्यातसंक्रमभागहार, उद्वेलनभागहार,

अनुभाग विषै नानागुणहानि, गुणहानि, द्व्यर्द्धगुणहानि, दो गुणहानि, अन्योन्याभ्यस्त इनका प्रमाणपूर्वक अल्पबहुत्व का कथन है ।

बहुरि तीसरी दशकरणचूलिका का व्याख्यान विषै बंध, उत्कर्षण, सक्रम, अपकर्षण, उदीर्णा, सत्त्व, उदय, उपशम, निधत्ति, नि काचना – इन दशकरणनि के नाम का, स्वरूप का, जिनि-जिनि प्रकृतिनि विषै वा गुणस्थाननि विषै जैसै सभवै तिनका वर्णन है ।

बहुरि पांचवां बंध-उदय-सत्त्वसहित स्थानसमुत्कीर्तन नामा अधिकार विषै मगलाचरण करि एक जीव कै युगपत् सभवता बधादिक प्रकृतिनि का प्रमाणरूप स्थान वा तहा प्रकृति बदलने करि भये भगनि का वर्णन है । तहा मूल प्रकृतिनि के बधस्थाननि का, अर तहा सभवते भुजाकारादि बध विशेष का, अर भुजाकार, अल्पतर, अवस्थित, अवक्तव्यरूप बध विशेषनि के स्वरूप का, अर मूल प्रकृतिनि कै उदयस्थान, उदीर्णास्थान, सत्त्वस्थाननि का वर्णन है । बहुरि उत्तर प्रकृतिनि का कथन विषै दर्शनावरण, मोहनीय, नाम की प्रकृतिनि विषै विशेष है ।

तहा दर्शनावरण के बधस्थाननि का, अर तहा गुणस्थान अपेक्षा भुजाकारादि विशेष सभवने का, अर दर्शनावरण के गुणस्थाननि विषै सभवते बधस्थान, उदयस्थान, सत्त्वस्थाननि का वर्णन है ।

बहुरि मोहनीय के बधस्थाननि का, अर तै गुणस्थाननि विषै जैसै सभवै ताका, अर तहा प्रकृतिनि के नाम जानने कौ ध्रुवबधी प्रकृति, वा कूटरचना आदिक का, अर तहा प्रकृति बदलने तै भए भगनि का, अर तिन बधस्थाननि विषै सभवते भुजाकारादि विशेषनि का, वा भुजाकारादिक के लक्षण का, वा सामान्य-अवक्तव्य भगनि की सख्या का, अर भुजाकारादि सभवने के विधान का, अर इहा प्रसग पाइ गुणस्थाननि विषै चढना, उतरना इत्यादि विशेषनि का वर्णन है । बहुरि मोह के उदयस्थाननि का, अर गुणस्थाननि विषै सभवता दर्शनमोह का उदय कहि तहा सभवते मोह के उदयस्थाननि का, अर तहा प्रकृत्यादि के जानने कू कूटरचना आदि का, अर तहा प्रकृति बदलने तै भंए भगनि का, अर अनिवृत्तिकरण विषै वेदादिक के उदयकालादिक का, अर सर्वमोह के उदयस्थान, अर तिनकी प्रकृतिनि का विधान, वा संख्या वा मिलाई हुई सख्या का, अर गुणस्थाननि विषै सभवने उपयोग, योग, सयम, लेश्या, सम्यक्त्व तिनकी अपेक्षा मोह कैं उदयस्थाननि का, वा तिनकी प्रकृतिनि

का विधान, संख्या आदिक का, तहा अनंतानुबंधी रहित उदयस्थान मिथ्यादृष्टि की अपर्याप्त-अवस्था मे न पाइए इत्यादि विशेष का वर्णन है ।

वहुरि मोह के सत्त्वस्थाननि का वा तहां प्रकृति घटने का, अर ते स्थान गुणस्थाननि विषै जैसै सभवै ताका, अर अनिवृत्तिकरण विषै विशेष है ताका वर्णन है ।

वहुरि नामकर्म का कथन विषै आधारभूत इकतालीस जीवपद, चौतीस कर्मपदनि का व्याख्यान करि नाम के बंधस्थाननि का अर ते गुणस्थाननि विषे जैसै संभवै ताका, अर ते जिस-जिस कर्मपदसहित बंधै है ताका, अर तिनविषे क्रम तै नवध्रुववंधी आदि प्रकृतिनि के नाम का, अर तेइस के नै आदि दै करि नाम के वंधस्थाननि विषै जे-जे प्रकृति जैसे पाइए ताका, अर तहां प्रकृति बदलने तै भए भंगनि का वर्णन है। अर इहा प्रसंग पाइ जीव मरि जहा उपजै ताका वर्णन विषै प्रथमादि पृथ्वी नारकी मरि जहां उपजै वा न उपजै ताका, तहां प्रसंग पाइ स्वयंभूरमण-समुद्रपरै कूणानि विषै कर्मभूमियां तिर्यच है इत्यादि विशेष का, अर बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त अग्निकायिक आदि जीव जहा उपजै ताका, तहां सूक्ष्मनिगोद तै आए मनुष्य सकल सयम न ग्रहै इत्यादि विशेष का, अर अपर्याप्त मनुष्य जहा उपजै ताका, अर भोगभूमि-कुभोगभूमि के तिर्यच-मनुष्य, अर कर्मभूमि के मनुष्य जहा उपजै ताका, अर सर्वार्थसिद्धि तै लगाय भवनत्रिक पर्यंत देव जहां उपजै ताका वर्णन है। वहुरि जैसै च्यवन-उत्पाद कहि चौदह मार्गणानि विषै गुणस्थाननि की अपेक्षा लीएं जैसै जे-जे नामकर्म के वंधस्थान संभवै तिनका वर्णन है ।

तहां गति, इंद्रिय, काय, योग, वेद मार्गणानि विषै तो लेश्या अपेक्षा वधस्थाननि का कथन है । कषाय मार्गणा विषै अनंतानुवधी आदि जैसै उदय हो है ताका, वा इनके देशघाती-सर्वघाती स्पर्द्धकनि का, वा सम्यक्त्व-संयम घातने का, वा लेश्या अपेक्षा वधस्थाननि का कथन है । अर ज्ञान मार्गणा विषै गति आदिक की अपेक्षा करि वधस्थाननि का कथन है । अर संयम मार्गणा विषै सामायिकादिक के स्वरूप का, अर सयतासयत विषै दोय गति अपेक्षा, अर असंयम विषै च्यारि गति अपेक्षा वंधस्थाननि का कथन है । तहां निर्वृत्यपर्याप्त देव कै वधस्थान कहने कौ देवगति विषै जे-जे जीव जहा पर्यत उपजै ताका, अर सासादन विषै वंधस्थान कहने कौं जे-जे जीव जैसे उपशम-सम्यक्त्व कौं छोडि सासादन होइ ताका इत्यादि कथन है । अर दर्शन मार्गणा विषै गति अपेक्षा वंधस्थाननि का कथन है ।

अर लेश्या मार्गणा विषै प्रथमादि नरक पृथ्वीनि विषै लेश्या सभवने का, जिस-जिस सहनन के धारी जे-जे जीव जहा-जहा पर्यंत नरकविषै उपजै ताका, नरकनिविषै पर्याप्त-निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था अपेक्षा बधस्थाननि अर का, तिर्यंच विषै एकेंद्रियादिक कै वा भोगभूमिया तिर्यच कै जो-जो लेश्या पाइए ताका, अर जे-जे जीव जिस-जिस लेश्याकरि तिर्यच विषै उपजै ताका, अर तिनकै निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था विषै वधस्थाननि का, अर जहा तै आए सासादन वा असंयत होइ अर तिनके जे बधस्थान होइ ताका, अर शुभाशुभलेश्यानि विषै परिणामनि का, तहा प्रसग पाइ कषायनि के स्थान वा तहा सक्लेश-विशुद्धस्थान वा कषायनि के च्यारि शक्तिस्थान, चौदह लेश्या स्थान, बीस आयु बन्धाबन्धस्थान तिनका, अर लेश्यानि के छब्बीस अश, तहा आठ मध्यम अश आयुबन्ध कौ कारण, ते आठ अपकर्षकालनि विषै होइ, अन्य अठारह अश च्यारि गतिनि विषै गमन कौ कारण तिनके विशेष का, अर लेश्यानि के पलटने के क्रम का वर्णन करि, तिर्यच कै मिथ्यादृष्टि आदि विषै जैसै मिथ्यात्व-कषायनि का उदय पाइए है ताकौ कहि, तहा जे बधस्थान पाइए ताका, अर भोगभूमिया तिर्यच कै वा प्रसग पाई औरनि कै जैसै निर्वृत्यपर्याप्त वा पर्याप्त मिथ्यादृष्टि आदि विषै जैसै लेश्याकरि बधस्थान पाइए, वा भोगभूमि विषै जैसै उपजना होइ ताका वर्णन है ।

बहुरि मनुष्यगति विषै लब्धिअपर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त, पर्याप्त दशा विषै जो-जो लेश्या पाइए वा तहा संभवते गुणस्थाननि विषै बधस्थान पाइए ताका वर्णन हैं ।

बहुरि देवगति विषै भवनत्रिकादिक कै निर्वृत्यपर्याप्त वा पर्याप्त दशा विषै जो-जो लेश्या पाइए, वा देवनि के जहा जन्मस्थान है वा जे जीव जिस-जिस लेश्याकरि जहा-जहा देवगति विषै उपजै, वा निर्वृत्यपर्याप्त वा पर्याप्त-दशा विषै मिथ्यादृष्टि आदि जीवनी कै जे-जे वधस्थान पाइए तिनका, अर तहा प्रासगिक गाथानिकरि जे-जे जीव जहां-जहा पर्यंत देवगति विषै उपजै, वा अनुदिशादिक विमाननि तै चयकरि जे पद न पावै, वा जे जीव देवगति तै चयकरि मनुष्य होइ निर्वाण ही जाय, वा जहा के आये तिरेसठि शलाका पुरुष न होइ, वा देवपर्याय पाइ जैसै जिनपूजादिक कार्य करै तिनका वर्णन है ।

बहुरि भव्यमार्गणा विषै बंधस्थाननि का वर्णन है ।

बहुरि सम्यक्त्व मार्गणा विषै सम्यक्त्व के लक्षण का, भेदनि का, जहा मरण न होय ताका, अर प्रथमोपशम सम्यक्त्व जाकै होइ ताका, वा वाकै जिन प्रकृतिनि

का उपशम होइ ताका, तहां लब्धि आदि होने का, अर प्रथमोपशम सम्यक्त्व भए मिथ्यात्व के तीन खंड हो है ताका, तहां नारकादिक कै जे बंधस्थान पाइए तिनका, तहां नरक विषैं तीर्थंकर के बंध होने के विधान का, वा साकार-उपयोग होने का, वा निसर्गज-अधिगमज के स्वरूप का अर द्वितीयोपशम सम्यक्त्व जाकै होइ ताका, तहां अपूर्वकरणादि विषै जो-जो क्रिया करता चढै वा उतरै ताका, तहा जे बंधस्थान संभवैं ताका, वा तहां मरि देव होय ताकैं बंधस्थान संभवैं ताका वर्णन है। बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व का प्रारंभ-निष्ठापन जाकै होइ ताका, वा तहां तीन करण हो है तिनका, तहां गुणश्रेणी आदि होने का अर अनंतानुबधी का विसंयोजनकरि पीछे केई क्रिया करि करणादि विधान तै दर्शनमोह क्षपावने का, अर तहां प्रारंभ-निष्ठापन के काल का, वा तिनके स्वामीनि का, वा तहां तीर्थंकर सत्तावाले कैं तद्भव-अन्यभव विषै मुक्ति होने का वर्णनकरि क्षायिक सम्यक्त्व विषै संभवते बंधस्थाननि का वर्णन है। बहुरि वेदक-सम्यक्त्व जिनकै होइ अर प्रथमोपशम, द्वितीयोपशम सम्यक्त्व तै वा मिथ्यात्व तैं जैसे वेदक सम्यक्त्व होइ, अर तिनकै जे बंधस्थान पाइए तिनका वर्णन है।

बहुरि सासादन, मिश्र, मिथ्यात्व जहां-जहां जिस-जिस दशा विषै संभवै अर तहा जे बंधस्थान पाइए तिनका वर्णन है। तहा प्रसंग पाइ विवक्षित गुणस्थान तैं जिस-जिस गुणस्थान को प्राप्त होइ ताका वर्णन है।

बहुरि सज्ञी अर आहार मार्गणा विषै बंधस्थाननि का वर्णन है। बहुरि नाम के बंधस्थाननि विषै भुजाकारादि कहने कौ पुनरुक्त, अपुनरुक्त भंगनि का, अर स्वस्थानादि तीन भेदनि का, प्रसंग पाइ गुणस्थाननि तै चढने-उतरने का, जहां मरण न होइ ताका, कृतकृत्य-वेदक सम्यग्दृष्टि मरि जहां उपजै ताका, भुजाकारादिक के लक्षण का, अर इकतालीस जीव पदनि विषै भंगसहित बधस्थाननि का वर्णन करि मिथ्यादृष्टयादि गुणस्थाननि विषै संभवते भुजाकार, अल्पतर, अवस्थित, अवक्तव्य भगनि का वर्णन है।

बहुरि नाम के उदयस्थाननि का वर्णन विषै कार्माण[१], मिश्रशरीर, शरीरपर्याप्ति, उच्छ्वासपर्याप्ति, भाषापर्याप्ति इन पंचकालनि का स्वरूप प्रमाणादिक कहि, वा केवली के समुद्घात अपेक्षा इनका संभवपना कहि, नाम के उदयस्थान हानि

१. 'होने का' ऐसा ख पुस्तक मे पाठ है।

का विधान विषै ध्रुवोदयी आदि प्रकृतिनि का वर्णन करि, तिन पचकालनि की अपेक्षा लीए जिस-जिस प्रकार वीस प्रकृति रूप स्थान तै लगाय सभवते नाम के उदयस्थाननि का, अर तहा प्रकृति बदलने करि संभवते भगनि का वर्णन है। बहुरि नाम के सत्त्वस्थाननि का वर्णन विषै तिराणवे प्रकृतिरूप स्थान आदि जैसै जै सत्त्वस्थान है तिनका, अर तहा जिन प्रकृतिनि की उद्वेलना हो है तिनके स्वामी वा क्रम वा कालादिक विशेष का, अर सम्यक्त्व, देशसंयम, अनतानुबंधी का विसयोजन, उपशमश्रेणी चढना, सकलसंयम धरना, ए उत्कृष्टपनै केती वार होइ तिनका, अर च्यारि गति की अपेक्षा लीए गुणस्थाननि विषै जे सत्त्वस्थान सभवै तिनका, अर इकतालीस जीवपदनि विषै सत्त्वस्थान सभवै तिनका वर्णन है।

बहुरि त्रिसयोग विषै स्थान वा भगनि का वर्णन है। तहा मूल प्रकृतिनि विषै जिस-जिस वंधस्थान होतै जो-जो उदय वा सत्त्वस्थान होइ ताका, अर ते गुणस्थाननि विषै जैसै सभवै ताका वर्णन है। बहुरि उत्तर प्रकृतिनि विषै ज्ञानावरण, अतराय का तौ पाच-पाच ही का वंध, उदय, सत्त्व होइ, तातै तहा विशेष वर्णन नाही। अर दर्शनावरण विषै जिस-जिस बधस्थान होतै जो-जो उदय वा सत्त्वस्थान गुणस्थान अपेक्षा सभवै ताका वर्णन है, अर वेदनीय विषै एक-एक प्रकृति का उदय-बध होतै भी प्रकृति वदलने की अपेक्षा, वा सत्त्व दोय का वा एक का भी हो है, ताकी अपेक्षा गुणस्थान विषै सभवते भगनि का वर्णन है। बहुरि गोत्र विषै नीच-उच्च गोत्र के वध, उदय, सत्त्व के बदलने की अपेक्षा गुणस्थाननि विषै सभवते भगनि का वर्णन है। वहुरि आयु विषै भोगभूमिया आदि जिस काल विषै आयुबध करे ताका, एकेंद्रियादि जिस आयु कौ बाधै ताका, नारकादिकनि कै आयु का उदय, सत्त्व सभवै ताका, अर आठ अपकर्ष विषै बधै ताका, तहा दूसरी, तीसरी बार आयुवध होने विषै घटने-बधने का, अर बध्यमान-भुज्यमान आयु के घटनेरूप अपवर्तनघात, कदलीघात का वर्णन करि बध, अबध, उपरितबध की अपेक्षा गुणस्थाननि विषै सभवते भगनि का वर्णन है। बहुरि वेदनीय, गोत्र, आयु इनके भग मिथ्यादृष्टचादि विषै जेते-जेते सभवै, वा सर्व भग जेते-जेते है तिनका वर्णन है।

बहुरि मोह के स्थाननि की अपेक्षा भंग कहि गुणस्थाननि विषै बध, उदय, सत्त्वस्थान जैसै पाइए ताका वर्णन करि मोह के त्रिसयोग विषै एक आधार, दोय आधेय, तीन प्रकार, तहां जिस-जिस बंधस्थान विषै जो-जो उदयस्थान, वा

सत्त्वस्थान सभवै, अर जिस-जिस उदयस्थान विषै जो-जो बधस्थान वा सत्त्वस्थान संभवै, अर जिस-जिस सत्त्वस्थान विषै जो-जो बधस्थान वा उदयस्थान सभवै तिनका वर्णन है। बहुरि मोह के बध, उदय, सत्त्वनि विषै दोय आधार, एक आधेय तीन प्रकार, तहा जिस-जिस बंधस्थानसहित उदयस्थान विषै जो-जो सत्त्वस्थान जिसप्रकार संभवै, अर जिस-जिस बंधस्थानसहित सत्त्वस्थान विषै जो-जो उदयस्थान संभवै अर जिस-जिस उदयस्थान सहित सत्त्वस्थान विषै जो-जो बंधस्थान पाइए ताका वर्णन है। बहुरि नामकर्म के स्थानोक्त भंग कहि गुणस्थाननि विषै, अर चौदह जीवसमासनि विषै अर गति आदि मार्गणानि के भेदनि विषै सभवते बंध, उदय, सत्त्वस्थाननि का वर्णनकरि एक आधार, दोय आधेय का वर्णन विषै जिस-जिस बधस्थाननि विषै जो-जो उदयस्थान वा सत्त्वस्थान जिसप्रकार सभवै, अर जिस-जिस उदयस्थान विषै जो-जो बंधस्थान वा सत्त्वस्थान जिसप्रकार संभवै, अर जिस-जिस सत्त्वस्थान विषै जो-जो बधस्थान वा उदयस्थान जिस-जिसप्रकार संभवै तिनका वर्णन है। बहुरि दोय आधार, एक आधेय विषै जिस-जिस बंधस्थानसहित उदय स्थान विषै जो-जो सत्त्वस्थान संभवै, अर जिस-जिस बंधस्थानसहित सत्त्वस्थान विषै जो-जो उदयस्थान सभवै अर जिस-जिस उदयस्थानसहित सत्त्वस्थान विषै जो-जो बधस्थान पाइए तिनका वर्णन है ।

बहुरि छठा प्रत्यय अधिकार है, तहा नमस्कारपूर्वक प्रतिज्ञा करि च्यारि मूल आस्रव अर सत्तावन उत्तरआस्रवनि का, अर ते जैसै गुणस्थाननि विषै सभवै ताका, तहां व्युच्छित्ति वा आस्रवनि के प्रमाण, नामादिक का वर्णन करि, तहां विशेष जानने कौ पच प्रकारनि का वर्णन है। तहां प्रथम प्रकार विषै एक जीव कै एकै काल संभवै ऐसे जघन्य, मध्यम, उत्कृष्टरूप आस्रवस्थान जेते-जेते गुणस्थाननि विषै पाइए तिनका वर्णन है।

बहुरि दूसरा प्रकार विषै एक-एक स्थान विषै आस्रवभेद बदलने तै जेते-जेते प्रकार होइ तिनका वर्णन है।

बहुरि तीसरा प्रकार विषै तिन स्थाननि के प्रकारनि विषै संभवते आस्रवनि की अपेक्षा कूटरचना के विधान का वर्णन है।

बहुरि चौथा प्रकार विषै तिनहूं कूटनि के अनुसारि अक्षसंचारि विधान तै जैसे आस्रवस्थाननि कौ कहने का विधानरूप कूटोच्चारण विधान का वर्णन है। तहा

अविरत विषै युगपत् सभवतै हिसा के प्रत्येक द्विसंयोगी आदि भेदनि का, अर ते भेद जेते होइ ताका वर्णन है ।

बहुरि पांचवां प्रकार विषै तिन स्थाननि विषै भंग ल्यावने के विधान का वा गुणस्थाननि विषै संभवते भंगनि का, तहाँ अविरत विषै हिंसा के प्रत्येक द्विसंयोगी आदि भंग ल्यावने कौं गणितशास्त्र के अनुसार प्रत्येक द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदि भंगनि के ल्यावने के विधान का वर्णन है । बहुरि आस्रवनि के विशेषभूत जिनि-जिनि भाव तै स्थिति-अनुभाग की विशेषता लीये ज्ञानावरणादि जुदि-जुदि प्रकृति का बध होइ तिनका क्रम तै वर्णन है ।

बहुरि सातवां भावचूलिका नामा अधिकार है। तहां नमस्कारपूर्वक प्रतिज्ञा करि भावनि तै गुणस्थानसज्ञा हो है ऐसै कहि पच मूल भावनि का, अर इनके स्वरूप का, [1] अर तिरेपन उत्तर भावनि का, अर मूल-उत्तर भावनि विषै अक्षसचार विधान तै प्रत्येक परसयोगी, स्वसयोगी, द्विसंयोगी आदि भग जैसे होइ ताका, अर नाना जीव, नाना काल अपेक्षा गुणस्थान विषै संभवते भावनि का वर्णन है ।

बहुरि एक जीव कै युगपत् सभवते भावनि का वर्णन है । तहा गुणस्थाननि विषै मूल भावनि के प्रत्येक, परसयोगी, द्विसयोगी आदि संभवते भगनि का वर्णन है । तहा प्रसग पाइ प्रत्येक, द्विसयोगी, त्रिसयोगी आदि भग ल्यावने के गणितशास्त्र अनुसार विधान वर्णन है । बहुरि गुणस्थाननि विषै मूल भावनि की वा तिनके भगनि की संख्या का वर्णन है ।

बहुरि उत्तर भावनि के भंग स्थानगत, पदगत भेद तै दोय प्रकार कहे है । तहां एक जीव कै एक काल संभवते भावनि का समूह सो स्थान । तिस अपेक्षा जे स्थानगत भंग, तिन विषै स्वसंयोगी भंग के अभाव का अर गुणस्थाननि विषै संभवते औपशमिकादिक भावनि का अर औदयिक के स्थाननि के भगनि का वर्णन करि तहा संभवते स्थाननि के परस्पर सयोग की अपेक्षा गुण्य, गुणकार, क्षेपादि विधान तै जैसै जेतै प्रत्येक भग अर परसयोगी विषै द्विसंयोगी आदि भग होइ तिनका, अर तहां गुण्य, गुणकार, क्षेप का प्रमाण कहि सर्वभंगनि के प्रमाण का वर्णन है ।

बहुरि जातिपद, सर्वपद भेदकरि पदगत भग दोय प्रकार, तिनका स्वरूप कहि गुणस्थाननि विषै जेते-जेते जातिपद संभवै तिनका, अर तिनकौ परस्पर

१. ख पुस्तक मे यह पाठ नही है ।

लगावने की अपेक्षा गुण्य, गुणकार, क्षेप आदि विधान तै जेते-जेते प्रत्येक स्वसयोगी परसयोगी, द्विसयोगी आदि भग संभवै तिनका, अर तहा गुण्य, गुणकार, क्षेप का प्रमाण कहि सर्व भगनि के प्रमाण का वर्णन है ।

बहुरि पिडपद, प्रत्येकपद भेदकरि सर्वपद भग दोय प्रकार है । तिनके स्वरूप का, अर गुणस्थान विषे ए जेतै जैसें सभवे ताका, अर तहां परस्पर लगावने तै प्रत्येक द्विसयोगी आदि भग कीए जे भंग होहि तिनका, तहां मिथ्यादृष्टि का पन्द्रहवां प्रत्येक पद विषै भग ल्यावने का, प्रसग पाइ गणितशास्त्र के अनुसार एकवार, दोयवार आदि सकलन धन के विधान का, अर गुणस्थाननि विषै प्रत्येकपद, पिडपदनि की रचना के विधान का, अर प्रत्येकपदनि के प्रमाण का, अर तहां जेते सर्वपद भग भए तिनका वर्णन है। बहुरि यहा तीनसै तिरेसठि कुवाद के भेदनि का अर तिन विषै जैसै प्ररूपण है ताका, अर एकान्तरूप मिथ्यावचन, स्याद्वादरूप सम्यग्वचन का वर्णन है ।

बहुरि आठवां त्रिकरण चूलिका नामा अधिकार है । तहा मंगलाचरण करि करणनि का प्रयोजन कहि अध.करण का वर्णन विषै ताके काल का अर तहा सभवते सर्व परिणाम, प्रथम समय सबधी परिणाम, अर समय-समय प्रति वृद्धिरूप परिणाम, वा द्वितीयादि समय संबन्धी परिणाम, वा समय-समय सम्बन्धी परिणामनि विषै खड रचनाकरि अनुकृष्टि विधान, तहा खंडनि विषै प्रथम खंड विषै वा खड-खड प्रति वृद्धिरूप वा द्वितीयादि खंडनि विषै परिणाम तिनका अंकसदृष्टि वा अर्थ अपेक्षा वर्णन है । तहा श्रेणीव्यवहार नामा गणित के सूत्रनि के अनुसार ऊर्ध्वरूप गच्छ, चय, उत्तर धन, आदि धन, सर्व धनादिक का, अर अनुकृष्टि विषै तिर्यग्रूप गच्छादिक के प्रमाण ल्यावने का विधान वर्णन है । अर तिन खंडनि विषै विशुद्धता का अल्प-बहुत्व का वर्णन है । बहुरि अपूर्वकरण का वर्णन विषै अनुकृष्टि विधान नाही, ऊर्ध्वरूप गच्छादिक का प्रमाण ल्यावने का विधान पूर्वक ताके काल का वा सर्व परिणाम, प्रथम समयसम्बन्धी परिणाम, समय-समय प्रति वृद्धिरूप परिणाम, द्वितीयादि समय सम्बन्धी परिणाम, तिनका अकसंदृष्टि वा अर्थ अपेक्षा वर्णन है । बहुरि अनिवृत्ति करण विषै भेद नाही, तातै तहा कालादिक का वर्णन है ।

बहुरि नवमा कर्मस्थिति अधिकार है । तहा नमस्कारपूर्वक प्रतिज्ञाकरि आबाधा के लक्षण का वा स्थिति अनुसार ताके काल का, वा उदीर्णा अपेक्षा

आबाधाकाल का वर्णन है। बहुरि कर्मस्थिति विषै निषेकनि का वर्णन है। बहुरि प्रथमादि गुणहानिनि के प्रथमादि निषेकनि का वर्णन है। बहुरि स्थितिरचना विषै द्रव्य, स्थिति, गुणहानि, नानागुणहानि, दोगुणहानि, अन्योन्याभ्यस्त इनके स्वरूप, का, अर अंकसंदृष्टि वा अर्थ अपेक्षा तिनके प्रमाण का वर्णन है। तहा नानागुणहानि अन्योन्याभ्यस्त राशि सर्व कर्मनि का समान नाही, तातै इनका विशेष वर्णन है। तहा मिथ्यात्वकर्म की नानागुणहानि, अन्योन्याभ्यस्त जानने का विधान वर्णन है। तहा प्रसग पाइ 'अंतधणं गुणगुणियं' इत्यादि करणसूत्रकरि गुणकाररूप पक्ति के जोड़ने का विधान आदि वर्णन है। बहुरि गुणहानि, दो गुणहानि के प्रमाण का वर्णन है। तहा ही विशेष जो चय ताका प्रमाण वर्णन है। ऐसे प्रमाण कहि प्रथमादि गुणहानिनि का वा तिनविषै प्रथमादि निषेकनि का द्रव्य जानने का विधान वा ताका प्रमाण अंकसदृष्टि वा अर्थ अपेक्षा वर्णन है। बहुरि मिथ्यात्ववत् अन्यकर्मनि की रचना है। तहा गुणहानि, दो गुणहानि तो समान है, अर नानागुणहानि, अन्योन्याभ्यस्त राशि समान नाही। तिनके जानने कौ सात पक्ति करि विधान कहि तिनके प्रमाण का, अर जिस-जिसका जेता-जेता नानागुणहानि, अन्योन्याभ्यस्त का प्रमाण आया, ताका वर्णन है। बहुरि ऐसे कहि अंकसदृष्टि अपेक्षा त्रिकोणयत्र, अर त्रिकोणयत्र का प्रयोजन, अर तहा एक-एक निषेक मिलि एक समयप्रबद्ध का उदय त्रिकोणयत्र हो है। अर सर्व त्रिकोणयत्र के निषेक जोड़े किंचिदून द्व्यर्द्धगुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सत्त्व हो है तिनका वर्णन है। बहुरि निरतर-सातररूप स्थिति के भेद, स्वरूप स्वामीनि का वर्णन है। बहुरि स्थितिबध को कारण जे स्थितिबधाध्यवसायस्थान तिनका वर्णन विषै आयु आदि कर्म के स्थितिबंधाध्यवसायस्थाननि के प्रमाण का अर स्थितिबंधाध्यवसाय के स्वरूप जानने कौ सिद्धात वचनिका वर्णनकरि स्थिति के भेदनि को कहि तिन विषै जेते-जेते स्थितिबधाध्यवसायस्थान सभवै तिनके जानने कौ द्रव्य, स्थिति, गुणहानि, नानागुणहानि, दो-गुणहानि, अन्योन्याभ्यस्त का वा चय का, वा प्रथमादि गुणहानिनि का, वा तिनके निषेकनि का, वा आदि धनादिक का द्रव्यप्रमाण अर ताके जानने का विधान, ताका वर्णन है। बहुरि इहा एक-एक स्थितिभेद संबंधी स्थितिबन्धाध्यवसायस्थननि विषै नानाजीव अपेक्षा खंड हो है। तहा ऊपरली-नीचली स्थिति संबंधी खंड समान भी हो है; तातै तहा अनुकृष्टि-रचना का वर्णन है। तहा आयुकर्म का जुदा ही विधान है, तातै पहिले आयु की कहि, पीछे मोहादिक की अनुकृष्टि-रचना का अंकसंदृष्टि वा अर्थ अपेक्षा वर्णन है। तहा

खंडनि की समानता-असमानता इत्यादि अनेक कथन है । वहुरि अनुभागवध को कारण जे अनुभागाध्यवसायस्थान तिनका वर्णन विपै तिन सर्वनि का प्रमाण कहि, तहां एक-एक स्थितिभेद संवंधी स्थितिवंधाध्यवसायस्थाननि विपै द्रव्य, स्थिति, गुणहानि आदि का प्रमाणादिक कहि एक-एक स्थितिवंधाध्यवसायस्थानरूप जे निषेक तिनविषै जेते-जेते अनुभागाध्यवसायस्थान पाइए तिनका वर्णन है । वहुरि मूलग्रथकर्त्ताकरि कीया हुवा ग्रंथ की संपूर्णता होने विषैं ग्रंथ के हेतु का, चामुडराय राजा को आशीर्वाद का, ताकरि बनाया चैत्यालय वा जिनविंव का, वीरमार्तंड राजा कौ आशीर्वाद का वर्णन है । बहुरि सस्कृत टीकाकार अपने गुरुनि का वा ग्रंथ होने के समाचार कहे है तिनका वर्णन है ।

ऐसे श्रीमद् गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह मूलशास्त्र, ताकी जीवतत्त्व-प्रदीपिका नामा संस्कृतटीका के अनुसार इस भाषाटीका विषै अर्थ का वर्णन होसी ताकौं सूचनिका कही ।

अर्थसंदृष्टि सम्बन्धी प्रकरण

वहुरि तहां जे संदृप्टि हैं, तिनका अर्थ, वा कहे अर्थ तिनकी संदृप्टि जानने कौ इस भाषाटीका विषै जुदा ही संदृष्टि अधिकार विषैं वर्णन होसी ।

इहां कोऊ कहै – अर्थ का स्वरूप जान्या चाहिए, संदृप्टिनि के जानैं कहा सिद्धि हो है ?

ताका समाधान – संदृष्टि जानैं पूर्वाचार्यनि की परंपरा तै चल्या आया जो संकेतरूप अभिप्राय, ताकौ जानिए है । अर थोरे में वहुत अर्थ कौ नीकै पहिचानिए है । अर मूलशास्त्र वा संस्कृतटीका विषैं, वा अन्य ग्रंथनि विपै, जहा संदृष्टिरूप व्याख्यान है, तहां प्रवेश पाइये है । अर अलौकिक गणित के लिखने का विधान आदि चमत्कार भासै है । अर संदृष्टिनि कौ देखते ही ग्रथ की गंभीरता प्रगट हो है – इत्यादि प्रयोजन जानि संदृष्टि अधिकार करने का विचार कीया है ।

तहां केई संदृप्टि आकाररूप है, केई अंकरूप है, केई अक्षररूप है, केई लिखने ही का विशेपरूप है, सो तिस अधिकार विषै पहिले तौ सामान्यपनै संदृप्टिनि का वर्णन है, तहां पदार्थनि के नाम तैं, संख्या तैं अर अक्षरनि तै अंकनि की अर प्रभृति आदि की संदृप्टिनि का वर्णन है ।

बहुरि सामान्य सख्यात, असंख्यात,अनंत की, अर इनके इकईस भेदनि की, अर पल्य आदि आठ उपमा प्रमाण की, अर इनके अर्धच्छेद वा वर्गशलाकानि की सदृष्टिनि का वर्णन है। बहुरि परिकर्माष्टक विषै सकलनादि होतै जैसै सहनानि हो है अर वहुत प्रकार सकलनादि होतै वा संकलनादि आठ विषै एकत्र दोय, तीन आदि होतै जो सहनानी हो है, वा सकलनादि विषै अनेक सहनानी का एक अर्थ हो है इत्यादिकिनि का वर्णन है। अर स्थिति-अनुभागादिक विषै आकाररूप सहनानी है, वा केई इच्छित सहनानी है, इत्यादिकनि का वर्णन है । असै सामान्य वर्णन करि पीछै श्रीमद् गोम्मटसार नामा मूलशास्त्र वा ताकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नामा टीका, ताविषै जिस-जिस अधिकार विषै कथन का अनुक्रम लीए संख्यादिक अर्थ की जैसे-जैसे सदृष्टि है, तिनका अनुक्रम तै वर्णन है। तहा केई करण वा त्रिकोणयंत्र का जोड इत्यादिकनि का संदृष्टिनि का सस्कृत टीका विषै वर्णन था अर भाषा करतै अर्थ न लिख्या था, तिनका इस सदृष्टि अधिकार विषै अर्थ लिखिएगा। अर मूलशास्त्र के यत्ररचना विषै वा सस्कृत टीका विषै केई संदृष्टिरूप रचना ही लिखी थी। तिनकौ अर्थपूर्वक इस संदृष्टि अधिकार विषै लिखिएगा, सो इहां तिनकी सूचनिका लिखै विस्तार होई, तातै तहा ही वर्णन होगा सो जानना।

इहां कोऊ कहै – मूलशास्त्र वा टीका विषै जहां सदृष्टि वा अर्थ लिख्या था, तहां ही तुम भी तिनके अर्थनि का निरूपण करि क्यो न लिखान किया ? तहा छोडि तिनकौ एकत्र करि संदृष्टि अधिकार विषै कथन किया सो कौन कारण ?

तहां समाधान – जो यहु टीका मदबुद्धीनि कै ज्ञान होने के अर्थि करिए है, सो या विषै बीचि-बीचि सदृष्टि लिखने तै कठिनता तिनकौ भासै, तब अभ्यास तै विमुख होइ, तातै जिनकौ अर्थमात्र ही प्रयोजन होहि, सो अर्थ ही का अभ्यास करौ अर जिनकौ सदृष्टि कौ भी जाननी होइ, ते संदृष्टि अधिकार विषै तिनका भी अभ्यास करौ।

बहुरि इहां कोई कहै – तुम असा विचार कीया, परंतु कोई इस टीका का अवलवन तै सस्कृत टीका का अभ्यास कीया चाहै, तो कैसै अभ्यास करै ?

ताकों कहिए है – अर्थ का तौ अनुक्रम जैसै सस्कृत टीका विषै है, तैसै या विषै है ही। अर जहा जो संदृष्टि आदि का कथन बीचि मै आवै, ताकौ सदृष्टि अधिकार विषै तिस स्थल विषै बाकी कथन है, ताकौ जानि तहा अभ्यास करौ। ऐसै विचारि संदृष्टि अधिकार करने का विचार कीया है।

लब्धिसार-क्षपणासार सम्बन्धी प्रकरण

बहुरि ऐसा विचार भया जो लब्धिसार अर क्षपणासार नामा शास्त्र है, तिन विषै सम्यक्त्व का अर चारित्र का विशेषता लीए बहुत नीकै वर्णन है। अर तिस वर्णन कौ जानै मिथ्यादृष्ट्यादि गुणस्थाननि का भी स्वरूप नीकै जानिए है, सो इनका जानना बहुत कार्यकारी जानि, तिन ग्रंथनि के अनुसारि किछू कथन करना। तातै लब्धिसार शास्त्र के गाथा सूत्रनि की भाषा करि इस ही टीका विषै मिलाइएगा। तिस ही के क्षपक श्रेणी का कथन रूप गाथा सूत्रनि का अर्थ विषै क्षपणासार का अर्थ गर्भित होयगा ऐसा जानना।

इहां कोऊ कहै – तिन ग्रंथनि की जुदी ही टीका क्यो न करिए ? याही विषै कथन करने का कहा प्रयोजन ?

ताका समाधान – गोम्मटसार विषै कह्या हुवा केतेइक अर्थनि कौ जानै विना तिन ग्रंथनि विषै कह्या हुवा केतेइक अर्थनि का ज्ञान न होय, वा तिन ग्रंथनि विषै कह्या हुवा अर्थ कौ जानै इस शास्त्र विषै कहे हुए गुणस्थानादिक केतेइक अर्थनि का स्पष्ट ज्ञान होइ, सो ऐसा संबंध जान्या अर तिन ग्रंथनि विषै कहे अर्थ कठिन है, सो जुदा रहे प्रवृत्ति विशेष न होइ तातै इस ही विषै तिन ग्रंथनि का अर्थ लिखने का[1] विचार कीया है। सो तिस विषै प्रथमोपशम सम्यक्त्वादि होने का विधान धाराप्रवाह रूप वर्णन है। तातै ताकी सूचनिका लिखें विस्तार होइ, कथन आगै होयहीगा। तातै इहां अधिकार मात्र ताकी सूचनिका लिखिए है।

प्रथम मगलाचरण करि प्रकार कारण का वा प्रकृतिबंधापसरण, स्थिति-बंधापसरण, स्थितिकांडक, अनुभागकांडक, गुणश्रेणी फालि इत्यादि, केतीइक संज्ञानि का स्वरूप वर्णन करि प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने का विधान वर्णन है।

तहा प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने योग्य जीव का, अर पंचलब्धिनि के नामादिक कहि, तिनके स्वरूप का वर्णन है। तहा प्रायोग्यता लब्धि का कथन विषै जैसे स्थिति घटै है अर तहा च्यारि गति अपेक्षा प्रकृतिबन्धापसरण हो है ताका, अर स्थिति, अनुभाग, प्रदेशबंध का वर्णन है। बहुरि च्यारि गति अपेक्षा एक जीव कै युगपत् संभवता भंगसहित प्रकृतिनि के उदय का, अर स्थिति, अनुभाग, प्रदेश के

---

१. घ प्रति मे 'अर्थ लिखने का' स्थान पर 'अनुसारि किछु कथन' ऐसा पाठ मिलता है।

उदय का वर्णन है। बहुरि एक जीव के युगपत् सभवती प्रकृतिनि के सत्त्व का रअ स्थिति, अनुभाग, प्रदेश के सत्त्व का वर्णन है। बहुरि करणलब्धि का कथन विषै तीन करणनि का नाम-कालादिक कहि तिनके स्वरूपादिक का वर्णन है।

तहां अध करण विषै स्थितिबंधापसरणादिक आवश्यक हो है, तिनका वर्णन है।

अर अपूर्वकरण विषै च्यारि आवश्यक, तिनविषै गुणश्रेणी निर्जरा का कथन है। तहा अपकर्षण किया हुआ द्रव्य कौ जैसे उपरितन स्थिति गुणश्रेणी आयाम उदयावली विषै दीजिए है, सो वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ उत्कर्षण वा अपकर्षण किया हुआ द्रव्य का निक्षेप अर अतिस्थापन का विशेष वर्णन है। बहुरि गुणसंक्रमण इहा न संभवै है, सो जहां संभवै है ताका वर्णन है। बहुरि स्थितिकाडक, अनुभाग-कांडक के स्वरूप, प्रमाणादिक का अर स्थिति, अनुभागकाडकोत्करण काल का वर्णनपूर्वक स्थिति, अनुभाग, सत्त्व घटावने का वर्णन है।

बहुरि अनिवृत्तिकरण विषै स्थितिकाडकादि विधान कहि ताके काल का संख्यातवा भाग रहे अंतरकरण हो है, ताके स्वरूप का, अर आयाम प्रमाण का, अर ताके निषेकनि का अभाव करि जहां निक्षेपण कीजिए है ताका इत्यादि वर्णन है। बहुरि अतरकरण करने का अर प्रथम स्थिति का, अर अंतरायाम का काल वर्णन है। बहुरि अंतरकरण का काल पूर्ण भए पीछै प्रथम स्थिति का काल विषै दर्शनमोह के उपशमावने का विधान, काल, अनुक्रमादिक का, तहा आगाल, प्रत्यागाल जहां पाइए है वा न पाइए है ताका, दर्शनमोह की गुणश्रेणी जहा न होइ है, ताका इत्यादि अनेक वर्णन है।

बहुरि पीछै अंतरायाम का काल प्राप्त भए उपशम सम्यक्त्व होने का, तहा एक मिथ्यात्व प्रकृति कौ तीन रूप परिणमावने के विधान का वर्णन है। बहुरि उपशम सम्यक्त्व का विधान विषै जैसे काल का अल्पबहुत्व पाइए है, तैसे वर्णन है।

बहुरि प्रथमोपशम सम्यक्त्व विषै मरण के अभाव का, अर तहा तै सासादन होने के कारण का, अर उपशम सम्यक्त्व का प्रारंभ वा निष्ठापन विषै जो-जो उपयोग, योग, लेश्या पाइए ताका, अर उपशम सम्यक्त्व के काल, स्वरूपादिक का, अर तिस काल कौ पूर्ण भए पीछै एक कोई दर्शनमोह की प्रकृति उदय आवने का, तहा जैसे

द्रव्य कौं अपकर्षण करि अंतरायामादि विषै दीजिए है ताका, अर दर्शनमोह का उदय भए वेदक सम्यक्त्व वा मिश्र गुणस्थान वा मिथ्यादृष्टि गुणस्थान हो है, तिनके स्वरूप का वर्णन है।

वहुरि क्षायिक संम्यक्त्व का विधान वर्णन है। तहां क्षायिक सम्यक्त्व का प्रारंभ जहां होइ ताका, अर प्रारंभ-निष्ठापन अवस्था का वर्णन है। वहुरि अनंतानुवंधी के विसंयोजन का वर्णन है। तहां तीन करणनि का अर अनिवृत्तिकरण विषैं स्थिति घटने का अर अन्य कषायरूप परिणमने के विधान प्रमाणादिक का कथन है। वहुरि विश्राम लेइ दर्शनमोह की क्षपणा हो है, ताका विधान वर्णन है। तहां सभवता स्थितिकांडादिक का वर्णन है। अर मिथ्यात्व, मिश्रमोहनी, सम्यक्त्वमोहनी विषै स्थिति घटावने का, वा संक्रमण होने का विधान वर्णन करि सम्यक्त्वमोहनी की आठ वर्ष प्रमाण स्थिति रहे अनेक क्रिया विशेष हो है, वा तहां गुणश्रेणी, स्थितिकाडकादिक विषै विशेष हो है, तिनका वर्णन है। वहुरि कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि होने का वा तहां मरण होतै लेश्या वा उपजने का, वा कृतकृत्य वेदक भए पीछै जे क्रिया विशेष हो है अर तहा अंतकाडक वा अंतफालि विषै विशेष हो है, तिनका वर्णन है। वहुरि क्षायिक सम्यक्त्व होने का वर्णन है। वहुरि क्षायिक सम्यक्त्व के विधान विषै संभवते काल का तेतीस जायगां अल्पवहुत्व वर्णन है। वहुरि क्षायिक सम्यक्त्व के स्वरूप का वा मुक्त होने का इत्यादि वर्णन है।

वहुरि चारित्र दोय प्रकार – देशचारित्र, सकलचारित्र। सो ए जाकै होइ वा सन्मुख होतै जो क्रिया होइ सो कहि देशचारित्र का वर्णन है। तहां वेदक सम्यक्त्व सहित देशचारित्र जो ग्रहै, ताके दोइ ही कारण होइ, गुणश्रेणी न होइ, देशसंयत को प्राप्त भए गुणश्रेणी होइ इत्यादि वर्णन है। वहुरि एकांतवृद्धि देशसंयत के स्वरूपादिक का वर्णन है। वहुरि अध:प्रवृत्त देशसंयत का वर्णन है। तहां ताके स्वरूप-कालादिक का, अर तहां स्थिति-अनुभागखंडन न होइ, अर तहां देशसंयत तै भ्रष्ट होइ देशसंयत कौं प्राप्त होइ ताकै करण होने न होने का, अर देशसंयत विषै संभवते गुणश्रेण्यादि विशेष का वर्णन है। वहुरि देशसंयम के विधान विषैं संभवते काल का अल्पवहुत्वता का वर्णन है। वहुरि जघन्य, उत्कृष्ट देशसंयम जाकै होइ ताका, अर देशसंयम विषै स्पर्द्धक का अविभागप्रतिच्छेद पाइए ताका वर्णन है। वहुरि देशसंयम के स्थाननि का, अर तिनके प्रतिपात, प्रतिपद्यमान, अनुभयरूप तीन प्रकारनि का, अर ते क्रम

तै जैसै जिनकै जेते पाइए, अर बीचि में स्वामीरहित स्थान पाइए तिनका, अर तहा विशुद्धता का वर्णन है ।

बहुरि सकलचारित्र तीन प्रकार – क्षायोपशमिक, औपशमिक, क्षायिक, तहां क्षायोपशमिक चारित्र का वर्णन है । तिसविषै यहु जाकै होइ ताका, वा सन्मुख होतै जो क्रिया होइ, ताका वर्णन करि वेदक सम्यक्त्व सहित चारित्र ग्रहण करनेवाले कै दोय ही करण होइ इत्यादि अल्पबहुत्व पर्यंत सर्व कथन देशसंयतवत् है, ताका वर्णन है । बहुरि सकलसंयम स्पर्द्धक वा अविभागप्रतिच्छेदनि का कथन करि प्रतिपात, प्रतिपद्यमान, अनुभयरूप स्थान कहि ते जैसे जेते जिस जीव के पाइए, तिनका क्रम तै वर्णन है । तहां विशुद्धता का वा म्लेच्छ के सकलसंयम सभवने का वा सामयिकादि संबंधी स्थाननि का इत्यादि विशेष वर्णन है । बहुरि औपशमिक चारित्र का वर्णन है । तहां वेदक सम्यक्त्वी जिस-जिस विधानपूर्वक क्षायिक सम्यक्त्वी वा द्वितीयोपशम सम्यक्त्वी होइ उपशम श्रेणी चढै है, ताका वर्णन है । तहां द्वितीयोपशम सम्यक्त्व होने का विधान विषै तीन करण, गुणश्रेणी, स्थितिकांडकादिक वा अंतरकरणादिक का विशेष वर्णन है ।

बहुरि उपशम श्रेणी विषैं आठ अधिकार हैं, तिनका वर्णन है । तहां प्रथम अध.करण का वर्णन है । बहुरि दूसरा अपूर्वकरण का वर्णन है । इहा संभवते आवश्यकनि का वर्णन है। इहांतै लगाय उपशम श्रेणी का चढना वा उतरणा विषै स्थितिबधापसरण अर स्थितिकांडक वा अनुभागकांडक के आयामादिक के प्रमाण का, अर इनकौ होतै जैसा-जैसा स्थितिबंध अर स्थितिसत्त्व वा अनुभागसत्त्व अवशेष रहै, ताका यथा ठिकाणै बीचि-बीचि वर्णन है, सो कथन आगै होइगा तहा जानना । बहुरि अपूर्वकरण का वर्णन विषै प्रसग पाइ, अनुभाग के स्वरूप का वा वर्ग, वर्गणा, स्पर्द्धक, गुणहानि, नानागुणहानि का वर्णन है । अर इहां गुणश्रेणी, गुणसक्रम हो है, अर प्रकृतिबंध का व्युच्छेद हो है, ताका वर्णन है । बहुरि अनिवृत्तिकरण का कथन विषै दश करणनि विषै तीन करणनि का अभाव हो है । ताका अनुक्रम लीएं कर्मनि का स्थितिबध करनेरूप क्रमकरण हो है ताका, तहां असख्यात समयप्रबद्धनि की उदीरणादिक का, अर कर्मप्रकृतिनि के स्पर्द्धक देशघाती करनेरूप देशघातीकरण का, अर कर्मप्रकृतिनि कै केतेइक निषेकनि का अभाव करि अन्य निषेकनि विषै निक्षेपण करनेरूप अंतरकरण का, अर अंतरकरण की समाप्तता भए युगपत् सात करननि का प्रारंभ हो है ताका, तहा ही आनुपूर्वी संक्रमण का – इत्यादि वर्णन करि नपुसकवेद

अर स्त्रीवेद अर छह हास्यादिक, पुरुषवेद, तीन क्रोध अर तीन माया अर दोय लोभ; इनके उपशमावने के विधान का अनुक्रम तें वर्णन है । तहा गुणश्रेणी का वा स्थिति-अनुभागकाडकघात होने न होने का अर नपुसकवेदादिक विषै नवकवंध के स्वरूप-परिणमनादि विशेष का, वा प्रथम स्थिति के स्वरूप का आदि विशेष का, वा तहा आगाल, प्रत्यागाल गुणश्रेणी न हो है इत्यादि विशेषनि का, अर संक्रमणादि विशेष पाइए है, तिनका इत्यादि अनेक वर्णन पाइए है । बहुरि संज्वलन लोभ का उपशम विधान विषै लोभ-वेदककाल के तीन भागनि का, अर तहा प्रथम स्थिति आदिक का वर्णन करि सूक्ष्मकृष्टि करने का विधान वर्णन है । तहा प्रसग पाइ वर्ग, वर्गणा, स्पर्द्धकनि का कथन करि अर कृष्टि करने का वर्णन है । इहां वादरकृष्टि तो है ही नाही, सूक्ष्मकृष्टि है, तिनविषै जैसै कर्मपरमाणु परिणमै है वा तहां ही जैसै अनुभागादिक पाइए है, वा तहा अनुसमयापवर्त्तनरूप अनुभाग का घात हो है इत्यादिकनि का, अर उपशमावने आदि क्रियानि का वर्णन है । बहुरि सूक्ष्मसापराय गुणस्थान कौ प्राप्त होइ सूक्ष्मकृष्टि कौ प्राप्त जो लोभ, ताके उदय कौ भोगवने का, तहां संभवती गुणश्रेणी, प्रथम स्थिति आदि का इहां उदय-अनुदयरूप जैसै कृष्टि पाइए तिनका, वा संक्रमण-उपशमनादि क्रियानि का वर्णन है । बहुरि सर्व कषाय उपशमाय उपशांत कषाय हो है ताका, अर तहां संभवती गुणश्रेणी आदि क्रियानि का, अर इहां जे प्रकृति उदय हैं, तिनविषै परिणामप्रत्यय अर भवप्रत्ययरूप विशेष का वर्णन है । ऐसै सभवती इकईस चारित्रमोह की प्रकृति उपशमावने का विधान कहि उपशांत कषाय तै पड़नेरूप दोय प्रकार प्रतिपात का, तहा भवक्षय निमित्त प्रतिपात तै देव सवन्धी असंयत गुणस्थान कौ प्राप्त हौ है । तहां गुणश्रेणी वा अनुपशमन वा अतर का पूरण करना इत्यादि जे क्रिया हो है, तिनका वर्णन है । अर अद्धाक्षय निमित्त तै क्रम तै पडि स्वस्थान अप्रमत्त पर्यंत आवै तहां गुणश्रेणी आदिक का, वा चढतै जे क्रिया भई थी, तिनका अनुक्रम तै नष्ट होने का वर्णन है । बहुरि अप्रमत्त तै पडने का तहा सभवति क्रियानि का अर अप्रमत्त तै चढै तौ बहुरि श्रेणी माडै ताका वर्णन है । ऐसै पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध का उदय सहित जो श्रेणी माडै, ताकी अपेक्षा वर्णन है । बहुरि पुरुषवेद, सज्वलन मान-सहित आदि ग्यारह प्रकार उपशम श्रेणी चढनेवालों कै जो-जो विशेष पाइए है, तिनका वर्णन है । बहुरि इस उपशम चारित्र विधान विषै संभवते काल का अल्पबहुत्व वर्णन है ।

बहुरि क्षपणासार के अनुसारि लीएं क्षायिकचारित्र के विधान का वर्णन है । तहां अध करणादि सोलह अधिकारनि का अर क्षपक श्रेणी कौ सन्मुख जीव का वर्णन है ।

बहुरि अध:करण का वर्णन है। तहा विशुद्धता की वृद्धि आदि च्यारि आवश्यकनि का, अर तहा संभवते परिणाम, योग, कषाय, उपयोग, लेश्या, वेद, अर प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेशरूप कर्मनि का सत्त्व, बंध उदय, तिनका वर्णन है।

बहुरि अपूर्वकरण का वर्णन है। तहां संभवते स्थितिकांडकघात, अनुभाग-कांडकघात, गुणश्रेणी, गुणसंक्रम इनका विशेष वर्णन है। अर इहा प्रकृतिबंध की व्युच्छित्ति हो है, तिनका वर्णन है। इहांतै लगाय क्षपक श्रेणी विषै जहा-जहा जैसा-जैसा स्थितिबंधापसरण, अर स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात पाइए अर इनकौं होतैं जैसा-जैसा स्थितिबंध, अर स्थितिसत्त्व अर अनुभागसत्त्व रहै, तिनका बीच-बीच वर्णन है, सो कथन होगा तहा जानना।

बहुरि अनिवृत्तिकरण का कथन है। तहा स्वरूप, गुणश्रेणी, स्थितिकांडकादि का वर्णन करि कर्मनि का क्रम लीए स्थितिबंध, स्थितिसत्त्व करने रूप क्रमकरण का वर्णन है। बहुरि गुणश्रेणी विषै असंख्यात समयप्रबद्धनि की उदीरणा होने लगी, ताका वर्णन है।

बहुरि प्रत्याख्यान-अप्रत्याख्यानरूप आठ कषायनि के खिपावने का विधान वर्णन है। बहुरि निद्रा-निद्रा आदि सोलह प्रकृति खिपावने का विधान वर्णन है। बहुरि प्रकृतिनि की देशघाती स्पर्द्धकनि का बंध करनेरूप देशघातीकरण का वर्णन है। बहुरि च्यारि संज्वलन, नव नोकषायनि के केतेइक निषेकनि का अभाव करि अन्यत्र निक्षेपण करनेरूप अंतरकरण का वर्णन है। बहुरि नपुंसकवेद खिपावने का विधान वर्णन है। तहा संक्रम का वा युगपत् सात क्रियानि का प्रारंभ हो है, तिनका इत्यादि वर्णन है। बहुरि स्त्रीवेद क्षपणा का वर्णन है। बहुरि छह नोकषाय अर पुरुषवेद इनकी क्षपणा का विधान वर्णन है। बहुरि अश्वकर्णकरणसहित अपूर्वस्पर्द्धक करने का वर्णन है। तहा पूर्वस्पर्द्धक जानने कौ वर्ग, वर्गणा, स्पर्द्धकनि का अर तिन-विषै देशघाती, सर्वघातिनि के विभाग का, वा वर्गणा की समानता, असमानता आदिक का कथन करि अश्वकरण के स्वरूप, विधान क्रोधादिकनि के अनुभाग का प्रमाणादिक का अर अपूर्वस्पर्द्धकनि के स्वरूप प्रमाण का तिनविषै द्रव्य-अनुभागा-दिक का, तहा समय-समय संबंधी क्रिया का वा उदयादिक का बहुत वर्णन है।

बहुरि कृष्टिकरण का वर्णन है। तहा क्रोधवेदककाल के विभाग का, अर बादर-कृष्टि के विधान विषै कृष्टिनि के स्वरूप का, तहा बारह संग्रहकृष्टि, एक-एक संग्रहकृष्टि

विषै अनंती अतरकृष्टि तिनका, अर तिनविषै प्रदेश अनुभागादिक के प्रमाण का, तहां समय-समय सबधी क्रियानि का वा उदयादिक का अनेक वर्णन है । बहुरि कृष्टि वेदना का विधान वर्णन है । तहां कृष्टिनि के उदयादिक का, वा संक्रम का, वा घात करने का, वा समय-समय संबधी क्रिया का विशेष वर्णन करि क्रम तै दश सग्रहकृष्टिनि के भोगवने का विधान-प्रमाणादिक का बहुत कथन करि तिनकी क्षपणा का विधान वर्णन है । बहुरि अन्य प्रकृति सक्रमण करि इनरूप परिणमी, तिनके द्रव्यसहित लोभ की द्वितीय, तृतीय संग्रहकृष्टि के द्रव्य कौ सूक्ष्मकृष्टिरूप परिणमावै है, ताके विधान-स्वरूप-प्रमाणादिक का वर्णन है । असै अनिवृत्तिकरण का बहुत वर्णन है। याविषै गुणश्रेणी-अनुभागघात के विशेष आदि बीचि-बीचि अनेक कथन पाइए है, सो आगै कथन होइगा तहा जानना ।

बहुरि सूक्ष्मसांपराय का वर्णन है । तहां स्थिति, अनुभाग का घात वा गुण-श्रेणी आदि का कथन करि बादरकृष्टि संबंधी अर्थ का निरूपण पूर्वक सूक्ष्मसांपराय संबंधी कृष्टिनि के अर्थ का निरूपण, अर तहां सूक्ष्मकृष्टिनि का उदय, अनुदय, प्रमाण अर सक्रमण, क्षयादिक का विधान इत्यादि अनेक वर्णन है । बहुरि यहु तौ पुरुषवेद, सज्वलन क्रोध का उदय सहित श्रेणी चढ्या, ताकी अपेक्षा कथन है । बहुरि पुरुषवेद, संज्वलन मान आदि का उदय सहित ग्यारह प्रकार श्रेणी चढने वालो कै जो-जो विशेष पाइए, ताका वर्णन है । असै कृष्टिवेदना पूर्ण भए ।

बहुरि क्षीणकषाय का वर्णन । तहां ईर्यापथबंध का, अर स्थिति-अनुभागघात वा गुणश्रेणी आदि का, वा तहां संभवते ध्यानादिक का अर ज्ञानावरणादिक के क्षय होने के विधान का, अर इहाँ शरीर सम्बन्धी निगोद जीवनि के अभाव होने के क्रम का इत्यादि वर्णन है ।

बहुरि सयोगकेवली का वर्णन है । तहां ताके महिमा का अर गुणश्रेणी का अर विहार-आहारादिक होने न होने का वर्णन करि अंतर्मुहूर्त्त मात्र आयु रहै आवर्जितकरण हो है ताका, तहा गुणश्रेणी आदि का, अर केवलसमुद्घात का, तहां दंड-कपाटादिक के विधान वा क्षेत्रप्रमाणादिक का, वा तहां सभवती स्थिति-अनुभाग घटने आदि क्रियानि का वा योगनि का इत्यादि वर्णन है । बहुरि बादर मन-वचन काय योग कौ निरोधि सूक्ष्म करने का, तहां जैसे योग हो है, ताका अर सूक्ष्म मनोयोग, वचनयोग, उच्छ्वास-निश्वास, काययोग के निरोध करने का, तहां काययोग के

पूर्वस्पर्द्धकनि के अपूर्वस्पर्द्धक अर तिनकी सूक्ष्मकृष्टि करिए है, तिनका स्वरूप, विधान, प्रमाण, समय-समय सम्बन्धी क्रियाविशेष इत्यादिक का अर करी सूक्ष्मकृष्टि, ताकौं भोगवता सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती ध्यान युक्त हो है, ताका वा तहां सभवते स्थिति-अनुभागघात वा गुणश्रेणी आदि विशेष का वर्णन है ।

बहुरि अयोगकेवली का वर्णन है । तहां ताकी स्थिति का, शैलेश्यपना का, ध्यान का, तहा अवशेष सर्व प्रकृति खिपवाने का वर्णन है ।

बहुरि सिद्ध भगवान का वर्णन है । तहां सुखादिक का, महिमा का, स्थान का, अन्य मतोक्त स्वरूप के निराकरण का इत्यादि वर्णन है । असैं लब्धिसार क्षपणासार कथन की सूचनिका जाननी ।

बहुरि अन्त विषै अपने किछू समाचार प्रगट करि इस सम्यग्ज्ञानचद्रिका की समाप्तता होतै कृतकृत्य होइ आनद दशा कौ प्राप्त होना होइगा । असैं सूचनिका करि ग्रंथसमुद्र के अर्थ संक्षेपपनै प्रकट किए है ।

इति सूचनिका ।

—०—

परिकर्माष्टक सम्बन्धी प्रकरण

बहुरि इस करणानुयोगरूप शास्त्र के अभ्यास करने के अर्थि गणित का ज्ञान अवश्य चाहिये, जातै अलंकारादिक जानै प्रथमानुयोग का, गणितादिक जानै करणानुयोग का, सुभाषितादिक जानै चरणानुयोग का, न्यायादि जानै द्रव्यानुयोग का विशिष्ट ज्ञान हो है, तातै गणित ग्रंथनि का अभ्यास करना । अर न वनै तौ परिकर्माष्टक तौ अवश्य जान्या चाहिये । जातै याकौ जाणै अन्य गणित कर्मनि का भी विधान जानि तिनकौ जानै अर इस शास्त्र विषै प्रवेश पावै । तातै इस शास्त्र का अभ्यास करने को प्रयोजनमात्र परिकर्माष्टक का वर्णन इहा करिए है—

तहा परिकर्माष्टक विषै संकलन, व्यवकलन, गुणकार, भागहार, वर्ग, घन, वर्गमूल, घनमूल ए आठ नाम जानने । ए लौकिक गणित विषै भी सभवै है, अर अलौकिक गणित विषै भी संभवै है । सो लौकिक गणित तौ प्रवृत्ति विषै प्रसिद्ध ही है । अर अलौकिक गणित जघन्य सख्यातादिक वा पल्यादिक का व्याख्यान आगै जीवसमासाधिकार पूर्ण भए पीछै होइगा, तहा जानना । अब संकलनादिक का स्वरूप

कहिए है । किसी प्रमाण कौ किसी प्रमाण विषै जोडिये तहां संकलन कहिए । जैसे सात विषैं पाच जोडे वारह होइ, वा पुद्गलराशि विषै जीवादिक का प्रमाण जोडे सर्व द्रव्यनि का प्रमाण होइ है ।

वहुरि किसी प्रमाण विषै किसी प्रमाण कौ घटाइए, तहां व्यवकलन कहिए । जैसे वारह विषै पांच घटाऐ सात होय, वा संसारी राशि विषै त्रसराशि घटाऐं स्थावरनि का प्रमाण होइ ।

वहुरि किसी प्रमाण कौ किसी प्रमाण करि गुणिए, तहां गुणकार कहिए । जैसें पांच कौ च्यारि करि गुणिए वीस होइ, वा जीवराशि कौ अनन्त करि गुणे पुद्गलराशि होइ ।

वहुरि किसी प्रमाण कौ किसी प्रमाण का जहां भाग दीजिए, तहां भागहार कहिए । जैसे वीस कौ च्यारि करि भाग दीऐं पांच होइ, वा जगत् श्रेणी कौं सात का भाग दीए राजू होइ ।

वहुरि किसी प्रमाण कौं दोय जायगां मांडि परस्पर गुणिए, तहां तिस प्रमाण का वर्ग कहिए । जैसे पांच कौ दोय जायगां मांडि परस्पर गुणे पॉच का वर्ग पचीस होइ, वा सूच्यंगुल कौ दोय जायगां मांडि, परस्पर गुणें, सूच्यंगुल का वर्ग प्रतरांगुल होइ ।

वहुरि किसी प्रमाण कौं तीन जायगां मांडि, परस्पर गुणें, तिस प्रमाण को घन कहिए । जैसें पांच कों तीन जायगां मांडि, परस्पर गुणें, पांच का घन एक सौ पचीस होइ । वा जगत् श्रेणी कौं तीन जायगां मांडि परस्पर गुणे लोक होइ ।

वहुरि जो प्रमाण जाका वर्ग कीयें होइ, तिस प्रमाण का सो वर्गमूल कहिए । जैसें पचीस पांच का वर्ग कीए होइ तातैं पचीस का वर्गमूल पांच है । वा प्रतरांगुल है सो सूच्यंगुल का वर्ग कीए हो है, तातैं प्रतरांगुल का वर्गमूल सूच्यंगुल है ।

वहुरि जो प्रमाण जाका घन कीए होइ, तिस प्रमाण का सो घनमूल कहिए । जैसे एक सौ पचीस पांच का घन कीए होइ, तातै एक सौ पचीस का घनमूल पांच है । वा लोक है सो जगत्श्रेणी का घन कीए हो है, तातै लोक का घनमूल जगत्श्रेणी है ।

अब इहां केतेइक सज्ञाविशेष कहिए है । सकलन विषै जोडने योग्य राशि का नाम धन है । मूलराशि कौ तिस धन करि अधिक कहिए । जैसें पांच अधिक कोटि वा जीवराश्यादिक करि अधिक पुद्गल इत्यादिक जानने ।

बहुरि व्यवकलन विषै घटावने योग्य राशि का नाम ऋण है । मूलराशि कौ तिस ऋण करि हीन वा न्यून वा शोधित वा स्फोटित इत्यादि कहिए । जैसै पाच करि हीन कोटि वा त्रसराशि हीन संसारी इत्यादि जानने । कही मूलराशि का नाम धन भी कहिए हैं ।

बहुरि गुणकार विषै जाकौ गुणिए, ताका नाम गुण्य कहिए ।

जाकरि गुणिए, ताका नाम गुणकार वा गुणक कहिए ।

गुण्यराशि कौ गुणकार करि गुणित वा हत वा अभ्यस्त वा घ्नत इत्यादि कहिए । जैसै पचगुणित लक्ष वा असख्यात करि गुणित लोक कहिए । कही गुणकार प्रमाण गुण्य कहिए । जैसै पाच गुणां वीस कौ पाच वीसी कहिए वा असख्यातगुणा लोक कू असख्यातलोक कहिए इत्यादिक जानने । गुनने का नाम गुणन वा हनन वा घात इत्यादि कहिए है ।

बहुरि भागहार विषै जाकौ भाग दीजिए ताका नाम भाज्य वा हार्य इत्यादि है । अर जाका भाग दीजिए ताका नाम भागहार वा हार वा भाजक इत्यादि है । भाज्य राशि कू भागहार करि भाजित भक्त वा हत वा खडित इत्यादि कहिए । जैसे पाच करि भाजित कोटि वा असख्यात करि भाजित पल्य इत्यादिक जानने । भागहार का भाग देइ एक भाग ग्रहण करना होइ, तहा तेथवा भाग वा एक भाग कहिये । जैसै वीस का चौथा भाग, वा पल्य का असख्यातवा भाग वा असख्यातैक भाग इत्यादि जानना ।

बहुरि एक भाग विना अवशेष भाग ग्रहण करने होई तहा बहुभाग कहिए । जैसै वीस के च्यारि बहुभाग वा पल्य का असख्यात बहुभाग इत्यादि जानने ।

बहुरि वर्ग का नाम कृति भी है । बहुरि वर्गमूल का नाम कृतिमूल वा मूल वा पद वा प्रथम मूल भी है । बहुरि प्रथम मूल के मूल कौ द्वितीय मूल कहिए । द्वितीय मूल के मूल कौ तृतीय मूल कहिए । असै चतुर्थादि मूल जानने । जैसे

पैंसठ हजार पांच सौ छत्तीस का प्रथम मूल दोय सै छप्पन, द्वितीय मूल सोलह, तृतीय मूल च्यारि, चतुर्थ मूल दोय होइ। असैं ही पल्य वा केवलज्ञानादि के प्रथमादि मूल जानने। ऐसै अन्य भी अनेक संज्ञाविशेष यथासंभव जानने।

अब इहां विधान कहिए है। सो प्रथम लौकिक गणित अपेक्षा कहिए है। तहां असा जानना **'अंकानां वामतो गतिः'** अंकनि का अनुक्रम वाई तरफ सेती है। जैसे दोय सै छप्पन (२५६) के तीन अंकनि विषै छक्का आदि अंक, पांचा दूसरा अंक, दूवा अंत अंक कहिये। असैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ आदि अंकनि कौ क्रम तैं एक स्थानीय, दश स्थानीय, शत स्थानीय, सहस्र स्थानीय आदि कहिए। प्रवृत्ति विषै इनही कौं इकवाई, दहाई, सैंकडा, हजार आदि कहिए है।

बहुरि संकलनादि होतें प्रमाण ल्यावने कौ गणित कर्म कौ कारण जे करण-सूत्र, तिनकरि गणित शास्त्रनि विषै अनेक प्रकार विधान कह्या है, सो तहातैं जानना वा त्रिलोकसार की भाषा टीका बनी है, तहां लौकिक गणित का प्रयोजन जानि पीठबंध विषै किछु वर्णन किया है, सो तहांतैं जानना।

इस शास्त्र विषै गणित का कथन की मुख्यता नाही वा लौकिक गणित का बहुत विशेष प्रयोजन नाहीं तातैं इहा बहुत वर्णन न करिए है। विधान का स्वरूप मात्र दिखावने कौ एक प्रकार करि किंचित् वर्णन करिए है।

तहां संकलन विषै जिनका संकलन करना होइ, तिनके एक स्थानीय आदि अंकनि कौ क्रम तै यथास्थान जोडै जो-जो अंक आवै, सो-सो अंक जोड विषै क्रम तै यथास्थान लिखना। सो प्रवृत्ति विषै जैसै जोड देने का विधान है, तैसें ही यहु जानना। बहुरि जो एक स्थानीय आदि अंक जोडै दोय, तीन आदि अंक आवै तौ प्रथम अंक कौ जोड विषै पहिले लिखिए। द्वितीय आदि अंकनि कौ दश स्थानीय आदि अंकनि विषै जोडिए। याकौं प्रवृत्ति विषै हाथिलागा कहिए है। असैं करतैं जो अंक होइ, सो जोड्या हुवा प्रमाण जानना।

इहां उदाहरण – जैसैं दोय सै छप्पन अर चौरासी (२५६+८४) जोडिए, तहा एक स्थानीय छह अर च्यारि जोडैं दश भए। तहां जोड विषै एक स्थानीय बिंदी लिखी, अर रह्या एक, ताकौ अर दश स्थानीय पाचा, आठा इन कौ जोडैं;

चौदह भए। तहां जोड विषै दश स्थानीय चौका लिख्या अर रह्या एका, ताकौ अर शत स्थानीय दूवा कौ जोडै, तीन भया, सो जोड विषै शत स्थानीय लिख्या। ऐसे जोडै तीन सै चालीस भये। ऐसे ही अन्यत्र जानना।

बहुरि व्यवकलन विषै मूलराशि के एक स्थानीय आदि अंकनि विषै ऋण राशि के एक स्थानीय आदि अंकनि कौ यथाक्रम घटाइए। जो मूलराशि के एक स्थानीय आदि अंक तै ऋणराशि के एक स्थानीय आदि अंक अधिक प्रमाण लीए होइ तौ धनराशि के दश स्थानीय आदि अंक विषै एक घटाइ धनराशि के एक स्थानीय आदि अंक विषै दश जोडि, तामै ऋणराशि का अंक घटावना। सो प्रवृत्ति विषै जैसें बाकी काढने का विधान है, तैसें ही यहु जानना। ऐसें करतें जो होइ, सो अवशेष प्रमाण जानना।

इहां उदाहरण – जैसें छह सै पिचहत्तरि मूलराशि विषै बाणवै (६७५–९२) ऋण घटावना होइ, तहा एक स्थानीय पाच में दूवा घटाए तीन रहे अर दश स्थानीय सात विषै नव घटै नाही तातै शतस्थानीय छक्का मै एक घटाइ ताके दश सात विषै जोडै सतरह भए, तामैं नौ घटाइ आठ रहे शत स्थानीय छक्का मे एक घटाये पांच रहे, तामैं ऋण का अक कोऊ घटावने कौ है नाही तातै, पाच ही रहे। ऐसें अवशेष पाच सैं तियासी प्रमाण आया। ऐसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि गुणकार विषै गुण्य के अंत अंक तै लगाय आदि अंक पर्यंत एक-एक अंक कौ क्रम तै गुणकार के अकनि करि गुणि यथास्थान लिखिए वा जोडिए, तब गुणित राशि का प्रमाण आवै।

इहा उदाहरण – जैसे गुण्य दोय सै छप्पन अर गुणकार सोलह (२५६×१६)। तहां गुण्य का अंत अंक दूवा कौ सोलह करि गुणना। तहा छक्का तौ दूवा ऊपरि अर एका ताके पीछै $\overset{१६}{२५६}$ ऐसें स्थापन करि एक करि दूवा का गुणे, दोय पाये, सो तो एक के नीचै लिखना। अर छह करि दूवा कौ गुणै बारह पाए, तिसविषै दूवा तौ गुण्य की जायगा लिखना एका पहिलै दोय लिख्या था तामै जोडना तब ऐसा भया [३२ ५६]। बहुरि ऐसें ही गुण्य का उपांत अक पाचा, ताकौ सोलह करि गुणना तहां ऐसें $\overset{१६}{३२,५६}$ स्थापना करि एका करि पांचा कौ गुणै, पाच भये, सो तौ एका के नीचै दूवा, तामै जोडिए अर छक्का करि पांचा कौ गुणै तीस भए, तहां बिंदी पाचा की जायगां माडि तीन पीछले अंकनि विषै जोडिए ऐसे होए

ऐसा ४००६ भया। बहुरि गुण्य का आदि अंक छक्का कौ सोलह करि गुणना तहां ऐसैं $\overset{१६}{४००६}$ स्थापि एक करि छह को गुणैं छह भये सो तौ एका के नीचै बिंदी तामैं जोडिए अर छ को छ करि गुणैं छत्तीस भया, तहा छक्का तौ गुण्य का छक्का की जायगां स्थापना, तीया पीछला अंक छक्का तामैं जोडना, ऐसैं कीए ऐसा ४०९६ भया। या प्रकार गुणित राशि च्यारि हजार छिनवै आया। ऐसैं ही अन्यत्र विधान जानना।

बहुरि भागहार विषैं भाज्य के जेते अंकनि विषै भागहार का भाग देना संभवै, तितने अंकनि कौ ताका भाग देइ पाया अंक कौ जुदा लिखि तिस पाया अंक करि भागहार कौ गुणैं जो प्रमाण होइ, तितना जाका भाग दीया था, तामैं घटाय अवशेष तहा लिखना। वहुरि तैसैं ही भाग दीए जो अंक पावै, ताकौ पूर्वं लिख्या था अक, ताके आगै लिखि ताकरि भागहार कौ गुणि तैसैं ही घटावना। ऐसैं यावत् भाज्यराशि नि.शेप होइ तावत् कीए जुदे लिखे अक प्रमाण एक भाग आवै है।

इहा उदाहरण-जैसैं भाज्य च्यारि हजार छिनवै, भागहार सोलह। तहां भाज्य का अन्त अक च्यारि कौ तौ सोलह का भाग संभवै नाहीं तातैं दोय अंके चालीस तिनकौ भाग देना, तहा ऐसैं $\frac{४०९६}{१६}$ लिखि। इहा तीन आदि अंकनि करि सोलह कौ गुणैं, तौ चालीस तैं अधिक होइ जाय तातैं दोइ पाये सो दूवा जुदा लिखि, ताकरि सोलह कौ गुणि चालीस मैं घटाए ऐसा ८९६ भया।

वहुरि इहा निवासी को सोलह का भाग दीए $\frac{८९६}{१६}$ पाच पाए, सो दूवा के आगै लिखि, ताकरि सोलह कौ गुनि निवासी मे घटाए ऐसा ९६ रह्या। याकौ सोलह का भाग दीए छह पाय, सो पाचा के आगै लिखि, ताकरि सोलह कौ गुणि छिनवै भए, सो घटाए भाज्यराशि नि शेप भया। ऐसं जुदे लिखे अक तिनकरि एक भाग का प्रमाण दोय सै छप्पन आवै है। वहुरि '**भागो नास्ति लब्धं शून्यं**' इस वचन तैं जहा भाग टूटि जाय तहां बिंदी पावै। जैसैं भाज्य तीन हजार छत्तीस (३०३६) भागहार छह (६) तहा तीस कौ छह का भाग दीए, पाच पाए, तिनकरि छह कौ गुणि, घटाए तीस नि शेप होय गया, सो इहां भाग टूट्या, तातैं पांच के आगै बिंदी लिखिए। वहुरि अवशेष छत्तीस कौ छह का भाग दीए छह पाए, सो बिंदी के आगै लिखि, ताकरि छह कौ गुणि घटाएं सर्व भाज्य निःशेष भया। ऐसैं लब्ध प्रमाण पाच सै छै पाया। ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

बहुरि वर्ग विषै गुणकारवत् विधान जानना। जातै दोय जायगां समान राशि लिखि एक कौ गुण्य, एक कौ गुणकार स्थापि परस्पर गुणै वर्ग हो है। जैसै सोलह कौ सोलह करि गुणै, सोलह का वर्ग दोय सै छप्पन हो है।

बहुरि घन विषै भी गुणकारवत् ही विधान है। जातै तीन जायगां समान राशि मांडि परस्पर गुणन करना। तहां पहिला राशिरूप गुण्य कौ दूसरा राशिरूप गुणकार करि गुणैं जो (प्रमाण) होइ ताकौं गुण्य स्थापि, ताकौ तीसरा राशिरूप गुणकार करि गुणै जो प्रमाण आवै, सोइ तिस राशि का घन जानना।

जैसै सोलह कौ सोलह करि गुणै, दोय सै छप्पन, बहुरि ताको सोलह करि गुणै च्यार हजार छिनवे होइ, सोई सोलह का घन है। ऐसै ही अन्यत्र जानना।

बहुरि वर्गमूल विषै वर्गरूप राशि के प्रथम अंक उपरि विषम की दूसरे अंक उपरि सम की तीसरे (अंक) उपरि विषम की चौथे (अक) उपरि सम की ऐसै क्रम तै अन्त अंक पर्यंत उभी आडी लीक करि सहनानी करनी। जो अन्त का अंक सम होय तो तहा उपात का अर अन्त का दोऊ अंकनि कौ विषम संज्ञा जाननी। तहा अन्त का एक वा दोय जो विषम अक, ताका प्रमाण विषै जिस अक का वर्ग संभवै, ताका वर्ग करि अन्त का विषम प्रमाण मै घटावना। अवशेष रहै सो तहा लिखना। बहुरि जाका वर्ग कीया था, तिस मूल अक कौ जुदा लिखना। बहुरि अवशेष रहे अंकनि करि सहित जो तिस विषम के आगै सम अक, ताके प्रमाण कौ जुदा स्थाप्या जो अक, तातै दूणा प्रमाण रूप भागहार का भाग दीए जो अक पावै, ताकौ तिस जुदा स्थाप्या, अक के आगै लिखना। अर तिस अक करि गुण्या हुवा भागहार का प्रमाण को तिस भाज्य मे घटाइ अवशेष तहा लिखि देना। बहुरि इस अवशेष सहित जो तिस सम के आगै विषम अंक, तामै जो अक पाया था, ताका वर्ग कीए जो प्रमाण होइ, सो घटावना अवशेष तहा लिखना। बहुरि इस अवशेष सहित जो तिस विषम के आगै सम अक, ताकौ तिन जुदे लिखे हुए सर्व अंकरूप प्रमाण तै दूणा प्रमाण रूप भागहारा का भाग देइ पाया अक कौ तिन जुदे लिखे हुए अकनि के आगै लिखना। अर इस पाया अक करि भागहार कौ गुणि भाज्य मे घटाइ, अवशेष तहा लिखना। बहुरि इस अवशेष सहित जो सम अक के आगै विषम अक ताविषै पाया अक का वर्ग घटावना। ऐसै ही क्रमतै यावत् वर्गित राशि निःशेष होय, तावत् कीए वर्गमूल का प्रमाण आवै है।

इहां उदाहरण – जैसैं वर्गित राशि पैंसठ हजार पांच सौ छत्तीस (६५५३६) इहां विषम-सम की सहनानी ऐसी ६५५३६ करि अन्त का विपम छक्का तामैं तीन का वर्ग तौ बहुत होइ जाइ, तातैं संभवता दोय का वर्ग च्यारि घटाइ अवशेष दोइ तहां लिखना। अर मूल अंक दूवा जुदा पंक्ति विषै लिखना। बहुरि तिस अवशेष सहित आगिला सब अंक ऐसा २५। ताकौं जुदा लिख्या जो दूवा तातैं दूणा च्यारि का भाग दीए, छह पावै; परंतु आगैं वर्ग घटावने का निर्वाह नाहीं; तातैं पांच पाया, सो जुदा लिख्या हुआ दूवा के आगैं लिखना। अर पाया अंक पांच करि भागहार च्यारि कौं गुणि, भाज्य मैं घटाएं, पचीस की जायगा पांच रह्या, तिस सहित आगिला विषम ऐसा (५५) तामैं पाया अंक पांच का वर्ग पचीस घटाए, अवशेष ऐसा ३०, तिस सहित आगिला सम ऐसा ३०३, ताकौं जुदे लिखे अंकनि तैं दूणा प्रमाण पचास का भाग दीए छह पाया, सो जुदे लिखे अंकनि के आगैं लिखना। अर छह करि भागहार पचास कौं गुणि, भाज्य मैं घटाए अवशेप ऐसा ३ रह्या, तिस सहित आगिला विपम ऐसा ३६, यामैं पाया अंक छह का वर्ग घटाए राशि निःशेष भया। ऐसैं जुदे लिखे हूवे अंकनि करि पैंसठ हजार पांच सै छत्तीस का वर्गमूल दोए सै छप्पन आया। ऐसैं ही अन्यत्र विधान जानना।

बहुरि घनमूल विषैं घन रूप राशि के अंकनि उपरि पहिला घन, दूजा-तीजा अघन चौथा घन, पाचवाँ-छठा अघन ऐसैं क्रमतैं ऊभी आडी लीक रूप सहनानी करनी। जो अंत का घन अंक न होइ तो अन्त उपांत दोय अंकनि की घन संज्ञा जाननी। अर ते दोऊ घन न होइ तौ अन्त तै तीन अंकनि की घन संज्ञा जाननी। तहां एक वा दोय वा तीन अंक रूप जो अन्त का घन, तामैं जाका घन संभवै ताका घन करि ताकौं अंत का घन अंकरूप प्रमाण मैं घटाइ अवशेष तहां लिखना। अर जाका घन कीया था, तिस मूल अंक कौं जुदा पंक्ति विषै स्थापना। बहुरि तिस अवशेप सहित आगिला अंक कौं तिस मूल अंक के वर्ग तैं तिगुणा भागहार का भाग देना जो अंक पावै, ताकौं जुदा लिख्या हुवा अंक के आगै लिखना। अर पाया अंक करि भागहार कौं गुणी, भाज्य में घटाइ अवशेप तहां लिखि देना। बहुरि इस अवशेप सहित आगिला अंक, ताविषै पाया अंक के वर्ग कौं पूर्वे पंक्ति विषै तिष्ठते अंकनि करि गुणैं, जो प्रमाण होइ, ताकौं तिगुणा करि घटाइ देना। अवशेष तहां लिखना। बहुरि इस अवशेप सहित आगिला अंक विषै तिस ही पाया अंक का घन घटावना। बहुरि अवशेप सहित आगिला अंक कौं जुदा लिखि अंकनि के प्रमाण

का वर्ग कौ तिगुणा करि निर्वाह होइ, तैसै भाग देना । पाया अंक पक्ति विषै आगै, लिखना । ऐसै ही अनुक्रम तै यावत् धनराशि नि शेष होइ तावत् कीए घनमूल का प्रमाण आवै है ।

इहां उदाहरण – जैसै घनराशि पंद्रह हजार छह सै पच्चीस (१५६२५) इहा घनअघन की सहनानी कीए ऐसा (१५६२५) इहां अन्त अंक घन नाही तातैं दोय अंक रूप अन्तघन १५ । इहा तीन का घन कीए बहुत होइ जाइ, तातै दोय का घन आठ घटाइ, तहां अवशेष सात लिखना । अर घनमूल दूवा जुदी पक्ति विषै लिखना बहुरि तिस अवशेष सहित आगिला अंक अैसा (७६) ताकौ मूल अक का वर्ग च्यारि, ताका तिगुणा बारह, ताका भाग दिए छह पावै, परंतु आगै निर्वाह नाही तातै पांच पाया सो दूवा के आगै पंक्ति विषै लिखना अर इस पांच करि भागहार बारह कौ गुणि, भाज्य में घटाए, अवशेष सोलह (१६) तिस सहित आगिला अंक ऐसा (१६२) तामै पाया अंक पांच, ताका वर्ग पचीस, ताकौ पूर्वै पंक्ति विषै तिष्ठै था दूवा, ताकरी गुणे पचास, तिनके तिगुणेड्योढ सै घटाए अवशेष बारह, तिस सहित आगिला अक ऐसा (१२५), यामै पाच का घन घटाएं राशि नि.शेष भया ऐसै पंद्रह हजार छ सै पच्चीस का घनमूल पच्चीस प्रमाण आया । ऐसै ही अन्यत्र जानना ।

ऐसै वर्णन करि अब भिन्न परिकर्माष्टक कहिए है । तहा हार अर अशनि का संकलनादिक जानना । हार अर अश कहा कहिए । जैसै जहा छह पचास कहे, तहां एक के पचास अश कीए तिह समान छह अश जानने । वा छह का पाचवा भाग जानना । तहां छह कौ तो हार वा हर वा छेद कहिए । अर पाच कौ अश वा लव इत्यादिक कहिए । तहा हार कौं ऊपरि लिखिए, अश कौ नीचै लिखिए । जैसै छह पंचास कौ अैसा ६/५० लिखिए । ऐसै ही अन्यत्र जानना । तहाँ भिन्न संकलन-व्यवकलन के अर्थि भागजाति, प्रभागजाति, भागानुबध, भागापवाह ए च्यारि जाति है । तिन-विषै इहा विशेष प्रयोजनभूत समच्छेद विधान लीए भागजाति कहिए है । जुदे-जुदे हार अर तिनके अंश लिखि एक-एक हार कौ अन्य हारनि के अशनि करि गुणिए अर सर्व अंशनि कौ परस्पर गुणिए । ऐसै करि जो सकलन करना होइ तौ परस्पर हारनि कौ जोड दीजिए अर व्यवकलन करना होइ तो मूलराशि के हारनि विषै ऋणराशि के हार घटाइ दीजिए । अर अश सबनि के समान भए । तातै अश परस्पर गुणे जेते भए तेते ही राखिए । ऐसै समान अश होने तै याका नाम समच्छेद विधान है ।

इहा उदाहरण – तहां संकलन विषै पांच छट्ठा अंश दोय तिहाइ तीन पाव (चौथाई) इनकौ जोडना होइ तहां $\left|\frac{५}{६}\right|\frac{२}{३}\left|\frac{३}{४}\right|$ ऐसा लिखि तहा पाच हार कौ अन्य के तीन च्यारि-अंशनि करि अर दोय हार कौ अन्य के छह-च्यारि अंशनि करि अर तीन हार कौ अन्य के छह-तीन अंशनि करि गुणे साठि अडतालीस चौवन हार भए। अर अंशनि कौ परस्पर गुणे सर्वत्र वहत्तर अंश $\left|\frac{६०}{७२}\right|\frac{४८}{७२}\left|\frac{५४}{७२}\right|$ ऐसै भए। इहां हारनि कौ जोडे एक सो वासठ हार अर वहत्तर अंश भए तहां हार कौ अंश का भाग दीए दोय पाये अर अवशेप अठारह का वहत्तरिवां भाग रह्या। ताका अठारह करि अपवर्त्तन कीए एक का चौथा भाग भया। ऐसैं तिनका जोड सवा दोय आया। कोई संभवता प्रमाण का भाग देइ भाज्य वा भाजक राशि का महत् प्रमाण कौ थोरा कीजिए (वा निःशेष कीजिए) तहां अपवर्त्तन संज्ञा जाननी सो इहा अठारह का भाग दीए भाज्य अठारह था, तहां एक भया अर भागहार वहत्तर था, तहां च्यारि भया, तातैं अठारह करि अपवर्त्तन भया कह्या। ऐसै ही अन्यत्र अपवर्त्तन का स्वरूप जानना।

वहुरि व्यवकलन विषैं जैसे तीन विषै पांच चौथा अंश घटावना। तहां **'कल्प्यो हरो रूपमहारराशेः'** इस वचन तै जाकै अंश न होइ, तहां एक अंश कल्पना, सो इहां तीनका अंश नाहीं, तातै एक अंश कल्पि $\left|\frac{३}{१}\right|\frac{५}{४}\right|$ ऐसैं लिखना इहां तीन हारनि कौ अन्य के च्यारि अंश करि, अर पांच हारनि कौ अन्य के एक अंश करि गुणे अर अंशनि कौं परस्पर गुणे $\left|\frac{१२}{४}\right|\frac{५}{४}\right|$ ऐसा भया। इहां वारह हारनि विषैं पांच घटाएं सात हार भए। अर अंश च्यारि भए। तहां हार कौ अंश का भाग दीए एक अर तीन का चौथा भाग पौण इतना फल आया।

वहुरी भिन्न गुणकार विषैं गुण्य अर गुणकार के हार कौ हार करि अंश कौ अंश करि गुणन करना। जैसे दश की चोथाइ कौ च्यारि की तिहाइ करि गुणना होइ, तहां ऐसा $\left|\frac{१०}{४}\right|\frac{४}{३}\right|$ लिखि गुण्य-गुणकार के हार अर अंशनि कौ गुणें चालीस हार अर वारह अंश $\left|\frac{४०}{१२}\right|$ भए तहां हार कौं अंश का भाग दीए तीन पाया। अव शेप च्यारि का वारहवां भाग ताकौ च्यारि करि अपवर्त्तन कीए एक का तीसरा भाग भया। ऐसे ही अन्यत्र जानना।

बहुरि भिन्न भागहार विषै भाजक के हारनि कौ अश कीजिए अर अशनि कौ हार कीजिए। असें पलटि भाज्य-भाजक का गुण्य-गुणकारवत् विधान करना। जैसें संतीस के आधा कौ तेरह की चौथाई का भाग देना होइ तहा ऐसें $\left|\frac{३७}{२}\middle|\frac{१३}{४}\right|$ लिखिए बहुरि भाजक के हार अर अश पलटै असें $\left|\frac{३७}{२}\middle|\frac{४}{१३}\right|$ लिखिना। बहुरि गुणनविधि कीए एक सौ अडतालीस हार अर छब्बीस अंश $\frac{१४८}{२६}$ भए। तहा अश का हार कौ भाग दीए पांच पाए। अर अवशेष अठारह छब्बीसवा भाग, ताका दोय करि अपवर्त्तन कीए नव तेरहवा भागमात्र भया। असें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि भिन्न वर्ग अर घन का विधान गुणकारवत् ही जानना। जातै समान राशि दोय कौ परस्पर गुणे वर्ग हो है। तीन कौ परस्पर गुणे घन हो है। जैसें तेरह का चौथा भाग कौ दोय जायगा माडि $\left|\frac{१३}{४}\middle|\frac{१३}{४}\right|$ परस्पर गुणे ताका वर्ग एक सौ गुणहत्तर का सोलहवां भागमात्र $\frac{१६९}{१६}$ हो है। अर तीन जायगा माडि $\left|\frac{१३}{४}\middle|\frac{१३}{४}\middle|\frac{१३}{४}\right|$ परस्पर गुणे इकईस सै सत्याणवै का चौसठवां भाग मात्र $\frac{२१९७}{६४}$ घन हो है। बहुरि भिन्न वर्गमूल, घनमूल विषै हारनि का अर अशनि का पूर्वोक्त विधान करि जुदा-जुदा मूल ग्रहण करिए। जैसें वर्गित राशि एक सौ गुणहत्तरि का सोलहवां भाग $\frac{१६९}{१६}$। तहा पूर्वोक्त विधान तैं एक सौ गुणहत्तरि का वर्गमूल तेरह, अर सोलह का च्यारि असें तेरह का चौथा भागमात्र $\frac{१३}{४}$ वर्गमूल आया। बहुरि घनराशि इकईस सै सत्याणवै का चौसठवा भाग $\frac{२१९७}{६४}$। तहां पूर्वोक्त विधान करि इकईस सै सत्याणवे का घनमूल तेरह, चौसठि का च्यारि ऐसें तेरह का चौथा भागमात्र $\frac{१३}{४}$ घनमूल आया। असें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि अब शून्यपरिकर्माष्ट लिखिए है। शून्य नाम बिंदी का है, ताके सकलनादिक कहिए है। तहा बिंदी विषै अक जोडे अक ही होय। जैसें पचास विषै पाच जोडिए। तहा एकस्थानीय बिंदी विषै पाच जोडे पाच भए। दशस्थानीय पाच है ही, असें पचावन भए। बहुरि अंक विषै बिंदी घटाए अंक ही रहै। जैसे पचावन मे दश

घटाए एक स्थानीय पांच में बिंदी घटाए पांच ही रहे, दशस्थानीय पांच मे एक घटाए च्यारि रहे अैसें पैतालीस भए । बहुरि गुणकार विषै अंक को बिंदीकरि गुणे बिंदी होय । जैसें वीस कौ पांच करि गुणिए, तहा गुण्य के दूवा कौ पांच करि गुणे दश भए । बहुरि बिंदी कौ पांच करि गुणे, बिंदी ही भई अैसें सौ भए ।

वहुरि अक कौ बिदी का भाग दीए खहर कहिए । जातै जैसें-जैसें भागहार घटता होइ, तैसें-तैसें लब्धराशि बधती होइ । जैसें दश कौ एक का छठ्ठा भाग का भाग दिए साठि होइ, एक का वीसवां भाग का भाग दीए दोय सै होय, सो बिंदी शून्यरूप, ताका भाग दीए फल का प्रमाण अवक्तव्य है । याका हार बिदी है, इतना ही कह्या जाए । बहुरी बिदी का वर्गघन, वर्गमूल, घनमूल विषैं गुणकारादिवत् बिंदी ही हो है । अैसें लौकिक गणित अपेक्षा परिकर्माष्टक का विधान कह्या ।

वहुरि अलौकिक गणित अपेक्षा विधान है, सो सातिशय ज्ञानगम्य है । जातै तहां अंकादिक का अनुक्रम व्यक्तरूप [१] नाही है । तहां कही तौ संकलनादि होतैं जो प्रमाण भया ताका नाम कहिए है । जैसें उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात विषै एक जोडै जघन्य परीतानत होइ, (जघन्य परीतानंत मे एक घटाएं उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात होइ) [२] अर जघन्य परीतासंख्यात विषै एक घटाएं उत्कृष्ट संख्यात होइ । पल्य कौं दशकोडाकोडि करि गुणें सागर होइ जगत् श्रेणी कूं सात का भाग दीए राजू होइ । जघन्य युक्तासंख्यात का वर्ग कीए जघन्य असंख्यातासंख्यात होइ । सूच्यंगुल का घन कीये घनांगुल होइ । प्रतरांगुल का वर्गमूल ग्रहे सूच्यंगुल होइ । लोक का घनमूल ग्रहे जगत् श्रेणी होइ, इत्यादि जानना ।

वहुरि कही संकलनादि होतै जो प्रमाण भया, ताका नाम न कहिए है, सकलनादिरूप ही कथन कहिए है । जातै सर्व सख्यात, असंख्यात, अनंतनि के भेदनि का नाम वक्तव्यरूप नाही है ।-जैसें जीवराशि करि अधिक पुद्गलराशि कहिए वा सिद्ध राशि करि हीन जीवराशि कहिए, वा असख्यात गुणा लोक कहिए वा संख्यात प्रतरांगुल करि भाजित जगत्प्रतर कहिए, वा पल्य का वर्ग कहिए, वा पल्य का घन कहिए, वा केवलज्ञान का वर्गमूल कहिए, वा आकाश प्रदेशराशि का घनमूल कहिए, इत्यादि

---

१. घ प्रति 'वक्तव्यरूप' ऐसा पाठ है ।

२. यह वाक्य सिर्फ छपी प्रति मे है, हस्तलिखित छह प्रतियो मे नही है

जानना। बहुरि अलौकिक मान की सहनानी स्थापि, तिनके लिखने का वा तहा सकलनादि होतै लिखने का जो विधान है, सो आगै सदृष्टि अधिकार विषै वर्णन करेगे, तहा तै जानना। बहुरि तहा ही लोकिक मान का भी लिखने का वा तहा सकलनादि होतै लिखने का जो विधान है, सो वर्णन करेगे। इहा लिखै ग्रन्थ विषै प्रवेश करते ही शिष्यनि को कठिनता भासती, तहा अरुचि होती, तातै इहा न लिखिए है। उदाहरण मात्र उतना ही इहा भी जानना, जो सकलन विषै तौ अधिक राशि कौ ऊपरि लिखना जैसै पच अधिक सहस्र “५” १००० असै लिखने। व्यवकलन विषै हीन राशि कौ ऊपरि लिखि तहा पूछडीकासा आकार करि बिंदी दीजिए जैसै पच हीन सहस्र ५~ १००० असै लिखिए। गुणकार विषै गुण्य के आगै गुणक कौ लिखिए। जैसै पचगुणा सहस्र १०००×५ असै लिखिए। भागहार विषै भाज्य के नीचै भाजक कौ लिखिए। जैसै पांच करि भाजित सहस्र १०००/५ असै लिखिए। वर्ग विषै राशि कौ दोय बार बराबर मांडिए। जैसै पांच का वर्ग कौ ५×५ असै लिखिए। घन विषै राशि कौ तीन बार बराबरि माडिए। जैसै पाच का घन कौ ५×५×५ असै लिखिए। वर्गमूल-घनमूल विषै वर्गरूप-घनरूप राशि के आगै मूल की सहनानी करनी। जैसे पचीस का वर्गमूल कौ “२५ व० मू०” असै लिखिए। एक सौ पचीस का घनमूल कौ “१२५ घ० मू०” असै लिखिए। असै अनेक प्रकार लिखने का विधान है। असै परिकर्माष्टक का व्याख्यान कीया सो जानना।

बहुरि त्रैराशिक का जहा-तहा प्रयोजन जानि स्वरूप मात्र कहिए है। तहा तीन राशि हो है – प्रमाण फल, इच्छा। तहा जिस विवक्षित प्रमाण करि जो फल प्राप्त होइ, सो प्रमाणराशि अर फलराशि जाननी। बहुरि अपना इच्छित प्रमाण होइ, सो इच्छा राशि जाननी। तहा फल कौ इच्छा करि गुणि, प्रमाण का भाग दीए अपना इच्छित प्रमाण करि प्राप्त जो फल, ताका प्रमाण आवै है, इसका नाम लब्ध है। इहा प्रमाण अर इच्छा[1] की एकजाति जाननी। बहुरि फल अर लब्ध की एक जाति जाननी। इहा उदाहरण जैसे पाच रुपैया का सात मण अन्न आवै तौ सात रुपैया का केता अन्न आवै असै त्रैराशिक कीया। इहा प्रमाण राशि पाच, फल राशि सात, इच्छा राशि सात, तहा फलकरि इच्छा कौ गुणि प्रमाण का भाग दीए गुणचास

---

[1] छपी प्रति 'इच्छा' शब्द और अन्य हस्तलिखित प्रतियो मे 'फल' शब्द है।

का पांचवां भाग मात्र लब्ध प्रमाण आया। ताका नव मण अर च्यारि मण का पांचवां भाग मात्र लब्धराशि भया।

अैसे ही छह सै आठ (६०८) सिद्ध छह महीना आठ समय विषै होइ, तौ सर्व सिद्ध केते काल में होइ, अैसें त्रैराशिक करिए, तहां प्रमाण राशि छह सै आठ, अर फलराशि छह मास आठ समयनि की संख्यात आवली, इच्छा राशि सिद्धराशि। तहां फल करि इच्छा कौ गुणि, प्रमाण का भाग दीए लब्धराशि संख्यात आवली करि गुणित सिद्ध राशि मात्र अतीत काल का प्रमाण आवै है। अैसे ही अन्यत्र जानना।

बहुरि केतेइक गणितनि का कथन आगे इस शास्त्र विषै जहां प्रयोजन आवैगा तहां कहिएगा। जैसे श्रेणी व्यवहार का कथन गुणस्थानाधिकार विषै करणनि का कथन करते कहिएगा। बहुरि एक वार, दोय वार आदि संकलन का कथन ज्ञानाधिकार विषै पर्यायसमासज्ञान का कथन करते कहिएगा। बहुरि गोल आदि क्षेत्र व्यवहार का कथन जीवसमासादिक अधिकारनि विषै कहिएगा। अैसे ही और भी गणितनि का जहां प्रयोजन होइगा तहां ही कथन करिएगा सो जानना। बहुरि अज्ञात राशि ल्यावने का विधान वा सुवर्णगणित आदि गणितनि का इहां प्रयोजन नाही, तातै तिनका इहां कथन न करिए है। अैसे गणित का कथन किया। ताकौं यादि राखि जहां प्रयोजन होइ, तहां यथार्थरूप जानना। बहुरि अैसें ही इस शास्त्र विषै करणसूत्रनि का, वा केई संज्ञानि का वा केई अर्थनि का स्वरूप एक वार जहां कह्या होइ, तहांतैं यादि राखि, तिनका जहां प्रयोजन आवै, तहां तैसा ही स्वरूप जानना।

या प्रकार श्रीगोम्मटसार शास्त्र की सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामा भाषाटीका विषै पीठिका समाप्त भई।

—※—
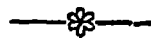
गोम्मटसार कर्मकांड

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

भाषाटीका सहित

परम भए सब खंडिकैं, करमकांड समुदाय ।
सहज अखंडित ज्ञानमय, जयवंते जिनराय ।।१।।

विघनहरन मंगलकरन, नमौं सिद्ध सुखकार ।
नेमिचंद जिन जगतपति साधुवचन गुनधार ।।२।।

अथ श्रीमत् गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह विषैं कर्मकांड महाअधिकार की रचना करने को उद्यम करिए है, तहां प्रथम ही आचार्य अपने इष्ट कौं नमस्कार-पूर्वक प्रतिज्ञा करैं हैं —

पणमिय सिरसा णेमिं, गुणरयणविभूसणं महावीरं।
सम्मत्तरयणणिलयं, पयडिसमुक्कित्तणं वोच्छं ।।१।।

प्रणम्य शिरसा नेमिं, गुणरत्नविभूषणं महावीरम् ।
सम्यक्त्वरत्ननिलयं, प्रकृतिसमुत्कीर्तनं वक्ष्यामि ।।१।।

टीका — श्री नेमिनाथ तीर्थंकर परमदेव ताहि मस्तक नमाय नमस्कार करि ज्ञानावरणादिक कर्मनि की मूल-प्रकृति वा उत्तर-प्रकृति का है समुत्कीर्तन कहिए व्याख्यान जाविषै ऐसा प्रकृतिसमुत्कीर्तन नामा ग्रन्थ ताहि मैं कहौंगा । कैसा है नेमि तीर्थंकर ? 'गुणरत्नविभूषणं' कहिए गुण ज्ञानादिक तेई भए रत्न, तेई है आभूषण जाकै ऐसा है । बहुरि कैसा है ? 'महावीर' कहिए विशिष्ट जो 'ई' कहिए लक्ष्मी, ताहि 'राति' कहिए देवै सो वीर महान् जो वीर सो महावीर कहिए सो ऐसा है । बहुरि कैसा है ? 'सम्यक्त्वरत्ननिलय' कहिए आत्मस्वरूप की उपलब्धिरूप जो सम्यक्स्वरूप भाव सो सम्यक्त्व अथवा क्षायिकसम्यक्त्व सोई भया रत्न, ताका

आश्रय-स्थान है। ऐसे अपने विशेषरूप इष्टदेव कौं नमस्कार पूर्वक प्रकृति-समुत्कीर्तन कथन करने की आचार्य की प्रतिज्ञा जाननी ॥१॥

प्रकृति कहा ? सो कहै है —

पयडी सील सहावो, जीवंगाणं अणाइसंबंधो ।
कणयोवले मलं वा, ताणत्थित्तं सयं सिद्धं ॥२॥

प्रकृतिः शीलं स्वभावः, जीवाङ्गयोरनादिसम्बन्धः ।
कनकोपले मलं वा, तयोरस्तित्वं स्वयं सिद्धम् ॥२॥

टीका – जो अन्य कारण विना वस्तु का सहज स्वभाव होइ – जैसें अग्नि का ऊर्ध्वगमन, पवन का तिर्यग्गमन, जल का अधोगमन स्वभाव है, ताकौ प्रकृति कहिए वा शील कहिए वा स्वभाव कहिए ए सव एकार्थ है। सो स्वभाव स्वभाववान् वस्तु की अपेक्षा लीए हैं; तातै यहु स्वभाव कौन का है, सो कहै है – **'जीवांगयोः'** कहिए जीव अर कर्म इनिका स्वभाव है। तहां रागादिरूप परिणमना आत्मा का स्वभाव है। रागादिक कौ उपजावना कर्म का स्वभाव है।

इहां और द्रव्य और द्रव्य के आश्रय भया, सो इस दोष के दूरि करने कौं कहै है —

जीव का और कर्म का अनादिसंवंध है। जैसे कनकोपल कहिए सुवर्ण सहित पाषाण तिस विषै मल पाइए है। सुवर्ण पाषाण यद्यपि भिन्न-भिन्न वस्तु है, तथापि तिनका अनादिसंवंध है, नए मिले नाही, तैसे जीव-कर्म का अनादिसवंध है, नए मिले नाही।

ऐसा भी कोऊ कहै है कि अमूर्तिक जीवसहित मूर्तिक कर्म का संवंध कैसें भया ?

तहां भी यही समाधान है, जो नवीन संवंध भया नाही, अनादि ही तैं संवंध है, तहा तर्क कहा ?

बहुरि तिनिका अस्तित्व स्वयं-सिद्ध है, जातै 'अहं', इत्यादिक मानना जीव विना नाही संभवै है। दरिद्री, लक्ष्मीवान इत्यादिक विचित्रता कर्म विना नाही संभवै है, तातै जीव भी है अर कर्म भी है ऐसें अस्तित्व स्वयसिद्ध है ॥२॥

संसारी जीवनि के कर्म, नोकर्म का ग्रहण कैसें हो है ? सो कहैं है —

देहोदयेण सहिओ जीवो आहरदि कम्म णोकम्मं ।
पडिसमयं सव्वंगं,[1] तत्तायसपिंडओव्व जलं ॥३॥

देहोदयेन सहितो जीव आहरति कर्म नोकर्म ।
प्रतिसमयं सर्वाङ्गं, तप्तायःपिंडमिव जलम् ॥३॥

टीका — देह जे औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मणरूप शरीर नामा नामकर्म तहां कार्मण नामकर्म कै उदय तै योग सहित जीव ज्ञानावरणादिक आठ प्रकार कर्म कौ ग्रहै है । अवशेष शरीरनि के उदय तै औदारिकादिक नोकर्म को ग्रहै है सो तिनके उदय काल विषै समय-समय प्रति वर्गणानि कौ ग्रहण करै है । कैसें ? **'सर्वांगं'** कहिए सर्व ही आत्मा के प्रदेशनि करि ग्रहण करै है । कौन दृष्टांत ? **'तप्तायसपिंडं' जलमिव'** कहिए जैसें अग्नि तै बहुत तप्तायमान भया लोह का पिंड सो जल में तिष्ठ्या जल कौ सर्वांगपनै शोषै है तैसें शरीर नामकर्म के उदयसंयुक्त जीव समय-समय कर्म वा नोकर्म कौ ग्रहै है ॥३॥

कितने परमाणूनि कौं ग्रहै है, सो कहिए हैं —

सिद्धाणंतिमभागं, अभव्वसिद्धादणंतगुणमेव ।
समयपबद्धं बंधदि, जोगवसादो[2] दु विसरित्थं ॥४॥

सिद्धानन्तिमभागं, अभव्यसिद्धादनन्तगुणमेव ।
समयप्रबद्धं बध्नाति योगवशात्तु विसदृशम् ॥४॥

टीका — सिद्धराशि के अनंतवे भागि अभव्यराशि तै अनतगुणा जो समयप्रबद्ध ताकौ बांधे है । समय-समय प्रति बाधिए ताको समयप्रबद्ध कहिए, सो अभव्यराशि तै अनंतगुणा असा जो सिद्धराशि का अनतवा भाग तीहि प्रमाण परमाणूनि का समूहरूप जो वर्गणा तितनी ही वर्गणानि का समूहरूप जो समयप्रबद्ध ताकौ समय-समय प्रति बांधै है । बहुरि योगनि के वश तै विसदृश बध हो है कबहू बहुत

---

१ नामप्रत्ययाः सर्वतोयोगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः ॥मोक्षशास्त्र–८-२४॥

२ नामप्रत्ययाः सर्वतोयोगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः ॥मोक्षशास्त्र–८-२४॥

परमाणूनि का वंध हो है, कबहू थोरे परमाणूनि का बंध हो है, सामान्यपनें पूर्वोक्त प्रमाण ही कहिए है ।।४।।

आगे समय-समय प्रति बंध का प्रमाण करि उदय का वा सत्त्व का परिमाण कहै है —

जीरदि समयपबद्धं, पओगदो णेगसमयबद्धं वा ।
गुणहाणीण दिवड्ढं, समयपबद्धं हवे सत्तं ।।५।।

जीर्यते समयप्रबद्धं, प्रयोगतः अनेकसमयबद्धं वा ।
गुणहानीनां द्व्यर्द्धं, समयप्रबद्धं भवेत् सत्त्वम् ।।५।।

टीका — समय-समय प्रति एक-एक कार्मण का समयप्रबद्ध निर्जरे है । उदयरूप हो है । अथवा सातिशय क्रियासंयुक्त जो आत्मा ताकै सम्यक्त्वादिक की प्रकृतिरूप योग तीहिकरि ग्यारह स्थान निर्जरा के गुणस्थानाधिकार में कहै है । तिनकी विवक्षा करि एक समय विषै अनेक समयप्रवद्ध निर्जरे हैं । बहुरि ड्योढ-गुणहानि का प्रमाण करि समयप्रवद्ध कौ गुणै जो प्रमाण होइ तितना परमाणू समय-समय प्रति सत्तारूप रहै है ।

इहां प्रश्न — जो समय-समय प्रति एक समयप्रबद्ध का बंध कह्या, एक समयप्रवद्ध की निर्जरा कही, तौ सत्व ड्योढ-गुणहानि करि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण कैसे कहो हो ?

ताका समाधान — जो योगमार्गणा विषै पूर्वै व्याख्यान कीया था, आगै भी कथन दिखाइयेगा तहां त्रिकोण-रचना विषै वंध, निर्जरा, सत्व का प्रमाण जो इहां कह्या है तितना ही व्यक्तपनै संभवै है ।।५।।

आगे कर्मनि के सामान्यादिक भेद वा भेदनि के भेद दोय गाथानि करि कहैं हैं —

कम्मत्तणेण एक्कं, दव्वं भावोत्ति होदि दुविहं तु ।
पोग्गलपिंडो दव्वं, तस्सत्ती भावकम्मं तु ।।६।।

कर्मत्वेन एकं, द्रव्यं भाव इति भवति द्विविधं तु ।
पुद्गलपिण्डो द्रव्यं, तच्छक्तिः भावकर्म तु ।।६।।

टीका – सो कर्म सामान्यभावरूप कर्मत्व करि एक प्रकार है। बहुरि सोई कर्म द्रव्यभाव के भेद तैं दोय प्रकार है। तहां ज्ञानावरणादिकरूप पुद्गलद्रव्य का पिंड सो द्रव्यकर्म है। बहुरि तिस पिंड विषै फल देने की शक्ति है, सो भावकर्म है। अथवा कार्य विषै कारण के उपचार तैं तिस शक्ति तैं उत्पन्न भए अज्ञानादिक वा क्रोधादिक सो भी भावकर्म है ॥६॥

सो कहिए है —

तं पुण अट्ठविहं वा, अडदालसयं असंखलोगं वा।
ताणं पुण घादित्ति अ–घादित्ति य होंति सण्णाओ ॥७॥

तत् पुनरष्टविधं वा, अष्टचत्वारिंशच्छतमसंख्यलोकं वा।
तेषां पुन. घातीति, अघातीति च भवतः संज्ञे ॥७॥

टीका – बहुरि सो सामान्यकर्म आठ प्रकार है, वा एक सौ अडतालीस प्रकार है, वा असंख्यात-लोक प्रमाण प्रकार है, तिनकी पृथक्-पृथक् घातिया वा अघातिया असी संज्ञा है ॥७॥

सो जैसै नाम कहना तैसै ही विशेष कहना, यातै प्रथम आठ प्रकार कर्म के घातिया-अघातिया भेद दोय गाथानि करि दिखावे है —

णाणस्स दंसणस्स य, आवरणं वेयणीयमोहणियं।
आउगणामं गोदं,तरायमिदि अट्ठ पयडीओ ॥८॥

ज्ञानस्य दर्शनस्य च, आवरण वेदनीयमोहनीयम्।
आयुष्कनाम गोत्रान्तरायमिति अष्ट प्रकृतयः ॥८॥

टीका – ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अंतराय[1] ए आठ कर्मनि की मूलप्रकृति है ॥८॥

आवरणमोहविग्घं, घादी जीवगुणघादणत्तादो।
आउगणामं गोदं, वेयणियं तह अघादित्ति ॥९॥

१–आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः। मोक्षशास्त्र अध्याय ८ सूत्र ४।

आवरणमोहविघ्नं, घाति जीवगुणघातनत्वात् ।
आयुष्कनाम गोत्रं, वेदनीयं तथा अघातीति ॥९॥

टीका – ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय ए च्यारि घातिया हैं, जातै ए जीव के गुणनि कौ घातैं हैं। बहुरि आयु, नाम, गोत्र, वेदनीय – ए तैसें जीवनि के गुणनि कौं नाहीं घातैं हैं; तातैं ए अघातिया हैं ॥९॥

तिन जीवनि के गुणनि कौं कहैं हैं —

केवलणाणं दंसण,मणंतविरियं च खयियसम्मं च ।
खयियगुणे मदियादी, खयोवसमिए य घादी दु ॥१०॥

केवलज्ञानं दर्शन,मनन्तवीर्यं च क्षायिकसम्यक्त्वं च ।
क्षायिकगुणान् मत्यादीन्, क्षायोपशमिकांश्च घातीनि तु ॥१०॥

टीका – केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंतवीर्य, क्षायिकसम्यक्त्व, चकार तें क्षायिक-चारित्र दूसरे चकार तें क्षायिक दानादिक ५ – ए तौ क्षायिकभाव, बहुरि मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय ज्ञानादिक क्षायोपशमिक – ए जीव के गुण हैं। इनिकौं ज्ञानावरणादिक घातैं हैं; तातैं तिनकौं घातिया कहिए ॥१०॥

आयुकर्म का कार्य कहैं हैं —

कम्मकयमोहवड्ढिय,संसारम्हि य अणादिजुत्तम्हि ।
जीवस्स अवट्ठाणं, करेदि आऊ हलिव्व णरं ॥११॥

कर्मकृतमोहवर्धित,संसारे च अनादियुक्ते ।
जीवस्यावस्थानं करोति आयुः हलीव नरं ॥११॥

टीका – आयुकर्म का उदय है सो कर्म करि कीया अर अज्ञान, असंयम, मिथ्यात्व करि वृद्धि कौ प्राप्त भया असा अनादि संसार, ताके विषैं च्यारि गतिनि में जीव का अवस्थान कौं करै है। जैसैं काष्ठ का खोडा अपने छिद्र में जाका पग आया होय, ताकी तहां ही स्थिति करावै, तैसैं आयुकर्म जिस गतिसंबंधी उदयरूप होइ, तिस ही गतिविषैं जीव की स्थिति करावै है ॥११॥

आगे नामकर्म का कार्य कहै है —

गदिआदि जीवभेदं, देहादी पोग्गलाण भेदं च ।
गदियंतरपरिणमनं, करेदि णामं अणेयविहं ।।१२।।

गत्यादिजीवभेदं, देहादि पुद्गलानां भेदं च ।
गत्यंतरपरिणमनं, करोति नाम अनेकविधं ।।१२।।

टीका – गति आदि अनेक प्रकार नामकर्म सो नारकादिक जीव के पर्यायनि के भेद कौ वा औदारिक-शरीर आदिरूप पुद्गल के भेद कौं वा गति तै अन्यगति-रूप परिणमने को अनेक प्रकार करै है, तातै सो नाम-कर्म जीवविपाकी वा पुद्गल-विपाकी वा क्षेत्रविपाकी 'चकार' तै भवविपाकी जानना ।।१२।।

आगे गोत्रकर्म के कार्य कौ कहै है —

संताणकमेणागय, जीवायरणस्स गोदमिदि सण्णा ।
उच्चं णीचं चरणं, उच्चं णीचं हवे गोदं ।।१३।।

संतानक्रमेणागत, जीवाचरणस्य गोत्रमिति संज्ञा ।
उच्चं नीचं चरणं, उच्चं नीचं भवेत् गोत्रं ।।१३।।

टीका – अनुक्रम परिपाटी तै चल्या आया जो आचरण ताकौ 'गोत्र' ऐसी संज्ञा कहिए सो जहां ऊँचा उत्कृष्ट आचरण होइ सो उच्चगोत्र है । जहा नीचा निकृष्ट आचरण होइ सो नीच गोत्र है ।।१३।।

आगे वेदनीय कर्म के कार्य कौं कहै है —

अक्खाणं अणुभवणं, वेयणियं सुहसरूवयं सादं ।
दुक्खसरूवमसादं, तं वेदयदीदि वेदणियं ।।१४।।

अक्षाणामनुभवन, वेदनीयं सुखस्वरूपं सातं ।
दुःखस्वरूपमसातं, तद्वेदयतीति वेदनीयं ।।१४।।

टीका – इन्द्रियनि कैं अपने विषयनि का अनुभवन जानना सो वेदनीय है । तहां सुखस्वरूप साता है, दु खस्वरूप असाता है । तिन सुख-दु खनि कौ 'वेदयति' कहिए अनुभवन करावै जनावै सो वेदनीय कर्म है ।।१४।।

अत्थं देक्खिय जाणदि, पच्छा सद्दहदि सत्तभंगीहिं ।
इदि दंसणं च णाणं, सम्मत्तं होंति जीवगुणा ॥१५॥

अर्थं दृष्ट्वा जानाति, पश्चात् श्रद्दधाति सप्तभंगीभिः ।
इति दर्शनं च ज्ञानं, सम्यक्त्वं भवंति जीवगुणाः ॥१५॥

टीका – संसारी जीव पहिलें पदार्थ कौ देख करि पीछे जाने । बहुरि तिस पदार्थ कौ अस्ति, नास्ति इत्यादिक सप्तभंगीनि करि निश्चय करि पीछे श्रद्धान करै है । सो इसप्रकार देखना सो दर्शन, जानना सो ज्ञान, श्रद्धान करना सो सम्यक्त्व – ए जीव के गुण हो है ॥१५॥

आगे तिन गुणनि के आवरण को शास्त्र विषैं अनुक्रम कैसे कह्या है, सो कहैं है —

अब्भरहिदादु पुव्वं, णाणं तत्तो हि दंसणं होदि ।
सम्मत्तमदो विरियं, जीवाजीवगदमिदि चरिमे ॥१६॥

अभ्यर्हितात् पूर्वं, ज्ञानं ततो हि दर्शनं भवति ।
सम्यक्त्वमतो वीर्यं, जीवाजीवगतमिति चरमे ॥१६॥

टीका – आत्मा के सर्वगुणनि विषैं ज्ञान अभ्यर्हित है, पूज्य है, प्रधान है, तातैं पहिलें कह्या है । व्याकरण विषैं भी कह्या है – **'अल्पादचर्यं'** थोरे अक्षर जाकैं होइ; तातैं भी प्रधान कौ पहिलैं कहिए । बहुरि ताके पीछैं दर्शन कह्या । ताकैं पीछें सम्यक्त्व कह्या । बहुरि वीर्य है सो ज्ञानादिक की शक्तिरूप जीव विषैं पाइए है अर शरीरादिक की शक्तिरूप पुद्गल विषैं पाइए है; तातैं सर्व के पीछैं अंत विषैं कह्या है । ऐसे इनके आवरण ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय इनका अनुक्रम जानना ॥१६॥

घादीवि अघादिं वा, णिस्सेसं घादणे असक्कादो ।
णामतियणिमित्तादो, विग्घं पडिदं अघादिचरिमम्हि ॥१७॥

घात्यपि अघातीव, निःशेषं घातने अशक्यात् ।
नामत्रयनिमित्ताद्, विघ्नं पठितमघातिचरमे ॥१७॥

टीका – अंतराय नामा कर्म घातिया है, तथापि अघातिया कर्मवत् है। समस्त जीव के गुण घातने को समर्थ नाही है। नाम, गोत्र, वेदनीय इनि तीन कर्मनि के निमित्त तें यहु है; तातें अघातियानि के पीछे अत विषे अंतराय-कर्म कह्या है ॥१७॥

आउबलेण अवट्ठिदि, भवस्स इदि णाममाउपुव्वं तु ।
भवमस्सिय णीचुच्चं, इदि गोदं णामपुव्वं तु ॥१८॥

आयुर्बलेन अवस्थितिः, भवस्य इति नाम आयुःपूर्वं तु ।
भवमाश्रित्य नीचोच्च,मिति गोत्रं नामपूर्वं तु ॥१८॥

टीका – बहुरि आयु नामा कर्म का बल करि नामकर्म का कार्यभूत जो चतुर्गति रूप भव, ताकी अवस्थिति है, तातें आयु-कर्म पहिलें कहि नाम कर्म कह्या। बहुरि चतुर्गतिरूप भव ही का आश्रय करि नीचपणा वा उच्चपणा है, तातें पहिलें नामकर्म कहि गोत्रकर्म कह्या है ॥१८॥

घादिंव वेयणीयं, मोहस्स बलेण घाददे जीवं ।
इदि घादीणं मज्झे, मोहस्सादिम्हि पढिदं तु ॥१९॥

घातिवत् वेदनीयं, मोहस्य बलेन घातयति जीवं ।
इति घातीनां मध्ये, मोहस्यादौ पठितं तु ॥१९॥

टीका – वेदनीय नामा कर्म सो घातिया कर्मवत् मोहनीय कर्म का भेद जो रति-अरति तिनके उदय का बल करि ही जीव कौं घातै है। सुख-दुखस्वरूप साता-असाता कौं कारण इन्द्रियनि का विषय तिनका अनुभवन करवाइ घात करै है, तातें घातिया-कर्मनि के बीचि मोहनीय-कर्म के पहिलें वेदनीय-कर्म कह्या है ॥१९॥

णाणस्स दंसणस्स य, आवरणं वेयणीयमोहणियं ।
आउगणामं गोदं,तरायमिदि पढिदमिदि सिद्धं ॥२०॥

ज्ञानस्य दर्शनस्य, चावरणं वेदनीयमोहनीयम् ।
आयुष्कनाम गोत्रां,तरायमिति पठितमिति सिद्धं ॥२०॥

टीका – ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अंतराय ऐसें जो अनुक्रम तें पाठ कह्या सो पूर्वोक्त प्रकार सिद्ध भया। अब इनिकी निरुक्ति कहिए है —

'ज्ञानं आवृणोति' कहिए ज्ञान कौ आवरै – आच्छादै सो ज्ञानावरणीय है। याको यहु प्रकृति है – जो जैसै देवता का मुख के ऊपरि वस्त्र देवता के विशेष ज्ञान कौं होने दे नाहीं; तैसें ज्ञानावरण ज्ञान कौ आच्छादै है। बहुरि **'दर्शनं आवृणोति'** कहिए दर्शन को आवरै सो दर्शनावरणीय है। याकी यहु प्रकृति है – जैसें राजद्वार विषें तिष्ठता द्वारपाल सो राजा कौं देखने दे नाहीं; तैसें दर्शनावरण दर्शन कौं आच्छादै है। बहुरि **'वेदयति'** कहिए सुख-दुःख का अनुभव करावै सो वेदनीय है। याको यहु प्रकृति है – जैसें शहद ते लपेटी खड्ग की धारा सुख-दुःख कौ कारण है तैसें वेदनीय सुख-दुःख कौ उपजावै है। बहुरि **'मोहयति'** कहिए मोह-असावधान करै सो मोहनीय है। याकी यहु प्रकृति है – जैसे मदिरा वा धत्तूरा वा मादक कोदौं – ए भक्षण कीए हूए असावधान करै है, तैसें मोह आत्मा को मोहित करै है। बहुरि **'एति'** कहिए पर्याय धारने के निमित्ति प्राप्त होइ सो आयु है। याकी प्रकृति यहु है – जो जैसे सांकल वा खोडा पुरुष कौ स्थान विषें स्थित राखै तैसै आयु पर्याय विषें स्थित राखै है। बहुरि **'नाना मिनोति'** कहिए नाना प्रकार कार्य निष्पादन करै सो नाम है। याकी यहु प्रकृति है – जैसे चतेरा अनेक चित्राम बनावै तैसें नाम नर-नारकादिक अनेक रूप करै है। बहुरि **'गमयति'** कहिए उच्च-नीचपणां कौ प्राप्त करै सो गोत्र है। याकी यहु प्रकृति है – जैसै कुम्हार मृतिका का ऊँचा-नीचा वासण करै, तैसै गोत्र आत्मा कौं ऊच्च-नीच दशा कौ प्राप्त करै है। बहुरि **'अंतरं एति'** कहिए दाता, पात्र इत्यादिक विषै परस्पर अंतर कौ प्राप्त करै सो अंतराय है। याको यहु प्रकृति है – जैसें भंडारो देने विषै विघन करै तैसें अंतराय दानादिक विषै विघन करै है ॥२०॥

अब जे दृष्टांत कहे तिनही कौं कहै है —

पडपडिहारसिमज्जा,हलिचित्तकुलालभंडयारीणं।
जह एदेसिं भावा, तहवि य कम्मा मुणेयव्वा ॥२१॥

पटप्रतीहारासिमद्य,हलिचित्रकुलालभांडागारिकाणां।
यथा एतेषां भावा, तथैव च कर्माणि मंतव्यानि ॥२१॥

टीका – देवता का मुख ऊपरि वस्त्र, राज-द्वार विषै तिष्ठता द्वारपाल, शहद लपेटी खड्ग की धारा, मदिरा, खोडा, चतेरा, कुम्हार, भंडारी, जैसे इनिके भाव हैं, तैसे कर्मनि के स्वभाव जानने ॥२१॥

आगे उत्तर-प्रकृतिनि की उत्पत्ति का अनुक्रम कहै है —

पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चउरो कमेण तेणउदी ।
तेउत्तरं सयं वा, दुगपणगं उत्तरा होंति ॥२२॥

पंच नव द्वौ अष्टा,विंशतिः चत्वारः क्रमेण त्रिनवतिः ।
त्र्युत्तरं शतं वा, द्विकपंचकमुत्तरा भवंति ॥२२॥

टीका – [1]ज्ञानावरणादिक कर्मनि की उत्तर-प्रकृति अनुक्रम तै पाच ५, नव ९, दोय २, अट्ठाईस २८, च्यारि ४, त्रेणवै ९३, अथवा एकसौ तीन १०३, दोय २, पाच ५ जाननी सोई कहै है —

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अंतराय – ए आठ मूल-प्रकृति है । तहा ज्ञानावरणीय पाच प्रकार है – मतिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मन पर्ययज्ञानावरणीय – च्यारि ए; अर एक केवलज्ञानावरणीय – असै पाच भेद है । बहुरि दर्शनावरणीय नव प्रकार है – स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, निद्रा, प्रचला – ए पच निद्रा, अर चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय – ए तीन; अर केवलदर्शनावरणीय – असै नव भेद जानने ॥२२॥

थीणुदयेणुट्ठविदे, सोवदि कम्मं करेदि जप्पदि य ।
णिद्दाणिद्दुदयेण य, ण दिट्ठिमुग्घादिदुं सक्को ॥२३॥

स्त्यानगृद्ध्युदयेन, उत्थापिते स्वपिते कर्म करोति जल्पति च ।
निद्रानिद्रोदयेन च, न दृष्टिमुद्घाटयितुं शक्यः ॥२३॥

टीका – स्त्यानगृद्धि दर्शनावरणीय के उदय करि उठाया हुवा भी सूता रहै, उस निद्रा ही विषै अनेक कार्य करै, बोलै, किछू सावधानी न होइ । बहुरि निद्रानिद्रा के उदय करि बहुत प्रकार सावधानी करै; परन्तु नेत्र उघाड़ने कौ समर्थ न होइ ॥२३॥

पयलापयलुदयेण य, वहेदि लाला चलंति अंगाइं ।
णिद्दुदये गच्छंतो, ठाइ पुणो वइसइ पडेई ॥२४॥

१–पचनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपचभेदा यथाक्रम । मोक्षशास्त्र ८-५ ।

प्रचलाप्रचलोदयेन च, वहति लाला चलन्ति अङ्गानि ।
निद्रोदये गच्छन्, तिष्ठति पुनः विशति पतति ।।२४।।

टीका – प्रचलाप्रचला के उदय करि मुखतै लाल वहै, हस्त-पादादिक अंग चलरूप होइ । वहुरि निद्रा के उदय करि चालता थका खड़ा रहि जाय, खड़ा वैठि जाइ, गिर पड़ै असै होइ ।।२४।।

पयलुदयेण य जीवो, ईसुम्मीलिय सुवेइ सुत्तोवि ।
ईसं ईसं जाणदि, मुहुं मुहुं सोवदे मंदं ।।२५।।

प्रचलोदयेन च जीव, ईषदुन्मील्य स्वपिति सुप्तोऽपि ।
ईषदीषज्जानाति, मुहुर्मुहुः स्वपिति मन्दम् ।।२५।।

टीका – प्रचला के उदय करि जीव किछू एक नेत्र कौ उघारि करि सोवै । सूता हुवा भी 'ईषत्-ईषत्' किछू-किछू जान्या करै । 'मुहुर्मुहुः' वारंवार मंद सोवै । सूता अर जाग्या असै वारंवार सोवै ।

वहुरि वेदनीय दोय प्रकार – साता वेदनीय, असाता वेदनीय । तहां – रति मोहनीयकर्म का उदय के वल करि जीव कौ सुख का कारण जो इन्द्रियनि का विषय ताका अनुभवन कौ करावै सो साता-वेदनीय है । वहुरि अरति मोहनीय के उदय के वल करि दु.ख का कारण जो इन्द्रियनि का विषय ताका अनुभवन करावै सो असाता-वेदनीय है । वहुरि मोहनीय दोय प्रकार है – दर्शन मोहनीय, चारित्र मोहनीय । तहां – दर्शन मोहनीय वंध की अपेक्षा मिथ्यात्वरूप एक प्रकार है । उदय व सत्व की अपेक्षा मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व-प्रकृति – असे तीन प्रकार है ।।२५।।

सो ए तीन भेद कैसे हो हैं ? सो कहै हैं —

जंतेण कोद्दवं वा, पढमुवसमसम्मभावजंतेण ।
मिच्छं दव्वं तु तिधा, असंखगुणहीणदव्वकमा ।।२६।।

यन्त्रेण कोद्रवं वा, प्रथमोपशमसम्यक्त्वभावयन्त्रेण ।
मिथ्यात्व द्रव्यं तु त्रिधा, असंख्यगुणहीनद्रव्यक्रमात् ।।२६।।

टीका – यंत्र कहिए घरटी ताकरि दले हूए कोदौं – जैसे तुष, तंदुल, कणी – इनि तीनि अवस्था को प्राप्त हो हैं; तैसें प्रथमोपशम-सम्यक्त्व रूप भाव-यंत्र करि

एक मिथ्यात्व-प्रकृति का द्रव्य जो परमाणूनि का समूह सो मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व-प्रकृति – इनि तीन प्रकृतिरूप होइ असंख्यात-२ गुणां घाटि द्रव्य का अनुक्रम करि तीन प्रकार हो है, सोई कहिए है —

आयु बिना सात कर्मनि की परमाणूनि का प्रमाण किंचित् ऊन ड्योढ-गुण-हानि करि समय-प्रबद्ध कौ गुणै, जो प्रमाण होइ, तितना है; ताकौ सात का भाग दीएं जो प्रमाण आवै तितने मोहनीय के परमाणू है। याकौ अनत का भाग दीजिए तहां एक भाग प्रमाण सर्वघाति-प्रकृतिनि के परमाणू है। अवशेष देशघातिया-प्रकृतिनि के परमाणू हैं। बहुरि तिस एक भाग कौ एक मिथ्यात्व अर सोलह कषाय, इनिका भाग करवे कौ सत्तरह का भाग दीए जो प्रमाण आवै तितने मिथ्यात्व-प्रकृति के परमाणू हैं।

सो इहां प्रथमोपशमसम्यक्त्व का अतर्मुहूर्त काल ताके प्रथम समय तै लगाइ अंत के समय पर्यंत गुण-संक्रम-भागहार करि, तिस मिथ्यात्व के परमाणूनि के प्रमाण कौ अपकर्षण करि-करि – ताके तीन पुंज करै। तहा मिथ्यात्व के जितने परमाणू हैं, इनतैं असंख्यात गुणे घाटि सम्यग्मिथ्यात्व के परमाणू है। इनितै असंख्यात-गुणे घाटि सम्यक्त्व प्रकृति के परमाणू है। अैसै होतै ताके अंत के समय विषै भी अैसे ही तिष्ठै है। अैसै एक मिथ्यात्व के परमाणू तीन पुंजरूप भए।

इहां मिथ्यात्व तो था ही, ताकौ मिथ्यात्व रूप कहा कीया ?

ताका समाधान – पूर्वै जो स्थिति थी तामैस्यो अतिस्थापनावली प्रमाण घटाइ दीया अैसै विधान मन मे धारि आचार्य कह्या, जो असंख्यात गुणां घाटि द्रव्य का अनुक्रम करि मिथ्यात्व द्रव्य तीन प्रकार है।

बहुरि चारित्र-मोहनीय दोय प्रकार – कषायवेदनीय, नोकषायवेदनीय। तहां – कषायवेदनीय सोलह प्रकार सो इनिका क्षय होने का अनुक्रम करि कहिए, तो अनुक्रम तै अैसै कहिए – अनंतानुबंधी – क्रोध, मान, माया, लोभ; अप्रत्याख्यान – क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यान – क्रोध, मान, माया, लोभ, क्रोध-सज्वलन, मान-सज्वलन, माया-सज्वलन, लोभ-सज्वलन – ए सोलह भेद जानने।

बहुरि प्रदेश-बध विषै परमाणूनि का बटवारा है ताकी अपेक्षा कहिए तौ इस अनुक्रम तैं कहिए अनतानुबधी – लोभ, माया, क्रोध, मान, सज्वलन – लोभ,

माया, क्रोध, मान; प्रत्याख्यान – लोभ, माया, क्रोध. मान; अप्रत्याख्यान – लोभ, माया, क्रोध, मान – ग्रैसै अनुक्रम तै कहिए – सो ए सोलह भेद तौ कषायवेदनीय के हैं। वहुरि नोकषायवेदनीय नवप्रकार पुरुप स्त्री नपुंसक वेद, रति, अरति, हास्य, शोक, भय, जुगुप्सा – ए नव जानने।

बहुरि आयुकर्म च्यारि प्रकार है – १ नरकायु, २ तिर्यंच, ३ मनुष्य, ४ देव आयु।

बहुरि नामकर्म बियालीस प्रकार पिंड-अपिंड भेद करि है – १ गति, २ जाति, ३ शरीर, ४ बंधन, ५ संघात, ६ संस्थान, ७ अंगोपाग, ८ संहनन, ९ वर्ण, १० गंध, ११ रस, १२ स्पर्श, १३ आनुपूर्वी, १४ अगुरु-लघुक, १५ उपघात, १६ परघात, १७ उश्वास, १८ आतप, १९ उद्योत, २० विहायो-गति, २१ त्रस, २२ स्थावर, २३ वादर, २४ सूक्ष्म, २५ पर्याप्त, २६ अपर्याप्त, २७ प्रत्येक शरीर, २८ साधारण शरीर, २९ स्थिर, ३० अस्थिर, ३१ शुभ, ३२ अशुभ, ३३ सुभग, ३४ दुर्भग, ३५ सुस्वर, ३६ दु.स्वर, ३७ आदेय, ३८ अनादेय, ३९ यशःकीर्ति, ४० अयशःकीर्ति, ४१ निर्माण, ४२ तीर्थंकर – ए बियालीस भेद है। तहां चौदह पिंड प्रकृति हैं; तिनिके भेद कहिए है —

गति नाम च्यारि प्रकार – नरकगति १, तिर्यंचगति २, मनुष्यगति ३, देवगति ४। जाति नाम पांच प्रकार – एकेंद्री, बेइंद्री, तेइंद्री, चौइंद्री, पचेंद्री ५ जाति। शरीर नाम पांच प्रकार – औदारिक शरीर १, वैक्रियिक शरीर २, आहारक शरीर ३, तैजस शरीर ४, कार्माण शरीर ५ ॥२६॥

इनि पंच शरीरनि के भंग कहैं हैं —

तेजाकम्मेहिं तिए, तेजा कम्मेण कम्मणा कम्मं।
कयसंजोगे चदुचदु,चदुदुग एक्कं च पयडीओ ॥२७॥

तैजसकार्म्मणाभ्यां, त्रये तैजसं कार्म्मणेन कार्म्मणेन कार्म्मणं।
कृतसंयोगे चतुश्चतु,श्चतुर्द्विकमेकं च प्रकृतयः ॥२७॥

टीका – औदारिक, वैक्रियिक, आहारक – इनि तीनों विषै तैजस-कार्माण सहित संयोग कीए च्यारि-च्यारि भंग भए ते कहिए है। औदारिक-औदारिक,

औदारिक-तैजस, औदारिक-कार्माण, औदारिक-तैजस-कार्माण – ए च्यारि भए। बहुरि वैक्रियिक-वैक्रियिक, वैक्रियिक-तैजस, वैक्रियिक-कार्माण, वैक्रियिक-तैजस-कार्माण – ए च्यारि भए। बहुरि आहारक-आहारक, आहारक-तैजस, आहारक-कार्माण, आहारक-तैजस-कार्माण – ए च्यारि भए। बहुरि तैजस-कार्माण के संयोग ते दोय भंग हो है – तैजस-तैजस, तैजस-कार्माण – ए दोय भये। बहुरि कार्माण-कार्माण के संयोग ते एक भग हो है – कार्माण-कार्माण – यहु एक भया। ऐसें सब मिले हुवे पंद्रह भेद[1] भये।

इहां शरीरनि कै परस्पर सयोग तै भेद कहे है। जैसे – चक्रवर्त्यादिक के औदारिक शरीर था; उससे और औदारिक भए, तहा औदारिक-औदारिक कहिए, ऐसें ही यथासंभव और भी भेद जानने। इनि विषै औदारिक-औदारिक, वैक्रियिक-वैक्रियिक, आहारक-आहारक, तैजस-तैजस, कार्माण-कार्माण – ए पच भेद, ऊपरि औदारिकादिक शरीर कहे थे; तहा गर्भित भए। जैसै – औदारिक तै औदारिक का संयोग कह्या, तहां दोऊ सदृश हैं, तातै ऊपरि शरीर-प्रकृति के भेदनि विषै औदारिक-शरीर कह्या; तहां गर्भित भया। ऐसै ही और च्यारि का गर्भितपनां जानना। तातैं पंद्रह मैस्यों पांच घटाए, दश रहे; सो नाम कर्म की त्रैणवै प्रकृतिनि विषै ए दश प्रकृति मिलाइए; तब नामकर्म की एकसौ तीन (१०३) प्रकृति हो है।

बहुरि शरीर-बंधन नाम पांच प्रकार – औदारिक-शरीर बंधन, वैक्रियिक-शरीर-बंधन, आहारक-शरीर-बधन, तैजस-शरीर-बधन, कार्माण-शरीर-बधन। बहुरि

१. गाथा २७ के आधार पर शरीरबन्धन नामकर्म के १५ भग —

क्रम	प्रधान शरीर	मिश्रित शरीर				योग
१	औदारिक	औ०औ०	औ० तै०	औ०का०	औ०तै०का०	४
२	वैक्रियिक	वै०वै०	वै०तै०	वै०का०	वै०तै०का०	४
३	आहारक	आ०आ०	आ०तै०	आ०का०	आ०तै०का०	४
४	तैजस	तैजस तैजस	तै०का०			२
५	कार्मण	कार्मण कार्मण				१
कुल योग—						१५

शरीरसंघात नाम पांच प्रकार – औदारिक-शरीर-संघात, वैक्रियिक-शरीर संघात, आहारक-शरीर-संघात, तैजस-शरीर-संघात, कार्माण-शरीर-संघात । बहुरि शरीर संस्थान नाम छह प्रकार – समचतुरस्र संस्थान, न्यग्रोधपरिमंडल, स्वाति, कुब्ज, वामन, हुंडसंस्थान । बहुरि शरीर अंगोपांग नाम तीन प्रकार – औदारिकशरीर-अंगोपांग, वैक्रियिकशरीरअंगोपांग, आहारकशरीरअंगोपांग, तैजस-कार्माण के अंगोपांग का अभाव है ।।२७।।

णलया बाहू य तहा, णियंबपुट्ठी उरो य सीसो य ।
अट्ठेव दु अंगाइं, देहे सेसा उवंगाइं ।।२८।।

नलकौ बाहू च तथा, नितम्बपृष्ठे उरश्च शीर्षं च ।
अष्टैव तु अङ्गानि, देहे शेषाणि उपाङ्गानि ।।२८।।

टीका – 'नलकौ' कहिए दोय पग, अर 'बाहू' कहिए दोय हाथ, अर 'नितंब' कहिए एक ढूंगो, परभाग कहिए एक पीठ, 'उरः' कहिए एक हृदय, 'शीर्षं' कहिए एक मस्तक – ए शरीर विषै आठ अंग हैं । इनि बिना और सर्व उपांग जानने ।

बहुरि संहनन नाम छह प्रकार – वज्रवृषभ नाराच शरीर संहनन, वज्र नाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलित, असंप्राप्तासृपाटिका शरीर संहनन ।।२८।।

सेवट्टेण य गम्मइ, आदीदो चदुसु कप्पजुगलोत्ति ।
तत्तो दुजुगलजुगले, खीलियणारायणद्धोत्ति ।।२९।।

सृपाटेन च गम्यते, आदितः चतुर्षु कल्पयुगल इति ।
ततः द्वियुगलयुगले, कीलितनाराचार्द्ध इति ।।२९।।

टीका – सृपाटिका संहनन करि संयुक्त जीव स्वर्ग विषैं उपजै तो – सौधर्म युगल तै लांतव युगलपर्यंत – च्यारि युगलनि विषै उपजै । बहुरि ताके ऊपरि दोय युगलनि विषै शतार-युगलपर्यंत-कीलितसंहनन युक्त जीव उपजै । बहुरि ताके ऊपरि दोय युगलनि विषै आरण-अच्युत पर्यंत – अर्धनाराच संहननयुक्त जीव उपजै है ।।२९।।

णवगेविज्जाणुद्दिस,णुत्तरवासीसु जांति ते णियमा ।
तिदुगेगे संघडणे, णारायणमादिगे कमसो ।।३०।।

नवग्रैवेयिकानुदिशा,नुत्तरवासिषु यान्ति ते नियमात् ।
त्रिद्विकैकेन संहननेन नाराचादिकेन क्रमशः ॥३०॥

टीका – नाराच, वज्रनाराच, वज्रवृषभनाराच – इन तीन सहनन वाले जीव नवग्रैवेयक पर्यंत उपजैं । बहुरि वज्रनाराच, वज्रवृषभनाराच – इन दोऊ सहनन वाले जीव नव अनुदिशविमान पर्यंत उपजैं । बहुरि वज्रवृषभनाराच – एक सहनन वाला जीव पच-अनुत्तरवासी देवनि पर्यंत उपजै, नियम करि असैं जानना ॥३०॥

सण्णी छस्संहडणो, वज्जदि मेघं तदो परं चापि ।
सेवट्टादीरहिदो, पण पणचदुरेगसंहडणो ॥३१॥

संज्ञी षट्संहननो, व्रजति मेघां ततः परं चापि ।
सृपाटाविरहितः, पञ्चमीं पञ्चचतुरेकसंहननः ॥३१॥

टीका – छह सहनन युक्त सैनी-जीव नरक विषै उपजैं तो मेघा नाम तीसरी पृथ्वी पर्यंत उपजे । सृपाटिका बिना पच संहनन वाले जीव अरिष्टा नामा पांचमी पृथ्वी पर्यंत उपजैं । सृपाटिका-कीलित बिना च्यारि संहनन वाले जीव मघवी नाम छठी पृथ्वी पर्यंत उपजैं । एक वज्रवृषभनाराच वाले जीव माघवी नामा सातवी पृथ्वी पर्यंत उपजैं है ॥३१॥

अंतिमतियसंहडणस्सुदओ पुण कम्मभूमिमहिलाणं ।
आदिमतिगसंहडणं, णत्थित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥३२॥

अन्तिमत्रयसंहननस्योदयः पुनः कर्मभूमिमहिलानां ।
आदिमत्रिकसंहननं, नास्तीति जिनैर्निर्दिष्टम् ॥३२॥

टीका – कर्मभूमि विषै महिला जे स्त्री तिनके अर्धनाराच, कीलित, सृपाटिका– इनि तीन सहनन ही का उदय है । आदि के वज्रवृषभनाराचादिक तीन सहनन न होइ है, असा जिनदेव ने कह्या है ॥३२॥

बहुरि वर्ण नाम पाच प्रकार – कृष्ण, नील, रक्त, पीत, श्वेत । बहुरि गध नाम दोय प्रकार – सुगध, दुर्गंध । बहुरि रस नाम पाच प्रकार – तिक्त, कटुक, कषाय, आम्ल, मधुर । बहुरि स्पर्श नाम आठ प्रकार – कठोर, कोमल, गुरु, लघु, रूखा, चिकना, शीत, उष्ण । बहुरि आनुपूर्वी नाम च्यारि प्रकार – नरक-तिर्यंच गति-

प्रायोग्य-आनुपूर्वी, मनुष्य-देवगति प्रायोग्य-आनुपूर्वी । बहुरि अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्‌वास, आपत, उद्योत – ए एक-एक । बहुरि विहायोगति दोय प्रकार – प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति । बहुरि त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर – ए एक-एक । बहुरि स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण शरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति – ए एक-एक, ऐसै सर्व मिली हुई नामकर्म की उत्तर प्रकृति त्रेणवै (९३) वा एकसौ तीन (१०३) हैं।

मूलुण्हपहा अग्गी, आदावो होदि उण्हसहियपहा ।
आइच्चे तेरिच्छे, उण्हूणपहा हु उज्जोओ ॥३३॥

मूलोष्णप्रभा अग्निः, आतापो भवति उष्णसहितप्रभा ।
आदित्ये तिरश्चि, उष्णोनप्रभा हि उद्योतः ॥३३॥

टीका – इहां कोऊ भ्रम करेगा कि आताप प्रकृति का उदय अग्निकाय विषै होगा; तातैं कहैं हैं–अग्नि है सो मूल ही उष्ण-प्रभा सहित है, तातैं वाके स्पर्श का भेद उष्णता का उदय जानना । बहुरि जाकी प्रभा ही उष्ण होइ ताकै आताप प्रकृति का उदय जानना । सो सूर्य का बिंब विषै उपजैं ऐसैं बादर पर्याप्त पृथ्वीकाय के तिर्यंच जीव तिन ही कै आताप-प्रकृति का उदय है । बहुरि उष्ण रहित जो प्रभा होइ तहां उद्योत जानना ।

बहुरि गोत्र-कर्म दोय प्रकार–ऊच्च गोत्र, नीच गोत्र ।

बहुरि अंतरायकर्म पांच प्रकार–दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय, वीर्यांतराय ।

ऐसैं उत्तर-प्रकृति कही, सो आत्मा के प्रदेशनि विषै एक क्षेत्रावगाही तिष्ठते जे कर्मरूप होने योग्य कार्माण वर्गणा तिनिका अविभाग एकत्वपनै करि युक्त होना, सो बंध कहिए । जैसे यथायोग्य भाजन विषै धरचा हूवा नाना प्रकार रस, बीज, फूल, फल ते मदिरा भाव कौ प्राप्त हों है, तैसे कार्मण-वर्गणारूप पुद्गल योग-कषाय के निमित्त तैं कर्मभाव कौं प्राप्त हो हैं। बहुरि जैसे एक बार ही भक्षण कीया, हुवा एक अन्न सो रस, रुधिर, मांसादिक अनेकरूप होइ परिणमैं हैं, तैसें एक ही आत्मा के परिणाम करि ग्रहे, हुवे पुद्गल ज्ञानावरणादिक अनेक भेदरूप होइ परिणमैं हैं।

अब जे उत्तर-प्रकृति कही तिनकी निरुक्ति कहिए है—

मतिज्ञान कौ आवरै वा मतिज्ञान याकरि आवरिये, सो मतिज्ञानावरण है। बहुरि श्रुतज्ञान कौ आवरै वा श्रुतज्ञान याकरि आवरिये, सो श्रुतज्ञानावरण है। बहुरि अवधिज्ञान कौ आवरै वा अवधिज्ञान याकरि आवरिये, सो अवधिज्ञानावरण है। बहुरि मन पर्ययज्ञान कौ आवरै वा मन पर्ययज्ञान याकरि आवरिये, सो मन पर्यय-ज्ञानावरण है। बहुरि केवलज्ञान को **'आवृणोति'** कहिए आवरै वा केवलज्ञान याकरि **आव्रियते** कहिए आवरिए, सो केवलज्ञानावरण है।

इहां **प्रश्न**—जो अभव्य के मनःपर्यय, केवलज्ञान की शक्ति है कि नाही है, जो है, तौ भव्य, अभव्य का भेद न होइ। जो न है तो वाके दोऊ ज्ञान के आवरण कहना निरर्थक है ?

ताका समाधान – जो द्रव्यार्थिकनय करि वाके तिनि दोऊ ज्ञाननि की शक्ति पाइए है, पर्यायार्थिकनय करि सो शक्ति व्यक्तरूप होइ कबहूं प्रगट न परिणमै, ताते दोष कहे, ते लगते नाही। जैसे—अंध-पाषाण विषै सोने (स्वर्ण) की शक्ति कहिए तैसे जानना।

बहुरि **'आवृणोति आव्रियते अनेन इति आवरणं'** जो आवरै वा याकरि आवरिये सो आवरण कहिए, सो चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण ए च्यारि प्रकार दर्शन के आवरणरूप च्यारि दर्शनावरण जानने। बहुरि पांच-निद्रा—तहां जाकरि सोवने विषै वीर्य विशेष प्रगट होइ, सो स्त्यानगृद्धि है। **'स्त्यायति'** इस धातु के अनेक अर्थ हैं। इहां सोवने का अर्थ लीजिये। बहुरि **'गृधि'** धातु का इहां दीप्ति अर्थ लीजिए। सो **'स्त्यान'** कहिए सोवना, तिसविषै **'गृध्यते'** कहिए दिपे, जाके उदय विषै आर्त, रौद्र लीए उठना-बैठना, उठावना-धरना इत्यादि अनेक कार्य करै, सो स्त्यानगृद्धि है। सो स्त्यानगृद्ध्यादिक करि दर्शनावरण का सामान्याधिकरण जानना। स्त्यानगृद्धि सो दर्शनावरण, निद्रा-निद्रा सो दर्शना-वरण इत्यादिक जानना।

भावार्थ – चक्षुदर्शनावरणादिक विषै तौ षष्ठी-तत्पुरुष-समास है, स्त्यानगृद्धि दर्शनावरणादिक विषै कर्मधारय-समास जानना।

बहुरि जाकै उदय तै निद्रा के ऊपरी-ऊपरी प्रवृत्ति होइ, सो निद्रा-निद्रा-दर्शनावरण है। बहुरि जाके उदय तै क्रिया आत्मा को बारम्बार चलावै। सो प्रचला-

प्रचला-दर्शनावरण है, सो शोक वा खेद वा मदादिक तै उपजै तिष्ठता हुआ भी नेत्र शरीरादिक का हलावना-चलावना इत्यादि विक्रिया करै, सो वारम्वार ग्रैसे जहां होइ, सो प्रचलाप्रचला है । वहुरि जाके उदय तै मद, खेदादिक मिटावने के निमित्ति सोइए, सो निद्रा-दर्शनावरण है । वहुरि जाके उदय तै क्रिया आत्मा को चलावै, किछू सावधानी रहै, सो प्रचला-दर्शनावरण है ।

वहुरि जाके उदय तै देवादिक गतिनि विषै शारीरिक, मानसिक मुख की प्राप्ति सो साता, तिसकौ विदवावै भोगवावै, वहुरि याकरि साता वेदिए भोगिए, सो सातावेदनीय है । वहुरि जाके उदय का फल अनेक प्रकार दुःख सो असाता, ताकौ विदवावै वा भोगवावै याकरि असाता भोगिए, सो असातावेदनीय है ।

वहुरि दर्शन मोहनीय, चारित्र मोहनीय, कषाय वेदनीय, नो-कषायवेदनीय ग्रैसे मोहनीयकर्म च्यारि प्रकार है । तहां दर्शन-मोहनीय तीन प्रकार–मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति, सो वंध की अपेक्षा एक प्रकार है । उदय वा सत्ता की अपेक्षा तीन प्रकार है । तहा जाके उदय तै सर्वज्ञ प्रणीत मार्गस्सो परांमुख होइ, तत्त्वार्थश्रद्धान का उद्यमी न होइ, हिताहित विचार करने कौं समर्थ न होइ–ग्रैसैं मिथ्यादृष्टि होइ, सो मिथ्यात्व है । वहुरि सोई मिथ्यात्व शुभपरिणामनि करि अनुभाग रस के रुकने तैं उदासीन रूप तिष्ठता आत्मा के श्रद्धान कौं रोकै नाही, जिस के उदय कौ भोगवता जीव सम्यग्दृष्टि ही कहिए, सो सम्यक्त्व-प्रकृति जानना । वहुरि जैसै–मादक कोदौ विषै पाखालने के विशेष करि किछू मद-शक्ति रहे, किछू क्षीण होइ, तैसै किछू अनुभाग क्षीण भया होइ, किछू रह्या होइ, ग्रैसा सोई मिथ्यात्व भया ताकौ सम्यग्मिथ्यात्व कहिए । याके उदय तै जैसै शुद्ध मादक कौदौ खाने तै किछू मदवान होइ किछू स्याना रहै, तैसैं सम्यक् रूप वा मिथ्यारूप मिश्रपरिणाम आत्मा के हो है ।

वहुरि चारित्र-मोहनीय दोय प्रकार है । आचारै वा याकरि आचरिये वा आचरण मात्र होइ, सो चारित्र कहिए, तिसकरि मोहै वा चारित्र याकरि मोहिए, सो चारित्रमोहनीय है । सो दोय प्रकार है – एक कषायवेदनीय, एक नो-कषायवेदनीय । तहा कर्षति कहिए आत्मा के चारित्र कौ हिसै – घातै ते कषाय कहिए । वहुरि 'नो' कहिए ईषत्-किंचिन्मात्र जे कषाय, तिनिकौं नोकषाय कहिए ।

तहां कषायवेदनीय सोलह प्रकार है । सो कहिए है – कषाय – क्रोध, मान, माया, लोभ; सो इनिकी च्यारि अवस्था हैं – अनंतानुवंधी-क्रोध, मान, माया, लोभ;

अप्रत्याख्यानावरण – क्रोध, मान, माया, लोभ; प्रत्याख्यानावरण – क्रोध, मान, माया, लोभ; क्रोधसंज्वलन, मानसज्वलन, मायासंज्वलन, लोभसंज्वलन। तहा **'अनंत'** कहिए अनंत ससार की कारण मिथ्यात्व, ताहि **'अनुबध्नंति'** कहिए संबध रूप करै ते अनंतानुवधी जानने। वहुरि **'अ'** कहिए ईषत्-किचिन्मात्र **'प्रत्याख्यान'** कहिए सयम, सो तिस देशसंयम कौ आवरै – अल्पमात्र भी न होने दे, ते अप्रत्याख्यानावरण है। वहुरि **'प्रत्याख्यान'** कहिए सकल-संयम, ताहि **'आवृणंति'** कहिए आवरै, न होने दे, ते प्रत्याख्यानावरण है। वहुरि **'सं'** कहिए एकीभूत होइ **'ज्वलंति'** कहिए संयम-सहित अपने प्रकाश कौ करै अथवा इनिकौ होत संतै भी सयम है, सो **'ज्वलति'** कहिए प्रकाशरूप रहै, ते संज्वलन कहिए – सो ए सब मिले हुए सोलह कषाय भए।

वहुरि **'नो'** कहिए ईषत् किंचिन्मात्र, क्रोधादिक सारिखे प्रबल नाही असे जु कपाय है ते नो-कपाय है तिनिकौ वेदै वा इनिकरि वेदिए, नो-कषायरूप अनुभवन कीजिए ते नोकपायवेदनीय है। ते नव प्रकार है – तहा जाके उदय तै हास्य प्रकट होइ, सो हास्य है। वहुरि जाके उदय तै क्षेत्रादिक विषै उत्सुकता-प्रीति होइ, सो रति है। वहुरि जाके उदय तै क्षेत्रादिक विषै निरुत्सुकता-अप्रीति होइ, सो अरति है। वहुरि जाके उदय तै इष्टवियोग होतै क्लेश होइ, सो शोक है। बहुरि जाके उदय तै उद्वेग-उच्चाटन होइ, सो भय है। बहुरि जाके उदय तै अपने दोष कौ सवरै, अन्यवस्तु के दोप को धारै, सो जुगुप्सा है। बहुरि जाके उदय तै स्त्रीसबधी भावनि कौ प्राप्त होइ, सो स्त्रीवेद है। वहुरि जाके उदय तै पुरुष सबधी भावनि कौ प्राप्त होइ, सो पुरुष-वेद है। बहुरि जाके उदय तै नपुसक संबधी भावनि कौ प्राप्त होइ, सो नपुसकवेद है।

वहुरि पर्याय धारने के निमित्ति **'एति'** कहिए प्राप्त होइ, सो आयु है, सो नारकादिक पर्यायनि विषै प्राप्त होने का सम्बन्ध करि आयु के भेद करिए है। तहा जो नरक विषै प्राप्त, सो नरकायु है। तिर्यग्योनि विषै प्राप्त, सो तिर्यग्योनि-आयु है। मनुष्य विषै प्राप्त, सो मनुष्यआयु है। देव विषै प्राप्त, सो देवआयु है। सो तीव्र-शीत-उष्ण वेदनासहित नरकनि विषै बहुत काल जीवना सो नारक-आयु है, असे ही और तीनौ का स्वरूप जानना।

बहुरि नामकर्म – पिड-अपिड प्रकृति के भेद करि बियालीस प्रकार हैं, तहा जाके उदय तै आत्मा पर्याय तै पर्यायांतर को **गच्छति** कहिए प्राप्त होइ, सो गति कहिए। सो गति च्यारि प्रकार – तहा जाके उदय निमित्त तै आत्मा कै नारक-

पर्याय होइ, सो नरकगति नाम है। जाके उदय तै आत्मा कै तिर्यक्-पर्याय होइ, सो तिर्यग्गति नाम है। जाके उदय तै आत्मा कैं मनुष्य पर्याय होइ, सो मनुष्यगति नाम है। जाके उदय तै आत्मा के देव-पर्याय होइ, सो देवगति नामकर्म है।

बहुरि तिन गतिनि विषै अव्यभिचारी सादृश्यभाव तीहि करि एकठे कीए जीव, सो जाति है। जैसैं एकेंद्री, वेइंद्रियादिक परस्पर समान रूप होंइ, मिलै नाहि, तातैं अव्यभिचारी हैं अर एकेंद्री जेते जीव हैं, तिनकैं एकेंद्रिय अस्तित्व की अपेक्षा समानता है सो यह सादृश्य-भाव है। सो याकरि जिस एक अव्यभिचारी सादृश्य-भाव विषै जीव एकठे करिए सो जाति है। सो जाति नाम पांच प्रकार है। तहां जाके उदय तै आत्मा एकेंद्रिय ऐसा कहिए, सो एकेंद्रिय-जाति नाम है। जाके उदय तै आत्मा वेंद्री है ऐसा कहिए, सो वेंद्री जाति नाम है। जाके उदय तै आत्मा तेंद्री ऐसा कहिए, सो तेंद्री जाति नाम है। जाके उदय तैं आत्मा चौंद्री ऐसा कहिए, सो चौंद्री जाति नाम है। जाके उदय तैं आत्मा पंचेंद्री ऐसा कहिए सो पंचेंद्री-जाति नाम है।

बहुरि जाके उदय तै शरीर निपजै, सो शरीर नाम है, सो पंच प्रकार है। तहां जाके उदय तै औदारिक शरीर निपजै, सो औदारिक शरीर नाम है। जाके उदय तै वैक्रियिक शरीर निपजै, सो वैक्रियिक-शरीर नाम है। जाके उदय तैं आहारक शरीर निपजै, सो आहारक-शरीर नाम है। जाके उदय तैं तैजस शरीर निपजै, सो तैजस-शरीर नाम है। जाके उदय तै आत्मा कैं कार्मारण शरीर निपजै, सो कार्मारण शरीर नाम है।

बहुरि शरीर नामकर्म के उदय के वश तै जे आहारवर्गरणारूप पुद्गलस्कंध ग्रहण कीए, तिनकै परस्पर प्रदेशनि का संश्लेप सम्बन्ध जाके उदय तै होइ, सो बंधन नाम है। सो औदारिकादि शरीरनि की अपेक्षा पच प्रकार है। बहुरि जाके उदय तै औदारिकादि शरीर छिद्र करि रहित तिनिका परस्पर प्रदेशनि का एक क्षेत्रावगाह करि एकत्वपना कौ प्राप्त होना होइ, सो संघातनाम है। सो औदारिकादि-शरीरनि की अपेक्षा पंच प्रकार है।

बहुरि जाके उदय तै औदारिकादिक-शरीरनि का आकार निपजै, सो संस्थान नाम है, सो छह प्रकार है। तहां जातै समान चौकोर आकार होइ, सो समचतुरस्र, संस्थान नाम है। न्यग्रोध जो वड, तीहिं सारिखा ऊपरि तैं मोटा नीचै तै पतला ऐसा आकार जातैं होइ, सो न्यग्रोध परिमंडल सस्थान नाम है। स्वाति जो वंवइ तीहि

सारिखा ऊपरि तै पतला नीचै तै मोटा ऐसा आकार जातै होइ, सो स्वाति-सस्थान नाम है । कूबरा आकार जातै होइ, सो कुब्ज-सस्थान है । ठीगना आकार जातै होइ, सो वामन-सस्थान नाम है । अनेक अवक्तव्य आकार जातै होइ, सो हुडक-सस्थान नाम है ।

बहुरि जाके उदय तै अंगोपांग का भेद होइ, सो अंगोपांग नाम है । सो तीन प्रकार है – औदारिक अगोपांग, वैक्रियिक अगोपाग, आहारक अंगोपांग ।

वहुरि जाके उदय तै हाडनि के बधन का विशेष होइ, सो संहनन नाम है । सो छह प्रकार है – वज्रवृषभनाराच संहनन, वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलित, असप्राप्तासृपाटिका । तहा 'संहनन' नाम तो हाडनि का समूह का है । 'ऋषभ' नाम जाकरि वेठिए वांधिए, जैसै – जेवरे करि बठ दोजिए है ताका जानना । अर 'नाराच' नाम कीले का है; जैसै – लोहे का कीला काष्ठादिक विषै ठोकिए है । वहुरि जो वज्रवत् भेद्या न जाय ऐसा होइ ताकौ वज्र कहिये । सो जिस वज्रसहनन युक्त शरीर विषै वज्र का ऋषभ, वज्र का नाराच – ए दोऊ जहां होइ ऐसा शरीर जाके उदय तै होइ, सो वज्रवृषभनाराच शरीरसहनन नाम है । बहुरि जहा वज्र के ऋषभ नाही, सामान्य ऋषभ करि बेढया होइ, ऐसा शरीर जाके उदय तै होइ, सो वज्रनाराच शरीरसंहनन नाम है । बहुरि वज्र विशेषरण रहित, साधारण नाराच करि कीलित हाडनि की संधि होइ, ऐसा शरीर जाके उदय तै होइ, सो नाराचशरीर सहनन नाम है । बहुरि जहा हाडनि की सधि नाराच करि अर्धकीलित होइ ऐसा शरीर जाके उदय तै होइ, सो अर्धनाराच शरीर सहनन नाम है । बहुरि जहा वज्र के हाड नाही, ते परस्पर कीलित हो ऐसा शरीर जाके उदय तै होइ, सो कीलित-शरीरसहनन नाम है । बहुरि जहां परस्पर प्राप्त नाही, जुदे-जुदे सरीसृप के हाड की ज्यों नसकरि बध्या हुवा हाड होइ ऐसा शरीर जाके उदय तै होइ सो असप्राप्ता-सृपाटिका शरीर संहनन नाम है ।

बहुरि जाके निमित्त तै शरीर का वर्ण होइ, सो वर्णनाम है । सो पाच प्रकार – कृष्णवर्ण नाम, नीलवर्ण नाम, रक्तवर्ण नाम, पीतवर्ण नाम, श्वेतवर्ण नाम ।

बहुरि जाके उदय तै शरीर विषै गध होइ, सो गंध नाम है । सो दोय प्रकार है – सुरभि गंध नाम, दुरभि गंध नाम ।

बहुरि जाके उदय तै शरीर विषै रस होइ, सो रस नाम है । सो पांच प्रकार – तिक्त नाम, कटुक नाम, कषाय नाम, अम्ल नाम, मधुर नाम ।

वहुरि जाके उदय तै शरीर विषै स्पर्श होइ, सो स्पर्श नाम है। सो आठ प्रकार – कर्कश नाम, मृदु नाम, गुरु नाम, लघु नाम, शीत नाम, उष्ण नाम, स्निग्ध नाम, रुक्ष नाम।

बहुरि जाके उदय तै पूर्व जो शरीर था, ताके आकार का नाश न होइ, सो आनुपूर्व्य नाम है। सो च्यारि प्रकार है – नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य नाम, देवगति प्रायोग्यानुपूर्व्य नाम, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य नाम, तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य नाम। नरकगति प्राप्त होने कौ योग्य असा पंचेद्री पर्याप्त जीव कै विग्रहगति विषै पंचेंद्री पर्याप्त शरीर का आकार जाके उदय तै रहे, सो नरकगति प्रायोग्यानुपूर्व्य नाम है – असै ही सव जानने।

वहुरि जाके उदय तै भार्‍या न होइ, तातै लोह का पिंड की ज्यो नीचे कौ न पडै, हलका न होइ, तातै आक का फूफदा की ज्यों ऊचे को न उडे असा शरीर होइ सो अगुरुलघु नाम है।

वहुरि **'उपेत्य घातः उपघातः'** अपने घात का नाम है, सो जाके उदय तै अपने अंगनि तै अपना घात होइ वडे सीग वा लम्वे स्तन वा मोटा उदर असै अग होंइ, सो उपघात नाम है।

वहुरि जाके उदय तै औरनि का घात करै असे तीखे सीग वा नख वा सांप आदिक कै डाढ इत्यादिक अवयव होहि, सो परघात नाम है।

वहुरि जाके उदय तै आतापरूप शरीर निपजै, सो आतप नाम है। सो याका उदय सूर्य विम्व के विषै उपजे वादरपर्याप्त पृथ्वीकायिक जीव तिनही के पाइए है। वहुरि जाके उदय तै उद्योतरूप शरीर निपजै, सो उद्योत नाम है, याका उदय चंद्रमा का विव वा आग्या जीव इत्यादिक कै है। वहुरि विहाय कहिये आकाश, तिस विषै गमन करने को कारण, सो विहायोगति नाम है। सो मनोज्ञ-अमनोज्ञरूप प्रशस्त-अप्रशस्त के भेद तै दोय प्रकार है। बहुरि जाके उदय तै बेइंद्रियादिक विषै जन्म होइ, सो त्रस नाम है। वहुरि जाके उदय तै और कौ रोकै, आप औरनि करि रुकै असा शरीर निपजे, सो वादर नाम है।

वहुरि जाके उदय तै आहार आदि पर्याप्ति निपजै, सो पर्याप्ति नाम है। सो पर्याप्ति छह प्रकार हैं–आहार, शरीर, इंद्रिय, श्वासोसास, भाषा, मन।

बहुरि शरीर नामकर्म के उदय तै निपज्या शरीर, सो जाके उदय तै एक शरीर एक आत्मा के उपभोग का कारण होइ, एक शरीर विषै एक ही आत्मा हो, सो प्रत्येक नाम है ।

बहुरि जाके उदय तै रसादिक धातु अर उपधातु अपने-अपने ठिकाने स्थिर रहै, सो स्थिर नाम है । उक्तं च—

रसाद्रक्तं ततो मासं, मासान्मेदः प्रवर्तते ।
मेदतोऽस्थि ततो मज्जं, मज्जाच्छुक्रं ततः प्रजाः ।।१।।
वातः पित्तं तथा श्लेष्मा, सिरा स्नायुश्च चर्म च ।
जठराग्निरिति प्राज्ञैः, प्रोक्ताः सप्तोपधातवः ।।२।।

अर्थ – रस तै तौ लोही हो है । लोही तै मास हो है । मास तै मेद हो है । मेद तैं हाड़ हो है । हाड तै मीजी हो है । मीजी तै शुक्र हो है । शुक्र तै प्रसूतिरूप प्रजा की प्रवृत्ति हो है । ए सात धातु असै अनुक्रम तै परिणवै है । ए सात धातु तीस दिन मे होइ, तौ एक धातु च्यारि दिन अर दोय दिन का सातवा भाग विषै होइ, असै जानना । बहुरि वात, पित्त, श्लेष्म, सिरा, स्नायु, चर्म, उदराग्नि—ए सात उपधातु है । सो इनिका शरीर विषै जहा ठिकाना है तहा ही स्थिर रहै सो स्थिर-प्रकृति के उदय तै रहै है ।

बहुरि जाके उदय तै मनोज्ञ-रमणीय-प्रशस्त मस्तकादिक-शरीर के अवयव होइ, सो शुभ नाम है । बहुरि जाके उदय तै अन्यजीव आप तै प्रीति करै, सो सुभग नाम है । बहुरि जाके उदय तै मनोज्ञ-सुहावना स्वर शब्द निपजै, सो सुस्वर नाम है । बहुरि जाके उदय तै प्रभा-काति-सहित-शरीर निपजै, सो आदेय नाम है । बहुरि जाके उदय तै अपना पुण्यरूप पवित्र गुण जगत विषै प्रकट होइ, जस होइ, सो यशस्कीर्ति नाम है ।

बहुरि जाके उदय तै यथायोग्य निपजै सो निर्माण नाम है । सो दोय प्रकार है—स्थान निर्माण, प्रमाणनिर्माण । तहा जाति नामकर्म के उदय की सापेक्ष कौं लीए नेत्रादिक जिस ठिकाने चाहिए तिस ही ठिकाने निपजावै, सो स्थान-निर्माण है । जो नेत्रादिक का प्रमाण चाहिऐ तितने ही निपजावै, सो प्रमाणनिर्माण है । बहुरि श्रीमत-अर्हत-पद को कारण सो तीर्थंकर नाम है ।

बहुरि जाके उदय तैं एकेंद्रिय विषै उपजै, सो स्थावर नाम है। बहुरि जाके उदय तैं काहू करि रुकै नाही, काहू कौं रोकै नाहीं; असा सूक्ष्म शरीर होइ, सो सूक्ष्म नाम है। बहुरि छह पर्याप्ति का अभाव कौं कारण असा अपर्याप्ति नाम है। पर्याप्ति नाम पूर्ण होने का है, सो पूर्ण होने न देवे । बहुरि एक शरीर विषै बहुत अनंत आत्मा पाइए सो एक शरीर अनंत जीवनि के उपभोग कौ कारण, सो साधारण नाम है। याका उदय निगोद जीवनि ही कै है। बहुरि धातु वा उपधातु अपने अपने ठिकाने स्थिर न रहै, चलायमान जाके उदय तैं होइ, सो अस्थिर नाम है । बहुरि जाके उदय तै अमनोज्ञ-अप्रशस्त-बुरे-मस्तकादि अवयव निपजै, सो अशुभ नाम है। बहुरि जाके उदय तैं रूपादिक गुण संयुक्त होत संतै भी अन्य जन अप्रीति करै, प्रीति न करै, सो दुर्भग नाम। बहुरि जाके उदय तै अमनोज्ञ-असुहावना स्वर शब्द निपजै, सो दुःस्वर नाम है। बहुरि जाके उदय तै प्रभा कांति करि रहित शरीर निपजै, सो अनादेय नाम है। बहुरि जाके उदय तै पुण्य गुण तै उलटा अपजस जगत विषै प्रगट होइ सो अयशस्कीर्ति नाम है।

बहुरि जाके उदय तैं लोकपूजित कुल विषै जन्म होइ, सो उच्च-गोत्र है। बहुरि जाके उदय तै लोक-निंदित कुल विषै जन्म होइ, सो नीच-गोत्र है।

बहुरि जाके उदय तैं दीया चाहै परि देवे नाहीं, सो दानांतराय है। बहुरि जाके उदय तै लाभ को चाहै परन्तु लाभ होइ नाहीं, सो लाभांतराय है। बहुरि जाके उदय तै पुष्पादिक के भोगने को चाहैं परन्तु भोगवै नाहीं, सो भोगांतराय है। बहुरि जाके उदय तै स्त्र्यादिक को वारम्वार भोगने को चाहैं परन्तु उपभोग होइ नाही, सो उपभोगांतराय है । बहुरि जाके उदय तै अपनी शक्ति प्रकट करने को चाहैं, परन्तु शक्ति प्रकट न होइ, सो वीर्यांतराय है। सो **'दानस्य अंतरायः'** इत्यादिक विषै षष्ठी-तत्पुरुष-समास जानना। जातैं दानादिक परिणमन का विघ्न कौं कारण अंतराय कर्म है, असैं उत्तर प्रकृतिनि की निरुक्ति कही ॥३३॥

आगैं नामकर्म की उत्तर-प्रकृतिनि विषैं अभेद-विवक्षा करि जे प्रकृति गर्भित हो है, तिनकौं दिखावै हैं—

देहे अविणाभावी, बंधणसंघाद इदि अबंधुदया।
वण्णचउक्केऽभिण्णे, गहिदे चत्तारि बंधुदये ॥३४॥

देहे अविनाभाविनो, बंधनसंघातौ इति अबंधोदयो ।
वर्णचतुष्केऽभिन्ने, गृहीते चतस्रः बंधोदययोः ।।३४।।

टीका – देह जो पंच प्रकार शरीर नामा नामकर्म, तिसविषै अपना-अपना बंधन अर अपना-अपना संघात अविनाभाव है । उस बिना वह न होइ, सो अविनाभावी कहिए । इस कारण तैं पंच बंधन अर पंच संघात – ए दश प्रकृति बंधरूप वा उदय-रूप नाही हैं ।

भावार्थ – बंध और उदय विषै ए दशौ जुदे न कहे शरीर प्रकृति विषै ही गर्भित कीए है । बहुरि वर्णादिक च्यारि वर्ण, गंध, रस, स्पर्श इन विषै अभेदविवक्षा करि इनके बीस भेद ग्रहण कीए, ए मूल च्यारि ही प्रकृति बंध अर उदय विषै कहिए । तिनके बीस भेद, मूल च्यारि भेद विषै गर्भित कीए; तातै सोलह प्रकृति बंध अर उदय में जुदी न कही ।।३४।।

ऐसे होते ते बंधरूप वा उदयरूप वा सत्तारूप प्रकृति केती-केती है ? सो च्यारि गाथानि करि कहै है—

पंच णव दोण्णि छव्वीसमवि य चउरो कमेण सत्तट्ठी ।
दोण्णि य पंच य भणिया, एदाओ बंधपयडीओ ।।३५।।

पंच नव द्वौ षड्विंशतिरपि, च चतस्रः क्रमेण सप्तषष्टिः ।
द्वौ च पंच च भणिता, एता बंधप्रकृतयः ।।३५।।

टीका – पांच ज्ञानावरण, नव दर्शनावरण, दोय वेदनीय, छव्वीस मोहनीय– जातै मिश्र प्रकृति अर सम्यक्त्व प्रकृति ए दोऊ बंध विषै नाही है उदय अर सत्त्व ही विषै पाइए है । च्यारि आयु, सतसठि नाम-जातै तरेणवै मेस्यो दश बंधन-सघात अर सोलह वर्णादिक ए छव्वीस गर्भित करि घटाई । दोय-गोत्र, पाच-अतराय ए सर्व एक सौ बीस प्रकृति बंध योग्य सर्वज्ञदेव कही है ।।३५।।

आगै उदय-प्रकृतिनि कौ कहै है—

पंच णव दोण्णि अट्ठा, वीसं चउरो कमेण सत्तट्ठी ।
दोण्णि य पंच य भणिया, एदाओ उदयपयडीओ ।।३६।।

पंच नव द्वौ अष्टाविंशतिः चतस्रः क्रमेण सप्तषष्टिः ।
द्वौ च पंच च भणिता, एता उदयप्रकृतयः ।।३६।।

टीका – ज्ञानावरणादिक कर्मनि की अनुक्रम तैं पांच, नव, दोय, अठाईस, च्यारि, सतसठि, दोय, पांच प्रकृति मिलि करि एकसौ वाईस उदय होने योग्य प्रकृति कही है ।।३६।।

आगे ते वंधरूप वा उदयरूप प्रकृतिनि की भेदविवक्षा करि वा अभेदविवक्षा करि संख्या कहे हैं—

भेदे छादालसयं, इदरे बंधे हवंति वीससयं ।
भेदे सव्वे उदये, बावीससयं अभेदम्हि ।।३७।।

भेदे षट्चत्वारिंशच्छतमितरे वंधे भवंति विंशशतं ।
भेदे सर्वे उदये, द्वाविंशशतमभेदे ।।३७।।

टीका – वध विषै भेदविवक्षा करि गर्भित न कीजिए तो मिश्र अर सम्यक्त्व प्रकृति विना एक सौ छियालीस प्रकृति हैं । अभेदविवक्षा करि, गर्भित कीजिए तौ एक सौ वीस प्रकृति हैं । वहुरि उदय विषै भेदविवक्षा करि सर्व एक सौ अठतालीस प्रकृति है । अभेदविवक्षा करि एक सौ वाईस प्रकृति है ।।३७।।

आगे सत्त्व प्रकृतिनि कौं कहै है—

पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चउरो कमेण तेणउदी ।
दोण्णि य पंच य भणिदा, एदाओ सत्तपयडीओ ।।३८।।

पंच नव द्वौ अष्टाविंशतिः चत्वारः क्रमेण त्रिनवतिः ।
द्वौ च पंच च भणिताः, एताः सत्त्वप्रकृतयः ।।३८।।

टीका – ज्ञानावरणादिक कर्मनि की अनुक्रम तैं पांच, नव, दोय, अठाईस, च्यारि, तरेणवै, दोय, पांच–ए सर्व प्रकृति मिलि करि एक सौ अठतालीस सत्त्वरूप प्रकृति सर्वज्ञ देवनि करि कही हैं ।।३८।।

पूर्वे जे घातिकर्म कहे थे—तिनके दोय भेद–सर्वघाति अर देशघाति तहां सर्वघाति-प्रकृतनि कौं कहैं हैं—

केवलणाणावरणं, दंसणछक्कं कसायबारसयं ।
मिच्छं च सव्वघादी, समामिच्छं अबंधह्मि ।।३९।।

केवलज्ञानावरणं, दर्शनषट्कं कषायद्वादशकं ।
मिथ्यात्वं च सर्वघातीनि, सम्यग्मिथ्यात्वमबंधे ।।३९।।

टीका – केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, स्त्यानगृद्धि कौं आदि देकरि पांच निद्रा, अनतानुबंधी-अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-क्रोध, मान, माया, लोभ (१२), मिथ्यात्व ए सर्व बीस प्रकृति सर्वघाति हैं । बहुरि सम्यग्मिथ्यात्व बध विषै नाहीं है । उदय अर सत्व विषै ही जुदी ही जाति की सर्वघाति है, तातै वध विषै वीस प्रकृति सर्वघाति है । उदय सत्व विषै इकईस प्रकृति सर्वघाति है । जिनके उदय होतै जीव का गुण सर्वथा प्रगट न होइ । जैसै केवलज्ञानावरण का उदय होतै केवलज्ञान प्रगट न होइ, सो अैसी सर्वघाति-प्रकृति जाननी ।।३९।।

आगै देशघाति-प्रकृतिनि कौं कहै है—

णाणावरणचउक्कं, तिदंसणं सम्मगं च संजलणं ।
णव णोकसाय विग्घं छव्वीसा देसघादीओ[1] ।।४०।।

ज्ञानावरणचतुष्कं, त्रिदर्शनं सम्यक्त्वं च संज्वलन ।
नव नोकषाया विघ्नं, षड्विंशतिः देशघातीनि ।।४०।।

टीका – मति-श्रुत-अवधि-मन पर्यय ज्ञानावरण च्यारि, चक्षु-अचक्षु-अवधि-दर्शनावरण, सम्यक्त्वप्रकृति, सज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसकवेद ए नव, दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्य अंतराय पाच – ए छव्वीस देशघाति-प्रकृति है । जिनके उदय होत सतै भी जीव का गुण प्रगट होइ । जैसै बारहवा गुणस्थान पर्यत मतिज्ञानावरणादिक का उदय भी पाइए अर मतिज्ञानादिक भी पाइए सो देशघाति जाननी ।।४०।।

१–इसकी टिप्पणी ९८ पृष्ठ पर है ।

अैसै घाति-कर्मनि का देशघाति अर सर्वघाति भेद कहि करि आगै अघाति-कर्मनि के प्रशस्त-अप्रशस्त दोय भेद है, तिनिविषै प्रशस्त-प्रकृतनि कौ दोय गाथानि करि कहै है—

सादं तिण्णेवाऊ, उच्चं णरसुरदुगं च पंचिंदी ।
देहा बंधणसंघा, दंगोवंगाइं वण्णचओ ॥४१॥

समचउरवज्जरिसहं, उवघादूणगुरुछक्क सग्गमणं ।
तसबारसट्ठसट्ठी, बादालमभेददो सत्था ॥४२॥

सातं त्रीण्येवायूंषि, उच्चं नरसुरद्विकं च पंचेंद्रिय ।
देहा बंधनसंघातांगोपांगानि वर्णचतुष्कं ॥४१॥

समचतुरस्रवज्रर्षभ, मुपघातोनागुरुषट्कं सद्गमनं ।
त्रसद्वादशाष्टषष्टिः, द्वाचत्वारिंशदभेदतः शस्ताः ॥४२॥

टीका – साता वेदनीय, तिर्यंच-मनुष्य-देव-आयु, उच्चगोत्र, मनुष्यगति-मनुष्य-गत्यानुपूर्वी, देवगति-देवगत्यानुपूर्वी, पंचेद्री जाति, पंच शरीर, पंच बंधन, पंच संघात,

गाथा ३९–४० के आधार पर देशघाति एवं सर्वघाति प्रकृतियाँ

क्रम	मूल-कर्म	देशघाति प्रकृतियाँ	सर्वघाती प्रकृतियाँ
१	ज्ञानावरण	मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्यय ज्ञानावरण	केवलज्ञानावरण
२	दर्शनावरण	चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शनावरण	केवलज्ञाना, निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि
३	मोहनीय	सम्यक्त्व, ४ सज्वलन कपाय, ९ नो कपाय	अनतानुबंधी ४, अप्रत्याख्यानावरण ४, प्रत्याख्यानावरण ४ मिथ्यात्व १, सम्यग्मिथ्यात्व १
४	अंतराय	दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्यान्तराय	
योग	४	२६	२१

तीन अगोपांग, शुभवर्ण-गध रस-स्पर्श बीस, समचतुरस्र सस्थान, वज्रवृषभ नाराच सहनन, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर ए अडसठि (६८) प्रकृति भेद अपेक्षा करि प्रशस्त-पुण्यरूप है । अभेदविवक्षा करि पाच-बधन, पाच-सघात, सोला वर्णादिक घटाए बियालीस प्रकृति प्रशस्त है । सूत्र विषै भी कह्या है-'सद्वेद्य शुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यं'[1] ।।४१-४२।।

आगे अप्रशस्त-प्रकृतिनि कौ दोय गाथानि करि कहै है-

घादी णीचमसादं, णिरयाऊ णिरयतिरियदुग जादी ।
संठाणसंहदीणं, चदुपणपणगं च वण्णचओ ।।४३।।

उवघादमसग्गमणं, थावरदसयं च अप्पसत्था[2] हु ।
बंधुदयं पडि भेदे, अडणउदि सयं दुचदुरसीदिदरे[3] ।४४।।

घातीनि नीचमसातं, निरयायुः निरयतिर्यग्द्विकं जाति ।
संस्थानसंहतानां, चतुःपंचपंचक च वर्णचतुष्कं ।।४३।।

उपघातमसद्गमनं, स्थावरदशकं च अप्रशस्ता हि ।
बंधोदयं प्रति भेदे, अष्टनवतिः शतं द्विचतुरशीतिरितरे ।।४४।।

टीका – घातिकर्म सर्व अप्रशस्त ही है, सो तिनकी सैतालीस प्रकृति, अर नीच गोत्र, असातावेदनीय, नरक-आयु, नरक-गति-नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यचगति-तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, एकेद्रियादिक च्यारि जाति, न्यग्रोध परिमडलादिक पांच संस्थान, वज्रनाराचादिक पच सहनन, अशुभ वर्ण-गध-रस-स्पर्श बीस अथवा च्यारि उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दु.स्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति ए अप्रशस्त प्रकृति है । ते भेदविवक्षा करि बंधरूप अठ्याणवै (९८) प्रकृति है । उदयरूप एकशत (१००) प्रकृति है । अभेदविवक्षा करि वर्णादि विषै सोलह घटाए बधरूप बियासी (८२) प्रकृति है । उदयरूप चौरासी (८४) प्रकृति है । बहुरि सत्तारूप सौ (१००) प्रकृति है ।।४४।।

१-मोक्षशास्त्र अध्याय ८, सूत्र २५ ।
२-'अतोऽन्यत्पाप' मोक्षशास्त्र अध्याय ८, सूत्र २६ ।
३-टिप्पणी १०० पृष्ठ पर है ।

आगे कषायनि का कार्य कहै है—

पढमादिया कसाया, सम्मत्तं देससयलचारित्तं ।
जहखादं घादंति य, गुणणामा होंति सेसा वि ॥४५॥

प्रथमादिका. कषायाः, सम्यक्त्वं देशसकलचारित्रं ।
यथाख्यातं घातयति च, गुणनामानो भवंति शेषा अपि ॥४५॥

टीका – अनतानुवधी-कषाय सम्यक्त्व कौं घातै है । अप्रत्याख्यान-कषाय देशचारित्र कौ घातै है । प्रत्याख्यानकषाय सकल-चारित्र कौ घातै है । संज्वलन-कषाय यथाख्यात-चारित्र कौ घातै है । तातै ए सार्थक गुणसहित नाम के धारक है । सोई कहिए है—

अनंत संसार कौ कारण है तातै **'अनंत'** कहिए मिथ्यात्व, ताहि **'अनुबध्नंति'** कहिए संबन्धरूप करै ते अनतानुबधी है । बहुरि **'अप्रत्याख्यान'** कहिए ईषत् देश-चारित्र, ताहि **'कर्षति'** कहिए घातै, ते अप्रत्याख्यान कषाय है । बहुरि **'प्रत्याख्यान'** कहिए सकल-संयम, ताहि **'कर्षति'** कहिए घातै, ते प्रत्याख्यान कषाय हैं । **'सं'** कहिए

गाथा ४१, ४२, ४३, ४४ के आधार पर प्रशस्त तथा अप्रशस्त प्रकृतियां

प्रशस्त प्रकृतियां		अप्रशस्त प्रकृतियां	
भेद	अभेद	भेद	अभेद
सातावे०, मनुष्य-तिर्यंच-देवायु, उच्चगोत्र, मनुष्य-देवगति-गत्यानुपूर्वी, पचेन्द्रिय, ५ शरीर, ५ बंधन, ५ संघात, ३ अंगोपांग, शुभ स्पर्श रस गध वर्ण सम्बंधी २०, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभ नाराज संहनन, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्त-विहायोगति, त्रसादि १२ ।	५ शरीर, ५ बधन, ५ संघात में से ५, २० स्पर्श-रस-गंध वर्ण में से ४ । इस प्रकार १० और १६ =२६ कम करने से शेष ४२ ।	ज्ञाना० ५, दर्शना० ९, मोह २८, अतराय ५, नीचगोत्र, असातावे०, नरकायु, नरक तिर्यंच गति और गत्यानुपूर्वी, इन्द्रिय चतुष्क, शेष ५ संस्थान, शेप ५ संहनन, अशुभ वर्ण-गध-रस-स्पर्श सम्बधी २०, उपघात, अप्रशस्त विहायो०, स्थावरादि १० ।	अशुभ स्पर्शादि २० मे से ४ ग्रहण करने पर १६ कम हो जाने से शेप ८२ ।
योग– ६८	४२	९८	८२

एकीभूत होइ सयम की साथ 'ज्वलंति' कहिए प्रकाशरूप रहै, अथवा जिनकौ होतसते भी सयम 'ज्वलंति' कहिए प्रगट रहै, ते सज्वलन-कषाय है। असें ही अवशेष रही नोकषाय वा ज्ञानावरणादिक, ते भी सार्थक नाम के धारक है। सो पूर्व निरुक्ति करि कहे ही है ॥४५॥

आगै संज्वलनादिक च्यारि कषायनि का वासनाकाल कहै हैं-

अंतोमुहुत्त पक्खं, छम्मासं संखऽसंखणंतभवं।
संजलणमादियाणं, वासणकालो दु णियमेण ॥

अंतर्मुहूर्तः पक्षः, षण्मासाः संख्यासंख्यानंतभवाः।
संज्वलनाद्यानां, वासनाकालः तु नियमेन ॥४६॥

टीका – उदय का अभाव होत सतै भी जो कषायनि का सस्कार जितनै काल रहै, ताका नाम वासनाकाल है। सो सज्वलन-कषायनि का वासनाकाल अंतर्मुहूर्तमात्र है। प्रत्याख्यान कषायनि का एक पक्ष है। अप्रत्याख्यान कषायनि का छह महिना है। अनतानुबधी कषायनि का संख्यातभव, असख्यातभव, अनतभव पर्यंत वासनाकाल है। जैसें काहू पुरुष ने क्रोध कीया, पीछे क्रोध मिटि और कार्य विषै लग्या, तहां क्रोध का उदय तौ नाही, परन्तु वासनाकाल रहै। तेतें जीहस्यो क्रोध कीया था, तीहस्यों क्षमारूप भी न प्रवर्तै, सो असें वासनाकाल पूर्वोक्त प्रमाण सब कषायनि का नियमकरि जानना ॥४६॥

आगै पुद्गलविपाकी प्रकृतिनि कौ कहै है—

देहादी फासंता, पण्णासा णिमिणतावजुगलं च।
थिरसुहपत्तेयदुगं, अगुरुतियं पोग्गलविवाई ॥४७॥

देहादयः स्पर्शांताः, पंचाशत् निर्माणातापयुगलं च।
स्थिरशुभप्रत्येकद्विकं, मगुरुत्रयं पुद्गलविपाकिन्यः ॥४७॥

टीका – पाच शरीर, पाच बधन, पाच सघात, छह सस्थान, तीन अगोपाग, छह सहनन, पच वर्ण, दोय गंध, पाच रस, आठ स्पर्श-ए पचास अर निर्माण, आतप, उद्योत, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, प्रत्येक, साधारण, अगुरुलघु, उपघात, परघात, ए बारह-असें सर्व बासठि प्रकृनि पुद्गलविपाकी है। पुद्गल ही विषै इनिका उदय है। जैसै-शरीर-प्रकृति के उदय तै पुद्गल ही शरीर रूप होइ परिणवै असें सब प्रकृतिनि का स्वरूप जानना ॥४७॥

आगे भवविपाकी, क्षेत्रविपाकी, जीवविपाकी प्रकृतिनि कौं कहैं हैं—

आऊणि भवविवाई, खेत्तविवाई य आणुपुव्वीओ ।
अट्ठत्तरि अवसेसा, जीवविवाई[1] मुणेयव्वा ।।४८।।

आयूंषि भवविपाकीनि, क्षेत्रविपाकीनि च आनुपूर्व्याणि ।
अष्टसप्ततिरवशिष्टा, जीवविपाकिन्यः मंतव्याः ।।४८।।

टीका – च्यारि आयु कर्म की प्रकृति भवविपाकी हैं; जातैं मनुष्यादिक पर्याय ही विषैं इनिका उदय है । बहुरि च्यारि आनुपूर्वी क्षेत्रविपाकी है, जातैं जीव कौं परलोक कौं गमन करतैं क्षेत्र ही विषैं इनिका उदय हैं । बहुरि अवशेष रहीं अठहत्तर प्रकृति ते जीव-विपाकी हैं; जातैं नरकादिक जीव के पर्याय तिनकौं उपजावने कौं कारण हैं; तातैं जीवविपाकी कहिए ।।४८।।

ते जीव-विपाकी कौन प्रकृति है ? सो कहिए—

वेदणियगोदघादी, णेकावण्णं तु णामपयडीणं ।
सत्तावीसं चेदे, अट्ठत्तरि जीवविवाई (ओ) ।।४९।।

वेदनीयगोत्रघाति, नामेकपंचाशत्तु नामप्रकृतीनां ।
सप्तविंशतिश्चैता अष्टसप्ततिः जीवविपाकिन्यः ।।४९।।

टीका – वेदनीय दोय, गोत्र दोय, घाति कर्मनि की प्रकृति सैंतालीस (४७) – इक्यावन तौ ए भई, सत्ताईस नाम की प्रकृति ए सर्व अठहत्तर प्रकृति जीवविपाकी हैं ।।४९।।

ते सत्ताईस नामकर्म की प्रकृति कौन ? सो कहैं हैं—

तित्थयरं उस्सासं, बादरपज्जत्तसुस्सरादेज्जं ।
जसतसविहायसुभगदु, चउगइ पणजाइ सगवीसं ।।५०।।

तीर्थंकरमुच्छ्वासं, बादरपर्याप्तसुस्वरादेयं ।
यशस्त्रसविहायस्सुभगद्वयं, चतुर्गतयः पंचजातयः सप्तविंशतिः ।।५०।।

1–टिप्पणी १०५ पृष्ठ पर है ।

टीका – तीर्थकर, उच्छ्वास, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, सुस्वर, दु स्वर, आदेय, अनादेय, यशस्कीर्ति, अयशस्कीर्ति, त्रस, स्थावर, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, सुभग, दुर्भग, च्यारि गति, पच जाति ए नामकर्म की सत्ताईस प्रकृति जीवविपाकी है ॥५०॥

इनही कौ और अनुक्रम तै कहै हैं –

गदि जादी उस्सासं, विहायगदि तसतियाण जुगलं च ।
सुभगादिचउज्जुगलं, तित्थयरं चेदि सगवीसं ॥५१॥

गतिः जातिरुच्छ्वासं, विहायोगतिस्त्रसत्रयाणां युगलं च ।
सुभगादिचतुर्युगलं, तीर्थकरं चेति सप्तविंशतिः ॥५१॥

टीका – च्यारि गति, पांच जाति, उच्छ्वास, विहायोगति-त्रस-बादर-पर्याप्त इनिका युगल तिनकी आठ प्रकृति, सुभग-सुस्वर-आदेय यशस्कीर्ति इनके युगल तिनकी प्रकृति आठ, तीर्थकर असै नामकर्म की सत्ताईस प्रकृति जीवविपाकी जाननी ।

इहां सुननेवाले श्रोता तीन प्रकार है–अव्युत्पन्न, अवगताशेषविवक्षितपदार्थ, एकदेशतोऽवगतविवक्षितपदार्थ ।

तहां पहिला अव्युत्पन्न है, सो तौ मूर्खपनै तै विवक्षित-पदार्थ कौ विचारै ही नाही–'यहु असै ही है' असी यथार्थ-प्रतीति की वाकै अप्राप्ति है । जैसै गमन करता पुरुष कै तृणौ का स्पर्श भया, तहां किछू वाकै तृणो का विचार नाही, तैसै अव्युत्पन्न श्रोता सुनै है, पर वाकै विचार नाही । सो वाकै तो अनध्यवसाय पाइए है ।

बहुरि जीहि अपनी बुद्धि तै सर्व कह्या अर्थ जान्या, असा दूसरा श्रोता, सो सशय उपजावै है । जैसै काहू नै खेत विषै दूरि तै पुरुषाकार देखि सदेह कीया, जो यहु माटी का स्थाणु है, कि पुरुष है, तैसै जो यहु अर्थ सुने है, तहां याकै सामान्य भाव तौ प्रत्यक्ष है । विशेष भाव अतिशय-ज्ञान के अभाव तै प्रत्यक्ष नाही है, अर यह दोऊ का विचार करै, तहा 'असै है कि असै है' असा सशय कौ उपजावै ही उपजावै ।

अथवा कह्या अर्थ और ही, ताको और प्रकार [illegible] विपर्यय [illegible] है । जैसे 'सीप का खड विषै रूपा है' असा मानना, तैसै याकै सामान्य [illegible], विशेष प्रत्यक्ष नाही, अर याकै विपरीत विचार हो है, [illegible] निश्चय करै है । असै इस दूसरा श्रोता कै सशय अर विपर्यय [illegible]

वहुरि जीहि एकोदेशपनै कह्या अर्थ कौ जान्या अैसा तीसरा श्रोता सो भी दूसरे की ज्यौ संशय अर विपर्यय रूप प्रवर्तै है, तातै अयथार्थ निवारनै के निमित्ति, यथार्थ प्ररूपणा के निमित्ति, संशय के नाश होने निमित्त, तत्त्व के अवधारने के निमित्त, सामान्यादिक भेद वा भेदनि के भेदरूप कर्म कहे तिनिकौं नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव निक्षेपनि करि कहिए है। जो न कहिए तौ तिनिका मन सशयादिक रहित न होइ, तातै कहिए है।

सो प्रथम ही नामादि निक्षेपनि का स्वरूप कहिए है—

अतद्गुणेषु भावेषु व्यवहारप्रसिद्धये।
यत्संज्ञाकर्म तन्नाम नरेच्छावशवर्तनात् ॥१॥

साकारे वा निराकारे काष्ठादौ यन्निवेशनं।
सोऽयमित्यवधानेन स्थापना सा निगद्यते ॥२॥

आगामि गुणयोग्योऽर्थो द्रव्यं न्यासस्य गोचरः।
तत्कालपर्ययाक्रांतं वस्तुभावोऽभिधीयते ॥३॥

जामैं तद्गुण नाही अैसा जो पदार्थ, ता विषैं जो व्यवहार की सिद्धि के निमित्त मनुष्य अपनी इच्छा के वश तैं संज्ञा करै तहां नाम निक्षेप है। बहुरि तदाकार वा अतदाकार काष्ठादिक विषै सो पदार्थ यहु है, अैसा अपना परिणाम करि स्थापना करै, तहां स्थापनानिक्षेप है। बहुरि जामै आगामी काल विषै गुण प्रगट होइगा, अैसा पदार्थ द्रव्य निक्षेप के गोचर है। बहुरि जाके विषै वर्तमान काल विषै तद्गुणरूप पर्याय पाइए सो वस्तु भाव अैसा कहिए।

इहां उदाहरण कहिए है—जैसै—जहां पृथ्वी का स्वामी राजा सो विवक्षित है। तहां मनुष्यों ने अपनी इच्छा के वश तै व्यवहार की सिद्धि के निमित्त किसी पुरुष का नाम राजा धर्‍या सो तिसकौ जो राजा कहिए, सो नाम निक्षेप है।

वहुरि काष्ठ-चित्रादि का तदाकार वा अतदाकार विषै यहु राजा है—अैसा स्थापि चित्र, काष्ठादि का वन्या आकार कौ राजा कहिए, तहां स्थापना निक्षेप है। तहां तदाकार-स्थापना राजा का-सा आकार होइ तहां जाननी। अतदाकार-स्थापना जहां राजा का-सा आकार नाहीं अर राजा स्थापिए तहां जाननी।

बहुरि जो अगामी काल विषै राजा होइगा ताकौ राजा कहिए, तहा द्रव्य निक्षेप है ।

बहुरि वर्तमान में जो पृथ्वी का स्वामी है, ताकौ राजा कहिए, तहा भाव-निक्षेप है ।

असैं ही जो विवक्षित होइ ताके नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव निक्षेप जानने । सो इहां कर्म विवक्षित है, सो याके चौतीस गाथानि करि च्यारि-निक्षेप कहिए है ।

सो प्रथम ही सर्व ज्ञानावरणादिक समुदाय रूप सामान्य कर्म ताका नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव कहिए है—

णामट्ठवणा दवियं, भावो त्ति चउव्विहं हवे कम्मं ।
पयडी पावं कम्मं, मलंति सण्णा हु णाममलं ॥५२॥

नाम स्थापना द्रव्यं, भाव इति चतुर्विधं भवेत्कर्म ।
प्रकृतिः पापं कर्म मलमिति संज्ञा हि नाममल ॥५२॥

टीका – सामान्य कर्म सो नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव भेद तै च्यारि प्रकार है । तहा प्रकृति वा पाप, वा कर्म, वा मल असा जो नाम सो **'नाममलं'** कहिए नाम निक्षेप रूप कर्म जानना ।

गाथा ४७, ४८, ४९, ५०, ५१ के आधार पर विपाककृत कर्मप्रकृति भेद

पुद्गल-विपाकी	भाव-विपाकी	क्षत्र-विपाकी	जीव-विपाकी
५ शरीरों से लेकर स्पर्श नामकर्म तक ५०, निर्माण, आतप, उद्योत, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, प्रत्येक, साधारण, अगुरुलघु, उपघात, परघात	नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, देवायु	नरकगत्यानु० तिर्यंचगत्यानु० मनुष्यगत्यानु० देवगत्यानु०	वेदनीय २, गोत्र २, ज्ञाना० ५, दर्श० ९, मोहनीय २८, अतराय ५, नामकर्म की २७ (तीर्थंकर, उच्छ्वास, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशस्कीर्ति, अयशस्कीर्ति, त्रस, स्थावर, प्रशस्त, अप्रशस्त, विहायोगति, सुभग, दुर्भग, गति ४, जाति५)
कुल योग—६२	४	४	७८

सरिसासरिसे दव्वे, मदिणा जीवट्ठियं खु जं कम्मं ।
तं एदत्ति पदिट्ठा, ठवणा तं ठावणाकम्मं ॥५३॥

सदृशासदृशे द्रव्ये, मतिना जीवस्थितं खलु यत्कर्म ।
तदेतदिति प्रतिष्ठा, स्थापना तत्स्थापनाकर्म ॥५३॥

टीका – बहुरि सदृश कहिए कर्म सारीखा, असदृश कहिए कर्म सारीखा नाही असा कोई द्रव्य ताके विषै बुद्धि करि असी प्रतिष्ठा-स्थापना कीजिए, जो जीव के समस्त प्रदेशनि का समूह विषै तिष्ठै है जो सामान्यकर्म सो यहु है । तहां स्थापना-निक्षेप रूप कर्म कहिए है ॥५३॥

दव्वे कम्मं दुविहं, आगमणोआगमंति तप्पढमं ।
कम्मागमपरिजाणुगजीवो उवजोगपरिहीणो ॥५४॥

द्रव्ये कर्म द्विविध, मागमनोआगममिति तत्प्रथमं ।
कर्मागमपरिज्ञायक, जीव उपयोगपरिहीनः ॥५४॥

टीका – बहुरि द्रव्य-निक्षेप रूप कर्म दोय प्रकार है—एक आगम-द्रव्यकर्म, एक नोआगम-द्रव्यकर्म । तहां कर्म का स्वरूप जिस आगम शास्त्र विषैं प्रतिपादन किया होय ऐसे आगम का अर्थ – शब्द का संबंध करि वा ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध करि जाननहारा जो जीव होइ अर वर्तमान काल विषै तिस आगम का अर्थ का अवधारण वा चिंतवन इत्यादि परिणमन रूप उपयोग करि रहित होइ अन्यत्र उपयोग युक्त होइ तहां सो जीव आगम-द्रव्यकर्म है ॥५४॥

जाणगसरीर भवियं, तव्वदिरित्तं तु होदि जं विदियं ।
तत्थ सरीरं तिविहं, तियकालगयंति दो सुगमा ॥५५॥

ज्ञायकशरीरं भावि, तद्व्यतिरिक्तं तु भवति यद्द्वितीयं ॥
तत्र शरीरं त्रिविधं, त्रयकालागतमिति द्वे सुगमे ॥५५॥

टीका — बहुरि दूसरा नोआगम-द्रव्यकर्म है सो तीन प्रकार है — ज्ञायक शरीर भावि, तद्व्यतिरिक्त, – ए तीन भेद रूप है । तहां ज्ञायक जो कर्मस्वरूप का — जाननहारा जीव ताका जो शरीर, ताकौं ज्ञायकशरीर-नोआगम-द्रव्यकर्म कहिए । तहां ज्ञायकशरीर तीन प्रकार है — भूत, वर्तमान, भावि — असें

त्रिकालगत है। तहां जिस शरीर सहित जीव कर्म-स्वरूप का जाननहारा है, सो वर्तमान-शरीर है। याके पहिलो शरीर – छोडि आयो, सो भूत-शरीर है। आगामी जो शरीर धरेगा, सो भावि-शरीर है। तहा वर्तमान शरीर अर भावि शरीर ए दोऊ सुगम है। वर्तमान-शरीर कौ धारै हो है। भावि-शरीर आगामी-काल विषै धरैगा ही ॥५५॥

भूत-शरीर छोडकर आया सो कौन-कौन प्रकार शरीर का त्यजन हो है, सो इस अपेक्षा करि भूत-शरीर के विशेष कहै है —

भूदं तु चुदं चइदं, चंदति तेधा चुदं सपाकेण।
पडिदं कदलीघादपरिच्चागेणूणयं होदि ॥५६॥

भूतं तु च्युतं च्यावित, त्यक्तमिति त्रेधा च्युतं स्वपाकेन।
पतितं कदलीघातपरित्यागेनोनं भवति ॥ ५६ ॥

टीका — ज्ञायक का जो भूत-शरीर है सो तीन प्रकार है च्युत, च्यावित, त्यक्त। तहां अन्य कारण बिना अपने उदय ही तै जो शरीर पड़ै-विनशै सो च्युत कहिए, सो यहु शरीर कदलोघात वा सन्यास इनकरि 'ऊनः' कहिए रहित जानना ॥५६॥

तहां कदलीघात का लक्षण कहै है —

विसवेयणरत्तक्खय, भयसत्थग्गहणसंकिलेसेहिं।
उस्सासाहाराणं, णिरोहदो छिज्जदे आऊ ॥५७॥

विषवेदनारक्तक्षय, भयशस्त्रघात संक्लेशैः।
उच्छ्वासाहारयो, निरोधतः छिद्यते आयुः ॥५७॥

टीका – विष वा तीव्र-वेदना, वा लोही का क्षय, वा तीव्र भय, वा शस्त्र का घात, वा क्रोधादिक-रूप तीव्र-सक्लेश वा उस्वास का रुकना, वा आहार का रुकना इन कारणनि करि जो आयु छिदै-विनशै सो कदलीघात कहिए ॥५७॥

कदलीघादसमेदं, चागविहीणं तु चइदमिदि होदि।
घादेण अघादेण व, पडिदं चागेण चत्तमिदि ॥५८॥

कदलीघातसमेतं, त्यागविहीनं तु त्यक्तमिति भवति।
घातेन अघातेन वा, पतितं त्यागेन त्यक्तमिति ॥५८॥

टीका – बहुरि ज्ञायक का जो भूत-शरीर सो कदली-घात करि संयुक्त पड्या होइ, नष्ट भया होइ, संन्यास करि रहित होइ, तहां सो शरीर अन्य कारण तै छूटया, तातै च्यावित कहिए। वहुरि कदली-घात करि, वा कदली-घात बिना जो संन्यास करि सहित शरीर नष्ट होइ, सो त्यक्त कहिए। अपने परिणामनि तै संन्यास धारि शरीर छोडा, तातै त्यक्त कहिए ॥५८॥

सो संन्यास-मरण का तीन विधान कहै है —

भत्तपइण्णाइंगिणि, पाउग्गविधीहिं चत्तमिदि तिविहं।
भत्तपइण्णा तिविहा, जहण्णमज्झिमवरा य तहा ॥५९॥

भक्तप्रतिज्ञेंगिनी प्रायोग्यविधिभिः त्यक्तमिति त्रिविधं।
भक्तप्रतिज्ञा त्रिविधा, जघन्यमध्यमवरा च तथा ॥५९॥

टीका – सो त्यक्त शरीर तीन प्रकार है। जातै भक्तप्रतिज्ञा, इगिनी, प्रायोपगमन – ए तीन सन्यास-मरण के विधान है। तहां जैसे ज्ञायक का भूत त्यक्त शरीर तीन प्रकार कह्या, तैसे भक्तप्रतिज्ञा के तीन भेद जानने जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट ॥५९॥

तहां इनिके काल का प्रमाण कहैं है –

भत्तपइण्णाइविही, जहण्णमंतोमुहुत्तयं होदि।
बारसवरिसा जेट्ठा, तम्मज्झे होदि मज्झिमया ॥६०॥

भक्तप्रतिज्ञादिविधिः, जघन्योऽन्तर्मुहूर्तको भवति।
द्वादशवर्षा ज्येष्ठः, तन्मध्ये भवति मध्यमकः ॥६०॥

टीका – भक्त जो भोजन ताकी प्रतिज्ञा करि संन्यास-मरण होइ, सो भक्तप्रतिज्ञा कहिए। जिसके काल का प्रमाण जघन्य तौ अंतर्मुहूर्त मात्र है, उत्कृष्ट बारह वर्ष प्रमाण है। तिनके मध्यवर्ती एक-एक समय वधता सर्व मध्यकाल का प्रमाण जानना – ऐसे काल के भेद तै तीन भेद कहे हैं ॥६०॥

इंगिनी प्रायोपगमन-मरण के लक्षण कहे है —

अप्पोवयारवेक्खं, परोवयारूणमिंगिणीमरणं।
सपरोवयारहीणं, मरणं पाओवगमणमिदि ॥६१॥

आत्मोपकारापेक्षं, परोपकारोनमिंगिनीमरणं ।
स्वपरोपकारहीनं, मरणं प्रायोपगमनमिति ।।६१।।

टीका – अपने शरीर का अपने अंगनि तै उपचार करै, अन्य किसी जीव करि उपचार-वैयावृत्य न करावै, इस विधान करि संन्यास धारि मरै, सो इंगिनी-मरण है । भक्त प्रतिज्ञावाला अन्य करि भी उपचार करावै था, यहु न करावै है । बहुरि अन्य जोव करि भी उपचार न करावै अर आप भी अपने हस्तादिक अंगनितै उपचार न करै, इस विधान करि सन्यास धारि मरै, सो प्रायोपगमन मरण है । असै ज्ञायक-शरीर के तीन भेद कहे ।।६१।।

आगै नोआगम द्रव्य-कर्म का दूसरा भेद भावि ताकौं कहै है —

भवियंति भवियकाले, कम्मागमजाणगो स जो जीवो ।
जाणगसरीरभवियं, एवं होदि त्ति णिद्दिट्ठं ।।६२।।

भविष्यति भाविकाले, कर्मागमज्ञायक स यो जीवः ।
ज्ञायकशरीरभावि, एवं भवतीति निर्दिष्टं ।।६२।।

टीका – जो कर्मस्वरूप का प्रतिपादक आगम ताका जाननहारा भावि – जो अनागत काल, तीहि विषै होइगा – अनागत काल विषै कर्म स्वरूप का प्रतिपादक आगम को जानैगा, सो जोव ज्ञायकभावि-शरीर है । असै भावि असा कह्या हुवा ज्ञायक-शरीर जिनदेवनि करि कह्या है ।।६३।।

आगै नोआगम-द्रव्यकर्म का तीसरा भेद तद्व्यतिरिक्त ताकौ कहै हैं –

तव्वदिरित्तं दुविहं, कम्मं णोकम्ममिदि तहिं कम्मं ।
कम्मसरूवेणागय, कम्मं दव्वं हवे णियमा ।।६३।।

तद्व्यतिरिक्तं द्विविधं कर्म नोकर्मेति तस्मिन् कर्म ।
कर्मस्वरूपेणागतं, कर्म द्रव्यं भवेन्नियमात् ।।६३।।

टीका – तद्व्यतिरिक्त नो-आगम-द्रव्यकर्म दोय प्रकार है – एक कर्म, एक नोकर्म । तहा ज्ञानावरणादिक मूल-प्रकृति वा तिनकी उत्तर-प्रकृति रूप होइ परिणाया जो पुद्गल-द्रव्य, सो कर्मतद्व्यतिरिक्त नो-आगम-द्रव्य-कर्म जानना नियम करि ।।६३।।

कम्मद्दव्वादण्णं दव्वं, णोकम्मदव्वमिदि होदि ।
भावे कम्मं दुविहं, आगमणोआगमंति हवे ।।६४।।

कर्मद्रव्यादन्यद्द्रव्यं नोकर्मद्रव्यमिति भवति ।
भावे कर्म द्विविधमागमनोआगममिति भवेत् ।।६४।।

टीका – कर्मस्वरूप तैं अन्य जो कर्म करि कार्य होइ तिस कार्य को बाह्य कारण-भूत ऐसा जो वस्तु, सो नोकर्मरूप तद्व्यतिरिक्त नो-आगम-द्रव्यकर्म जानना । 'नो' कहिए किंचिन्मात्र कर्म का ज्यों कारण होइ, तातैं नो-कर्म कहिए । बहुरि भाव-निक्षेप रूप कर्म दोय प्रकार है– एक आगम-भावकर्म, एक नो-आगम-भावकर्म ।।६४।।

कम्मागमपरिजाणग, जीवो कम्मागमम्हि उवजुत्तो ।
भावागमकम्मोत्ति य, तस्स य सण्णा हवे णियमा ।।६५।।

कर्मागमपरिज्ञायक, जीवः कर्मागमे उपयुक्तः ।
भावागमकर्मेति च, तस्य च संज्ञा भवेन्नियमात् ।।६५।।

टीका – तहां जो कर्मस्वरूप का प्रतिपादक आगम शास्त्र, ताका जानन-हारा होइ, बहुरि वर्तमान-काल विषै तिस आगम ही का विचाररूप चिंतवनरूप उपयोग करि संयुक्त होइ, सो जीव आगम-भाव-कर्म – ऐसा संज्ञा का धारक नियम करि जानना ।।६५।।

णोआगमभावो पुण, कम्मफलं भुञ्जमाणगो जीवो ।
इदि सामण्णं कम्मं, चउव्विहं होदि णियमेण[1] ।।६६।।

नो आगमभावः पुनः कर्मफलं भुंजमानको जीवः ।
इति सामान्यं कर्म, चतुर्विधं भवति नियमेन ।।६६।।

टीका – बहुरि कर्म का जो उदय फल, ताकौं जो भोगवै है ऐसा जो जीव, सो नोआगम-भावकर्म जानना । ऐसे अभेद रूप सामान्य-कर्म, सो च्यारि प्रकार है नियम करि ।।६६।।

---

१. इनकी टिप्पणी पृष्ठ १११ पर है ।

आगै मूल-प्रकृति वा उत्तर-प्रकृति, तिनके नामादिक भेदनि कौं कहै हैं –

मूलुत्तरपयडीणं, णामादी एवमेव णवरिं तु ।
सगणामेण य णामं, ठवणा दवियं हवे भावो ॥६७॥

मूलोत्तरप्रकृतीनां, नामादय एवमेव नवरिं तु ।
स्वकनाम्ना च नाम, स्थापना द्रव्यं भवेत् भावः ॥६७॥

टीका – मूल-प्रकृति आठ, उत्तर-प्रकृति एक सौ अठतालीस । इनिका नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव, जैसे सामान्य कर्म का वर्णन कीया तैसे ही जानना ।
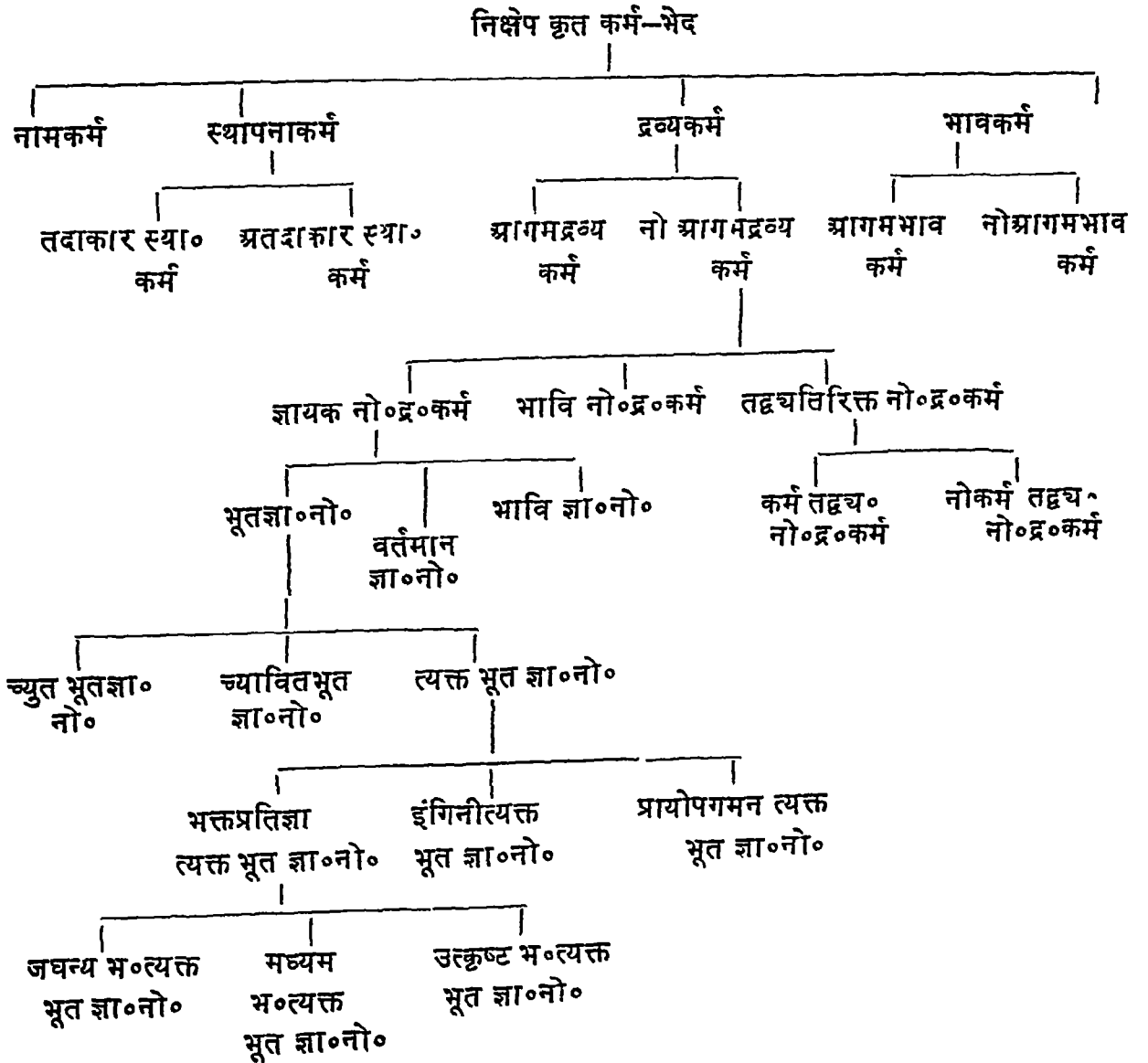
वहुरि विशेष इतना है – तहां सामान्य-कर्म की अपेक्षा कहे थे, इहां जिस-जिस प्रकृति का जो-जो नामादिक होइ तिस-तिस प्रकृति का तिस-तिस अपने नामादिक की अपेक्षा नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव जानने ।।६७।।

वहुरि और भी विशेष कहे हैं –

मूलुत्तरपयडीणं, णामादि चउव्विहं हवे सुगमं ।
वज्जित्ता णोकम्मं, णोआगमभावकम्मं च ।।६८।।

मूलोत्तरप्रकृतीनां, नामादि चतुर्विधं भवेत्सुगमं ।
वर्जयित्वा नोकर्म, नोआगमभावकर्म च ।।६८।।

टीका – मूल-प्रकृति वा उत्तर-प्रकृति, तिनके नामादिक च्यारि प्रकार निक्षेप सुगम हैं, परन्तु नोकर्म तद्व्यतिरिक्त नो आगम-द्रव्यकर्म अर नोआगम-भावकर्म इनि दोऊनि विषैं विशेष है, तातैं इनि विना और सर्व निक्षेपनि का व्याख्यान जैसा सामान्य कर्म का कीया, तैसा ही अपने नाम के अनुसारि मूलप्रकृति वा उत्तर प्रकृतिनि का जानना ।

आगै नोकर्म द्रव्यकर्म अर नोआगम भावकर्म इनि दोऊनि कौं मूल-प्रकृति वा उत्तर-प्रकृतिनि विषै जोड़ै है । तहां प्रथम ही नोकर्म द्रव्यकर्म कौं जोड़ै है । तहां इतना अर्थ जानना–पूर्वं द्रव्य निक्षेप के दोय भेद कीए – आगम, नोआगम । तहां नोआगम द्रव्य के तीन भेद कहे – ज्ञायक शरीर, भावि, तद्व्यतिरिक्त । तहां तद्व्यतिरिक्त के दोय भेद कीए कर्म, नोकर्म । सो इहां नोकर्म-तद्व्यतिरिक्त-नोआगम-द्रव्य-कर्म, तिसका वर्णन सर्व प्रकृतिनि विषै कीजिए है । सो नोकर्म-द्रव्यकर्म ऐसैं शब्द करि नोकर्म-तद्व्यतिरिक्त-नोआगम-द्रव्यकर्म जानना । वहुरि जिस-जिस प्रकृति का जो-जो उदय-फलरूप कार्य है तिस-तिस कार्य को जो-जो वाह्यवस्तु कारणभूत होइ सो-सो वस्तु तिस-तिस प्रकृति का नोकर्म-द्रव्यकर्म जानना ।।६८।।

तहां प्रथम ही मूल-प्रकृतिनि विषै कहै हैं –

पडपडिहारसिमज्जा, आहारं देह उच्चणीचंगं ।
भंडारी मूलाणं, णोकम्मं दवियकम्मं तु ।।६९।।

पटप्रतीहारासिमद्यानि, आहारं देह उच्चनीचांगं ।
भांडारी मूलानां, नोकर्म द्रव्यकर्म तु ।।६९।।

टीका – तहां ज्ञानावरण का नोकर्म-द्रव्यकर्म सपीठवस्त्र है। जातै जैसे ज्ञानावरण विशेष ग्रहण रूप ज्ञान कौ रोकै है, तैसे आडा सपीठवस्त्र वस्तु के विशेष ग्रहण को रोकै है। बहुरि दर्शनावरण का नोकर्म-द्रव्यकर्म द्वार विषै तिष्ठता द्वारपाल जानना। यहु दर्शनावरणवत् राजादिक के सामान्य अवलोकन कौ रोकै है। बहुरि वेदनीय-कर्म का नोकर्म-द्रव्यकर्म मधु करि लपेटी खड्ग की धारा जाननी, जातै वेदनीयवत् सुख-दुःख कौ कारण है। बहुरि मोहनीयकर्म का नोकर्म-द्रव्यकर्म मदिरा है, जातै मोहनीय की ज्यो सम्यग्दर्शनादिक जीव के गुणनि कौ घातै है।

बहुरि आयुकर्म का नोकर्म-द्रव्यकर्म च्यारि प्रकार आहार है, जातै आयुवत् शरीर के बल कौ कारण होने करि शरीर की स्थिति कौ कारण है। बहुरि नामकर्म का नोकर्म द्रव्यकर्म औदारिकादिक शरीर है, जातै औदारिकादिक-शरीर योगनि के उपजावनहारे है। योग नामकर्म की ज्यों औदारिक आदि शरीरनि के निपजावनहारे है। बहुरि गोत्रकर्म का नोकर्म-द्रव्यकर्म ऊचा-नीचा शरीर है, जातै गोत्र कर्म की ज्यों ऊंचा-नीचा कुल नै प्रकट करै है। बहुरि अतरायकर्म का नोकर्म-द्रव्यकर्म भंडारी है, जातै अंतरायवत् भोग-उपभोग रूप वस्तु के विघन करने कौ कारण है। इहा एक-एक वस्तु कहने तै तैसे ही अन्य वस्तु जानि लेने। उदाहरण मात्र एक-एक वस्तु का कथन कीया है ॥६९॥

आगै उत्तर-प्रकृतिनि विषै कहै है —

पडविसयपहुदि दव्वं, मदिसुदवाघादकरणसंजुत्तं ।
मतिसुदबोहाणं पुण, णोकम्मं दवियकम्मं तु ॥७०॥

पटविषयप्रभृतिद्रव्यं, मतिश्रुतव्याघातकरणसंयुक्तं ।
मतिश्रुतबोधयोः पुनः, नोकर्म द्रव्यकर्म तु ॥ ७० ॥

टीका – पट जो वस्त्र तीने आदि दैकरि मतिज्ञान के रोकने कौ कारणभूत वस्तु, सो मतिज्ञानावरण का नोकर्म-द्रव्यकर्म है। बहुरि इन्द्रिय-विषयनै आदि दैकरि श्रुतज्ञान के रोकने कौ कारणभूत वस्तु, सो श्रुतज्ञानावरण का नोकर्म-द्रव्यकर्म है ॥७०॥

ओहिमणपज्जवाणं, पडिघादणिमित्तसंकिलेसयरं ।
जं बज्झट्ठं तं खलु, णोकम्मं केवले णत्थि ॥७१॥

अवधिमनःपर्ययो, प्रतिघातिनिमित्तसंक्लेशकरः ।
यो बाह्यार्थः स खलु, नोकर्म केवले नास्ति ॥७१॥

टीका – अवधिज्ञान अर मन पर्ययज्ञान इनिके घात करनै कौं कारण संक्लेश परिणाम सो संक्लेश परिणाम जातै होइ, असा जो वाह्य पदार्थ सो अवधिज्ञानावरण वा मनःपर्ययज्ञानावरण का नोकर्म-द्रव्यकर्म जानना। बहुरि केवलज्ञानावरण का नोकर्म द्रव्यकर्म नाही है जातं केवलज्ञान क्षायिक है, तातै बाके घात करने कौ कारण संक्लेश-परिणामनि कौ उपजावनहारी वस्तु कोऊ नाही। अवधिज्ञान, मन.पर्ययज्ञान क्षायोपशमिक है। तातै तहां संभवै है ॥७१॥

पंचण्हं णिद्दाणं, माहिसदहिपहुदि होदि णोकम्मं।
वाघादकरपडादी, चक्खुअचक्खूण णोकम्मं ॥७२॥

पंचानां निद्राणां, माहिषदधिप्रभृति भवति नोकर्म।
व्याघातकरपटादि, चक्षुरचक्षुषोर्नोकर्म ॥७२॥

टीका – पंच निद्रारूप दर्शनावरण, तिनका **'माहिषदधि'** कहिए भैंसि का दही नै आदि दे करि लशुन, खलि इत्यादि वस्तु सो नोकर्म-द्रव्यकर्म है। जातै ए वस्तु निद्रा कौं कारण हैं। बहुरि चक्षु-अचक्षु दर्शन कै रोकनेवाले वस्त्रादिक वस्तु सो चक्षु-अचक्षु दर्शननावरण का नोकर्म-द्रव्यकर्म है ॥७२॥

ओहीकेवलदंसण, णोकम्मं ताण णाणभंगो व।
सादेदरणोकम्मं, इट्ठाणिट्ठण्णपाणादी ॥७३॥

अवधिकेवलदर्शन, नोकर्म तयोर्ज्ञानभंगो वा।
सातेतरनोकर्म, इष्टानिष्टान्नपानादि ॥७३॥

टीका – अवधिदर्शनावरण अर केवलदर्शनावरण का नोकर्म-द्रव्यकर्म अवधिज्ञान वा केवलज्ञानवत् जानना। बहुरि सातावेदनीय का इष्ट– सुहावते अन्न-पानादिक वस्तु अर असाता-वेदनीय का अनिष्ट– न सुहावते अन्न-पानादिक वस्तु नोकर्म-द्रव्यकर्म जानने ॥७३॥

आयदणाणायदणं, सम्मे मिच्छे य होदि णोकम्मं।
उभयं सम्मामिच्छे, णोकम्मं होदि णियमेण ॥७४॥

आयतनानायतनं, सम्यक्त्वे मिथ्यात्वे च भवति नोकर्म।
उभयं सम्यग्मिथ्यात्वे, नोकर्म भवति नियमेन ॥७४॥

टीका – आयतन कहिए जिन, जिनमंदिर, जिनागम, जिनागम के धारक, तप, तप के धारक ए सम्यक्त्व-प्रकृति के नोकर्म-द्रव्यकर्म है। जाते ए सम्यक्त्व के चल, मलिन, अगाढपने कौं कारण है। इनही विषै अनेक विकल्प करि वेदक-सम्यक्त्वी, चल, मलिन, अगाढ हो है। बहुरि अनायतन कुदेव, कुदेव का मंदिर, कुशास्त्र, कुशास्त्र के धारक, कुतप, कुतप के धारक ए मिथ्यात्व प्रकृति के नोकर्म-द्रव्यकर्म है, जाते ए सम्यक्त्व के घातक है। बहुरि आयतन अर अनायतन दोऊनि का मिश्रपनां सो सम्यग्मिथ्यात्व-प्रकृति के नोकर्म-द्रव्यकर्म है, असा नियम करि अवधारन करना ॥७४॥

अणणोकम्मं मिच्छत्तायदणादी हु होदि सेसाणं।
सगसगजोग्गं सत्थं, सहायपहुदी हवे णियमा ॥७५॥

अननोकर्म मिथ्यात्वायतनादि हि भवति शेषाणां।
स्वकस्वकयोग्यं शास्त्रं, सहायप्रभृति भवेन्नियमात् ॥७५॥

टीका – अनंतानुबंधी-कषायनि का मिथ्यात्व-आयतन जे कुदेवादिक ते नोकर्म-द्रव्यकर्म है। बहुरि अवशेष बारह-कषायनि का नोकर्म-द्रव्यकर्म अनुक्रम ते देश-चारित्र, सकल-चारित्र, यथाख्यात-चारित्र के घातक काव्य-ग्रन्थ, नाटक-ग्रन्थ, कोकादि-ग्रंथ वा पापी पुरुषनि का सहाय इत्यादिक नोकर्म-द्रव्यकर्म नियम करि जानना ॥७५॥

थीपुंसंढसरीरं, ताणं णोकम्म दव्वकम्मं तु।
वेलंबको सुपुत्तो, हस्सरदीणं च णोकम्मं ॥७६॥

स्त्रीपुंषंढशरीरं, तेषां नोकर्मद्रव्यकर्म तु।
विडंबकः सुपुत्रः, हास्यरत्योश्च नोकर्म ॥७६॥

टीका – स्त्रीवेद वा पुरुषवेद का नोकर्म द्रव्यकर्म स्त्री वा पुरुष का शरीर है। बहुरि नपुंसक वेद का नोकर्म द्रव्यकर्म स्त्री-पुरुष का शरीर वा नपुंसक शरीर है। बहुरि हास्य का नोकर्म-द्रव्यकर्म विटबरूप भूत वा बहुरूपिया वा हसने के पात्र इत्यादिक हैं। बहुरि रति का भले पुत्रादिक नोकर्म-द्रव्यकर्म जानना ॥७६॥

इट्ठाणिट्ठविजोगं, जोगं अरदिस्स मुदसुपुत्तादी।
सोगस्स य सिंहादी, णिंदिददव्वं च भयजुगले ॥७७॥

इष्टानिष्टवियोगोयोग: अरतेर्मृतसुपुत्रादय: ।
शोकस्य च सिंहादय:, निंदितद्रव्यं च भययुगले ।।७७।।

टीका – वहुरि इष्टवियोग-अनिष्ट संयोग अरति का नोकर्म-द्रव्यकर्म है। बहुरि सुपुत्रादिक का मरना इत्यदिक शोककर्म का नोकर्म-द्रव्यकर्म है। वहुरि सिंहादिक भयकारी वस्तु भय का नोकर्म-द्रव्यकर्म है। बहुरि निंदित वस्तु इत्यादिक जगुप्सा का नोकर्म-द्रव्यकर्म है ।।७७।।

णिरयायुस्स अणिट्ठाहारो सेसाणमिट्ठमण्णादी ।
गदिणोकम्मं दव्वं, चउग्गदीणं हवे खेत्तं ।।७८।।

नरकायुषोऽनिष्टाहार: शेषाणामिष्टमन्नादय: ।
गतिनोकर्म द्रव्यं, चतुर्गतीनां भवेत् क्षेत्रं ।।७८।।

टीका – नरकायु का अनिष्ट-आहार नरक की विषरूप माटी, सोई द्रव्यकर्म-नोकर्म है। अवशेष तीन आयु का इष्ट अन्नादिक वस्तु, सोई द्रव्यकर्म-नोकर्म है। आहार शरीर की स्थिति कौ कारण है, तातैं आयु का नोकर्म-द्रव्य कर्म आहार कह्या। बहुरि सामान्यपनैं गति नामकर्म का नोकर्म-द्रव्यकर्म चतुर्गति का क्षेत्र जानना ।।७८।।

णिरयादीण गदीणं, णिरयादी खेतयं हवे णियमा ।
जाईए णोकम्मं, दव्विंदियपोग्गलं होदि ।।७९।।

निरयादीनां गतीनां, निरयादिक्षेत्रकं भवेन्नियमात् ।
जातेर्नोकर्म द्रव्येंद्रियपुद्‌गलो भवति ।।७९।।

टीका – नरकादि गतिनि का नोकर्म-द्रव्यकर्म नियम करि अपनी-अपनी गति का क्षेत्र जानना। गति के उदय तैं भए नारकादिक पर्याय, तिनिका तिस क्षेत्र विना अन्यत्र अभाव है, तातैं क्षेत्र को नोकर्म-द्रव्यकर्म कह्या। वहुरि जाति नाम कर्म का नोकर्म द्रव्यकर्म द्रव्येंद्रियरूप पद्‌गल है ।।७९।।

एइंदियमादीणं, सगसगदव्विंदियाणि णोकम्मं ।
देहस्स य णोकम्मं, देहुदयजदेहखंधाणि ।।८०।।

एकेंद्रियादीनां, स्वकस्वकद्रव्येंद्रियाणि नोकर्म ।
देहस्य च नोकर्म, देहोदयजदेहस्कंधा: ।।८०।।

टीका – एकेंद्रियादिक जाति तिनिका नोकर्म-द्रव्यकर्म अपना-अपना द्रव्येंद्रिय जानने। बहुरि शरीर नाम-कर्म का नोकर्म-द्रव्यकर्म अपना-अपना उदय तै भया शरीर-स्कंधरूप पुद्गल, सो जानना ।।८०।।

ओरालियवेगुव्विय, आहारयतेजकम्मणोकम्मं ।
ताणुदयजचउदेहा, कम्मे विस्संचयं णियमा ।।८१।।

औदारिकवैगुर्विका, ऽऽहारकतेजःकर्मनोकर्म ।
तेषामुदयजचतुर्देहाः, कर्मणि विस्रसोपचयो नियमात् ।।८१।।

टीका – औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस शरीर नामकर्म इनिका अपने-अपने उदय तै प्राप्त भई शरीर-वर्गणा सोई नोकर्म-द्रव्यकर्म है, जातै वर्गणा शरीर कौ कारण है। बहुरि कार्माण का नोकर्म-द्रव्यकर्म विस्रसोपचय है, जातै विस्रसोपचयरूप परमाणु कर्म कौ कारण है ।।८१।।

बंधणपहुदिसमण्णिय, सेसाणं देहमेव णोकम्मं ।
णवरि विसेसं जाणे, सगखेत्तं आणुपुव्वीणं ।।८२।।

बंधनप्रभृतिसमन्वित, शेषाणां देहमेव नोकर्म ।
नवरि विशेषं जानीहि, स्वकक्षेत्रमानुपूर्वीणां ।।८२।।

टीका – बंधन ने आदि देकरि पुद्गलविपाकी तिनिकरि संयुक्त पूर्वोक्त तै अवशेष रही जे जीव-विपाकी नाम-कर्म की प्रकृति, तिनिका नोकर्म-द्रव्यकर्म शरीर है, जातै तिनि प्रकृतिनि करि कीया जीव का वा पुद्गल का भाव सुखादिरूप कार्य, तिनिकौ उपादान कारण शरीर संबधी वर्गणा ही है। बहुरि क्षेत्र-विपाकी आनुपूर्वी प्रकृति, तिनिका नोकर्म-द्रव्यकर्म अपना-अपना क्षेत्र ही है। इतना नवीन विशेष जानि ।।८२।।

थिरजुम्मस्स थिराथिर, रसरुहिरादीणि सुहजुगस्स सुहं ।
असुहं देहावयवं, सरपरिणदपोग्गलाणि सरे ।।८३।।

स्थिरयुग्मस्य स्थिरास्थिर, रसरुधिरादयः शुभयुगस्य शुभः ।
अशुभो देहावयवः, स्वरपरिणतपुद्गलाः स्वरे ।।८३।।

टीका – बहुरि स्थिर का स्थिर-रस-रुधिरादिक, बहुरि अस्थिर का अस्थिर-रस-रुधिरादिक, शुभ प्रकृति का शुभ शरीर का अवयव, अशुभ का अशुभ शरीर का अवयव, स्वर प्रकृति का सुस्वर दुःस्वर रूप परिणए पुद्गल-स्कंध द्रव्यकर्म-नोकर्म जानने ।।८३।।

उच्चस्सुच्चं देहं, णीचं णीचस्स होदि णोकम्मं ।
दाणादिचउक्काणं, विग्घगणगपुरिसपहुदी हु ।।८४।।

उच्चस्योच्चं देहं, नीचं नीचस्य भवति नोकर्म ।
दानादिचतुर्णां, विघ्नकनगपुरुषप्रभृतयो हि ।।८४।।

टीका – उच्चगोत्र का नोकर्म-द्रव्यकर्म ऊँचो लोकपूजित कुलविषैं उपज्या शरीर सो जानना । नीचगोत्र का नीचकुल विषैं उपज्या शरीर नोकर्म-द्रव्यकर्म है । बहुरि दानादिक च्यारि अंतराय तिनके नोकर्म-द्रव्यकर्म दानादिक के विघन करने वाले पर्वत, नदी, पुरुष, स्त्री इत्यादिक जानने ।।८४।।

विरियस्स य णोकम्मं, रुक्खाहारादि बलहरं दव्वं ।
इदि उत्तरपयडीणं, णोकम्मं दव्वकम्मं तु ।।८५।।

वीर्यस्य च नोकर्म, रूक्षाहारादिबलहरं द्रव्यं ।
इत्युत्तरप्रकृतीनां, नोकर्म द्रव्यकर्म तु ।।८५।।

टीका – बहुरि वीर्यांतराय का नोकर्म-द्रव्यकर्म रूखा-आहार नें आदि दे करि बल का नाश करनेवाली वस्तु सो जाननी । असैं उत्तर-प्रकृतिनि का नोकर्म-तद्व्यतिरिक्त-नोआगम-द्रव्यकर्म कह्या है ।।८५।।

आगें नो आगम-भावकर्म कहैं हैं—

णोआगमभावो पुण, सगसगकम्मफलसंजुदो जीवो ।
पोग्गलविवाइयाणं, णत्थि खु णोआगमो भावो ।।८६।।

नोआगमभावः पुनः, स्वकस्वककर्मफलसंयुतो जीवः ।
पुद्गलविपाकिनां, नास्ति खलु नोआगमो भावः ।।८६।।

टीका – बहुरि जिस-जिस प्रकृति का जो-जो फल है, तिस-तिस अपने-अपने फल कौं भोगवता जीव, सो तिस-तिस प्रकृति का नोआगम-भावकर्म जानना। बहुरि जे पुद्गलविपाकी प्रकृति है, तिनिका नो आगम भाव-कर्म नाही है जातै तिनिके उदय होत सतै जीवविपाकी प्रकृतिनि का सहाय बिना साक्षात् सुखादिक की उत्पत्ति न हो है।

ऐसै सामान्य-कर्म, मूल-प्रकृति उत्तर-प्रकृति तिनिविषै नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव, च्यारि निक्षेप कहि यथार्थ स्वरूप दिखाया है ।।८६।।

इति आचार्य श्रीनेमिचन्द्र सिद्धात चक्रवर्ति विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पचसग्रह ग्रन्थ की जीवतत्त्व प्रदीपिका नामा संस्कृत टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञान-चन्द्रिका नामा भाषा टीका विषै कर्मकाण्ड विषै प्रकृति-समुत्कीर्तन नामा पहिला अधिकार संपूर्ण भया।

करणानुयोग का प्रयोजन

करणानुयोग मे जीवो के व कर्मों के विशेष तथा त्रिलोकादिक की रचना निरूपित करके जीवो को धर्म में लगाया है। जो जीव धर्म मे उपयोग लगाना चाहते है, वे जीवो के गुणस्थान-मार्गणा आदि विशेष तथा कर्मो के कारण-अवस्था-फल किस-किस के कैसे-कैसे पाये जाते हैं—इत्यादि विशेष तथा त्रिलोक मे नरक-स्वर्गादि के ठिकाने पहचान कर पाप से विमुख होकर धर्म मे लगते है। तथा ऐसे विचार मे उपयोग रम जाये तब पाप-प्रवृत्ति छूटकर स्वयमेव तत्काल धर्म उत्पन्न होता है।

– प० टोडरमलजी, मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृष्ठ २६९

अथ बंधोदयसत्त्वाधिकारः ।

॥ दोहा ॥

बंध उदय सत्ता सहित, अहित-कर्म करि नाश ।
भए ज्ञान परकाशमय, नमौं तासु हुइ दास ॥

णमिऊण णेमिचंदं, असहायपरक्कमं महावीरं ।
बंधुदयसत्तजुत्तं, ओघादेसे थवं वोच्छं ॥८७॥

नत्वा नेमिचंद्रमसहायपराक्रमं महावीरं ।
वंधोदयसत्त्वयुक्तमोघादेशे स्तवं वक्ष्यामि ॥८७॥

टीका – 'अहं' कहिए मैं ग्रंथकर्ता सो नेमिचन्द्र कहिए नेमिनाथ नामा तीर्थंकर परम देव सोई भया चंद्रमा, ताहि 'नत्वा' कहिए नमस्कार करि, 'ओघादेशेषु' कहिए गुणस्थान वा मार्गणा-स्थाननि विषैं, 'वंधोदयसत्त्वयुक्तं' कहिए कर्मनि का वंध, उदय, सत्त्व का प्रतिपादक जो 'स्तवं' कहिए सकल-अंग संवंधी अर्थ जामैं पाइए ऐसा स्तव रूप ग्रंथ ताहि 'वदिष्ये' कहिए कहोंगा वा करौंगा । कैसा है नेमिचंद्र ? 'महावीरं' कहिए वंदनेवालों का जो समूह ताकौं मनवांछित अर्थ का दाता है । वहुरि कैसा है ? 'असहायपराक्रमं' कहिए नाही है कर्मवैरी के जीतने विषैं अन्य कोऊ सहाय जाकै ऐसा जो अभेद रत्नत्रय स्वरूप निजभावना की सामर्थ्यरूप पराक्रम सो ऐसा असहाय पराक्रम जाकैं पाइए है ऐसा नेमिनाथ तीर्थंकर परमदेव, ताकौं नमस्कार करि वंध, उदय, सत्ता का प्रतिपादक स्तव ताहि मैं कहोंगा, ऐसी आचार्य प्रतिज्ञा करी है ॥८७॥

स्तव कहा ? सो कहैं हैं –

सयलंगेक्कंगेक्कंगहियार सवित्थरं ससंखेवं ।
वण्णणसत्थं थयथुइ, धम्मकहा होइ णियमेण ॥८८॥

सकलांगैकांगैकांगमधिकारं सविस्तरं ससंक्षेपं ।
वर्णनशास्त्रं स्तवस्तुति, धर्मकथा भवति नियमेन ॥८८॥

टीका – सकल अंग संबन्धी अर्थ विस्तार लीए वा संक्षेपता लीए जामै पाइए असा जु शास्त्र, सो स्तव कहिए। बहुरि एक-अग संबंधी अर्थ विस्तार लीए वा संक्षेपता लीए जामै पाइए असा जु शास्त्र, सो स्तुति कहिए। बहुरि एक अंग का अधिकार सबंधी अर्थ विस्तार लीए वा संक्षेपता लीए जामै पाइए असा जु शास्त्र, सो वस्तु कहिए। बहुरि प्रथमानुयोगादिक रूप शास्त्र, सो धर्मकथा कहिए है नियम करि। सो इहां बंध, उदय, सत्तारूप कर्म का कथन विषै सकल अगसंबंधी अर्थ विस्तार लीए वा सक्षेपता लीए कहिएगा, तातै स्तव कहिए है ॥८८॥

तहा प्रथम ही बध का कथन करै है। तहा बंध के भेदनि कौ कहै है—

पयडिट्ठिदिअणुभाग, प्पदेसबंधोत्ति चदुविहो बंधो[1]।
उक्कस्समणुक्कस्सं, जहण्णमजहण्णगंत्ति पुधं ॥८९॥

प्रकृतिस्थित्यनुभाग, प्रदेशबंध इति चतुर्विधो बंधः।
उत्कृष्टोऽनुत्कृष्टः, जघन्योऽजघन्यक इति पृथक् ॥८९॥

टीका – बंध च्यारि प्रकार है प्रकृतिबध, स्थितिबध, अनुभागबध, प्रदेशबंध। तहा मूल-प्रकृति वा उत्तर-प्रकृतिनि का यथायोग्य जीव सहित संबंध होना, सो प्रकृतिबध है। तिन प्रकृतिनि का जीवसहित सबध रूप रहने का काल प्रमाण, सो स्थिति-बंध है। तिन प्रकृतिनि विषै फल देने की शक्ति, सो अनुभाग-बध है। तिन प्रकृतिनिरूप परिणए पद्गल तिनका प्रमाण, सो प्रदेश-बध है[2]। बहुरि पृथक् कहिए एक-एक बध च्यारि प्रकार है – उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य, जघन्य। तहां सर्व तै बहुत होई सो उत्कृष्ट कहिए। बहुरि तिस उत्कृष्ट तै हीन होइ सो अनुत्कृष्ट कहिए। बहुरि जघन्य तै अधिक होइ सो अजघन्य कहिए। बहुरि सर्व तै थोरा होइ सो जघन्य कहिए ॥८९॥

१–प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधय। मोक्षशास्त्र ८–३।

२ प्रकृति. स्वभावः। तदेव (स्व स्व) लक्षण कार्यं प्रक्रियते प्रभवत्यस्या इति प्रकृति। तत्स्वभावादप्रच्युति स्थिति। ज्ञानावरणादीनामर्थावगमादि स्वभावादप्रच्यति स्थितिः। तद्रसविशेषोऽनुभव.। कर्मपुद्गलाना स्वगतसामर्थ्यविशेषोऽनुभव। इयत्तावधारण प्रदेश। कर्मभावपरिणत पुद्गलस्कन्धाना परमाणु परिच्छेदेनावधारण प्रदेश। सर्वार्थसिद्धि ८-३ वृत्ति।

जघन्यमध्यमोत्कृष्ट द्रव्य कर्मस्थिति बधस्थानानि। ज्ञानावरणाद्यष्टविधकर्मणा तत्तद्योग्यपुद्गलद्रव्यस्वाकारः प्रकृतिबध.। अशुद्धान्तस्तत्त्वकर्मपुद्गलयो परस्पर प्रदेशानुप्रवेश. प्रदेशबध। शुभाशुभकर्मणा निर्जरासमये सुखदु खफलप्रदान शक्तियुक्तो ह्यनुभागबध। नियमसार गाथा ४० की टीका।

आगे उत्कृष्टादिक के भी भेद करें हैं-

सादिअणादी धुव अद् धुवो य बंधो दु जेट्ठमादीसु ।
णाणेगं जीवं पडि, ओघादेसे जहाजोग्गं ॥९०॥

साद्यनादी ध्रुवोऽध्रुवश्च बंधस्तु ज्येष्ठादिषु ।
नानैकं जीवं प्रति, ओघादेशे यथायोग्यं ॥९०॥

टीका – बहुरि तिनि उत्कृष्टादि कर्म विषै च्यारि प्रकार है-सादिबंध, अनादिबंध, ध्रुवबंध, अध्रुवबंध । तहां विवक्षित बंध का बीचि में अभाव होइ, बहुरि जो बंध होइ, सो सादिबंध है । बहुरि कदाचित् अनादि तै बध का अभाव न हुवा होइ, तहां अनादिबंध है । बहुरि निरंतर-बध हूवा करै, सो ध्रुवबंध है । बहुरि अंतर सहित बंध होइ, सो अध्रुवबंध है । सो असा बंध सर्व नाना-जीवनि की अपेक्षा वा एक जीव की अपेक्षा गुणस्थान अर मार्गणास्थाननि विषै यथायोग्य जानना ॥९०॥

ठिदिअणुभागपदेसा, गुणपडिवण्णेसु जेसिमुक्कस्सा ।
तेसिमणुक्कस्सो चउव्विहोऽजहण्णेवि एमेव ॥९१॥

स्थित्यनुभागप्रदेशा, गुणप्रतिपन्नेषु येषामुत्कृष्टाः ।
तेषामनुत्कृष्टश्चतुर्विधोऽजघन्येषु एवमेव ॥९१॥

टीका – 'गुणप्रतिपन्नेषु' कहिए मिथ्यादृष्टि सासादनादिक ऊपरि-ऊपरि के गुणस्थानवर्ती जीव तिनविषैं जिन कर्मनि का उत्कृष्ट स्थिति-अनुभाग-प्रदेश बंध पाइए है, तिनही कर्मनि का अनुत्कृष्ट स्थिति-अनुभाग-प्रदेशबंध सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव भेद तै च्यारि प्रकार हो है । बहुरि अजघन्य भी असें ही अनुत्कृष्टवत् च्यारि प्रकार हो है । जिनि कर्म-प्रकृतिनि का स्थिति-अनुभाग-प्रदेश बंध ऊपरि के गुणस्थाननि विषै जघन्य पाइए है, तिनिका ही अजघन्य-बंध च्यारि प्रकार हो है ।

सो इनिका लक्षण आगै कहैंगे, तथापि इहाँ भी उदाहरण मात्र क्रिंचित् कहिए है – उपशम श्रेणी चढनेवाला जीव सूक्ष्म-सांपराय-गुणस्थानवर्ती भया तहां उत्कृष्ट उच्च-गोत्र का अनुभाग-बंध करि पीछैं उपशांत-कषाय-गुणस्थानवर्ती भया । बहुरि तहां तै उतरि करि सूक्ष्मसांपराय-गुणस्थानवर्ती भया, तहां अनुत्कृष्ट-उच्चगोत्र का अनुभाग बंध कीया, तहां इस अनुत्कृष्ट-ऊच्चगोत्र के अनुभाग कौं सादि कहिए है, जातैं अनुत्कृष्ट उच्चगोत्र अनुभागबंध का अभाव होइ । बहुरि सद्भाव भया, तातै

सादि कहिए है । बहुरि सूक्ष्मसांपराय-गुणस्थान तै नीचे के गुणस्थानवर्ती जीव है, तिनकै सो बंध अनादि है । बहुरि अभव्य-जीव विषै सो बंध ध्रुव है । बहुरि उपशम श्रेणीवाले के जहा अनुत्कृष्ट को छोडि उत्कृष्ट-बध हो है, तहां सो बंध अध्रुव है । असै अनुत्कृष्ट-उच्चगोत्र के अनुभाग बंध विषै सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव च्यारि प्रकार कहे ।

असै ही अजघन्य भी च्यारि प्रकार है । सो कहिए है

सप्तम-नरक पृथ्वी विषै प्रथमोपशमसम्यक्त्व कौ सन्मुख भया मिथ्यादृष्टि जीव तहां मिथ्यादृष्टि गुणस्थान का अंतसमय विषै जघन्य नीचगोत्र के अनुभाग कौ बांधै है । बहुरि सो जीव सम्यग्दृष्टि होइ पीछे मिथ्यात्व के उदय करि मिथ्यादृष्टि भया तहां अजघन्य नीचगोत्र के अनुभाग कौ बांधै है, तहां इस अजघन्य नीचगोत्र के अनुभाग को सादि कहिए । बहुरि तिस मिथ्यादृष्टि कै तिस अंतसमय तै पहिले सो बंध अनादि है । अभव्य जीव कै सो बध ध्रुव है । जहा अजघन्य कौ छोडि जघन्य प्राप्त भया, तहा सो बंध अध्रुव है । असै अजघन्य नीचगोत्र के अनुभाग बंध विषै सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव च्यारि प्रकार कहे । असै ही यथासंभव और भी बध विषै सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव च्यारि प्रकार जानने । बहुरि प्रकृतिबध विषै उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य, जघन्य असै भेद नाही है । स्थिति, अनुभाग, प्रदेश बधनि विषै ते भेद यथा-योग्य जानने ॥९१॥

आगै गुणस्थाननि विषै प्रकृति-बध का नियम कहै है-

सम्मेव तित्थबंधो, आहारदुगं पमादरहिदेसु ।
मिस्सूणे आउस्स य, मिच्छादिसु सेसबंधो दु ॥९२॥

सम्यक्त्वे एव तीर्थबंध, आहारद्विकं प्रमादरहितेषु ।
मिश्रोने आयुषश्च, मिथ्यात्वादिषु शेषबंधस्तु ॥९२॥

टीका – तीर्थकर-प्रकृति का बंध असंयत तै लगाय अपूर्वकरण का छठा भाग पर्यन्त सम्यग्दृष्टि विषै ही हो है । बहुरि आहारक, आहारक-अगोपांग का बंध अप्रमत्त तै लगाय अपूर्वकरण का छठा भाग पर्यत प्रमाद रहित गुणस्थाननि विषै ही हो है । बहुरि आयुकर्म का बंध मिश्र गुणस्थान अर निवृत्ति-अपर्याप्त अवस्था कौं प्राप्त मिश्रकाययोग इनकरि रहित अवशेष मिथ्यादृष्टि तै लगाय अप्रमत्त पर्यंत गुणस्थाननि विषै हो है, अपूर्वकरणादिक विषै आयु का बंध नाही है । बहुरि इनि विना अवशेष

प्रकृतिनि का वंध मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थाननि विषै अपनी-अपनी बंध की व्युच्छित्ति पर्यंत जानना ।।९२।।

तहां तीर्थंकर-प्रकृति के वंध का विशेष नियम कहै हैं—

पढमुवसमिये सम्मे, सेसतिये अविरदादिचत्तारि ।
तित्थयरबंधपारंभया णरा केवलिदुगंते ।।९३।।

प्रथमोपशमे सम्यक्त्वे, शेषत्रये अविरतादिचत्वारः ।
तीर्थंकरबंधप्रारंभका नराः केवलिद्विकांते ।।९३।।

टीका – प्रथमोपशम-सम्यक्त्व विषै वा अवशेष-द्वितीयोपशम, क्षायोपशमिक, क्षायिक सम्यक्त्वनि विषै असंयत तै लगाई अप्रमत्त गुणस्थान पर्यंत मनुष्य ही तीर्थंकर प्रकृति के वंध कौ प्रारंभ करै हैं । ते पणि प्रत्यक्ष केवली वा श्रुतकेवली के चरणां के निकटि ही करै हैं ।

इहां प्रथमोपशम-सम्यक्त्व को जुदा कहने का अभिप्राय असा है–जो कोई आचार्यनि का असा मत है जो प्रथमोपशम-सम्यक्त्व का काल थोरा-अंतर्मुहूर्त मात्र है, तातै तहां षोडश-भावना भाई जाय नाहीं, तातै प्रथमोपशम-सम्यक्त्व विषै तीर्थंकर प्रकृति के वंध का प्रारंभ नाही है, इस अभिप्राय कौं विचारि जुदा कह्या है । बहुरि मनुष्य कहने का अभिप्राय यहु है जो और गति वाले जीव तीर्थंकर-वंध का प्रारभ करै, तातै और गतिवाले जीवनि कैं विशिष्ट-विचार क्षयोपशमादि सामग्री का अभाव है सो प्रारंभ तौ मनुष्य विषै ही है । अर तीर्थंकर का बंध तिर्यंच विना तीन गति विषैं पाइए है, जातैं पहिले तीर्थंकर-प्रकृति का वंध होइ ताकौ **'प्रारंभ'** कहिए तिस समय तै लगाइ समय-समय विषै समय-प्रबद्धरूप वंध विषै तीर्थंकर-प्रकृति का भी वंध हूवा करै सो उत्कृष्टपनैं अंतर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष घाटि दोय कोडि पूर्व अधिक तेतीस सागर प्रमाण काल पर्यंत वध हो है, तातैं तिर्यंचगति विना तीनों गति विषै तीर्थंकर का वंध है । बहुरि केवली का निकट कहने का अभिप्राय यह है, जो और ठिकाने असी विशुद्धता होइ नाहीं, जिसतै तीर्थंकर-वंध का प्रारंभ होइ ।

आगै गुणस्थानादिकनि विषै वंध की व्युच्छित्ति वा वंध वा अवंध कहै हैं ।

तहां जिस गुणस्थान विषै जेती प्रकृतिनि की व्युच्छित्ति कही होइ तिनि प्रकृतिनि का तिस गुणस्थान का अंत समय पर्यन्त वंध जानना । वहुरि ताके ऊपरिवर्ती

जे गुणस्थान है तिनविषै तिन प्रकृतिनि का बंध न जानना । बहुरि जिस गुणस्थान विषै जेती प्रकृतिनि का बंध कह्या होइ, तेती प्रकृतिनि का तहां बंध जानना । सो पहिले-पहिले गुणस्थान विषै जेता बध कह्या होइ तिनमें स्यों तहा ही जितनी व्युच्छित्ति कही होइ सो घटाइए, तब अगले-अगले गुणस्थाननि विषै बध का प्रमाण होइ ।

तहां विशेष जो कोइ प्रकृति अगले गुणस्थाननि विषै बंधयोग्य होइगी तिनि प्रकृतिनि कौ पहिले गुणस्थाननि का बंध विषै घटाइ दीजिए । अर पीछै जहां आनि मिलैं तहां बंध विषै बधाइ दीजिए । बहुरि जेती प्रकृति बंध होनेयोग्य होंइ, तितनी प्रकृतिनि में जेती प्रकृतिनि का बध कह्या होइ, तितनी प्रकृति घटाएं अवशेष जितनी प्रकृति रहै, तितनी प्रकृति अबंधरूप जाननी ।।९३।।

सो इहां प्रथम ही गुणस्थाननि विषै व्युच्छित्ति कहिए है—

सोलस पणवीस णभं, दस चउ छक्केक्क बंधवोछिण्णा ।
दुग तीस चदुरपुव्वे, पण सोलस जोगिणो एक्को ।।९४।।

षोडश पंचविंशतिः नभः, दश चतस्रः षडेकैकं बंधव्युच्छिन्नाः ।
द्विके त्रिंशत् चतस्रः अपूर्वे, पंच षोडश योगिन एका ।।९४।।

टीका – मिथ्यादृष्टि गुणस्थान विषै सोलह प्रकृति बध तैं व्युच्छित्ति रूप भई । मिथ्यादृष्टि विषै तो इनिका बध है, सासादनादिक ऊपरि के गुणस्थान तिनि विषै इनिका बध नाही, असै ही व्युच्छित्ति का स्वरूप सर्वत्र जानना । सासादन विषै पचीस प्रकृति व्युच्छित्ति रूप भई, मिश्र विषै 'शून्य' कहिए व्युच्छित्ति का अभाव है । असंयत विषै दश, देशसयत विषै च्यारि, प्रमत्त विषै छह, अप्रमत्त विषै एक, अपूर्वकरण के सात भाग, तिनविषै पहिले भाग में दोय, द्वितीयादि पचम भाग पर्यंत विषै शून्य, छठा भाग विषै तीस, सातवां भाग विषै च्यारि, बहुरि अनिवृत्तिकरण विषै पंच, सूक्ष्मसापराय विषै सोलह, उपशातकषाय-क्षीणकषाय विषै शून्य-नास्ति, सयोगकेवली विषै एक, अयोगकेवली विषै बंध भी नाही अर व्युच्छित्ति भी नाही ।

तहां व्युच्छित्ति के कथन विषै दोय नय हैं – एक उत्पादानुच्छेद, एक अनुत्पादानुच्छेद ।

तहा उत्पादानुच्छेद नाम द्रव्यार्थिकनय का है, सो इस नय का अभिप्राय करि तौ जहा अस्तित्व पाइए तहा ही विनाश कहिए, जातैं जहा अस्तित्व ही नाही,

तहां बुद्धि विषैं कैसै आवै ? जब बुद्धि विषैं न आवै तब वचनस्यों अगोचर भए अभाव है, असा व्यवहार कैसे कीया जाइ ? अभाव कोई पदार्थ नाही, जातै अभाव का जाननहारा सम्यग्ज्ञान-प्रमाण नाहीं है । प्रमाण हैं ते अस्तित्व रूप वस्तु ही कौं जानै तिनकैं नास्तित्वरूप वस्तु विषैं कैसें प्रवृत्ति होइ ? अर जो नास्तित्व रूप वस्तु विषै भी प्रवृत्ति होइ तौ गर्दभ का सींग नास्तित्व रूप है, तिस विषैं भी सम्यग्ज्ञान की प्रवृत्ति होइ, सो बनै नाही, तातैं जहां अस्तित्व पाइए, तहां ही नास्तित्व कहना योग्य है ।

बहुरि 'अनुत्पादानुच्छेद' नाम पर्यायार्थिकनय का है । सो इस नय के अभिप्राय करि जहां सत्त्व न होइ तहां ही अभाव कहिए, जातैं सद्भाव कौं होत संतैं अभाव का विरोध है । बहुरि सद्भाव का निषेध विना अभाव होइ नाही । बहुरि ऐसा भी नाही जो कर्मनि का नाश नाही है, जातैं घातिया-अघातिया कर्म सर्वत्र न पाइए हैं । बहुरि सद्भाव है सो अभाव रूप नाहीं है, जातैं सद्भाव कैं अर अभाव कैं परस्पर विरोध है, तातैं जहां नास्तित्व पाइए तहां ही नास्तित्व कहना योग्य है । स्याद्वादमत विषै दोऊ नय अविरोधी हैं, सो इहां व्युच्छित्ति कथन विषैं द्रव्यार्थिक-नय रूप उत्पादानुच्छेद की अपेक्षा कथन है । 'उत्पाद' कहिए विद्यमान अस्तित्व ताका 'अनुच्छेद' कहिए दूरि होना सो जाके विषैं नाहीं असा द्रव्यार्थिक नय है, सो इस नय की अपेक्षा अपने-अपने गुणस्थान के अंत के समय व्युच्छित्ति कही । बहुरि जो पर्या-यार्थिकनय करि कहिए तो उस अंत के समय पीछे जो अनंतर समय होइ तहां तिन प्रकृतिनि का नाश कहिए ।

जैसे लोक विषैं भी कोऊ दोय पुरुष एक नगरि विषैं थे । तिनमें स्यो एक पुरुष और नगरि गया, तहां ताकौं बूझा (पूछा) जो तुम कहां बिछुरे थे, तब वाने कह्या मैं अमुक नगरि विषैं बिछुर्या था, सो जहां उनका संयोग था तहां ही बिछुरना कह्या, तैसे इहां भी व्युच्छित्ति का स्वरूप जानना । सो यहु तौ द्रव्यार्थिकनय का अभिप्राय है बहुरि तिसही पुरुष ने बूझा (पूछा) थका असा कह्या कि हम अमुके नगरि कौं छोडि अमुके नगरि ठिकाने आए तब वासौं बिछुरे, सो इहां जहां उसके संयोग का अभाव भया तहां ही बिछुरना कह्या तैसे अबंध विषै बंध का अभाव जानना, इहां पर्याया-र्थिकनय का अभिप्राय है ॥६४॥

आगें तिनि व्युच्छित्ति रूप प्रकृतिनि के नाम आठ गाथानि करि कहैं हैं—

मिच्छत्तहुंडसंढा, ऽसंपत्तेयक्खथावरादावं ।
सुहुमतियं वियलिंदी, णिरयदुणिरयाउगं मिच्छे ॥६५॥

मिथ्यात्वहुंडषंढा, संप्राप्तैकाक्षस्थावरातपः ।
सूक्ष्मत्रयं विकलेंद्रियं, निरयद्विनिरयायुष्कं मिथ्यात्वे ।।९५।।

टीका – मिथ्यात्व, हुंडक संस्थान, नपुसकवेद, असप्राप्तासृपाटिका संहनन, (क्रोधादि चार) एकेंद्रिय, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्ति, साधारण, विकलत्रय तीन – बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, नरक गति, नरकगत्यानुपूर्वी ए नरक द्विक, अर नरक आयु – ए सोलह प्रकृति तिनके बंध का कारण मिथ्यात्व ही का उदय है, तातै ए प्रकृति मिथ्यात्व का अंत समय विषै व्युच्छित्ति रूप भई ।।९५।।

विदियगुणे अणथीणति, दुभगतिसंठाणसंहदिचउक्कं ।
दुग्गमणित्थीणीचं, तिरियदुगुज्जोवतिरियाऊ ।।९६।।

द्वितीयगुणे अनस्त्यानत्रयदुर्भगत्रयसंस्थानसंहतिचतुष्कं ।
दुर्गमनस्त्रीनीचं, तिर्यग्द्विकोद्योततिर्यगायु ।।९६।।

टीका – दूसरा सासादन-गुणस्थान का अत का समय विषै अनतानुबधी च्यारि, स्त्यानगृद्धि-निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचला ए तीन, दुर्भग-दु स्वर-अनादेय – ए तीन, न्यग्रोध परिमंडल-स्वाति-कुब्ज-वामन – ए च्यारि सस्थान, वज्रनाराच-नाराच-अर्धनाराच-कीलित – ए च्यारि संहनन, अप्रशस्तविहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यंचगति वा आनुपूर्वी – तिर्यंच-द्विक, उद्योत, तिर्यच-आयु – ए पचीस प्रकृति व्युच्छित्ति रूप भई सो ए अनंतानुबंधी के उदय बिना मिथ्यादृष्टि विषै केवल मिथ्यात्व तै भी वधै अर मिथ्यात्व के उदय बिना सासादन विषै केवल अनंतानुवंधी तै भी वधै, तातै इनका कारण मिथ्यात्व अर अनंतानुबधी दोऊ जानने । मिश्र-गुणस्थान विषै बध की व्युच्छित्ति शून्य है, किसी ही प्रकृति की व्युच्छित्ति नही ।।९६।।

अयदे बिदियकसाया, वज्जं ओरालमणुदुमणुवाऊ ।
देसे तदियकसाया, णियमेणिह बंधवोच्छिण्णा ।।९७।।

अयते द्वितीयकषाया, वज्रमोरालमनुष्यद्विमानवायुः ।
देशे तृतीयकषाया, नियमेनेह बंधव्युच्छिन्नाः ।।९७।।

टीका – असंयत-गुणस्थान का अंत समय विषै दूसरा अप्रत्याख्यान कषाय च्यारि, वज्रवृषभनाराच-संहनन, औदारिक-शरीर, औदारिक-अंगोपाग – ए दोय,

मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी – ए दोय, मनुष्यायु – ए दश प्रकृति बंधतैं व्युच्छित्ति रूप भईं, जातै – ए अप्रत्याख्यान-कषाय के उदय के निमित्त तैं बंधैं है। बहुरि देशव्रत गुणस्थान का चरम-समय विषै प्रत्याख्यान कषाय च्यारि, व्युच्छित्ति भई नियम करि, जातै ए अपने उदय के निमित्त तै बंधै है ॥६७॥

छट्ठे अथिरं असुहं, असादमजसं च अरदिसोगं च ।
अपमत्ते देवाऊ, णिट्ठवणं चेव अत्थित्ति ॥६८॥

षष्ठे अस्थिरमशुभमसातमयशश्च अरतिशोकं च ।
अप्रमत्ते देवायुर्निष्ठापनं चैव अस्तीति ॥६८॥

टीका – छठा-प्रमत्तगुणस्थान का अंत समय विषै अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयशस्कीर्ति, अरति, शोक – ए छह व्युच्छित्ति रूप भईं, जातैं ए प्रमाद के निमित्त तैं बंधें हैं। बहुरि श्रेणी चढने कौं अधःकरणादिकरूप न भया ऐसा स्वस्थान-अप्रमत्त का अंत समय विषै देवायु व्युच्छित्ति रूप भई, जातै अधःकरणादि रूप भया ऐसा सातिशय अप्रमत्तादिक विषै देवायु के बंध कौ कारण मध्यमविशुद्धता रूप संज्वलन के परिणाम न संभवै है ॥६८॥

आगे अपूर्वकरण के सप्त भागनि विषैं तीन भागनि का अंगीकार करि बंध की व्युच्छित्ति कहै हैं —

मरणूणम्हि णियट्टी,पढमे णिद्दा तहेव पयला य ।
छट्ठे भागे तित्थं, णिमिणं सग्गमणपंचिंदी ॥६६॥

तेजदुहारदुसमचउ, सुरवण्णागुरुचउक्कतसणवयं ।
चरमे हस्सं च रदी, भयं जुगुच्छा य बंधवोच्छिण्णा ॥१००॥

मरणोने निवृत्तिप्रथमे निद्रा तथैव प्रचला च ।
षष्ठे भागे तीर्थं, निर्माणं सद्गमनपंचेंद्रियं ॥६६॥

तेजोद्विकाहारद्विसमचतुरस्रसुरवर्णागुरुचतुष्कत्रसनवकं ।
चरमे हास्यं च रतिः भयं जुगुप्सा च बंधव्युच्छिन्ना ॥१००॥

टीका – 'निवृत्ति' कहिए अपूर्वकरण गुणस्थान ताका चढ़नें के अवसर विषैं मरण करि रहित ऐसा प्रथम भाग ताके विषै निद्रा अर प्रचला – ए दोय व्युच्छित्ति

भई । तैसै ही छठा भाग का अंत समय विषैं तीर्थंकर, निर्माण, शुभविहायोगति, पंचेंद्रिय, तैजस, कार्मण – ए दोय, आहारक, आहारक-अंगोपांग–ए दोय, समचतुरस्र (संस्थान), देवगति देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक, वैक्रियिक-अंगोपांग – ए च्यारि, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श – ए च्यारि, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास – ए च्यारि, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय – ए नव; ऐसैं तीस प्रकृति व्युच्छित्ति भई । बहुरि सातवा भाग विषैं हास्य, रति, भय, जुगुप्सा – ए च्यारि, प्रकृति बंध विषै व्युच्छित्ति रूप भई हैं ॥६६–१००॥

पुरिसं चदुसंजलणं, कमेण अणियट्टिपंचभागेसु ।
पढमं विग्घं दंसण, चउजसउच्चं च सुहुमंते ॥१०१॥

पुरुषः चतुःसंज्वलनः, क्रमेण अनिवृत्तिपंचभागेषु ।
प्रथमं विघ्नं दर्शनचतुर्यशउच्चं च सूक्ष्मांते ॥१०१॥

टीका – अनिवृत्ति करण के पंच भाग, तिनि विषै पहिले भाग में पुरुष वेद, द्वितीय भाग में संज्वलन क्रोध, तीसरा भाग मे सज्वलन मान, चौथा भाग में संज्वलन माया, पांचवां भाग विषै संज्वलन लोभ, ऐसें क्रम तें व्युच्छित्ति भई है । बहुरि सूक्ष्म सांपराय का अंत समय विषै मति आवरणादि पंच ज्ञानावरण, दानांतरायादि पंच अंतराय, चक्षुर्दर्शनावरणादिक च्यारि दर्शन, यशस्कीर्ति, उच्चगोत्र – ए सोलह प्रकृति बंध विषै व्युच्छित्ति भईं ॥१०१॥

यहां गाथा विषैं अंत ऐसा कह्या है, सो अत के विषै धरचा हूवा दीपक जैसें मांही सर्वत्र प्रकाश करैं, तैसें यहु जेती व्युच्छित्ति कही तेती अंत के समय विषै जाननी; ऐसा दिखावैं है —

उवसंतखीणमोहे, जोगिम्हि य समयियट्ठिदी सादं ।
णायव्वो पयडीणं, बंधस्संतो अणंतो य ॥१०२॥

उपशांतक्षीणमोहे, योगिनि च समयिकस्थितिः सातं ।
ज्ञातव्यः प्रकृतीनां, बंधस्यांतः अनतश्च ॥१०२॥

टीका – उपशांत मोह, क्षीणमोह, सयोगी – इनिविषै एक समय की स्थिति लीए एक सातावेदनीय ही वा बंध है, सो योगनि के निमित्त तें है, जातें कषायनि का तहां अभाव है । बहुरि अयोगी विषै योग भी नाही, बंध भी नाही, ऐसें प्रकृतिनि की 'बंधस्यांत.' कहिए बंध की व्युच्छित्ति कही है, सो जाननी ॥१०२॥

आगे 'बंधस्य अनंतः' कहिए वंध अर चकार तै अबंध दोय गाथानि करि कहिए हैं, ते जानने —

सत्तरसेक्कग्गसयं, चउसत्तत्तरि सगट्ठि तेवट्ठी ।
बंधा णवट्ठवण्णा, दुवीस सत्तारसेकोघे ।।१०३।।

सप्तदशैकाग्रशतं, चतुः सप्तसप्ततिः सप्तषष्ठिः त्रिषष्ठिः ।
बंधा नवाष्टपंचाशत्, द्वाविंशतिः सप्तदश एकोघे ।।१०३।।

टीका – अभेद विवक्षाकरि वंधरूप एकसौ बीस प्रकृति है, तहां मिथ्यादृष्टि विषै एकसौ सतरा प्रकृति का वंध है, जातै **'सम्मेव तित्थबंधो आहार दुगं पमादरहिदेसु'** असा कह्या है, तातै इहां तीर्थंकर प्रकृति, आहारक-द्विक – इन तीन का वंध नाही । इनमेंस्यों मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति भई सोलह घटाइए तब सासादन विषैं एकसौ एक का वंध है । बहुरि इनमेंस्यों इहां पचीस तौ व्युच्छित्ति भई अर देवायु, मनुष्यायु का मिश्र विषै वंध नाही, असै सत्ताईस घटाएं मिश्र विषै चौहत्तरि का बंध है । बहुरि मिश्र विषैं व्युच्छित्ति का तौ अभाव है, बंध विषै देवायु, मनुष्यायु, तीर्थंकर ए तीन मिली तातैं असंयत विषैं सतहत्तरि का वंध है । बहुरि इहां दश व्युच्छित्ति भईं तिनकौ घटाए देशसंयत विषैं सतसठि का वंध है । वहुरि इहां चारि व्युच्छित्ति भईं तिनकौं घटाए प्रमत्त विषैं त्रेसठि का वंध है । वहुरि इहां छह व्युच्छित्ति भईं, तिनकौं घटाएं अर आहारकद्विक कौं मिलाएं अप्रमत्त विषैं गुणसठि का वंध है । बहुरि इहां देवायु की व्युच्छित्ति भई, ताकौ घटाएं अपूर्वकरण विषैं अठावन का वंध है । बहुरि इहां तीन भागनि करि छत्तीस की व्युच्छित्ति भई तिनकौ घटाये अनिवृत्तिकरण विषै वाईस का वंध है । वहुरि इहां पंच भागनि करि पांच की व्युच्छित्ति भई, तिनकौं घटाएं सूक्ष्मसांपराय विषै सत्तरह का वंध है । बहुरि इहां सोलह की व्युच्छित्ति भई, तिनकौं घटाएं एक साता-वेदनीय रही, तिसका वंध उपशांतकषाय, क्षीणकषाय, सयोगी विषैं जानना । अयोगी विषैं वंध का अभाव है ।।१०३।।

तिय उणवीसं छत्तिय, तालं तेवण्ण सत्तवण्णं च ।
इगिदुगसट्ठी बिरहिय, सय तियउणवीससहिय वीससयं[1] ।।१०४।।

---

१ – बंध-त्रिभंगी अर्थसंदृष्टि अधिकार में देखें ।

त्रयमेकोनविंशतिः षट्त्रिक, चत्वारिंशत् त्रिपंचाशत् सप्तपंचाशच्च ।
एकद्वाषष्टिः द्विरहितं, शतं त्र्येकोनविंशतिसहितं विंशतिशतं ॥१०४॥

टीका – मिथ्यादृष्टि विषै तीर्थंकर, आहारक द्विक – ए तीन प्रकृति अबंध है । तिनि विषै सोलह मिलाएं सासादन विषै उगणीस अबध है । तिनि विषै पच्चीस व्युच्छित्ति अर मनुष्य आयु, देवायु मिलाए मिश्र विषै छियालीस अबंध है । इनि विषै मनुष्यायु, देवायु, तीर्थंकर घटाएं, असयत विषै तियालीस अबंध है । इनि विषै दश मिलाए, देशसंयत विषै तरेपन अबंध है । इनि विषै च्यारि मिलाए, प्रमत्त विषै सत्तावन अबंध है । इनि विषै छह व्युच्छित्ति मिलाए अर आहारक-द्विक घटाए, अप्रमत्त विषै इकसठि अबंध है । यामै देवायु मिलै अपूर्वकरण विषै बासठि अबध है । इनि विषै छत्तीस मिलाएं, अनिवृत्तिकरण विषै अठ्याणवै अबध है । इनि विषै पाच मिलाए, सूक्ष्मसांपराय विषै इकसौ तीन अबंध है । इनि विषै सोलह मिलाए, उपशातमोह, क्षीणमोह, सयोगी विषै एकसौ उगणीस अबंध है । इनि विषै सातावेदनीय मिलाएं अयोगी विषै एक सौ बीस प्रकृति अबंध है ।

गुणस्थान विषै अनुक्रम तै व्युच्छित्ति – १६।२५।०।१०।४।६।१।३६।५।१६।०।०।१।०।

बंध – ११७।१०१।७४।७७।६७।६३।५६।५८।२२।१७।१।१।१।०।

अबंध– ३।१६।४६।४३।५३।५७।६१।६२।६८।१०३।११६।११६।११६।१२० – ऐसैं जानना ॥१०४॥

आगै मार्गणानि विषै व्युच्छित्ति, बंध, अबंध कहै है । तहां प्रथम ही नरकगति विषै तीन गाथानि करि कहै हैं —

ओघे वा आदेसे, णारयमिच्छम्हि चारि वोच्छिण्णा ।
उवरिम बारस सुरचउ, सुराउ आहारयमबंधा ॥१०५॥

ओघ इव आदेशे, नारकमिथ्यात्वे चतस्रो व्युच्छिन्नाः ।
उपरितना द्वादश सुरचतुष्कं, सुरायुराहारकमबंधाः ॥१०५॥

टीका – मार्गणानि विषै व्युच्छित्ति, बध, अबध गुणस्थानवत् जानना । विशेष है सो कहै है – नरकगति विषै मिथ्यादृष्टि गुणस्थान विषै मिथ्यात्वादि आदि की च्यारि प्रकृतिनि ही की व्युच्छित्ति है । मिथ्यादृष्टि गुणस्थान विषै सोलह

प्रकृतिनि की व्युच्छित्ति कही थी, तिनविषै आदि की च्यारि विना ऊपरि की वारह, तिनिका वंध नरकगति विषै नाही है। एकेंद्री, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, वेद्री, तेंद्री, चौद्री, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरक आयु – ए वारह जाननी। वहुरि देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक, वैक्रियिक-अंगोपांग – ए च्यारि, देवायु, आहारक द्विक, इन उगणीस प्रकृति का वंध नरकगति विषै नाही, तातैं धर्मादिक तीन पृथ्वी विषै वंध योग्य एकसौ एक प्रकृति है। अंजनादिक तीन पृथ्वी विषैं तीर्थंकर विना सौ प्रकृति वंधयोग्य है। माघवी-सातवी पृथ्वी विषैं मनुष्यायु विना निन्यानवै प्रकृति वंधयोग्य हैं। वहुरि अपर्याप्त-काल विषै धर्मा-पहिली पृथ्वी विषै तौ एकसौ एक विषैं मनुष्यायु, तिर्यंचायु विना निन्यानवैं प्रकृति वंधयोग्य हैं, जातै मिश्रयोग विषैं आयु का वंध होइ नाही। वंशादिक पंच पृथ्वीनि विषै सम्यग्दृष्टि नाहीं उपजे, तातै तीर्थंकर विना अठ्याणवै प्रकृति वंधयोग्य हैं। माघवी-सातवीं पृथ्वी विषै मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी, ऊच्चगोत्र – इन तीन विना पिच्याणवै प्रकृति वंधयोग्य हैं। असैं जानि गुणस्थाननि विषैं व्युच्छित्यादिक कहे ॥१०५॥

घम्मे तित्थं बंधदि, वंसामेघाण पुण्णगो चेव।
छट्ठोत्ति य मणुवाऊ, चरिमे मिच्छेव तिरियाऊ ॥१०६॥

घर्मे तीर्थं वध्नाति, वशामेघयोः पूर्णकश्चैव।
षष्ठ इति च मानवायुः, चरमे मिथ्यात्वे एव तिर्यगायुः ॥१०६॥

टीका – धर्मा पृथ्वी विषैं पर्याप्त-अपर्याप्त दोऊ काल विषैं तीर्थंकर-प्रकृति कौं वांधैं है। वंशा-मेघा विषै पर्याप्तकाल विषै ही तीर्थंकर-प्रकृति कौं वांधैं है, अपर्याप्त न वांधै है। मघवी-छठी पृथ्वी पर्यंत मनुष्यायु का वंध है। माघवी विषै नाहीं है।

अव रचना कहै हैं —

धर्मादिक तीन पृथ्वी की रचना – वंधयोग्य प्रकृति एकसौ एक। गुणस्थान च्यारि। तहां मिथ्यादृष्टि विषैं व्युच्छित्ति-मिथ्यात्व, हुंडकसंस्थान, नपुंसकवेद, सृपाटिका-संहनन – ए च्यारि। अर वंध सौ (१००) तीर्थंकर विना। अर अवंध एक। वहुरि सासादन विषै व्युच्छित्ति पूर्वोक्त पचीस। वंध छिनवै। अवंध पांच। वहुरि मिश्र विषैं व्युच्छित्ति शून्य। वंध मनुष्यायु विना सत्तरि। अवंध इकतीस। वहुरि असंयत विषै व्युच्छित्ति पूर्वोक्त दश। वंध – मनुष्य आयु तीर्थंकर मिलैं वहत्तरि। अवंध-गुणतीस।

बहुरि नारक-अपर्याप्त तिनकी रचना —

तहां धर्मादि पृथ्वी विषै बधयोग्य प्रकृति निन्याणवै, गुणस्थान दोय - मिथ्यादृष्टि, असयत । जातै नारक अपर्याप्त, सासादन होइ नाही । तहा मिथ्यादृष्टि विषै मिथ्यादृष्टि की च्यारि अर तिर्यंच-आयु बिना सासादन विषै कही थी सो चौईस इनि अट्ठाईस प्रकृतिनि की व्युच्छित्ति है । बध-तीर्थकर बिना अठ्याणवै, अबध एक । असंयत विषै व्युच्छित्ति-मनुष्यायु बिना पूर्वोक्त नव । बध-तीर्थकर सहित इकहत्तरि । अबंध-अट्ठाईस ।

बहुरि अंजनादिक तीन पृथ्वीनि विषै तीर्थकर बिना सर्व रचना धर्मादिवत् जाननी । बधयोग्य प्रकृति सौ । तहा मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति चारि, बंध सौ, अबध नास्ति । सासादन विषै व्युच्छित्ति पचीस, बध छिनवै, अबंध च्यारि । मिश्र विषै व्युच्छित्ति शून्य । बध-मनुष्यायु बिना सत्तरि, अबंध-तीस । असयति विषै व्युच्छित्ति दश, बंध-मनुष्यायु सहित इकहत्तरि । अबंध गुणतीस । बहुरि बशोनै आदि देकरि पांच पृथ्वीनि विषै अपर्याप्त विषै एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही है । तहां अठ्याणवै प्रकृतिनि का बध जानना ॥१०६॥

मिस्साविरदे उच्चं, मणुवदुगं सत्तमे हवे बंधो ।
मिच्छा सासणसम्मा, मणुवदुगुच्चं ण बंधंति ॥१०७॥

मिश्राविरते उच्चं, मनुष्यद्वयं सप्तमे भवेद् बंधः ।
मिथ्यात्विन सासादन, सम्यक्त्वा मनुष्यद्विकोच्चं न बध्नंति ॥१०७॥

टीका – सातवी-पृथ्वी विषै मिश्र अर असंयत ही विषै उच्चगोत्र अर मनुष्यद्विक का बंध है । सो सातवी-पृथ्वी विषै पर्याप्त-रचना बधयोग्य-निन्याणवै, गुणस्थान च्यारि । तहा मिथ्यादृष्टि विषै च्यारि पूर्वोक्त अर एक तिर्यंच-आयु का इहा ही बध है। तातै व्युच्छित्ति पांच, बध-उच्चगोत्र, मनुष्यद्विक बिना छिनवै। अबंध-तीन सासादन विषै व्युच्छित्ति-तिर्यचायु बिना पूर्वोक्त चौईस । बध-इक्याणवै। अवध-आठ । मिश्र विषै व्युच्छित्ति शून्य। बध उच्चगोत्र। मनुष्यद्विक मिले सत्तरि । अवध उनतीस असंयत विषै व्युच्छित्ति-मनुष्यायु बिना पूर्वोक्त नव। बध-सत्तरि । अवंध-उनतीस । मिश्रवत् । सातवी पृथ्वी विषै अपर्याप्त विषै एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान है तहां पिच्याणवै प्रकृतिनि का बध है ॥१०७॥

आगे तिर्यंच-गति विषै व्युच्छित्त्यादिक कहै है —

तिरिये ओघो तित्था, हारूणो अविरदे छिदी चउरो ।
उवरिमछण्हं च छिदी, सासणसम्मे हवे णियमा ॥१०८॥

तिरश्चि ओघस्तीर्थाहारो न अविरते छित्तिश्चत्वारः ।
उपरिमषण्णां च छित्तिः सासादनसम्यक्त्वे भवेन्नियमात् ॥१०८॥

टीका – तिर्यंच गति विषै 'ओघः' कहिए गुणस्थानवत् रचना जाननी । विशेष इतनी जो-तीर्थंकर, आहारकद्विक इनि तीन प्रकृतिनि का वंध नाहीं; तातैं वंधयोग्य प्रकृति एक सौ सतरह । इनि विना व्युच्छित्ति, वंध, अवंध गुणस्थानवत् जाननी । तहां भी इतना विशेप है – जो अविरत विषै अप्रत्याख्यान कषाय च्यारि, तिनही की व्युच्छित्ति जाननी, ऊपर वज्रवृषभनाराच आदि छह प्रकृति रही, तिनकी व्युच्छित्ति सासादन-गुणस्थान ही विषै जाननी, जातै इहां मिश्रादिक विषै तिर्यंच, मनुष्यगति संवंधी प्रकृतिनि का वंध नाही है ॥१०८॥

सामण्णतिरियपंचिंदियपुण्णगजोणिणीसु एमेव ।
सुरणिरयाउ अपुण्णे, वेगुव्वियछक्कमवि णत्थि ॥१०९॥

सामान्यतिर्यक्पंचेंद्रियपूर्णकयोनिनीषु एवमेव ।
सुरनिरयायुरपूर्णे, वैगूर्विकषट्मपि नास्ति ॥१०९॥

टीका – सर्वभेद का समुदाय रूप सामान्य तिर्यंच, पंचेंद्री-तिर्यंच, स्त्रीवेदरूप-योनिमत्-तिर्यंच, इनि च्यारि प्रकार तिर्यंचनि विषै असें ही है । वहुरि लब्धि अप-र्याप्तक-तिर्यंच विषैं देवायु अर देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक, वैक्रियिक-अंगोपांग – ए वैक्रियिकषट्क असैं आठ प्रकृति वंधयोग्य नाही ।

तहां सामान्यादिक च्यारि प्रकार तिर्यंचनि की रचना —

मिथ्यादृष्टि विपै व्युच्छित्ति-गुणस्थानोक्त सोलह, वंध एक सौ सतरह । अवंध-नास्ति (शून्य) । सासादन विपै गुणस्थानोक्त पचीस, अर असंयत विपै व्युच्छित्ति कही थी, वज्रवृपभनाराच औदारिक, औदारिक अंगोपांग, मनुष्यगति, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी, मनुष्यआयु, इन छहों की इहां ही व्युच्छित्ति भई, तातैं व्युच्छित्ति-इकतीस । वंध-एक सौ एक । अवंध-सोलह । मिश्र विपै व्युच्छित्ति-शून्य, वंध-पूर्वोक्त

देवायु विना गुणहत्तरि । अवंध-अठनालीस । असयत विषै व्युच्छित्ति-अप्रत्याख्यान कषाय च्यारि, वंध-देवायु मिले सत्तरि, अबंध-सैंतालीस । देशसयत विषै व्युच्छित्ति प्रत्याख्यान च्यारि, बध छ्यासठि । अवध-इक्यावन ।

बहुरि सामान्यादिक च्यारि प्रकार निर्वृत्ति-अपर्याप्त तिर्यच तिनकी रचना—

तहा बधयोग्य प्रकृति एक सौ ग्यारह मिश्रकाय योगी है, तातै इहां च्यारि आयु अर नरकद्विक का बध नाही । गुणस्थान तीन तहा मिथ्यादृष्टि विषै सोलह में स्यो नरक-आयु, नरक-द्विक बिना व्युच्छित्ति तेरह, बध एक सौ सात, जातै मिथ्यादृष्टि, सासादन-अपर्याप्त विषैं देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक, वैक्रियिकअंगोपाग – इस सुरचतुष्क का वंध नाही अर अबंध एई च्यारि प्रकृति । सासादन विषै पूर्वोक्त इकतीस में स्यों तिर्यचायु, मनुष्यायु बिना व्युच्छित्ति गुणतीस, बंध मिथ्यादृष्टि की व्युच्छित्ति कौं घटाएं चौराणवै, अबंध-सतरह । असयत विषै व्युच्छित्ति-अप्रत्याख्यान-कषाय च्यारि, वंध-पूर्वोक्त व्युच्छित्ति घटाएं अर सुरचतुष्क मिलाएं गुणहत्तरि, अबंध-वियालीस । बहुरि लब्धि-अपर्याप्तक-तिर्यंच विषै गुणस्थान एक-मिथ्यादृष्टि, तहां तिर्यचायु, मनुष्यायु का बध हो है, तातै तिर्यच-गति सबधी बधयोग्य एक सौ सतरह में देवायु अर नरकायु अर वैक्रियिक-षट्क इनि आठ प्रकृतिनि का बंध नाही, तातै बंध-योग्य एक सौ नव प्रकृति जाननी ।।१०९।।

आगे मनुष्यगति विषै कहै है —

तिरयेव णरे णवरि हु, तित्थाहारं च अत्थि एमेव ।
सामण्णपुण्णमणुसिणि, णरे अपुण्णे अपुण्णेव ।।११०।।

तिर्यगिव नरे नवरि हि, तीर्थाहारं चास्ति एवमेव ।
सामान्यपूर्णमनुष्यणी, नरे अपूर्णे अपूर्ण एव ।।११०।।

टीका – तिर्यचगतिवत् मनुष्यगति विषै रचना है, जातै इहा भी अविरति विषै व्युच्छित्ति च्यारि है, ऊपरि के वज्रवृषभनाराचादिक छह, तिनकी व्युच्छित्ति सासादन विषै ही भई यह विशेष समान है । बहुरि इतना नवीन विशेष है तीर्थंकर अर आहारक-द्विक का बध इहा पाइए है, सो सर्वभेद का समुदायरूप सामान्य मनुष्य अर पर्याप्त मनुष्य अर स्त्रीवेदरूप-मनुष्यणी-मनुष्य – इन तीनो की रचना तौ ऐसै ही जाननी । तहा बधयोग्य प्रकृति एक सौ बीस, गुणस्थान चौदह । तिनि विषै नीचली व्युच्छित्ति बध विषै घटाए, विशेष कथन पूर्वक अवध विषै जोड़े, ऊपरि के

गुणस्थाननि विषै बंध-अबंध हो है वहां मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति सोलह बंध तीर्थंकर, आहारकद्विक बिना एक सौ सतरह, अबंध-तीन । सासादन विषै तिर्यचवत् व्युच्छित्ति इकतीस, बंध एक सौ एक, अबंध उगणीस । मिश्र विषै व्युच्छित्ति शून्य, बंध देवायु बिना गुणहत्तरि, अबंध इक्यावन, असंयत विषै अप्रत्याख्यान च्यारि व्युच्छित्ति, बंध देवायु अर तीर्थंकर के मिलन तै इकहत्तर, अबंध उनचास । देशव्रत विषै व्युच्छित्ति प्रत्याख्यान-कषाय च्यारि, बध सतसठि, अबंध तरेपन, आगे प्रमत्तादिक विषैं व्युच्छित्ति, बंध, अबंध मूल-गुणस्थान रचनावत् जानने। विशेष किछू नाही ।

बहुरि सामान्य-मनुष्य, पर्याप्त-मनुष्य, मनुष्यणी-मनुष्य इनि तीनों निर्वृत्ति-अपर्याप्तकनि कैं बंधयोग्य प्रकृति एक सौ बारह जातै मिश्र काययोगी है, तातै इहां च्यारि आयु नरकद्विक, आहारक द्विक इनि आठनि का बंध नाही । गुणस्थान-मिथ्यादृष्टि, सासादन, अविरत प्रमत्त, सयोगी – ए पांच । तहां मिथ्यादृष्टि विषै सोलह में स्यों नरकद्विक, नरकायु बिना व्युच्छित्ति तेरह । बंध देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक, वैक्रियिक-अंगोपांग, तीर्थकर – इन पच बिना एक सौ सात, अबंध पांच । सासादन विषैं इकतीस में स्यों मनुष्य आयु, तिर्यच-आयु बिना व्युच्छित्ति गुणतीस, बंध चौराणवै, अबंध अठारह । असंयत विषै अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान कषाय-आठ व्युच्छित्ति, बंध सुरचतुष्क अर तीर्थंकर के मिलने तें सत्तरि, अबंध बियालीस, प्रमत्तसंयत विषै प्रमत्त की छह अप्रमत्त की देवायु थी सो बंध ही में नाही, तातै न गिनी । अपूर्वकरण की आहारक-द्विक विना चौतीस, अनिवृत्तिकरण की पांच, सूक्ष्म-सांपराय की सोलह, सब मिलाएं व्युच्छित्ति प्रकृति इकसठि, बंध बासठि, अबंध पचास, सयोगी विषै व्युच्छित्ति एक साता वेदनीय, बंध एक सातावेदनीय, अबंध एक सौ ग्यारह ।

बहुरि लब्धि-अपर्याप्तक-मनुष्य की रचना लब्धि-अपर्याप्तक तिर्यंचवत् जाननी । देवायु, नरकायु, वैक्रियिक-षट्क, तीर्थंकर, आहारकद्विक – इन ग्यारह विना बंधयोग्य प्रकृति एक सौ नव, गुणस्थान एक मिथ्यादृष्टि जानना ॥११०॥

आगे देवगति विषै कहैं है —

णिरयेव होदि देवे, आईसाणोत्ति सत्त वाम छिदी ।
सोलस चेव अबंधा, भवणतिए णत्थि तित्थयरं ॥१११॥

निरय इव भवति देवे, आईशान इति सप्त वामे छित्तिः ।
षोडश चैव अबंधा, भवनत्रये नास्ति तीर्थकरं ॥१११॥

टीका – देवगति विषै रचना नरकगतिवत् जाननी। इतना विशेष जो मिथ्यादृष्टि गुणस्थान संबधी व्युच्छित्ति रूप सोलह प्रकृतिनि विषै ईशान स्वर्ग पर्यंत मिथ्यात्व अर हुंड संस्थानादिक छह, इनि सात प्रकृतिनि की व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टि गुणस्थान विषै है। बहुरि अवशेष नव प्रकृति इहां बंधयोग्य नाही, सो सूक्ष्म अपर्याप्त, साधारण – ए तीन बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री – ए तीन नरकद्विक, नरकायु – ए नव अर देवगति-देवगत्यानुपूर्वी-वैक्रियिक अंगोपांग – ए सुरचतुष्क अर देवायु अर वैक्रियिक अंगोपांग आहारक द्विक – ए सोलह प्रकृति देवगति विषै बंधयोग्य नाही, तातैं बधयोग्य प्रकृति एक सौ च्यारि है। बहुरि भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी – ए भवनत्रिक अर कल्पवासिनी देवांगना-इनके तीर्थंकर प्रकति का भी बंध नाही, तातै इनकै बंधयोग्य प्रकृति एकसौ तीन है।

तहां भवनत्रिक-कल्पवासिनी की रचना —

बंधयोग्य प्रकृति एक सौ तीन। गुणस्थान च्यारि। तहा मिथ्यादृष्टि विषै मिथ्यात्व, हुडसंस्थान, नपुंसक वेद, सृपाटिका-सहनन, एकेंद्री, स्थावर, आतप – ए सात प्रकृति व्युच्छित्ति हैं। बंध एक सौ तीन, अबध शून्य। सासादन विषै व्युच्छित्ति गुणस्थानोक्त पचीस, बंध छिनवै, अबंध सात। मिश्र विषैं व्युच्छित्ति शून्य, बध मनुष्यायु बिना सत्तरि, अबध तेतीस। असंयत विषै व्युच्छित्ति गुणस्थानोक्त दश, बंध मनुष्यायु के मिलने तै इकहत्तरि, अबंध बत्तीस।

बहुरि सौधर्म–ईशान की रचना —

बधयोग्य प्रकृति एक सौ च्यारि, गुणस्थान च्यारि। तहां मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति मिथ्यात्वादिक पूर्वोक्त सात, बंध तीर्थंकर बिना एक सौ तीन, अबध एक। सासादन विषै व्युच्छित्ति गुणस्थानोक्त पचीस। बध छिनवै, अबध आठ। मिश्र विषै व्युच्छित्ति शून्य, बध मनुष्यायु बिना सत्तरि, अबध चौतीस। असंयत विषै व्युच्छित्ति गुणस्थानोक्त दश, बंध मनुष्यायु तीर्थंकर के मिलने तै बहत्तरि, अबध बत्तीस ॥१११॥

कप्पित्थीसु ण तित्थं, सदरसहस्सारगोत्ति तिरियदुगं ।
तिरियाऊ उज्जोवो, अत्थि तदो णत्थि सदरचऊ ॥११२॥

कल्पस्त्रीषु न तीर्थं, शतारसहस्रारक इति तिर्यग्द्विकं ।
तिर्यगायुरुद्योतः, अस्ति ततोनास्ति शतारचतुष्कं ॥११२॥

टीका – कल्पवासिनी – स्त्रीनि विषै तीर्थंकर-प्रकृति बधे नाहो; तातै कल्पवासिनी की रचना भवनत्रिक की रचना विषै ही कही, जातै दोऊ जायगा गुणस्थान व्युच्छित्ति बंध, अबध विषै किछू विशेष नाही है ।

बहुरि सनत्कुमारादि दश स्वर्गनि विषै नरकवत् रचना कही, तातै बंधयोग्य प्रकृति एक सौ एक, गुणस्थान च्यारि । तहां मिथ्यादृष्टि विषैं व्युच्छित्ति मिथ्यात्व, हुंड संस्थान, नपुंसक वेद, सृपाटिका संहनन – ए च्यारि, जातै सात प्रकृतिनि की व्युच्छित्ति ईशान पर्यंत ही कही, तातै इहां नरकवत् च्यारि प्रकृति ही की व्युच्छित्ति जाननी । बंध तीर्थंकर बिना सौ, अबंध एक । सासादन विषै व्युच्छित्ति गुणस्थानोक्त पचीस, बध छिनवै, अबंध पांच । मिश्रविषै व्युच्छित्ति शून्य, बध मनुष्यायु बिना सत्तरि, अबध इकतीस, असंयत विषै व्युच्छित्ति गुणस्थानोक्त दश, बंध मनुष्यायु-तीर्थंकर के मिलने तै बहत्तरि, अबंध गुणतीस ।

बहुरि तिर्यंचगति-तिर्यंचगत्यानुपूर्वी – ए तिर्यंचद्विक अर तिर्यन्च-आयु अर उद्योत – इन च्यारि प्रकृतिनि को **सदरचउक्क** कहिए । सो इस सदरचउक्क का बंध शतार सहस्रार पर्यंत ही है, ऊपरि नाही, तातै आनतादिक च्यारि स्वर्ग अर नव ग्रैवेयक इनिविषै बंधयोग्य प्रकृति सत्याणवै है । गुणस्थान च्यारि । तहां मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति च्यारि मिथ्यात्वादिक, बंध तीर्थंकर बिना छिनवै, अबंध एक । सासादन विषै सदरचउक्क व्युच्छित्ति इकईस, वंध बाणवै, अबंध पांच । मिश्र विषै व्युच्छित्ति शून्य, वंध मनुष्यायु विना सत्तरि, अवंध सत्ताईस, असयत विषैं व्युच्छित्ति गुणस्थानोक्त दश, बंध तीर्थंकर मनुष्यायु के मिलने तैं बहत्तरि, अबंध पचीस ।

बहुरि अनुदिशअनुत्तार विमानवासी अहमिंद्रते सर्व सम्यग्दृष्टी ही है, तिनकै बंधयोग्य पूर्वे असंयतोक्त बहत्तरि, गुणस्थान एक असंयत जानना ।

बहुरि निवृत्ति–अपर्याप्तक रचना —

तहां भवनत्रिक अर कल्पवासिनी इनिकै बंधयोग्य प्रकृति एक सौ एक, जातैं मिश्रकाय योगीपनै तै तिर्यंचायु, मनुष्यायु का वंध नाही । गुणस्थान दोय, जातै असंयत मरि करि इनि विषै उपजै नाही । तहां मिथ्यादृष्टि विषैं व्युच्छित्ति पूर्वोक्त

सात। बंध एक सौ एक, अबंध शून्य। सासादन विषै व्युच्छित्ति तिर्यंचायु बिना चौईस, बध चौराणवै, अबंध सात।

बहुरि सौधर्म-ईशान विषै तीर्थंकर मिलवे तै बधयोग्य प्रकृति एक सौ दोय, गुणस्थान तीन। तहा मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति पूर्वोक्त सात, बंध तीर्थंकर बिना एक सौ एक, अबंध एक। सासादन विषै व्युच्छित्ति पूर्वोक्त चौईस, बंध चौराणवै, अबंध ८। असंयत विषै व्युच्छित्ति मनुष्यायु बिना नव, बध तीर्थंकर मिलै इकहत्तरि, अबंध इकतीस।

बहुरि सानत्कुमारादि दश स्वर्गनि विषै पर्याप्त सबधी एक सौ एक में स्यों तिर्यचायु-मनुष्यायु घटाए बधयोग्य प्रकृति निन्याणवे, गुणस्थान तीन। तहा मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति मिथ्यात्वादिक च्यारि, बध तीर्थंकर बिना अठ्याणवे, अबध एक। सासादन विषै व्युच्छित्ति चौईस, बध चौराणवै, अबंध पांच। असयत विषै व्युच्छित्ति नव, बंध तीर्थंकर मिलै इकहत्तर, अबध अठाईस।

बहुरि आनतादिक च्यारि स्वर्ग अर नव ग्रैवेयकनि विषै तिर्यच-द्विक अर उद्योत बिना बधयोग्य प्रकृति छिनवै, गुणस्थान तीन। तहां मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति च्यारि, बंध पिच्याणवै, अबध एक। सासादन विषै व्युच्छित्ति सदर-चउक्क बिना इकईस, बंध इक्याणवै, अबध पाच। असयत विषै व्युच्छित्ति नव, बंध इकहत्तरि, अबंध पचीस।

बहुरि अनुदिश-अनुत्तरवासी देव सर्व असंयत ही हैं। तहां बंध इकहत्तरि प्रकृतिनि का जानना ॥११२॥

पुण्णिदरं विगिविगले, तत्थुप्पण्णो हु सासणो देहे।
पज्जत्तिं णवि पावदि, इदि णरतिरियाउगं णत्थि ॥११३॥

पूर्णेतरमिवैकविकले, तत्रोत्पन्नो हि सासादनो देहे।
पर्याप्तिं नापि प्राप्नोति, इति नरतिर्यगायुष्कं नास्ति ॥११३॥

टीका – इंद्रिय-मार्गणा विषै एकेंद्री, बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, इनविषै लब्धि-अपर्याप्तवत् बंधयोग्य प्रकृति एक सौ नव, जातै तीर्थंकर, आहारकद्विक, देवायु नरकायु, वैक्रियिक-षट्क इनिका बंध नाही है। गुणस्थान दोय, तहां मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति पद्रह। गुणस्थान-रचना विषै सोलह कही थी, तिनविषै नरकद्विक

अर नरकायु – ए तीन घटाइए अर मनुष्यायु अर तिर्यच-आयु मिलाइए–तव पंद्रह होइ। मनुष्यायु-तिर्यचायु की व्युच्छित्ति इहा ही कही, ताका हेतु यह है जो सासादन का तहां काल थोरा अर निवृत्ति-अपर्याप्त-अवस्था का काल वहुत, तातै सासादन विषै शरीर-पर्याप्ति पूर्ण न करै, तातै इहां सासादन विषै मनुष्यायु-तिर्यचायु का बंध नाही, इहां ही व्युच्छित्ति कही। वंध एक सौ नव, अवध शून्य। सासादन विषै व्युच्छित्ति पूर्वे कही थी, तेई गुणतीस, बंध चौराणवै, अवंध पंद्रह ॥११३॥

पंचेंदियेसु ओघं, एयक्खे वा वणप्फदीयंते।
मणुवदुगं मणुवाऊ, उच्चं ण हि तेउवाउम्हि ॥११४॥

पंचेंद्रियेषु ओघः, एकाक्ष इव वनस्पत्यंते।
मनुष्यद्वयं मनुष्यायु, रुच्चं नहि तेजोवायौ ॥११४॥

टीका – पंचेद्रिय विषै 'ओघः' कहिए गुणस्थान रचनावत् रचना जानना, किछू विशेष नाहीं। बंधयोग्य प्रकृति एकसौ बीस। गुणस्थान चौदह। सोलह पचीसनै आदि दे करि व्युच्छित्ति एक सौ सतरह, एक सौ एक ने आदि देकरि बंध तीन, उगणीस ने आदि देकरि अबंध गुणस्थान रचनावत् सर्व जानना।

वहुरि निवृत्ति-अपर्याप्तक पचेद्री विषै वधयोग्य प्रकृति एक सौ बारह, गुणस्थान पांच। तिनकी रचना सुगम है। जातै तीर्थकर, सुर-चतुष्क का बंध एक असंयत-गुणस्थान विषै ही है, तातैं निवृत्ति-अपर्याप्त मनुष्य रचनावत् जानना। विशेष इतना – जो औदारिकद्विक, मनुष्यद्विक, वज्रवृषभ-नाराच इन पंच प्रकृतिनि की व्युच्छित्ति तहाँ दूसरे गुणस्थान विषैं कही थी, इहां चौथे गुणस्थान में तिनकी व्युच्छित्ति जाननी। और किछू विशेष नाही। तहां मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति तेरह, वंध एक सौ सात, अवंध पांच। सासादन विषै व्युच्छित्ति चौईस, बंध चौराणवै, अबंध अठारह। अविरत विषै व्युच्छित्ति तेरह, बंध पिचहत्तरि, अवंध सैतीस; प्रमत्त विषैं व्युच्छित्ति इकसठि, वंध वासठि, अवंध पचास। सयोगी विषै व्युच्छित्ति एक, बंध एक, अबंध एक सौ ग्यारह।

इहां च्यारचों गतिसंवंधी निवृत्ति-अपर्याप्तनि की अपेक्षा कथन जानना।

बहुरि पंचेद्रिय लब्धि-अपर्याप्तक विषै वंधयोग्य प्रकृति एक सौ नव तीर्थकर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु, वैक्रियिकषट्क इनि ग्यारह प्रकृतिनि का वंध नाहीं। गुणस्थान एक मिथ्यादृष्टि है।

बहुरि कायमार्गणा विषै पृथ्विकायादिक वनस्पति पर्यंत पंच स्थावर, तिनकी रचना एकेंद्रिय रचनावत् जाननी। तहा तीर्थंकर, आहारक द्विक, देवायु, नरकायु, वैक्रियिकषट्क इन ग्यारह बिना बंधयोग्य प्रकृति एक सौ नव, तहां पृथ्वीकाय, अप-काय, वनस्पति-कायनि विषै उत्पन्न भया जीव कै सासादन कौ होत संतै शरीर-पर्याप्ति पूर्ण न होइ, तातैं तिर्यंचायु का बंध मिथ्यादृष्टि गुणस्थान विषै ही है। तातैं मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति पंद्रह, बंध एक सौ नव, अबध शून्य। सासादन विषै व्युच्छित्ति गुणतीस, बध चौराणवै, अबंध पंद्रह। बहुरि तेजस्कायिक, वातकायिक, विषैं मनुष्यद्विक, मनुष्यायु, उच्चगोत्र, इन च्यारि प्रकृतिनि का भी बध नाही, तातैं बंधयोग्य प्रकृति गुणस्थान एक मिथ्यादृष्टि ही है, सासादन नाही ॥११४॥

कांहेतै ? सो कहै है—

ण हि सासणो अपुण्णे, साहारणसुहुमगे य तेउदुगे।
ओघं तस मणवयणे, ओराले मणुवगइभंगो ॥११५॥

नहि सासादनोऽपूर्णे, साधारणसूक्ष्मके च तेजोद्वये।
ओघः त्रसे मनोवचने, औराले मनुष्यगतिभंगः ॥११५॥

टीका – 'हि' कहिए जातै लब्धि-अपर्याप्तक विषै साधारण-शरीरयुक्त जीवनि विषै, सर्व सूक्ष्म जीवनि विषै, तेजस्कायिक-वातकायिक,जीवनि विषै सासादन-गुणस्थान न पाइए है। नरक विषै अपर्याप्त दशा मे सासादन न पाइए है, तातै तेजस्काय वात-काय विषै एक ही गुणस्थान कह्या। बहुरि त्रसकाय विषै रचना गुणस्थान रचनावत् जाननी, विशेष किछू नाही। बधयोग्य प्रकृति एक सौ बीस, गुणस्थान चौदह, सोलह, पचीस इत्यादिक, व्युच्छित्ति; एक सौ सतरह, एक सौ एक इत्यादिक बंध; तीन, उगणीस इत्यादिक अबंध गुणस्थान रचनावत् सर्व जानना।

बहुरि त्रस निर्वृत्ति-अपर्याप्तक की रचना पचेद्रियनिर्वृत्ति-अपर्याप्तक की रचनावत् जाननी, विशेष किछू नाही। बंधयोग्य प्रकृति एक सौ बारह, गुणस्थान पाच।

बहुरि योगमार्गणा विषै मनोयोग, वचनयोग की रचना 'ओघः' कहिए गुणस्थान रचनावत् जाननी। बधयोग्य प्रकृति एक सौ बीस, गुणस्थान सत्य-अनुभय मन वा वचन विषैं तो सयोगी पर्यंत तेरह, अर असत्य-उभय मन वा वचन विषै क्षीणकषाय पर्यंत बारह, सो इन विषै गुणस्थानवत् व्युच्छित्ति, बंध, अबध जानना।

बहुरि औदारिक-काययोग की रचना मनुष्यगति रचनावत् जाननी । बंध योग्य प्रकृति एक सौ वीस । गुणस्थान तेरह तहां सोलह, इकतीस तैं आदि देकरि व्युच्छित्ति एक सौ सतरह, एक सौ एक ने आदि देकरि बंध अर तीन, उगणीस ने आदि देकरि अबंध क्रमतैं गुणस्थाननि विषैं जानना ।।११५।।

ओराले वा मिस्से, ण हि सुरणिरयाउहारणिरयदुगं ।
मिच्छदुगे देवचओ, तित्थं ण हि अविरदे अत्थि ।।११६।।

औराल इव मिश्रे, नहि सुरनिरयायुराहारनिरयद्वयं ।
मिथ्यात्वद्वये देवचतुष्कं, तीर्थं नहि अविरतेऽस्ति ।।११६।।

टीका – औदारिक-मिश्र विषैं रचना औदारिक-काययोगवत् जाननी । विशेष कहै हैं–औदारिक मिश्रयोगी दोय प्रकार–लब्धि अपर्याप्तक, निवृत्ति अपर्याप्तक । तातैं निवृत्ति अपर्याप्तक कौं बंधयोग्य एक सौ बारह । तिनविषैं मनुष्यायु, तिर्यंचायु मिलाइए; जातैं लब्धि अपर्याप्त के मनुष्य आयु, तिर्यंच आयु का बंध हो है । ऐसैं औदारिक-मिश्र-योग विषै देवायु, नरकायु, आहारद्विक, नरक विना बंधयोग्य प्रकृति एक सौ चौदह । तहां सुर चतुष्क अर तीर्थंकर ए पंच प्रकृति मिथ्यादृष्टि सासादन विषैं बंधै नाही है; अविरत विषैं बंधै हैं ।।११६।।

पण्णारसमुनतीसं, मिच्छदुगे अविरदे छिदी चउरो ।
उवरिमपणसट्ठीवि य, एक्कं सादं सजोगिम्हि ।।११७।।

पंचदशैकोनत्रिंशत्, मिथ्यात्वद्विके अविरते छित्तयश्चतस्रः ।
उपरिमपंचषष्टिरपि च, एकं सातं सयोगिनि ।।११७।।

टीका – औदारिक-मिश्र विषैं गुणस्थान च्यारि, मिथ्यादृष्टि-द्विक विषैं पंद्रह-गुणतीस, अविरत विषैं च्यारि, ऊपरि की पैंसठि – ऐसैं गुणहत्तरि । सयोगी विषैं एक साता व्युच्छित्ति प्रकृति है । मिथ्यादृष्टि विषैं सोलह में नरकायु, नरक-द्विक घटाइए; तिर्यंचायु-मनुष्यायु मिलाइए – ऐसैं व्युच्छित्ति पंद्रह । बंध सुरचतुष्क अर तीर्थंकर विना अबंध एक सौ नव (१०९) । सासादन विषै मिश्र-अवस्था में लब्धि-अपर्याप्तक विना और कैं आयु का बंध नाही, तातैं इकतीस में स्यो मनुष्यायु तिर्यंचायु घटाएं व्युच्छित्ति गुणतीस (२९) । बंध चौराणवै (९४) । अबंध वीस । असंयत विषैं वज्रवृषभ नाराचादिक छह प्रकृतिनि की व्युच्छित्ति सासादन ही में

भई; तातै अप्रत्याख्यान कषाय च्यारि अर देशसयत सबधी प्रत्याख्यान-कषाय च्यारि प्रमत्तसंबंधी छह, अप्रमत्त सबधी देवायु बधयोग्य ही नाही, तातै न गिनी। अपूर्वकरण की आहारद्विक बिना चौतीस (३४), अनिवृत्तिकरण की पांच, सूक्ष्मसांपराय की सोलह – ए सब मिलाएं गुणहत्तरि (६९) प्रकृति व्युच्छित्ति है। बंध सुर-चतुष्क अर तीर्थंकर के मिलने तै सत्तरि (७०)। अबंध चवालीस (४४)। बहुरि सयोगी विषै व्युच्छित्ति एक साता, बंध एक साता, अबध एक सौ तेरह (११३) ॥११७॥

देवे वा वेगुव्वे, मिस्से णरतिरियआउगं णत्थि ।
छट्ठगुणं वाहारे, तम्मिस्से णत्थि देवाऊ ॥११८॥

देव इव वैगूर्वे, मिश्रे नरतिर्यगायुष्कं नास्ति ।
षष्ठगुणमिवाहारे, तन्मिश्रे नास्ति देवायुः ॥११८॥

टीका – वैक्रियिक-काययोग की रचना सौधर्म-ईशान संबधी देवनि की रचना समान जाननी। बधयोग्य प्रकृति एक सौ च्यारि, गुणस्थान च्यारि। मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति सात, बध एक सौ तीन (१०३), अबंध एक। सासादन विषै व्युच्छित्ति पचीस (२५); बध छिनवै (९६), अबध आठ। मिश्र विषै व्युच्छित्ति शून्य, बध सत्तरि (७०); अबध चौतीस (३४)। असयत विषै व्युच्छित्ति दश; बध बहत्तरि (७२); अबध बत्तीस (३२)।

बहुरि वैक्रियिक-मिश्र-काययोगिनि की रचना सौधर्म-ईशान सबधी अपर्याप्त-देवनि की रचना समान जाननी। तहां मनुष्यायु, तिर्यचायु का भी बंध नाही, तातै बंधयोग्य प्रकृति एक सौ दोय (१०२), गुणस्थान तीन। मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति सात; बंध एक सौ एक (१०१); अबंध एक। सासादन विषै व्युच्छित्ति चौईस (२४); बंध चौराणवै (९४); अबध आठ। असंयत विषै व्युच्छित्ति नव; बध इकहत्तरि (७१); अबध इकतीस (३१)।

बहुरि आहारक-काययोगी की रचना प्रमत्तगुणस्थान रचनावत् जाननी। व्युच्छित्ति छह; बंध तरेसठि (६३), अबंध सत्तावन (५७)।

बहुरि आहारक-मिश्रकाययोगी की रचना देवायु का वध तहा न होइ, तातै व्युच्छित्ति छह; बध बासठि (६२), अबध अठावन (५८)।

कम्मे उरालमिस्सं, वा णाउदुगंपि णव छिदी अयदे ।
वेदादाहारोत्ति य, सगुणट्ठाणाणमोघं तु ॥११९॥

कर्मणि औदारिकमिश्रं, वा नायुर्द्विकमपि नव छित्तिरयते ।
वेदादाहार इति च, स्वगुणस्थानानामोघस्तु ॥११९॥

टीका – कार्माण-काययोग की रचना औदारिक-मिश्र रचनावत् जाननी । तहां भी विशेष जो विग्रहगति विषैं आयु का बंध नाही, तातै मनुष्यायु, तिर्यंचायु बिना बंधयोग्य प्रकृति एक सौ बारह; गुणस्थान च्यारि । तहां मिथ्यादृष्टि विषै सोलह में स्यों नरकद्विक, नरकायु बिना व्युच्छित्ति तेरह, बंध सुरचतुष्क, तीर्थंकर बिना एक सौ सात (१०७); अबंध पांच । सासादन विषैं व्युच्छित्ति तिर्यंचायु बिना चौईस (२४); बंध चौराणवै (९४), अबंध अठारह । असंयत विषै मनुष्यायु बिना असंयत की नव, देशसंयत की च्यारि, प्रमत्त की छह, अप्रमत्त की देवायु गिनी नाहीं । अपूर्वकरण की आहारकद्विक बिना चौतीस, अनिवृत्तिकरण की पांच, सूक्ष्म-सांपराय की सोलह सब मिलाएं व्युच्छित्ति चहोत्तरि (७४); बंध सुरचतुष्क, तीर्थंकर के मिलनेतें पिचहत्तरि (७५); अबंध सैंतीस (३७) । सयोगी विषै व्युच्छित्ति एक साता; बंध एक साता; अबंध एक सौ ग्यारह (१११) ।

बहुरि आगे वेदमार्गणा कौ आदि देकरि आहारमार्गणा पर्यंत अपने-अपनें गुणस्थाननि विषैं साधारण कथन जानना ।

तहां वेदमार्गणा विषै स्त्रीवेदीनि कै बंधयोग्य प्रकृति एक सौ बीस (१२०); गुणस्थान नव, तहां आठवां अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यंत तौ व्युच्छित्ति, बंध, अबंध गुणस्थान-रचना विषै कह्या है, तैसे ही जानना । बहुरि क्षपक-श्रेणीरूप अनिवृत्तिकरण का पहिला वेदसहित भाग का द्विचरम-समय विषै व्युच्छित्ति एक पुरुषवेद; बंध बाईस, अबंध अठयाणवै (९८) । बहुरि तिस ही का चरम-अंतसमय विषैं व्युच्छित्ति शून्य; बंध इकईस (२१); अबंध निन्याणवै (९९) ।

बहुरि निवृत्ति-अपर्याप्तक स्त्रीवेदी, तिनकी रचना—

बंधयोग्य प्रकृति एक सौ सात (१०७), च्यारि आयु, तीर्थंकर, आहारकद्विक वैक्रियिकषट्क – इन तेरह प्रकृतिनि का बंध नाही । गुणस्थान दोय, तहां मिथ्यादृष्टि विषैं व्युच्छित्ति नरकद्विक, नरकायु बिना तेरह; बंध एक सौ सात (१०७); अबंध

शून्य । सासादन विषै व्युच्छित्ति तिर्यंच-आयु बिना चौईस (२४), अबंध तेरह; बंध चौराणवै (९४) इहां असंयत न सभवै है ।

बहुरि नपुसक वेदीनि के बधयोग्य प्रकृति एक सौ बीस (१२०); गुणस्थान नव । रचना सर्व स्त्रीवेदीनि की रचनावत् जाननी ।

बहुरि निवृत्ति-अपर्याप्त नपुंसकवेदी – तिनकी रचना बंधयोग्य प्रकृति एक सौ आठ (१०८), पूर्वोक्त एक सौ सात में नारक-असंयत की अपेक्षा एक तीर्थंकर प्रकृति मिली । बहुरि तिर्यंच-आयु, मनुष्यायु का बंध लब्धि-अपर्याप्तक ही कै हो है; इहां कथन निवृत्ति-अपर्याप्तक का है, तातै गिनी नाही । गुणस्थान तीन तातै मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति पूर्वोक्त तेरह, बंध तीर्थंकर बिना एक सौ सात (१०७); अबध एक । सासादन विषैं व्युच्छित्ति पूर्वोक्त चौईस (२४), बंध चौराणवै (९४), अबंध चौदह । अविरत विषै व्युच्छित्ति मनुष्यायु बिना नव, बध तीर्थंकर के मिलने तै इकहत्तरि (७१), अबंध सैंतीस (३७) ।

बहुरि पुरुषवेदी – तिनकै बधयोग्य प्रकृति एक सौ बीस (१२०), गुणस्थान नव । तहां आठवां - अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यंत तौ रचना गुणस्थान रचनावत् जाननी । क्षपक-अनिवृत्ति-करण का प्रथम भाग का अंत-समय विषै व्युच्छित्ति एक पुरुषवेद, तहां पर्यंत बध बाईस (२२), अबंध अठ्याणवै (९८) ।

बहुरि पुरुषवेदी निर्वृत्ति-अपर्याप्तक तिनकी रचना—

नरक बिना तीन गतिवाले जीव तिनकै बंधयोग्य प्रकृति एक सौ बारह; च्यारि आयु, नरकद्विक, आहारकद्विक का बंध नाही । गुणस्थान तीन तहां मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति पूर्वोक्त तेरह, बंध सुरचतुष्क, तीर्थंकर बिना एक सौ सात (१०७); अबंध ५ । सासादन विषै व्युच्छित्ति पूर्वोक्त चौईस (२४) । बंध चौराणवै (९४) अबंध अठारह । अविरत विषै व्युच्छित्ति पूर्वोक्त नव; बध सुरचतुष्क, तीर्थंकर के मिलने तै पिचहत्तरि (७५), अबध सैंतीस (३७) । स्त्रीवेदी अर नपुंसकवेदी कै तीर्थंकर, आहारकद्विक का उदय तौ न होइ, पुरुषवेदी कै होइ अर बंध होने विषै किछू विरोध नाही, तीनो वेदवालों कै होइ ।

बहुरि कषाय-मार्गणा विषै च्यार्यों कषायनि विषै वधयोग प्रकृति एक सौ बीस (१२०); गुणस्थान – क्रोध विषै क्षपक-अनिवृत्ति-करण का दूसरा भाग पर्यंत,

मान विषै तीसरा भाग पर्यंत, माया विषैं चौथा भाग पर्यंत, वादर-लोभ विषैं पाचवां भाग पर्यंत है। तिनकी रचना गुणस्थान-रचनावत् जाननी। सूक्ष्मलोभ विषै एक सूक्ष्म-सांपराय ही गुणस्थान है, सो बाकी रचना सूक्ष्म-सांपरायवत् जाननी।

बहुरि ज्ञानमार्गणा विषै कुमति, कुश्रुत, विभंग इनके बंधयोग्य प्रकृति एक सौ सतरह (११७); तीर्थंकर, आहारकद्विक का बंध नाही। गुणस्थान दोय। तहां मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति सोलह, बंध एक सौ सतरह, अबंध शून्य। सासादन विषैं व्युच्छित्ति पचीस (२५), बंध एक सौ एक (१०१), अबंध सोलह (१६)।

बहुरि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान – इनके मिथ्यादृष्टि अर सासादन विषैं व्युच्छित्ति इकतालीस, तिन बिना बंधयोग्य प्रकृति गुण्यासी (७९), गुण-स्थान नव – असंयतादिक क्षीणकषाय पर्यंत। तिनविषै व्युच्छित्ति अर बंध तौ गुण-स्थानवत् जानने। अबंध असंयतादिक विषै क्रम तै दोय, बारा, सोलह, बीस, इकईस, सत्तावन, बासठि, अठहत्तरि, अठहत्तरि जाननै।

बहुरि मनःपर्ययज्ञान विषै बंध-योग्य प्रमत्त-गुणस्थान विषै जिनिका बंध पाइए ते प्रकृति तरेसठि अर आहारकद्विक – ऐसैं पैंसठि (६५)। इहां आहारकद्विक का उदय विरुद्ध रूप है; बंध होने का अप्रमत्त, अपूर्व-करण विषैं विरुद्ध नाही। गुणस्थान प्रमत्तादि क्षीणकषाय पर्यंत सात, तिनविषैं व्युच्छित्ति अर बंध तौ गुणस्थान-रचना विषैं कह्या। सोई जानना। अबंध अनुक्रम तैं दोय, छह, सात, तियालीस (४३), अडतालीस (४८), चौसठि (६४) जानना।

बहुरि केवलज्ञान विषैं बंधयोग्य प्रकृति एक साता-वेदनीय, गुणस्थान दोय। तहां सयोगी विषै व्युच्छित्ति एक, बंध एक, अबंध नास्ति। अयोगी विषै व्युच्छित्ति बंध नास्ति; अबंध एक।

बहुरि संयम-मार्गणा विषैं असंयम विषैं बंधयोग्य प्रकृति एक सौ अठारह (११८) आहारकद्विक विना। गुणस्थान च्यारि असंयत पर्यंत। तिनविषै व्युच्छित्ति अर बंध तो गुणस्थान रचनावत् जानना। अबंध क्रम तै एक, सतरह, चवालीस, इकतालीस जानना। देश-संयत की रचना देशसंयत-गुणस्थात रचनावत् जाननी, व्युच्छित्ति च्यारि, बंध सतसठि (६७), अबंध तरेपन (५३)।

बहुरि सामायिक, छेदोपस्थापन विषै बंधयोग्य प्रकृति पैंसठि (६५)। प्रमत्त गुणस्थान में जिनका बंध पाइए ते तरेसठि अर आहारकद्विक जानना। गुणस्थान

प्रमत्तादिक च्यारि । तिनिविषै व्युच्छित्ति अर बंध तौ गुणस्थान रचनावत् जानना । अबंध अनुक्रम तै दोय, छह, सात, तियालीस जानना ।

बहुरि परिहारविशुद्धि विषै बधयोग्य प्रकृति तेई पैसठि (६५) । इहां तीर्थंकर, आहारकद्विक का बंध विरुद्ध नाही । आहारक का उदय विरुद्ध रूप है । गुणस्थान दोय प्रमत्त; अप्रमत्त, व्युच्छित्ति छह, एक । बंध तरेसठि, गुणसठि (५९) अबंध दोय, छह क्रम तैं जानना ।

सूक्ष्मसांपराय की रचना सूक्ष्मसापरायवत् जाननी । व्युच्छित्ति सोलह, बंध सतरह, अबंध एक सौ तीन (१०३) ।

बहुरि यथाख्यात-संयम विषै बंध-योग्य एक सातावेदनीय । गुणस्थान च्यारि उपशांत-कषायादिक, तहा व्युच्छित्ति अर बध तो गुणस्थानवत् जानना । अबंध अयोगी विषै एक और तीन गुणस्थाननि विषै नास्ति ।

बहुरि दर्शन-मार्गणा विषै चक्षु-अचक्षुदर्शन विषैं बंधयोग्य प्रकृति एक सौ बीस (१२०) । गुणस्थान क्षीणकषाय पर्यंत बारह, तिनकी रचना सर्व गुणस्थान रचनावत् जाननी । अवधि-दर्शन की रचना अवधिज्ञानवत् जाननी । बंधयोग्य गुण्यासी (७९), गुणस्थान असंयत आदि नव । केवल-दर्शन की रचना केवलज्ञानवत् जाननी । बंध-योग्य एक, गुणस्थान दोय ।

बहुरि लेश्या-मार्गणा विषै कृष्ण, नील, कपोत इन तीनों विषैं बंधयोग्य प्रकृति एकसौ अठारह (११८), आहारकद्विक बिना । गुणस्थान च्यारि असंयत पर्यंत । तिनविषै व्युच्छित्ति अर बध तौ गुणस्थानवत् जानने; अबंध एक, सतरह, चवालीस, इकतालीस जानने ।।११९।।

णवरि य सव्वुवसम्मे, णरसुरआऊणि णत्थि णियमेण ।
मिच्छस्संतिम णवयं, बारं णहि तेउपम्मेसु ।।१२०।।

सुक्के सदरचउक्कं, वामंतिमबारसं च ण व अत्थि ।
कम्मेव अणाहारे, बंधस्संतो अणंतो य ।।१२१।।

नवरि च सर्वोपशमे, नरसुरायुषी नास्ति नियमेन ।
मिथ्यात्वस्यांतिमं नवकं, द्वादश न हि तेजःपद्मयोः ।।१२०।।

शुक्लायां शतारचतुष्कं, वामांतिमद्वादश च न वा अस्ति ।
कर्म्म इव अनाहारे, बंधस्यांतोऽनंतश्च ।।१२१।।

टीका – तेजोलेश्या विषै बंधयोग्य प्रकृति एक सौ ग्यारह, मिथ्यादृष्टि विषै सोलह-प्रकृति की व्युच्छित्ति कही थी, तिनविषै आदि की सात प्रकृति का इहां बंध है । अंत की सूक्ष्म, अपर्याप्तादिक नव प्रकृतिनि का बंध नाही । गुणस्थान आदि के सात । तहां प्रथम गुणस्थान विषै व्युच्छित्ति सात, बंध एक सौ आठ, अबंध तीन । सासादनादिक अप्रमत्त पर्यंत विषै व्युच्छित्ति अर बंध तौ गुणस्थान रचनावत् जानना । अबंध दश, सैंतीस, चौंतीस, चवालीस, अठतालीस, बावन क्रम तैं जानना ।

बहुरि पद्मलेश्या विषै बंधयोग्य प्रकृति एक सौ आठ, मिथ्यादृष्टि की व्युच्छित्तिरूप सोलह प्रकृति, तिनविषै एकेंद्रियादिक अंत की बारह प्रकृति इहां बंधयोग्य नाही । गुणस्थान सात आदि के । तहां मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति च्यारि, बंध एक सौ पांच, अबंध तीन । ऊपरि सासादनादिक अप्रमत्त पर्यंत विषै व्युच्छित्ति अर बंध तौ गुणस्थानवत् जानना; अबंध सात, चौंतीस, इकतीस, इकतालीस, पैंतालीस, गुणचास – क्रम तैं जानना ।

बहुरि शुक्ललेश्या विषै बंधयोग्य प्रकृति एक सौ च्यारि, पूर्वोक्त एक सौ आठ मध्ये तिर्यंच-द्विक, तिर्यंच-आयु, उद्योत इस सदर-चउक्क बिना बंध जानना । गुणस्थान तेरह आदि के, तहां मिथ्यादृष्टि-विषै व्युच्छित्ति च्यारि, बंध एक सौ एक, अबंध तीन । सासादनविषैं सदर-चउक्क बिना व्युच्छित्ति इकईस, बंध सत्याणवै, अबंध सात । ऊपरि मिश्रादिक सयोगीपर्यंत विषै व्युच्छित्ति अर बंध तौ गुणस्थान रचनावत् जानना । अबंध तीस, सत्ताईस, सैंतीस, इकतालीस, पैंतालीस, छियालीस, बियासी; सत्यासी, एक सौ तीन, एक सौ तीन, एक सौ तीन – अनुक्रम तैं जानना ।

बहुरि भव्य-मार्गणा विषैं–भव्य कैं बंधयोग्य प्रकृति एक सौ बीस, गुणस्थान चौदह । तिनविषै रचना सर्वगुणस्थान रचनावत् जाननी । अभव्य विषै आहारकद्विक, तीर्थंकर बिना बंधयोग्य प्रकृति एक सौ सतरा, गुणस्थान एक–मिथ्यादृष्टि ही है ।

बहुरि सम्यक्त्वमार्गणा विषै प्रथमोपशम-सम्यक्त्व विषै बंधयोग्य प्रकृति सतहत्तरि, मिथ्यादृष्टि, सासादन विषैं व्युच्छित्ति इकतालीस अर **णवरिय सव्वुव सम्मे णरसुरआऊणि णत्थि णियमेण**, इस वचन तैं दोय आयु तौ पहिले व्युच्छित्ति भई थी अर सम्यग्दृष्टि कैं तिर्यंच, मनुष्यगति विषै तौ देवायु का बंध होइ अर नरक देवगति

विषै मनुष्य का बंध होइ सो प्रथम वा द्वितीय-उपशम-सम्यग्दृष्टि कै इन दोऊ आयु का भी बध नाही तातै बधयोग्य सतहत्तरि ही कही । ताकी रचना-असयत विषै व्युच्छित्ति नव, मनुष्यायु बिना बध पचहत्तरि, आहारकद्विक बिना अबध दोय । देश-संयत विषै व्युच्छित्ति च्यारि, बध छयासठि, अबध ग्यारह । प्रमत्त विषै व्युच्छित्ति छह, बध बासठि, अबध पन्द्रह । अप्रमत्त विषै व्युच्छित्ति शून्य, बध आहारकद्विक मिलै अट्ठावन, अबध उगणीस । इस रचना विषै तीर्थकर अर आहारक बध की विवक्षा जाननी । उपशम-सम्यक्त्वी के केई आचार्य तीर्थकर-प्रकृति का बध न मानै है, सो इहां विवक्षा नाही अर आहारकद्विक का उदय विरुद्ध है, बध विरुद्ध नाही । बहुरि द्वितीयोपशम-सम्यक्त्व – असयत, देश-सयत, प्रमत्त विषै श्रेणी तै उतरि नीचै आया ताकी अपेक्षा ही है अर अप्रमत्तादिक विषै श्रेणी चढने की वा उतरने की अपेक्षा पाइए है; तातै इहा गुणस्थान असयतादिक उपशात-कषायपर्यंत आठ जानने । बधयोग्य इहां भी सतहत्तरि प्रकृति ही जाननी । तहां असयत, देशसंयत, प्रमत्त, अप्रमत्त विषै तौ रचना प्रथमोपशम-सम्यक्त्व की रचना समान जाननी । अपूर्वकरण विषै व्युच्छित्ति छत्तीस, बंध अट्ठावन, अबध उगणीस अनिवृत्तिकरण विषै व्युच्छित्ति पाच, बंध बाईस, अबध पचावन । सूक्ष्मसापराय विषै व्युच्छित्ति, सोलह, बंध सतरा, अबंध साठि । उपशांतकषाय विषै व्युच्छित्ति शून्य, बध एक, अबध छिहत्तरि ।

इहां प्रश्न—जो प्रथम द्वितीय उपशम-सम्यक्त्व विषै आयु का बंध न कह्या तौ पूर्वै चढता अपूर्वकरण का प्रथम भाग विषै मरण करि रहित असा विशेषण निरर्थक कीया था ?

ताकां समाधान – जो पूर्वै मिथ्यादृष्टि आदि विषै जाकै देवायु का बध भया होइ असा जो सातिशय-अप्रमत्त ताकै श्रेणी चढाना सभवै है, तहा प्रथमोपशम-सम्यक्त्व विषै अर श्रेणी चढतै अपूर्वकरण का पहिला-भाग अतर्मुहूर्त प्रमाण तीहि विषै मरण न हो है, अन्यत्र उपशमश्रेणी विषै मरण हो है । बहुरि देवायु का बध सर्वत्र उपशमश्रेणी विषै न हो है, असा तहा भावार्थ जानना ।

बहुरि क्षयोपशम-सम्यक्त्व विषै बधयोग्य प्रकृति गुण्यासी, जातै [illegible] प्रकृति मिथ्यादृष्टि, सासादन विषै व्युच्छित्ति भई । तहा गुणस्थान असयतादिक च्यारि, जातै अपूर्वकरणादिक विषै उपशम-श्रेणी विषै उपशम सम्यक्त्व वा क्षायिक-सम्यक्त्व पाइए । क्षपकश्रेणी विषै क्षायिक सम्यक्त्व ही पाइए । तहा तिन [illegible]-

दिक विषै व्युच्छित्ति अर वध तौ गुणस्थान रचनावत् जानने । अवंध दो, वारह, सोलह, वीस – अनुक्रम तै जानने ।

बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व विषै भी बंधयोग्य प्रकृति गुण्यासी, इकतालीस प्रकृति मिथ्यादृष्टि-सासादन विषै व्युच्छित्ति भई, तिन विना जाननी । गुणस्थान असंयतादिक अयोगी पर्यंत ग्यारह वा सिद्ध जानने । तिनविषै व्युच्छित्ति अर बंध तौ गुणस्थान रचनावत् जानने । अवंध अनुक्रम तै दोय, वारह, सोलह, वीस, इकईस, सत्तावन, वासठि, अठहत्तरि, अठहत्तरि, अठहत्तरि, गुण्यासी जाननै ।

मिथ्याश्रद्धान की रचना मिथ्यादृष्टि-गुणस्थानवत् । तहां व्युच्छित्ति सोलह, वंघ एक सौ सतरह, अवंध तीन । सासादन-सम्यक्त्व की रचना सासादन-गुणस्थानवत् । तहां व्युच्छित्ति पच्चीस, वंध एक सौ एक, अवंध उगणीस । मिश्र-सम्यक्त्व की रचना मिश्र-गुणस्थानवत् । तहां व्युच्छित्ति शून्य, वंध चहोत्तरि, अवंध छियालीस ।

वहुरि संज्ञीमार्गणा विषै – संज्ञी विषै तौ वंधयोग्य प्रकृति एक सौ वीस गुणस्थान वारह आदि के तहां सर्व रचना गुणस्थान रचनावत् जानना । बहुरि असंज्ञी विषैं वंधयोग्य प्रकृति आहारक-द्विक, तीर्थंकर विना एक सौ सतरह, गुणस्थान दोय । तहां मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति उगणीस । सासादन विषै असंज्ञी-मिश्रयोगी ही होइ तातैं तहां च्यारि आयु का वंध नाही, सो नरक आयु तौ सोलह में आई गई; तातैं तीन और वंधी । वहुरि वंध एक सौ सतरह, अवंध शून्य । सासादन विषैं व्युच्छित्ति गुणतीस विकलेंद्रियवत्, वंध अठ्याणवै, अवंध उगणीस ।

वहुरि आहारमार्गणा विषै आहार विषैं वंधयोग्य प्रकृति एक सौ बीस, गुणस्थान तेरह सयोगी पर्यंत । तहां व्युच्छित्ति, वंध, अवंध गुणस्थान रचनावत् जानना । अनाहार विषैं वंधयोग्य प्रकृति एक सौ वारह कार्माणयोग विषैं वंधयोग्य कही थी, तेई इहां जानना । गुणस्थान पांच – मिथ्यादृष्टि, सासादन, अविरत, सयोगी – इन च्यारि विषै तो रचना कार्माणयोग की रचना समान जानना किछू विशेष नाही । अयोगी विषै व्युच्छित्ति अर वंध तो शून्य अर अवंध एक सौ वारह ।

ऐसै वेदमार्गणा तें आहारमार्गणा पर्यंत वंध का 'अंत' कहिए व्युच्छित्ति, 'अनंत' कहिए वंध, 'च' कहिए वहुरि अवंध कहे ते जानने ।

आगै मूल-प्रकृतिनि के सादि-अनादि बध के विशेष कहै हैं—

सादि अणादी धुव अद्धुवो य बंधो[1] दु कम्मछक्कस्स ।
तदियो सादियसेसो, अणादिधुवसेसगो आऊ ॥१२२॥

सादिरनादिः ध्रुवोऽध्रुवश्च बंधस्तु कर्मषट्कस्य ।
तृतीयः सादिकशेषोऽनादिध्रुवशेषक आयु ॥१२२॥

टीका – सादिबंध, अनादि-बध, ध्रुव-बंध, अध्रुव-बध – असै प्रकृति-बध च्यारि प्रकार है । तहा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, नाम, गोत्र, अतराय – इनकै तौ च्यारि-च्यारि प्रकार बध है । वेदनीयकर्म के सादिबध नाही, और तीन प्रकार बंध है, जातै उपशम-श्रेणी का चढने-उतरने विषै साता की अपेक्षा निरन्तर वेदनीय का बध है, तातै सादिपणा संभवै नाही । आयुकर्म का अनादि अर ध्रुवबंध नाही, सादि अर अध्रुव बध ही है, जातै एक पर्याय विषै एक बार वा दोय बार उत्कृष्ट आठ बार बंधै, तातै सादि है । अतर्मुहूर्त पर्यत ही बधै, तातै अध्रुव है ।

आगै इनि बधनि के लक्षण कहै है—

सादी अबंधबंधे, सेढिअणारुढगे अणादी हु ।
अभव्वसिद्धम्हि धुवो, भवसिद्धे अद्धुवो बंधो ॥१२३॥

---

१. मूल-प्रकृतियो मे सादि आदि ४ बधकृत भेद – गाथा १२२ के आधार से—

बध भेद	ज्ञाना-वरण	दर्शना-वरण	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अन्तराय
सादि बध	है	है	नही	है	है	है	है	है
अनादि बध	है	है	है	है	नही	है	है	है
ध्रुव बध	है	है	है	है	नही	है	है	है
अध्रुव बध	है	है	है	है	है	है	है	है

सादिरबंधबंधे, श्रेण्यनारोहके अनादिर्हि ।
अभव्यसिद्धे ध्रुवो, भव्यसिद्धेऽध्रुवो बंधः ।।१२३।।

टीका – जिस कर्म के वंध का अभाव होइ करि बहुरि वध होइ तहां तिस कर्म के वंध की सादि कहिए । जैसें ज्ञानावरण की पाच प्रकृति तिनका वंध सूक्ष्म-सांपराय-गुणस्थान पर्यंत जीव कै था, पीछैं सोई जीव जव उपशांतकपाय-गुणस्थान कौं प्राप्त भया, तव ज्ञानावरण के वंध का अभाव भया, पीछे सोई जीव उतरि करि सूक्ष्म-सांपराय कौं प्राप्त भया तहां वहुरि वाकै ज्ञानावरण का वंध भया – तहां तिस वंध कौं सादि कहिए । ग्रैसै ही ग्रौर प्रकृतिनि का जानना ।

वहुरि जिस गुणस्थान विषै जिस कर्म की व्युच्छित्ति होइ, तिस गुणस्थान के अनंतरि ऊपरि जो गुणस्थान ताकौ श्रेणी कहिए, सो तहां अनारूढ कहिए अप्राप्त भया ग्रैसा जो जीव, ताके तिस कर्म का अनादि-वंध जानना । जैसें ज्ञानावरण की व्युच्छित्ति सूक्ष्मसांपराय का अंत-समय विषै है, ताके अनंतरि ऊपरि उपशांत-कपाय-गुणस्थान ताकौ जो जीव प्राप्त न भया, ताकै ज्ञानावरण का अनादि-वंध है । ग्रैसै ही ग्रौर प्रकृतिनि का जानना ।

वहुरि अभव्यसिद्ध जो अभव्यजीव तीहि विषै ध्रुववंध जानना, जातै निःप्रति-पक्ष जे निरन्तर वंधी कर्मप्रकृति, तिनिका वंध अभव्य जीव कै अनादि-अनंत पाइए है ।

वहुरि भव्यसिद्ध विषैं अध्रुव-वंध है, जातैं भव्य-जीव कैं वंध का अभाव भी पाइए वा वंध पाइए । जैसै ज्ञानावरण पंचक की सूक्ष्मसांपराय विषै वंध की व्युच्छित्ति भई, ग्रैसै इनका स्वरूप जानना ।

आगै उत्तर-प्रकृतिनि विषै कहैं हैं–

घादितिमिच्छकसाया, भयतेजगुरुदुगणिमिणवण्णचओ ।
सत्तेत्तालधुवाणं, चदुधा सेसाणयं तु दुधा[1] ।।१२४।।

घातित्रिमिथ्यात्वकषाया, तेजोऽगुरुद्विकनिर्माणवर्णचतुष्कं ।
सप्तचत्वारिंशदध्रुवाणां, चतुर्धा शेषाणां तु द्विधा ।।१२४।।

१–टिप्पणी १५३ पृष्ठ पर देखें ।

टीका – ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय इनकी प्रकृति उगणीस, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय अर जुगुप्सा, तैजस अर कार्माण, अगुरुलघु अर उपघात, निर्माण वर्णादिक च्यारि – ए सैंतालिस प्रकृति ध्रुव है । सो इनका तौ च्यारि प्रकार बंध पाइए है, यावत् बध विषै व्युच्छित्ति न होइ तावत् इन प्रकृतिनि का समयप्रबद्ध विषै समय-समय प्रति बंध होइ ही होइ, यातै इन प्रकृतिनि कौ ध्रुव कहिए है ।

बहुरि इन बिना अवशेष रही जै प्रकृति – वेदनीय दोय, मोहनीय की सात, च्यारि-आयु, च्यारि गति, पांच जाति, औदारिक-वैक्रियिक-आहारक की शरीर अर अंगोपाग करि दोय, दोय-दोय, छह संस्थान, छह सहनन, च्यारि आनुपूर्वी, परघात-आतप-उद्योत-उच्छ्वास – ए च्यारि, विहायोगति दोय, त्रस-स्थावर दोय, बादर-सूक्ष्म दोय, पर्याप्त-अपर्याप्त दोय, प्रत्येक-साधारण दोय, स्थिर-अस्थिर दोय, सुभग-दुर्भग दोय, शुभ-अशुभ दोय, सुस्वर-दु स्वर दोय, आदेय-अनादेय दोय, यशःकीर्ति-अयश:कीर्ति दोय, तीर्थंकर, गोत्रकर्म की दोय – ए तेहत्तरि अध्रुव है । इन प्रकृतिनि के सादि-बध अर अध्रुव-बंध दोय ही पाइए है । इनि प्रकृतिनि का किसी समय विषै बंध होइ किसी समय विषै बध न होइ तातै इनकौ अध्रुव कहिए ।

आगै इनिविषै अप्रतिपक्ष वा सप्रतिपक्ष भेद कहै है–

सेसे तित्थाहारं, परघादचउक्क सव्वआऊणि ।
अप्पडिवक्खा[1] सेसा, सप्पडिवक्खा हु बासट्ठी ।।१२५।।

पृष्ठ १५२ की टिप्पणी—

उत्तरप्रकृतियो मे सादि आदि बधकृत भेद – गाथा १२४ के आधार से—

सादि बध	अनादि बध	ध्रुव बध	अध्रुव बध
ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ९, अन्तराय ५, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तेजस, कार्मण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, वर्णादिक ४ । कुल ४७	यही ४७	यही ४७	यही ४७ तथा वेदनीय २, मोहनीय ७, आयु ४, गोत्र २, नाम ५५ । कुल ७३

१–टिप्पणी १५४ पृष्ठ पर देखें ।

शेषासु तीर्थाहारं, परघातचतुष्कं सर्वायूंषि ।
अप्रतिपक्षाः शेषाः, प्रतिपक्षा हि द्वाषष्टिः ।।१२५।।

टीका – सैंतालिस ध्रुवप्रकृति बिना अवशेष रही तिहत्तरि प्रकृति – तिनविषैं तीर्थंकर, आहारक-द्विक, परघातादिक च्यारि, आयु च्यारि – ए ग्यारह प्रकृति अप्रतिपक्ष हैं – इनिकै कोई प्रतिपक्ष नाही; तातैं इन प्रकृतिनि का जिस काल विषैं बंध होइ तिस काल विषै अपना-अपना बंध होइ। जिस काल विषैं न होइ तिस काल विषै न होइ। जैसै तीर्थंकर का बंध जिस काल विषै होइ तिस काल विषैं तीर्थंकर का बंध होइ, न होइ तब न होइ।

बहुरि अवशेष रही बासठि प्रकृति ते सब सप्रतिपक्ष हैं – इनके प्रतिपक्षी पाइए हैं; तातैं परस्पर प्रतिपक्षीनि विषै एक समय विषैं एक ही का बंध होइ। जैसैं – सातावेदनीय-असातावेदनीय परस्पर प्रतिपक्षी हैं, तहां एक समय विषै कै तौ साता का बंध होइ कै असाता का बंध होइ, दोऊनि का न होइ। मोहनीय विषै रति-अरति प्रतिपक्षी हैं, हास्य-शोक प्रतिपक्षी है, तीन वेद परस्पर प्रतिपक्षी हैं, इन विषै एक-एक ही का बंध होइ। नाम विषै च्यारि गति परस्पर प्रतिपक्षी हैं, पांच जाति परस्पर प्रतिपक्षी है, इत्यादि त्रस-स्थावर परस्पर प्रतिपक्षी हैं, इत्यादिक विषैं एक-एक ही का बंध जानना। दोय गोत्र विषैं एक ही का बंध एक समय विषै जानना ऐसैं सप्रतिपक्षनि का बंध जानना।

प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध कौं कारण योग स्थान, तिनकी चतुःस्थानपतित वृद्धि-हानि करि अर स्थिति-अनुभाग बंध कौं कारण अध्यवसाय स्थान, तिनकी षट्

पृष्ठ १५३ की टिप्पणी—

अप्रतिपक्षादि कृत भेद – गाथा १२५ आधार से –

अप्रतिपक्ष प्र०	सप्रतिपक्ष प्र०	अनुभय प्र०
तीर्थंकर, आहारकद्विक, परघातादि ४, आयु ४	वेदनीय २, नाम ५८, गोत्र २	ज्ञानावरण ५ दर्शनावरण ९ मोहनीय २८ अन्तराय ५
कुल ११	६२	४७

स्थानपतित वृद्धि हानि करि पलटनि हो है; तातै साता-असाता की ज्यो तीन वेद इत्यादि विषै भी सप्रतिपक्षपना जानना । कदाचित् किसी प्रकृति का बध होइ कदाचित् किसी का बंध होइ ॥१२५॥

आगै इन अध्रुव प्रकृति के सादि अर अध्रुव बध ही कह्या सो कौन कारण ? सो कहै हैं —

अवरो भिण्णमुहुत्तो, तित्थाहाराण सव्वआऊणं ।
समओ छावट्ठीणं, बंधो तम्हा दुधा सेसा ॥१२६॥

अवरो भिन्नमुहूर्तः, तीर्थाहाराणां सर्वायुषां ।
समयः षट्षष्टीनां, बंधः तस्मात् द्विधा शेषाः ॥१२६॥

टीका – तीर्थकर, आहारकद्विक, च्यारि आयु – इन सात प्रकृतिनि का निरंतर-बंध काल जघन्यपनै अतर्मुहूर्त प्रमाण है । समय-समय कर्मनि का बंध है, सो इन सात प्रकृति का वंध जब होने लगै तब जघन्यपनै निरतर अतर्मुहूर्त काल पर्यंत वध होइ । वहुरि अवशेष रही छयासठि प्रकृति, तिनका निरतर-बध का काल एक समय है, जिसका किसी एक समय विषै बंध भया, द्वितीयादिक समय विषै तिस प्रकृति का वध होइ वा न होइ, इस कारण तै तेहत्तरि अध्रुव प्रकृतिनि कै सादि-वध अर अध्रुव वध सिद्ध भया ॥१२६॥

ऐसै प्रकृति-बंध का स्वरूप जानना । इति प्रकृतिबंधः समाप्तः ।

—❀—

आगै स्थिति बध कौ कहै है, तहां प्रथम ही मूल-प्रकृतिनि की उत्कृष्ट स्थिति कहै है —

तीसं कोडाकोडी, तिघादितदियेसु वीस णामदुगे ।
सत्तरि मोहे सुद्धं, उवही आउस्स तेतीसं[1] ॥१२७॥

त्रिंशत् कोटिकोटयः, त्रिघातितृतीयेषु विंशतिर्नामद्वये ।
सप्ततिर्मोहे शुद्ध, उदधिः आयुषः त्रयस्त्रिंशत् ॥१२७॥

---

१ आदितस्तिसृणामतरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटच परा स्थिति । मोक्ष० ८-१४। सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥८-१५॥ विंशतिर्नामगोत्रयो ॥८-१६॥ त्रयस्त्रिशत्सागरोमण्यायु प ॥८-१६॥ इनका चार्ट अर्थसदृष्टि अधिकार मे देखिये ।

टीका – उत्कृष्ट स्थितिबंध – ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय, वेदनीय इन विषै तीस कोडा-कोडी सागर प्रमाण है। नामगोत्र विषै वीस कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण है। मोहनीय विषैं सत्तरि कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण है। आयु विषै शुद्ध कोडा-कोडी विशेपण रहित, केवल तेतीस सागर प्रमाण है ॥१२७॥

आगैं उत्तर-प्रकृतिनि विषै छह गाथानि करि कहै हैं –

दुक्खतिघादीणोघं, सादिच्छीमणुदुगे तदद्धं तु ।
सत्तरि दंसणमोहे, चरित्तमोहे य चत्तालं ॥१२८॥

संठाणसंहदीणं, चरिमस्सोघं दुहीणमादित्ति ।
अट्ठरसकोडकोडी, वियलाणं सुहुमतिण्हं च ॥१२९॥

अरदीसोगे संढे, तिरिक्खभयणिरयतेजुरालदुगे ।
वेगुव्वादावदुगे, णीचे तसवण्णअगुरुति चउक्के ॥१३०॥

इगिपंचेंदियथावर, णिमिणासग्गमणअथिरछक्काणं ।
वीसं कोडाकोडी, सागर णामाणमुक्कस्सं ॥१३१॥

हस्सरदिउच्चपुरिसे, थिरछक्के सत्थगमणदेवदुगे ।
तस्सद्धमंतकोडा, कोडी आहारतित्थयरे ॥१३२॥

सुरणिरयाऊणोघं, णरतिरियाऊण तिण्णि पल्लाणि ।
उक्कस्सट्ठिदिबंधो, सण्णीपज्जत्तगे जोगे ॥१३३॥

दुःखत्रिघातिनामोघः, सातस्त्रीमनुष्यद्विके तदर्धं तु ।
सप्ततिः दर्शनमोहे, चारित्रमोहे च चत्वारिंशत् ॥१२८॥

संस्थानसंहतीनां, चरमस्यौघः द्विहीनमादीति ।
अष्टादशकोटीकोटिः, विकलानां सूक्ष्मत्रयाणां च ॥१२९॥

अरतिशोके षण्ढे, तिर्यग्भयनिरयतेजऔरालद्वये ।
वैगूर्विकातपद्विके, त्रसवर्णागुर्विति चतुष्के ॥१३०॥

एकपंचेंद्रियस्थावर, निर्माणासद्गमनास्थिरषट्कानां ।
विंशं कोटोकोटी, सागरः नाम्नामुत्कृष्टं ॥१३१॥

हास्यरत्युच्चपुरुषे, स्थिरषट्के शस्तगमनदेवद्विके ।
तस्यार्धमंतःकोटी कोटिः, आहारतीर्थंकरे ।।१३२।।

सुरनिरयायुषोरोघः, नरतिर्यगायुषोः त्रीणि पल्यानि ।
उत्कृष्टस्थितिबंधः, संज्ञिपर्याप्तके योग्ये ।।१३३।।

टीका – उत्कृष्ट स्थिति बंध कहै है – सो असातावेदनीय अर ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय इनकी उगणीस प्रकृति – इनि बीस प्रकृतिनि का 'ओघं' कहिए मूल-प्रकृतिवत्, तीस कोडाकोडी सागर प्रमाण है । सातावेदनीय, स्त्री-वेद, मनुष्य-गति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी – इन च्यारिनि का, तदर्ध कहिए पद्रह कोडाकोडी सागर प्रमाण है । दर्शन-मोह-बध विषै एक प्रकार ही है मिथ्यात्व । तिस मिथ्यात्व का सत्तरि कोडाकोडी सागर प्रमाण है । चारित्र-मोहनीय रूप सोलह कषायनि का चालीस कोडाकोडी सागर प्रमाण है ।

संस्थान, संहनन तिनविषै अत का हुडक संस्थान, सृपाटिका सहनन, इनिका मूल प्रकृतिवत् बीस कोडा कोडी सागर प्रमाण है । अवशेष विषै दोय-दोय घाटि है । तहां वामन संस्थान, कीलित सहनन का अठारह । कुब्ज सस्थान, अर्धनाराच संहनन का सोलह । स्वातिसस्थान-नाराचसहनन का चौदह । न्यग्रोध परिमडल सस्थान, वज्रनाराचसंहनन का बारा । समचतुरस्रसस्थान, वज्रवृषभनाराचसंहनन का दश कोडाकोडी सागर प्रमाण है ।

बेद्री, तेद्री, चौद्री, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त – इन छह का अठारह कोडा-कोडी सागर प्रमाण है । बहुरि अरति, शोक, नपु सक वेद, तिर्यंच गति वा आनुपूर्वी, भय अर जुगुप्सा, नरकगति वा आनुपूर्वी, तैजस अर कार्माण, औदारिक शरीर वा अंगोपाग, वैक्रियिक शरीर वा अगोपाग, आतप अर उद्योत, नीचगोत्र, त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येक – ए च्यारि, वर्णादिक च्यारि, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास – ए च्यारि, एकेद्री, पचेद्री, स्थावर, निर्माण, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दु.स्वर, अनादेय, अयश कीर्ति – ए छह इन इकतालीस प्रकृतिनि का बीस कोडाकोडी सागर प्रमाण है ।

बहुरि हास्य, रति, उच्चगोत्र, पुरुष वेद, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर-आदेय-यश-स्कीर्ति – ए छह, प्रशस्तविहायोगति, देवगति वा आनुपूर्वी – इन तेरह का तदर्ध कहिए दश काडाकोडी सागर प्रमाण है । आहारक शरीर वा अंगोपाग अर तीर्थंकर

। तीनों का अंत.कोटाकोटी कहिए कोडि के ऊपर कोडाकोडी के नीचै इतनै सागर
गाण है । देवायु नरकायु का 'ओघः' कहिए मूलप्रकृतिवत् तेतीस सागर प्रमाण है ।
यँचायु, मनुष्यायु का तीन पल्य प्रमाण है ।

अैसें इनि प्रकृतिनि का उत्कृष्ट-स्थिति-बंध कह्या सो अैसा उत्कृष्ट स्थिति-
। संज्ञी-पंचेंद्री-पर्याप्त-जीव ही कै हो है । असंज्ञी वा अपर्याप्त के संभवता उत्कृष्ट-
यति-बंध आगें वर्णन करेंगे सो भी योग्य जीव कै होइ । **योग्य कहने करि सर्व ही
र्म संसार कौ कारण हैं; तातै शुभाशुभ कर्मनि की उत्कृष्ट स्थिति च्यारि गति-
ले उत्कृष्ट-संक्लेशपरिणाम के धारक जीवनि करि ही बांधिए है ऐसा भावार्थ
ानना ।।१२८-१३३।।**

इहां विशेष कहे है -

सव्वट्ठिदीणमुक्कस्सओ दु उक्कस्ससंकिलेसण ।
विवरीदेण जहण्णो, आउगतियवज्जियाणं तु ।।१३४।।

सर्वस्थितीनामुत्कृष्टकस्तु उत्कृष्टसंक्लेशेन ।
विपरीतेन जघन्य, आयुष्कत्रयवर्जितानां तु ।।१३४।।

टीका - बहुरि तिर्यंचायु, मनुष्यायु, देवायु बिना और सर्व एक सौ सतरह
कृति तिनका उत्कृष्ट स्थिति बंध यथासभव उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम करि हो है ।
हुरि जघन्य स्थिति बध उत्कृष्ट विशुद्ध परिणाम करि हो है । बहुरि तिन तीनों
ायुनि का उत्कृष्ट स्थिति बंध उत्कृष्ट विशुद्ध परिणाम करि हो है, जघन्य स्थिति-
ध तीहि सो विपरीत रूप परिणाम करि हो है ।।१३४।।

उत्कृष्ट स्थिति बध कौन कै हो है ? सो कहैं है —

सव्वुक्कस्सठिदीणं, मिच्छाइट्ठी दु बंधगो भणिदो ।
आहारं तित्थयरं, देवाउं वा विमोत्तूणं ।।१३५।।

सर्वोत्कृष्टस्थितीनां, मिथ्यादृष्टिस्तु बंधको भणितः ।
आहारं तीर्थंकरं, देवायुषं वा विमुच्य ।।१३५।।

टीका - आहारक द्विक, तीर्थंकर, देवायु - इन च्यारि प्रकृतिनि बिना अवशेष
एक सौ सोलह प्रकृतिनि की उत्कृष्ट स्थिति कौं मिथ्यादृष्टि जीव ही बांधै है । बहुरि
तिन च्यारि प्रकृतिनि की उत्कृष्ट स्थिति कौं सम्यग्दृष्टि ही बांधै है ।।१३५।।

तहां भी विशेष कहै है —

देवाउगं पमत्तो, आहारयमप्पमत्तविरदो दु ।
तित्थयरं च मणुस्सो, अविरदसम्मो समज्जेइ ॥१३६॥

देवायुषं प्रमत्त, आहारकमप्रमत्तविरतस्तु ।
तीर्थंकरं च मनुष्य, अविरतसम्यक् समर्जयति ॥१३६॥

टीका – देवायु की उत्कृष्ट-स्थिति कौ अप्रमत्त गुणस्थान चढने कौ सन्मुख भया असा प्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीव बांधै है । यद्यपि अप्रमत्त गुणस्थान विषै भी देवायु का बंध है, तथापि तहां सातिशय अप्रमत्त विषै तौ तीव्र विशुद्ध परिणाम पाइए है; तातैं तहां तो देवायु का बंध हो नाही अर निरतिशय अप्रमत्त विषै बंध है, तथापि उत्कृष्ट स्थिति बंध होइ नाही, तातै तहां न कह्या । बहुरि आहारकद्विक उत्कृष्ट स्थिति सहित ताकौ प्रमत्त गुणस्थान कौ सन्मुख भया असा अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती संक्लेशपरिणामी जीव बाधै है, जातै तीन आयु बिना और प्रकृतिनि की उत्कृष्ट स्थिति, उत्कृष्ट संक्लेशकरि बंधै है सो आहारकद्विक का बंध करने वाले जीवनि विषै जो प्रमत्त को सन्मुख भया अप्रमत्त ताही कै उत्कृष्ट संक्लेश है, तातै तिस ही कै उत्कृष्ट स्थितिसहित आहारकद्विक का बंध कह्या । बहुरि उत्कृष्ट स्थिति सहित तीर्थंकर-प्रकृति कौ नरकगति जाने कौ सन्मुख भया असा असंयत-सम्यग्दृष्टि-मनुष्य सोई बांधै है । जातै तीर्थंकर प्रकृति बंध करने वाले जीवनि विषै वाकै तीव्र-संक्लेश पाइए है ॥१३६॥

अवशेष एक सौ सोलह प्रकृति, तिनिकौ उत्कृष्ट स्थिति सहित मिथ्यादृष्टि ही बांधै हैं, तिनिका कथन दोय गाथानि करि कहै है —

णरतिरिया सेसाउं, वेगुव्वियछक्कवियलसुहुमतियं ।
सुरणिरया ओरालिय, तिरियदुगुज्जोवसंपत्तं ॥१३७॥

देवा पुण एइंदिय, आदावं थावरं च सेसाणं ।
उक्कस्ससंकिलिट्ठा, चदुगदिया ईसिमज्झिमया ॥१३८॥

नरतिर्यंचः शेषायुषं, वैगूर्विकषट्कविकलसूक्ष्मत्रयं ।
सुरनिरयाः औदारिकं, तिर्यग्द्वयोद्योतासंप्राप्तं ॥१३७॥

देवाः पुनरेकेंद्रियातपं स्थावरं च शेषाणां ।
उत्कृष्ट संक्लिष्टाः, चातुर्गतिका ईषन्मध्यमकाः ।।१३८।।

टीका – नरकायु, मनुष्यायु, तिर्यंचायु अर नरकगति वा आनुपूर्वी, देवगति वा आनुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर वा अंगोपांग यह वैक्रियिक षटक, अर बेद्री, तेंद्री, चौद्री यह विकलत्रय अर सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण यह सूक्ष्मत्रय इन पंद्रह प्रकृतिनि कौं उत्कृष्ट स्थिति सहित मनुष्य वा तिर्यंच मिथ्यादृष्टि बांधै है । बहुरि औदारिक शरीर वा अंगोपाग, तिर्यंच गति वा आनुपूर्वी, उद्योत, सृपाटिका संहनन, इनकौं उत्कृष्ट स्थिति सहित मिथ्यादृष्टि देव वा नारक जीव बांधै है । बहुरि एकेंद्रिय आतप, स्थावर इन तीनों कौं उत्कृष्ट स्थिति सहित मिथ्यादृष्टि देव बांधे है । अवशेष रही बाणवै प्रकृति तिनकौ उत्कृष्ट संक्लेशी वा ईषत् मध्यम संक्लेशी च्यार्यो गति के जीव बांधै हैं । इहां उत्कृष्ट, ईषत् मध्यम सक्लेशी परिणामनि का स्वरूप कहैं हैं—

'उक्कस्ससंकिलिट्ठस्य ईसिमज्झिमपरिणामस्स वा उक्कस्सट्ठिदिबंधो होदि ।'

उत्कृष्ट संक्लेश परिणामनि का धारक वा ईषत् मध्यम परिणामनि का धारक मिथ्यादृष्टि जोव ताकें उत्कृष्ट स्थितिवंध हो है ।

उक्कस्सट्ठिदिबंधपाउग्गअसंखेज्जलोगपरिणामाणं पलिदोवमस्स असंखेज्जभाग-मेत्ताणि खंडाणि कादूण तत्थ चरमखंडस्स उक्कस्ससंकिलेसो णाम, पढमखंडस्स ईसिसंकिलेसो णाम दोण्हं विच्चालखंडाणं मज्झिमसंकिलेसो णामेत्ति उच्चदि ।

स्थितिबंध कौ कारण तीव्रमंदादिक रूप स्थिति बंधाध्यवसाय स्थान, तिन विषैं उत्कृष्ट स्थिति बंध कौं कारण असंख्यात लोक प्रमाण परिणाम है । तिनके पल्य के असंख्यातवे भाग प्रमाण खंड कीजिए, तिन विषै जो अंत के खंड विषैं जेते परिणाम पाइए, बहुत कषाय रूप तिनकौ उत्कृष्ट संक्लेश ऐसा नाम कहिए । बहुरि प्रथम खंड विषै जेते परिणाम पाइए थोरे कषायरूप, तिनकौ ईषत् संक्लेश ऐसा नाम कहिए । दोऊ खंडनि के वीचि जे खंड है, तिन विषै जे परिणाम पाइए यथासंभव कषायरूप तिनका मध्यम संक्लेश ऐसा नाम कहिए है ।

'एवं सेससव्वट्ठिदिवियप्पेसु वत्तव्वं ।

ऐसें ही उत्कृष्ट तें लगाइ एक-एक समय घटता जघन्य स्थिति पर्यंत जेते स्थिति के भेद हैं, तिन सवनि विषैं ऐसें ही कहना ।

'एत्थ सव्वपयडीसु सगसगट्ठिदिवियप्पो उड्ढगच्छो होदि तिरियगच्छो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो होदि । गुणहाणी आयामो पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागो होदि । एत्थ अणुकट्ठिरयणाविहाणं अधापवत्तकरणं व वत्तव्वं ।

इन सर्व प्रकृतिनि विषै अपनी-अपनी स्थिति के भेदनि का प्रमाण सो ऊर्ध्व गच्छ हो है । तिर्यक् गच्छ पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण हो है । गुणहानि का आयाम पल्य के असख्यातवे भाग प्रमाण हो है । इहा अनुकृष्टि रचना का विधान अधःप्रवृत्तकरणवत् कहना । सो कहिए है—

जैसे जीवकांड विषै गुणस्थान प्ररूपणा विषै सातिशय अप्रमत्त के अध:प्रवृत्त-करण का स्वरूप कह्या है । तहा अकसदृष्टि करि कथन दिखाया है, तैसे ही इहां अंकसंदृष्टि करि कथन का स्वरूप जानना । जैसे अंकसदृष्टि विषै सर्व धन का प्रमाण तीन हजार बहत्तरि (३०७२) है, तैसे इहा सर्व स्थितिबधाध्यवसाय स्थाननि का जितना प्रमाण असख्यात लोक प्रमाण है, तितना सर्व धन का प्रमाण जानना ।

बहुरि जैसे ऊर्ध्वगच्छ का प्रमाण सोलह कहे, तैसे इहां विवक्षित कर्म की जघन्य स्थितिस्यों लगाई एक-एक समय बधता उत्कृष्ट स्थिति पर्यंत जेते स्थिति के भेद होहि तितना ऊर्ध्वगच्छ जानना । बहुरि जैसे गच्छ का वर्ग दोय सौ छप्पन अर संख्यात की सहनानी तीन, इनका सर्व धन कौ भाग दीए च्यारि पाए सो चय का प्रमाण च्यारि है । तैसे इहा जो ऊर्ध्वगच्छ का प्रमाण कह्या, ताका वर्गकरि, ताकौ सख्यात गुणा कीजै, पीछै वाका भाग सर्व धन कौ दीए जो प्रमाण होई, तितना चय जानना । एक-एक ऊर्ध्व रचना विषै इतना-इतना बधता जानना ।

बहुरि जैसे एक घाटि गच्छ पद्रह का आधा करि ताकौ चय का प्रमाण च्यारि करि गुणिए जो प्रमाण तीस होइ, ताकौ गच्छ सोला करि गुणें च्यारि सौ असी होइ, सो चयधन का प्रमाण जानना । याकौ सर्व धन मैंस्यो घटाए दोय हजार पाच सै बाणवै (२५९२) रहै, इनकौ गच्छ सोलह का भाग दीए एक सौ बासठि (१६२) पाए, सो आदि विषै जानना । तैसे इहां जो गच्छ का प्रमाण कह्या, तामै एक घटाय वाके आधे करि, ताकौ जो चय का प्रमाण कह्या, ताकरि गुणै जो प्रमाण होइ, ताकौ गच्छ करि गुणै, जो प्रमाण होय, सो चयधन जानना । इस चयधन कौ सर्व धन मेस्यों घटाए, जो प्रमाण रहे ताकौ, गच्छ के प्रमाण का

भाग दीए, जो प्रमाण आवै, तितने अध्यवसाय स्थान जघन्य स्थिति बंध कौ कारण है ।

बहुरि जैसे आदि विषै एक चय च्यारि मिलाएं दूसरे स्थानक एक सौ छयासठि होई, तैसे इहा जघन्य स्थितिबध कौ कारण अध्यवसाय स्थाननि का जो प्रमाण कह्या, तामै पूर्वोक्त चय ३१ प्रमाण मिलाए जो प्रमाण होइ, तितने अध्यवसाय स्थान जघन्य स्थितिस्यों एक समय बधती दूसरी स्थिति, ताका बंध के कारण जानने । यामें एक चय मिलें जघन्य तै दोय समय बधती तीसरी स्थिति के बंध कौं कारण अध्यवसाय स्थान जानने । ऐसे उत्कृष्ट स्थिति पर्यंत एक-एक चय बधावना । । अंक-संदृष्टि विषै जैसें १६२, १६६, १७०, १७४, १७८, १८२, १८६, १९०, १९४, १९८, २०२, २०६, २१०, २१४, २१८, २२२ रचना हैं, तैसे इहां भी जानने ।

बहुरि जैसे अंकसंदृष्टि विषै तिर्यक् गच्छ का प्रमाण च्यारि है, तैसें इहां तिर्यक् गच्छ का प्रमाण पल्य के असंख्यातवे भाग प्रमाण जानने । इस तिर्यक् गच्छ कौं अनुकृष्टि गच्छ भी कहिए है । सो जैसे अनुकृष्टि गच्छ जो च्यारि, ताका भाग ऊर्ध्व रचना विषै चय का प्रमाण च्यारि कह्या था, ताकौ दीजिए, तब एक पाया, सो एक अनुकृष्टि विषै चय जानना । तैसे इहां तिर्यग्गच्छ का पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण कह्या, ताका भाग पूर्वोक्त चय के प्रमाण कों दीए जो प्रमाण आवै, तितना अनुकृष्टि विषै चय जानना ।

बहुरि जैसे अनुकृष्टि का गच्छ च्यारि मेंस्यों एक घटाय, ताकौ आधा करि, चय करि अर गच्छ करि गुणें, छह होइ, सो अनुकृष्टि विषैं चयधन जानना । याकौं अनुकृष्टि का सर्वधन एक सौ बासठ मेंस्यों घटाय एक सौ छप्पन रहे, ताकौं अनुकृष्टि गच्छ जो च्यारि, ताका भाग दीए गुणतालीस पाए, सो तिस प्रथम स्थानक का प्रथम खंड जानना; तैसे इहां अनुकृष्टि गच्छ मेंस्यों एक घटाय आधा करि, ताकौं अनुकृष्टि गच्छ का चय करि वा गच्छ करि गुणें जो प्रमाण होइ, सो अनुकृष्टि विषै चयधन जानना । याकौं जघन्य स्थितिबंध कौं कारण अध्यवसायस्थाननि का प्रमाण तिनमैस्यों घटाए जो प्रमाण रहे, ताकौ अनुकृष्टि गच्छ का भाग दीए जो प्रमाण होइ, सो जघन्य स्थिति बंधकौं कारण अध्यवसाय स्थान, तिनका प्रथम खंड जानना सो इनकौं ईषत् संज्ञा है ।

बहुरि जैसे गुणतालीस विषै अनुकृष्टि का एक चय मिलाए चालीस भया, सो दूसरा खड, यामे एक चय मिलाए इकतालीस भए, सो तीसरा खंड; तैसे ही प्रथम खंड विषै अनुकृष्टि का चय मिलाए दूसरा खड होइ, यामैं एक चय मिलाए तीसरा खंड होइ, ऐसे एक घाटि अत का खड पर्यंत जेते खड होइ, तिनकौ **मध्यम** संज्ञा है। बहुरि जैसे अक के खंड विषै बियालीस हो है, तैसे जो प्रमाण होइ, ताकौ उत्कृष्ट सज्ञा है। ऐसे जघन्य स्थिति सबधी परिणामनि विषै खड कहे।

बहुरि जैसे दूसरे स्थानकी एक सौ छयासठि, ताके च्यारि खडनि विषै चालीस, इकतालीस, बियालीस, ऐसा प्रमाण है, तैसे इहां भी जघन्यस्यो एकसमय बधती दूसरी स्थिति कौ कारण अध्यवसाय तिनके खडनि विषै पूर्वोक्त विधान करि प्रमाण जानना।

ऐसे ही विधान करते, जैसे अत के स्थान विषै दोय सौ बाईस प्रमाण होइ, तिसके खडनि का चौवन, पचावन, छप्पन, सत्तावन (५४, ५५, ५६, ५७) प्रमाण होइ। तैसे इहां एक-एक ऊर्ध्वचय कों बधावता उत्कृष्ट स्थितिबंध कौ कारण, अध्यवसाय स्थानकनि का जो प्रमाण होइ, ताके पूर्वोक्त विधान करि प्रथम खंड कौ ईषत् संक्लेश संज्ञा है, मध्य के खडनि कौ **मध्यम संक्लेश** सज्ञा है। अंत के खंड कौ **उत्कृष्ट संक्लेश** संज्ञा है। सो अध करणवत् इहा भी नीचली स्थिति कौं कारण अध्यवसाय, तिनकै ऊपरली स्थिति कौ कारण अध्यवसायनि सहित संख्या करि वा संक्लेश विशुद्धता करि समानपना जानना। इस समानपने ही कौ **अनुकृष्टि** कहिए है। सो यंत्र वा विशेष कथन, जैसे अधःकरण विषै कीया है, तैसे इहां भी अर्थ का निश्चय करना ॥ १३७–१३८ ॥

आगे मूलप्रकृतिनि का जघन्य स्थितिबध कौ कहै है—

बारस य वेयणीये, णामागोदे य अट्ठ य मुहुत्ता।
भिण्णमुहुत्तं तु ठिदी, जहण्णयं सेसपंचण्हं[1] ॥१३९॥

द्वादश च वेदनीये, नामगोत्रे अष्ट च मुहूर्ताः।
भिन्नमुहूर्तस्तु स्थितिः, जघन्या शेषपंचानां ॥१३९॥

---

१ अपरा द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य। नामगोत्रयोरष्टौ। शेषाणामन्तर्मुहूर्ता। तत्त्वार्थसूत्र अधिकार ८, सूत्र–१८-१९-२०। इनका चार्ट अर्थसदृष्टि अधिकार मे देखिये।

टीका – जघन्य स्थितिबंध वेदनीय विषै बारह मुहूर्त, नाम अर गोत्र विषै आठ मुहूर्त है, अवशेष पच कर्मनि का जघन्य स्थितिबंध एक-एक अंतर्मुहूर्त प्रमाण है ॥१३९॥

आगे उत्तरप्रकृतिनि का जघन्य स्थितिबंध च्यारि गाथानि करि कहैं हैं—

लोहस्स सुहुमसत्तरसाणं ओघं दुगेकदलमासं ।
कोहतिये पुरिसस्स य, अट्ठ य वस्सा जहण्णठिदी ॥१४०॥

लोभस्य सूक्ष्मसप्तदशानामोघः द्विकैकदलमासः ।
क्रोधत्रये पुरुषस्य च, अष्ट च वर्षाणि जघन्यस्थितिः ॥१४०॥

टीका – लोभ अर सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान विषै जिनिका बंध पाइए, असी सतरह प्रकृति, तिनका जघन्य स्थितिबंध मूलप्रकृतिवत् जानना । तहां यशस्कीर्ति अर उच्चगोत्र का तौ आठ-आठ मुहूर्त, साता वेदनीय का बारह मुहूर्त, अवशेष पंच ज्ञानावरण, च्यारि दर्शनावरण, पंच अंतराय, सूक्ष्म लोभ इनिका एक-एक अंतर्मुहूर्त प्रमाण जघन्य स्थितिबंध जानना । बहुरि क्रोध का दोय मास, मान का एक मास, माया का आधा मास, पुरुष वेद का आठ वर्ष प्रमाण जघन्य स्थितिबंध है ॥१४०॥

तित्थाहाराणंतो, कोडाकोडी जहण्णठिदिबंधो ।
खवगे सगसगबंधच्छेदणकाले हवे णियमा ॥१४१॥

तीर्थाहाराणामंतः, कोटीकोटिः जघन्यस्थितिबंधः ।
क्षपके स्वकस्वकबंध, च्छेदनकाले भवेन्नियमात् ॥१४१॥

टीका – तीर्थंकर, आहारक द्विक इन तीन प्रकृतिनि का जघन्य स्थितिबन्ध अंतः कोटाकोटी प्रमाण है । अंतः कोटाकोटी के भेद घने हैं; तातै जघन्य भी इतना ही कह्या । बहुरि यहु कह्या जो जघन्य स्थितिबन्ध सो सर्व क्षपकश्रेणीवाले कैं अपनी-अपनी बन्ध की व्युच्छित्ति का जो समय, तिस विषैं हो है नियम करि ॥१४१॥

भिण्णमुहुत्तो णरतिरियाऊणं वासदससहस्साणि ।
सुरणिरयआउगाणं, जहण्णओ होदि ठिदिबंधो ॥१४२॥

भिन्नमुहूर्तो नरतिर्यगायुषोर्वर्षदशसहस्राणि ।
सुरनिरयायुषोः जघन्यको भवति स्थितिबंधः ॥ १४२॥

टीका – मनुष्यायु, तिर्यंचायु का जघन्य स्थितिबध अंतर्मुहूर्त प्रमाण है। देवायु नरकायु का दश हजार वर्ष प्रमाण है ॥१४२॥

सेसाणं पज्जत्तो, बादरएइंदियो विसुद्धो य।
बंधदि सव्वजहण्णं, सगसगउक्कस्सपडिभागे ॥१४३॥

शेषाणां पर्याप्तो, बादरेकेंद्रियो विशुद्धश्च।
बध्नाति सर्वजघन्यं, स्वकस्वकोत्कृष्ट प्रतिभागे ॥१४३॥

टीका – गुणतीस प्रकृतिनि का तो जघन्य स्थितिबध ऊपर कह्या, अवशेष इक्याणवै का रह्या, तिनविषै वैक्रियिक षट्क अर एक मिथ्यात्व – इन सात बिना चउरासी प्रकृतिनि का जघन्य स्थितिबध बादर एकेंद्री पर्याप्तक यथायोग्य विशुद्धता का धारक जीव करै है, सो अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति का प्रतिभाग करि त्रैराशिक विधानतै जो-जो प्रमाण होइ सो-सो जघन्यस्थिति का प्रमाण जानना ॥१४३॥

सोई कहिए हैं —

एयं पणकदि पण्णं, सयं सहस्सं च मिच्छवरबंधो।
इगिविगलाणं अवरं, पल्लासंखूणसंखूणं ॥१४४॥

एकं पंचकृतिः पंचाशत्, शतं सहस्रं च मिथ्यात्ववरबंधः।
एकविकलानामवरः, पल्यासंख्योनसंख्योनं ॥१४४॥

टीका – मिथ्यात्व प्रकृति की उत्कृष्ट स्थिति एकेंद्री जीव एक सागर प्रमाण बांधै है। बेंद्री जीव 'पचकृति' कहिए पचीस सागर प्रमाण बाधै है। तेंद्री जीव पचास सागर प्रमाण बांधै है। चौंद्री जीव सौ सागर प्रमाण बांधै है। असंज्ञी पंचेंद्री जीव एक हजार सागर प्रमाण बांधै है। बहुरि संज्ञी पचेंद्री पर्याप्त जीव ही सत्तर कोडाकोडी सागर प्रमाण बाधै है।

बहुरि मिथ्यात्व की जघन्य स्थिति एकेंद्री जीव तौ अपनी उत्कृष्ट स्थिति तै पल्य के असख्यातवे भाग प्रमाण घाटि बाधै है। अर बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, असज्ञी पंचेंद्री अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति तै पल्य के सख्यातवे भाग प्रमाण घाटि बाधै है ॥१४४॥

सो सज्ञी पचेंद्री कै उत्कृष्ट स्थितिबध है, तीहि की अपेक्षा करि एकेंद्रिया-दिक जीवनि कै उत्कृष्ट वा जघन्य स्थितिबध का प्रमाण कहै हैं —

जदि सत्तरिस्स एत्तियमेत्तं किं होदि तीसियादीणं।
इदि संपाते सेसाणं इगिविगलेसु उभयठिदी ।।१४५।।

यदि सप्ततेः एतावन्मात्रं किं भवति त्रिंशदादीनां।
इति संपाते शेषाणामेकविकलेषूभयस्थितिः ।।१४५।।

टीका – सत्तर कोडाकोडी सागर उत्कृष्ट स्थिति का धारी मिथ्यात्व नामा कर्म जो एकेंद्री जीव कै एक सागर प्रमाण स्थिति लीए वंधै तौ तीस इत्यादिक कोडाकोडी सागर की स्थिति के धारी कर्म, एकेंद्री-जीव कै कितने प्रमाण स्थिति लीए वंधै, ऐसें त्रैराशिक करना। इहां प्रमाणराशि सत्तरि कोडाकोडी सागर, फलराशि एक सागर, इच्छाराशि विवक्षित कर्म की चालीस वा तीस वा वीस इत्यादि कोडाकोडी सागर प्रमाण जितनी उत्कृष्ट स्थिति होइ सो जानना। तहां फलराशि कौं इच्छाराशि करि गुणै प्रमाण का भाग दिए जो-जो प्रमाण आवै, तितनी-तितनी उत्कृष्ट स्थिति एकेंद्री जीव कै वंधै है। तहां सोलह कपायनि की उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोडाकोडी सागर की है, सो याकौ इच्छाराशि करि पूर्वोक्त प्रकार कीजिए, तव सोलह कषायनि की एकेंद्री जीव कै एक सागर का सात भाग कीजिए, तिनमें च्यारि भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति वंधै है।

वहुरि तैसें ही तीस कोडाकोडी सागर उत्कृष्ट स्थिति के धारक आसातावेदनीय वा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय की उगणीस प्रकृति इनकी एकेंद्री जीव कै उत्कृष्ट स्थिति एक सागर का सात भाग कीजिए, तिनमें तीन भाग प्रमाण वंधै है। वहुरि ऐसें ही जिनकी संज्ञी पंचेंद्री के वीस कोडाकोडी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति कही थी, तिनकी एक सागर का सात भाग में दोय भाग प्रमाण वंधै है। वहुरि पंद्रह कोडाकोडी सागर प्रमाण जिनकी उत्कृष्ट स्थिति कही थी, तिनकी एक सागर का सत्तरि भाग में पंद्रह भाग प्रमाण वंधै है। जिनकी अठारह कोडाकोडी प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति कही थी, तिनकी एक सागर का सत्तरि भाग में अठारह भाग प्रमाण वंधै है।

ऐसे ही सोलह, चौदह, वारह, दस, कोडाकोडी सागर प्रमाण जिनकी स्थिति कही थी, तिनकी एकेंद्री जीव कै एक सागर के सत्तरि भाग में सोलह, चौदह, वारह, दस भाग प्रमाण क्रम तैं उत्कृष्ट स्थितिवंध जानना।

बहुरि बेंद्री जीव कै सत्तरि कोडाकोडी सागर उत्कृष्ट स्थिति का धारी मिथ्यात्व की पचीस सागर उत्कृष्ट स्थितिबध भया, तौ तीस इत्यादिक कोडाकोडी सागर स्थिति के धारी कर्म तै बेंद्री जीव कै कितने प्रमाण स्थिति बध लीए बधै, असे त्रैराशिक करिए तहा प्रमाणराशि सत्तरि कोडाकोडी सागर, फलराशि पचीस सागर प्रमाण, इच्छाराशि विवक्षित कर्म की उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण, सो फल करि इच्छा कौ गुणै प्रमाण का भाग दीए जो-जो प्रमाण आवै, तितनी-तितनी उत्कृष्ट स्थिति बेंद्री जीव कै बधै है। सो जिनकी चालीस कोडाकोडी सागर की स्थिति थी, तिनकौ सौ सागर का सातवां भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति बधै है। तिनकी तीस कोडाकोडी सागर की स्थिति थी, तिनकी पिचहत्तरि सागर का सातवां भाग प्रमाण बंधै है। असे ही सर्व कर्मनि की एकेंद्री तै पचीस गुणी स्थिति बेंद्री की जाननी।

बहुरि तेंद्री कै तैसे ही प्रमाणराशि अर इच्छाराशि तौ पूर्वोक्त प्रकार अर याके मिथ्यात्व की स्थिति पचास सागर की उत्कृष्ट बंधै है, तातै फलराशि पचास सागर प्रमाण कीएं जो-जो प्रमाण आवै, तितनी-तितनी उत्कृष्ट स्थिति बंधै है। सो फलराशि पूर्व फलराशि तै दूणी है, तातै बेंद्री के स्थितिबंध तै तेंद्री के स्थिति-बंध सर्व कर्मनि का दूणा-दूणा जानना।

बहुरि चौंद्री कै प्रमाणराशि अर इच्छाराशि तौ पूर्वोक्त प्रकार अर याकै मिथ्यात्व की स्थिति सौ सागर प्रमाण बधै है; तातै फलराशि सौ सागर प्रमाण सो इहां फलराशि पूर्वोक्त फलराशि तै दूणी है; तातै तेंद्री के स्थितिबंध सर्व कर्मनि का दूणा-दूणा जानना।

बहुरि असञ्ज्ञी पचेंद्री के प्रमाणराशि अर इच्छाराशि तौ पूर्वोक्त प्रमाण ही अर याकै मिथ्यात्व की स्थिति हजार सागर प्रमाण बंधै है; तातै फलराशि हजार सागर। सो इहा फलराशि पूर्व फलराशि तै दश गुणी है, तातै चौंद्री के स्थितिबंध तै असंज्ञी पचेंद्री कै स्थितिबंध सर्व कर्मनि का दश-दश गुणा जानना। असे ही जघन्य स्थितिबंध भी एकेंद्रियादिक जीवनि कै त्रैराशिक-विधान करि साधना ॥१४५॥

तहा जघन्य स्थितिबध विषै किछू विशेष सभवै है, सो कहै है —

सण्णि असण्णिचउक्के, एगे अंतोमुहुत्तमाबाहा।
जेट्ठे संखेज्जगुणा, आवलिसंखं असंखभागहियं ॥१४६॥

संज्ञिनि असंज्ञिचतुष्के, एके अंतर्मुहूर्तं आबाधा ।
ज्येष्ठे संख्येयगुणा, आवलिसंख्यमसंख्यभागाधिकं ।।१४६।।

टीका – संज्ञी-पंचेंद्री जीवनि विषै जघन्य आबाधा अंतर्मुहूर्त प्रमाण है । जातैं संज्ञी-पंचेंद्री जीव कैं जघन्य स्थितिबंध कर्मनि का अंतःकोटाकोटी सागर प्रमाण है । सो इतनी स्थिति की आबाधा अंतर्मुहूर्त प्रमाण ही आगै कहैगे । **कर्मबंध भए पीछै यावत् काल उदयरूप वा उदीरणारूप न प्रवर्तै, ताकौं आबाधा कहिए ।**

बहुरि एकेंद्रियादिक की स्थिति तैं बेंद्रियादिक की स्थिति संख्यात गुणी है; तातैं इस संज्ञी पंचेंद्री जीव की आबाधा तैं असंज्ञी पंचेद्री, चौंद्री, तेंद्री, बेंद्री, एकेंद्री जीवनि कैं आबाधा संख्यात गुणी घाटि संख्यात गुणी घाटि अनुक्रम तैं जाननी । परंतु सब का प्रमाण अंतर्मुहूर्त ही कहिए, जातै अंतर्मुहूर्त के भेद घने हैं । जातै एकेंद्री की जघन्य आबाधा तैं बेंद्रियादिक की जघन्य आबाधा क्रम तैं पचीस, पचास, सौ, हजार गुणी है – तातै उलटा क्रम लीए संख्यात गुणी घाटि जाननी ।

बहुरि उत्कृष्ट आबाधा, जघन्य आबाधा के प्रमाण तैं संज्ञी जीव विषै तौ संख्यात गुणी है । असंज्ञी पंचेंद्री, चौंद्री, तेंद्री, बेंद्री विषैं अपनी-अपनी जघन्य आबाधा तैं आवली का संख्यातवां भाग प्रमाण अधिक उत्कृष्ट आबाधा है । सो यहु उत्कृष्ट आबाधा भी क्रम तैं संख्यात गुणी घाटि संख्यात गुणी घाटि जाननी ।

बहुरि एकेंद्रिय जीव विषै अपनी जघन्य आबाधा तै आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण अधिक उत्कृष्ट आबाधा जाननी । तहां एकेंद्रिय जीव कै उत्कृष्ट आबाधा का प्रमाण मेंस्यों जघन्य आबाधा का प्रमाण घटाए, जो प्रमाण रहै, तामैं एक और मिलाए जो प्रमाण होइ, तितने आबाधा के भेद एकेंद्री जीव के जानने ।

ऐसें ही बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, असंज्ञी, संज्ञी कैं अपनी-अपनी उत्कृष्ट आबाधा के प्रमाण मेंस्यो अपनी-अपनी जघन्य आबाधा का प्रमाण घटाए, तामै एक और मिलाए आबाधा के भेदनि का प्रमाण हो है । इहां करणसूत्र —

'आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजदे ठाणा' आदि कौं अंत मेंस्यों घटाइ, वृद्धि का भाग देइ, एक और मिलाए, स्थानकौं का प्रमाण होइ । सो इहां आदि जघन्य आबाधा, ताकौं अंत जो उत्कृष्ट आबाधा, तामेंस्यों घटाइ । बहुरि इहां जघन्य

तैं एक-एक समय बधतैं उत्कृष्ट भेद हो है; तातैं वृद्धि का प्रमाण एक, ताका भाग दीएं तितने ही रहैं, तिनमै एक मिलाएं, आबाधा के भेदरूप स्थाननि का प्रमाण हो है ।।१४६।।

असैं सर्व मन में धारि जघन्य स्थितिबध का साधनभूत करणसूत्र कहै हैं —

जेट्ठाबाहोवट्टियजेट्ठं आवाहकंडयं तेण ।
आबाहवियप्पहदेणेगुणेणूणजेट्ठमवरठिदी ।।१४७।।

ज्येष्ठाबाधोद्वर्तितज्येष्ठमाबाधाकांडकं तेन ।
आबाधाविकल्पहतेन, एकोनेन ऊनज्येष्ठमवरस्थितिः ।।१४७।।

टीका – एकेंद्रियादिक जीव तिनकै अपनी-अपनी उत्कृष्ट आबाधा का जो प्रमाण कह्या, ताका भाग अपनी-अपनी कर्मनि की उत्कृष्ट स्थिति कौ दीए जो-जो प्रमाण आवैं, सो-सो आबाधाकाडक का प्रमाण जानना । इतने-इतने स्थिति भेदनि विषै एकरूप आबाधा का प्रमाण पाइए है । तिस अपने-अपनें आबाधाकाडक के प्रमाण करि, पूर्वैं कह्या जो अपना-अपना आबाधा के भेदनि का प्रमाण, ताकौ गुणैं जो-जो प्रमाण होइ, तामेंस्यों एक-एक घटाए जो-जो प्रमाण रहै, तितना-तितना अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति मेंस्यों घटाएं जो-जो प्रमाण रहै, तितना-तितना जघन्य स्थितिबध का प्रमाण जानना । सोई दिखाइए है –

एकेंद्री जीव कै मिथ्यात्व की उत्कृष्ट आबाधा का प्रमाण आवली का असंख्यातवा भाग करि अधिक अतर्मुहूर्त प्रमाण कह्या, ताका भाग मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति एक सागर प्रमाण, ताकौ दीजिए जो प्रमाण आवै, तितना आबाधाकाडक का प्रमाण जानना । इस आबाधाकाडक के प्रमाण कौ पूर्वैं जो एकेद्रिय के आबाधा के भेदनि का प्रमाण कह्या था, तीहिकरि गुणिए जो प्रमाण होइ, तामेंस्यो एक घटाए जो प्रमाण रहै, तितनी मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति एक सागर प्रमाण, तामेंस्यो घटाएं जो प्रमाण रहै, सो एकेंद्री जीव कै मिथ्यात्व की जघन्य स्थिति का प्रमाण जानना । सो एक सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति मेस्यों इस जघन्य स्थिति का प्रमाण घटाय अवशेष रहै, ताकौ एक का भाग दीए तेता ही रह्या । याकौ एक अधिक कीए एकेंद्री जीव कै मिथ्यात्व की स्थिति के भेदनि का प्रमाण हो है । जघन्य तै लगाइ एक-एक समय बधता उत्कृष्ट पर्यंत एकेंद्री के मिथ्यात्व की स्थिति के भेद इतनें जानने ।

वहुरि ग्रैसैं ही वेंद्री जीव कै मिथ्यात्व को उत्कृष्ट ग्रावाधा का प्रमाण, च्यारि बार संख्यात का भाग जाकौ दीजिये ग्रैसी ग्रावली मात्रकरि ग्रधिक पचीस ग्रंतर्मुहूर्त प्रमाण है। यद्यपि यहु ग्रावाधा एक ग्रंतर्मुहूर्त प्रमाण ही है, तथापि एकेंद्री जीव कें ग्रावाधा का जैसा ग्रंतर्मुहूर्त है, तैसा पचीस अंतर्मुहूर्त जानना। जातें एकेंद्री तें वेंद्री कें पचीस गुणा कर्मनि का स्थितिवंध है। सो इहां एकेंद्री के कथन की ग्रपेक्षा पचीस ग्रंतर्मुहूर्त कहे है, ग्रैसैं ही ग्रागें भी जानना। सो इस ग्रावाधा काल का भाग वेंद्री कै उत्कृष्ट मिथ्यात्व की स्थिति पचीस सागर प्रमाण है, ताकौ दीए ग्रावाधाकांडक का प्रमाण होइ। याकरि वेंद्री संवंधी ग्रावाधा के भेदनि का प्रमाण कौं गुणें जो प्रमाण होइ, तामैं एक घटाइ ग्रवशेष रहे तिनकौं उत्कृष्ट पचीस सागर प्रमाण स्थिति मेंस्यों घटाए जो ग्रवशेष रहै, तितना वेंद्री कै मिथ्यात्व का जघन्य स्थितिवंध जानना। इस जघन्य को उत्कृष्ट मैंस्यों घटाइ ग्रवशेष कौ एक एक ग्रधिक कीए, वेंद्री संवंधी मिथ्यात्व की सर्व स्थिति के भेदनि का प्रमाण हो है।

वहुरि तेंद्री जीव कै मिथ्यात्व की उत्कृष्ट ग्रावाधा तीन वार संख्यात का भाग जाकौं दीजिए अैसी ग्रावली करि ग्रधिक पचास ग्रंतर्मुहूर्त प्रमाण है, ताका उत्कृष्ट मिथ्यात्व की पचास सागर स्थिति कौ भाग दीए जो प्रमाण होइ, सो ग्रावाधा कांडक का प्रमाण है। याकरि तेंद्री संवन्धी ग्रावाधा के भेदनि का प्रमाण कौ गुणें जो प्रमाण होइ, तामैं एक घटाएं ग्रवशेप रहै, तिनकौं उत्कृप्ट पचास सागर मिथ्यात्व की स्थिति, तामैं घटाइ जो प्रमाण रहे, सो तेंद्री के मिथ्यात्व की जघन्य स्थिति का प्रमाण जानना। इस जघन्य स्थिति कौ उत्कृष्ट स्थिति मेंस्यों घटाए ग्रवशेप कौं एक ग्रधिक कीए, तेंद्री कै मिथ्यात्व की स्थिति के सर्व भेदनि का प्रमाण हो है।

वहुरि चौंद्री जीव के दोय वार संख्यात का भाग जाकौं दीजिए अैसी ग्रावली करि ग्रधिक सौ ग्रंतर्मुहूर्त प्रमाण मिथ्यात्व की उत्कप्ट ग्रावाधा है, याका मिथ्यात्व उत्कृप्ट स्थिति सौ सागर प्रमाण ताकौं भाग दीए जो प्रमाण होइ, सो ग्रावाधा-कांडक का प्रमाण है। याकरि चौंद्री संवन्धी ग्रावाधा के भेदनि का प्रमाण कौ गुणे जो प्रमाण होइ तामैं एक घटाए ग्रवशेप रहै, तिनकौं उत्कृप्ट सौ सागर की स्थिति मेंस्यों घटाए जो प्रमाण रहै, सो चौंद्री कैं जघन्य स्थिति का प्रमाण जानना। इस जघन्य स्थिति कौं उत्कप्ट स्थिति मेंस्यों घटाए ग्रवशेप को एक ग्रधिक कीए चौंद्री कै मिथ्यात्व की सर्व स्थिति के भेदनि का प्रमाण हो है।

बहुरि असज्ञी पंचेंद्री कैं मिथ्यात्व की उत्कृष्ट आबाधा आवली का सख्यातवा भाग करि अधिक हजार अतर्मुहूर्त प्रमाण है । याका मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति हजार सागर प्रमाण, ताकौ भाग दिए जो प्रमाण होइ, सो आबाधाकांडक का प्रमाण जानना । याकरि असंज्ञी सबन्धी आबाधा के भेदनि का प्रमाण कौ गुणें जो प्रमाण होइ, तामें एक घटाए अवशेष रहे तिनकौ उत्कृष्ट सागर की स्थिति मेंस्यो घटाए अवशेष प्रमाण रहै, सो असंज्ञी कै मिथ्यात्व की जघन्य स्थिति का प्रमाण जानना । इस जघन्य स्थिति कौ उत्कृष्ट स्थिति मैंस्यों घटाए अवशेष रहे, तिनमें एक मिलाए असंज्ञी कै मिथ्यात्व की स्थिति के सर्व भेदनि का प्रमाण हो है ।

अैसें यहु अर्थ प्रगट जानवे में आवै है, तथापि बहुरि अकसदृष्टि करि दिखाइये है —

उत्कृष्ट स्थिति का प्रमाण चौसठि समय, अर तरेसठि समयस्यों लगाइ छियालीस समय पर्यंत मध्य स्थिति का प्रमाण, अर जघन्य स्थिति का प्रमाण पैंतालीस समय अर उत्कृष्ट आबाधा का प्रमाण सोलह समय । सो इस आबाधा का भाग उत्कृष्ट स्थिति कौ दीजिए, तब च्यारि पाए, सो च्यारि आबाधाकाडक का प्रमाण जानना ।

आबाधाकाडक कहा कहिए ? — जितने स्थिति के भेदनि विषै एक प्रमाण कौ लीए आबाधा होई, सोई आबाधाकाडक का प्रमाण जानना ।

सोई दिखाइए है – चौसठि, तरेसठि, बासठि, एकसठि समय की स्थितिरूप च्यारि स्थिति के भेद, तिनविषै तो सोलह-सोलह समय प्रमाण आबाधा पाइए । बहुरि साठि सौ सतावन पर्यत च्यारि स्थिति कै भेदनि विषै पद्रह-पद्रह समय प्रमाण आबाधा पाइए । बहुरि छप्पन तै तरेपन पर्यंत च्यारि स्थिति के भेदनि विषै चौदह-चौदह समय प्रमाण आबाधा पाइए। बहुरि बावन तै गुणचास पर्यंत च्यारि स्थिति के भेदन विषै तेरह-तेरह समय प्रमाण आबाधा पाइए । बहुरि अठतालीस तै पैंता-लीस पर्यंत च्यारि स्थिति के भेदनि विषै बारह-बारह समय प्रमाण आबाधा पाइए । अैसै आबाधाकाडक का प्रमाण च्यारि जानना ।

बहुरि आबाधा के भेदनि का प्रमाण कहिए है —

जघन्य आबाधा बारह समय प्रमाण, उत्कृष्ट आबाधा सोलह समय प्रमाण तहा **'आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा'** इस सूत्र करि तहा आदि जघन्य

आबाधा, सो अंत उत्कृष्ट आवाधा में घटाए अवशेष च्यारि रहे, ताकी भेदनि विषै वृद्धि का प्रमाण एक समय, सो एक का भाग दिए तितने ही रहे, यामै एक मिलाय पंच भये, सो पंच आबाधा के भेदनि का प्रमाण जानना। याकरि आबाधाकांडक कौं गुणै सर्व स्थिति के भेदनि का प्रमाण बीस भया। सो प्रथम भेद में किछू हानि-वृद्धि है नाही; तातै एक घटाए अवशेष उगणीस रहे, सो उगणीस उत्कृष्ट स्थिति चौंसठि मेंस्यों घटाए अवशेष पैंतालीस रहे, सोई जघन्य स्थिति का प्रमाण जानना।

अथवा जघन्य स्थिति विषैं उगणीस मिलाएं चौसठि भए, सोई उत्कृष्ट स्थिति का प्रमाण जानना। सो जैसै अंकनि की सहनानी करि कथन दिखाया है, तैसै ही पूर्वोक्त कथन का अर्थ नीके जानना। स्थिति का प्रमाण वा आबाधाकाडक का प्रमाण, तहां कह्या है, सो जानना। स्वरूप असा ही जानना। जितने स्थिति के भेदनि विषैं एक प्रमाण को लीएं आबाधा होइ, सोई आवाधाकाडक का प्रमाण जानना, आबाधा के भेद जघन्य तै लगाइ उत्कृष्ट पर्यंत जितने होंहि, तितने ही जानने, और सर्वप्रकार जैसै कह्या तैसै जानना।

या प्रकार एकेंद्रियादिक जीवनि कै सर्व प्रकृतिनि का स्थितिवंध जानना।

अव त्रैराशिक करि अन्य प्रकृतिनि का जघन्य स्थितिवन्ध दिखाइए है —

सत्तर कोडाकोडी सागर प्रमाण स्थिति का धारक मिथ्यात्व नामा कर्म की एकेद्री जीव एक घाटि पल्य का असख्यातवां भाग जामैं घटाइए, असा एक सागर प्रमाण जघन्य स्थिति कौं जो वांधै, तो चालीस, तीस, वीस, अठारह, सोलह, पंद्रह, चौदह, वारह, दश कोडाकोडी सागर प्रमाण स्थिति के धारक कर्मनि की जघन्य स्थिति कौं एकेद्री जीव कितनी वांधै ? सो प्रमाणराशि तौ सत्तरि कोडाकोडी सागर, फलराशि एकेद्री संवन्धी मिथ्यात्व की जघन्य स्थिति का प्रमाण, इच्छा-राशि चालीस, तीस कोडाकोडी सागर आदि देकरि जिस-जिस कर्म की जघन्य स्थिति एकेंद्री कै जाननी होइ, तिस-तिस कर्म की संज्ञी संवंधी उत्कृष्ट स्थिति का प्रमाण।

सो असै फलराशि करि इच्छाराशि कौं गुणै प्रमाणराशि का भाग दीए, जितना-जितना लब्धराशि विषै प्रमाण आवे, तितना-तितना, तिस-तिस कर्मनि का जघन्य स्थितिवंध एकेंद्री जीव कै जानना। तहां प्रमाणराशि सत्तरि कोडाकोडी

सागर, फलराशि एकेंद्री सबधी मिथ्यात्व की जघन्य स्थिति का प्रमाण, इच्छाराशि चालीस कोडाकोडी सागर प्रमाण । तहां फल कौ इच्छाराशि तै गुणै प्रमाण का भाग दीए जो प्रमाण लब्धराशि का भया, सो प्रमाण जिनकी चालीस कोडाकोडी की स्थिति उत्कृष्ट है । अैसें सोलह कषाय, तिनकी जघन्य स्थिति का प्रमाण एकेंद्री जीव कै जानना ।

असें ही तीस, बीस, अठारह, सोलह, पंद्रह, चौदह, बारह, दश कोडाकोडी सागर प्रमाण क्रम तै इच्छाराशि का प्रमाण कीए जो-जो प्रमाण आवे, सो-सो तिस-तिस स्थिति के धारक कर्मनि की जघन्य स्थिति का प्रमाण एकेंद्री जीव कै जानना ।

असें ही बेंद्री, तेंद्री,चौद्री, असज्ञी पंचेंद्री जीव विषै कर्मनि का जघन्य स्थिति-बंध जानना । विशेष इतना जो एकेंद्री का कथन विषै फलराशि का प्रमाण एकेंद्री सबंधी मिथ्यात्व की जघन्य स्थिति का प्रमाण कह्या था । बेंद्री का कथन विषै फल राशि का प्रमाण बेंद्री सबधी मिथ्यात्व की जघन्य स्थिति का प्रमाण जानना । तेंद्री का कथन विषै फलराशि का प्रमाण तेंद्री सबन्धी मिथ्यात्व की जघन्य स्थिति का प्रमाण जानना । चौद्री का कथन विषै फलराशि का प्रमाण चौद्री सबन्धी मिथ्यात्व की जघन्य स्थिति का प्रमाण जानना । असंज्ञी पचेंद्री का कथन विषै फलराशि का प्रमाण असज्ञी सबन्धी मिथ्यात्व की जघन्य स्थिति का प्रमाण जानना ।

बहुरि बेंद्रियादिक का कथन विषै प्रमाणराशि का प्रमाण अर इच्छाराशि का प्रमाण एकेंद्रीवत् सर्व जानना ।

असे त्रैराशिक कीए जो-जो लब्धराशि का प्रमाण आवै सो-सो बेंद्रियादिक जीवनि कै कर्मनि की जघन्य स्थिति का प्रमाण जानना ।।१४७।।

असै एकेंद्रियादिक जीवनि कै स्थिति कही, तिसके जघन्य तै लगाइ उत्कृष्ट पर्यंत जेते-जेते भेद होहि तिनका स्थापन करि, तिनविषै बादर-सूक्ष्म तौ एकेंद्री अर बेंद्री अर तेंद्री अर चौद्री अर सज्ञी-असज्ञी पचेंद्री, इनकै पर्याप्त-अपर्याप्त के भेद तै चौदह जीवसमास भए, तिनकै जघन्य वा उत्कृष्ट स्थिति बध कौ भाग करि दिखावैं है –

बासूप-बासूअ-वरट्ठिदीओ, सूबाअ-सूबाप-जहण्णकालो ।
बीबीवरो बीबिजहण्णकालो, सेसाणमेवं वयणीयमेदं ।।१४८।।

बासूप-बासूअ-वरस्थितिः, सूबाअ-सूबाप-जघन्यकालः ।
बीबीवरः बीबिजघन्यकालः, शेषाणामेवं वक्तव्यमेतत् ।।१४८।।

टीका — 'बा' कहिए बादर 'सू' कहिए सूक्ष्म 'प' कहिए ए दोऊ पर्याप्त, बहुरि 'बा' कहिए बादर 'सू' कहिए सूक्ष्म, 'अ' कहिए ए दोऊ अपर्याप्त – इनिकै कर्मनि की **वरस्थिति** कहिए कर्मनि की उत्कृष्ट स्थिति। बहुरि 'सू' कहिए सूक्ष्म, 'बा' कहिए बादर 'अ' कहिए ए दोऊ अपर्याप्त। बहुरि 'सू' कहिए सूक्ष्म, 'बा' कहिए बादर, 'प' कहिए ए दोऊ पर्याप्त। इनकैं **'जघन्यकालः'** कहिए कर्मनि की जघन्य स्थिति। सो ऐसैं बादर-पर्याप्त कै उत्कृष्ट स्थिति १, सूक्ष्म पर्याप्त कै उत्कृष्ट स्थिति २, बादर अपर्याप्त कै उत्कृष्ट स्थिति ३, सूक्ष्म अपर्याप्त कै उत्कृष्ट स्थिति ४, सूक्ष्म अपर्याप्त कै जघन्यस्थिति ५, बादर अपर्याप्त कैं जघन्य स्थिति ६, सूक्ष्म पर्याप्त कै जघन्यस्थिति ७, बादर पर्याप्त कैं जघन्य स्थिति ८ – ऐसैं एकेंद्री जीव कै कर्मनि की स्थिति विषै आठ भेद भए।

बहुरि 'बी' कहिए बेंद्री पर्याप्त। बहुरि 'बी' कहिए बेंद्री अपर्याप्त, इनकी **'वरः'** कहिए कर्मनि की उत्कृष्ट स्थिति। बहुरि 'वी' कहिए बेंद्री अपर्याप्त, बहुरि 'वी' कहिए बेंद्री पर्याप्त इनके **'जघन्यः'** कहिए कर्मनि की जघन्य स्थिति। ऐसे बेंद्री पर्याप्त कै उत्कृष्ट स्थिति १, बेंद्री अपर्याप्त कै उत्कृष्ट स्थिति २, बेंद्री अपर्याप्त कै जघन्य स्थिति ३, बेंद्री पर्याप्त कै जघन्य स्थिति ४ करि बेंद्री जीवनि कै कर्मनि की स्थिति विषै च्यारि भेद भए।

'शेषाणां एवं वचनीयं' कहिए अवशेष त्रीद्रियादिक जीव कै पर्याप्तक-अपर्याप्तक जघन्य उत्कृष्ट तैं ऐसैं च्यारि-च्यारि भेद कहने। सो कहिए है –

तेंद्री पर्याप्त कै उत्कृष्ट स्थिति १, तेंद्री अपर्याप्त कैं उत्कृष्ट स्थिति २, तेंद्री अपर्याप्त कै जघन्य स्थिति ३, तेंद्री पर्याप्त कै जघन्य स्थिति ४ – ऐसैं तेंद्री कै कर्मनि की स्थिति विषै च्यारि भेद भए।

बहुरि चौंद्री पर्याप्त कै उत्कृष्ट स्थिति १, चौंद्री अपर्याप्त कै उत्कृष्ट स्थिति २, चौंद्री अपर्याप्त के जघन्य स्थिति ३, चौंद्री पर्याप्त कैं जघन्य स्थिति ४ – ऐसैं चौंद्री कै कर्मनि की स्थिति विषै च्यारि भेद जानने।

बहुरि असंज्ञी पर्याप्त के उत्कृष्ट स्थिति १, असंज्ञी अपर्याप्त कैं उत्कृष्ट स्थिति २, असंज्ञी अपर्याप्त कै जघन्य स्थिति ३, असंज्ञी पर्याप्त कै जघन्यस्थिति ४ – ऐसैं असंज्ञी पंचेंद्रिय के कर्मनि की स्थिति विषै च्यारि भेद जानने।

बहुरि सज्ञी पर्याप्त कै उत्कृष्ट स्थिति १, सज्ञी अपर्याप्त कै उत्कृष्ट स्थिति २, सज्ञी अपर्याप्त कै जघन्य स्थिति ३, सज्ञी पर्याप्त कै जघन्य स्थिति ४ – असैं संज्ञी पचेद्रिय कै कर्मनि की स्थिति विषै च्यारि भेद जानने ।

असैं ही ए सर्व स्थितिबध विषै अठाइस भेद भए । तिनविषै अत के संज्ञी पंचेद्री सबंधी च्यारि भेदनि का तौ जुदा कथन आगै कीजिएगा । अवशेष चौईस भेदनि की स्थिति का आयाम जानने कौ अतराल के भेद तिनकौ त्रैराशिक करि विभाग रूप कहै है –

स्थितिबंध विषै जो समयनि का प्रमाण ताकौ **आयाम** कहिए । आयाम नाम लंबाई का है, सो समय लबाई की ज्यो एक-एक अनुक्रमतै होई, चौडाई की ज्यो युगपत् अनेक समय न होइ, तातै काल का प्रमाण विषै आयाम असी सज्ञा कहिए है ।

तहा एकेद्री जीव कै मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति एक सागर प्रमाण है, जघन्य स्थिति एक घाटि पल्य का असख्यातवा भाग सागर मे घटाए, जो रहै तीह प्रमाण है । सो इहा **'आदि अंते सुद्धे वाड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा'** इस सूत्र करि आदि जघन्य स्थिति कौ अत उत्कृष्ट स्थिति मेंस्यो घटाए जो प्रमाण रहै, ताकौ एक-एक स्थिति के भेद विषै एक-एक समय बधता है, तातै वृद्धि का प्रमाण एक, ताका भाग दीए जेतै कै तेते रहै, तामै एक अधिक कीए एकेद्री जीव कै मिथ्यात्व की स्थिति के भेद पल्य के असंख्यातवे भाग प्रमाण भए, तातै इस गाथा के अनतर ही जो आगै गाथा है, ताका अर्थ विषै एकेद्री जीव कै स्थिति का अंतरालनि विषै अकनि की सहनानी की अपेक्षा एक (१), दोय (२), च्यारि (४), चौदह (१४), अठाइस (२८), अठ्यानवै (९८), एक सौ छिनवै (१९६) असें प्रमाण कौ धरै शलाका कहैगे, सो तिन सर्व शलाकानि का जोड दीए तीन सौ तियालीस शलाका भई ।

जैसै प्रवृत्ति विषै सीरका कार्य मे विसवा कहिए है, तैसै इहां शलाका जाननी । सो एकेद्री जीव के जितने पल्य के असख्यातवे भाग प्रमाण स्थिति के भेद कहे, तिनकौ तीन सौ तियालीस का भाग दीए जो प्रमाण आवै, तितना एक शलाका विषै स्थिति के भेदनि का प्रमाण जानना । सो इसकौ अपना-अपना शलाका प्रमाण तै गुणै अपने-अपने ठिकानै स्थिति के भेदनि का प्रमाण आवै है, सोई त्रैराशिक करि दिखाइए है –

जो तीन सौ तियालीस शलाकानि विषैं एकेंद्री जीव संबंधी मिथ्यात्व की स्थिति के सर्व भेद पल्य के असंख्यातवे भाग प्रमाण पाइये, तो एक सौ छिनवै शलाकानि विषै कैते पाइये ? इहां प्रमाणराशि तीन सौ तियालीस (३४३), फलराशि एकेद्री कै मिथ्यात्व की स्थिति के भेदनि का प्रमाण पल्य के असंख्यातवां भाग मात्र, इच्छाराशि एक सौ छिनवै (१९६)। तहां फलराशि तैं इच्छाराशि कौ गुणें प्रमाण का भाग दिएं जो लब्धराशि विषै प्रमाण आया, तितने बादर पर्याप्त के उत्कृष्ट स्थितिवध तैं लगाइ सूक्ष्म पर्याप्त के उत्कृष्ट स्थितिवंध पर्यंत स्थिति के भेद जानने। बादर पर्याप्त का उत्कृष्ट स्थितिबंध अर सूक्ष्म पर्याप्त का उत्कृष्ट स्थितिवंध का अंतराल विषै जितने स्थिति के भेद पाइए, तिनका यहु प्रमाण जानना। इस अंतराल की एक सौ छिनवै शलाका जाननी।

बहुरि जितना इहां अंतराल विषै स्थिति के भेदनि का प्रमाण कह्या, तामैं एक घटाएं जो प्रमाण होइ, तितना समय एक सागर प्रमाण वादर पर्याप्त का उत्कृप्ट स्थितिवंध मेंस्यों घटाइए, तब अंत विषैं कह्या, जो सूक्ष्म पर्याप्त का उत्कृष्ट स्थितिवंध ताका प्रमाण हो है।

बहुरि प्रमाणराशि शलाका तीन सौ तियालीस (३४३), फलराशि एकेंद्री कै मिथ्यात्व की स्थिति के भेदनि का प्रमाण, इच्छाराशि शलाका अठाइस। सो फल तै इच्छा कौ गुणैं प्रमाण का भाग दीएं जो लब्धराशि का प्रमाण भया, तितने सूक्ष्म पर्याप्त कै उत्कृष्ट तैं एक समय घाटि अनंतरवर्ती भेद ते लगाइ वादर अपर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिवंध पर्यंत स्थिति के भेदनि का प्रमाण हो है। दोऊ के अंतराल में इतना भेद पाइये है। इस अंतराल की अठाईस शलाका जाननी। सो ए जितने भेद पाइये तितने समय सूक्ष्म पर्याप्त की उत्कृष्ट स्थिति मेंस्यों घटाइ दीजें तव अंत विषै कही जो वादर पर्याप्त की उत्कृष्ट स्थिति ताका प्रमाण हो है।

बहुरि प्रमाणराशि शलाका तीन सौ तियालीस, फलराशि एकेंद्री के मिथ्यात्व की सर्व स्थिति के भेदनि का प्रमाण, इच्छाराशि शलाका च्यारि। सो फल कौ इच्छा तैं गुणै प्रमाण का भाग दीएं जो लब्धराशि का प्रमाण आया, तितने वादर अपर्याप्त की उत्कृष्ट स्थितिवंध ते एक समय हीन अनंतर स्थितिवंध तै लगाय सूक्ष्म अपर्याप्त का उत्कृष्ट स्थितिवंध पर्यंत स्थिति के भेद जानने। इन दोऊ के अंतराल की च्यारि शलाका जाननी। सो ए जितने भेद भए तितने समय बादर अपर्याप्त

का उत्कृष्ट स्थितिबध मेस्यों घटाय दीजै, तब सूक्ष्म अपर्याप्त का उत्कृष्ट स्थितिबध का प्रमाण हो है ।

बहुरि प्रमाणराशि शलाका तीन सौ तियालीस (३४३), फलराशि एकेंद्री के मिथ्यात्व की सर्व स्थिति के भेदनि का प्रमाण, इच्छाराशि शलाका एक । सो फल कौ इच्छा तैं गुणै प्रमाण का भाग दीए जो लब्धराशि का प्रमाण आया, तितने सूक्ष्म अपर्याप्त का उत्कृष्ट तैं एक समय घाटि अनतर स्थिति बध तैं लगाइ सूक्ष्म अपर्याप्त का जघन्य स्थितिबध पर्यंत स्थिति के भेद हो है । इन दोऊ के अतराल की एक शलाका जाननी । सो एजितने भेद भए, तितने समय सूक्ष्म अपर्याप्त का उत्कृष्ट स्थितिबध मेंस्यों घटाय दीजै, तब सूक्ष्म अपर्याप्त का जघन्य स्थितिबध का प्रमाण हो है ।

बहुरि प्रमाणराशि शलाका तीन सौ तियालीस, फलराशि एकेंद्री कै मिथ्यात्व की सर्व स्थिति के भेदनि का प्रमाण, इच्छाराशि शलाका दोय । सो फल कौ इच्छा तैं गुणें प्रमाण का भाग दीएं जो लब्धराशि का प्रमाण आया, तितने सूक्ष्म अपर्याप्त के जघन्य स्थिति बध तैं एक समय हीन अनतर स्थितिबध लगाइ बादर अपर्याप्त के जघन्य स्थितिबध पर्यंत स्थिति के भेद जानने । इन दोऊ के अतराल सबंधी दोय शलाका जाननी । सो ए जितने भेद भए, तितने समय सूक्ष्म अपर्याप्त की जघन्य स्थितिबंध मैंस्यों घटाइ दीजै, तब बादर अपर्याप्त का जघन्य स्थितिबध का प्रमाण हो है ।

बहुरि प्रमाणराशि तीन सौ तियालीस (३४३), फलराशि एकेंद्रिय के मिथ्यात्व की सर्व स्थिति के भेदनि का प्रमाण, इच्छाराशि शलाका चौदह । सो फल कौ इच्छा तैं गुणै प्रमाण का भाग दीए जो लब्धराशि का प्रमाण आया, तितने वादर अपर्याप्त के जघन्य स्थितिबंध तै एक समय घाटि अनतर स्थितिबध के भेद तैं लगाय सूक्ष्म पर्याप्त कै जघन्य स्थितिबध पर्यंत स्थिति के भेद हैं । इन दोऊनि के अतराल सबधी चौदह शलाका जाननी । सो ए जितने भेद भए तितने समय वादर अपर्याप्त का जघन्य स्थितिबध मेस्यो घटाइए, तव सूक्ष्म पर्याप्त का जघन्य स्थिति-बंध का प्रमाण होइ ।

बहुरि प्रमाणराशि तीन सौ तियालीस, फलराशि एकेंद्री के मिथ्यात्व की सर्व स्थिति के भेदनि का प्रमाण, इच्छाराशि शलाका अठ्याणवै । सो फल कौ इच्छा तैं गुणै प्रमाण का भाग दीए, जो लब्धराशि का प्रमाण होइ, तितने सूक्ष्म पर्याप्त

के जघन्य स्थितिवंध तै एक समय घाटि अनंतर स्थिति तै लगाय वादर पर्याप्त का जघन्य स्थितिवंध पर्यंत स्थिति के भेद जानने । इनि दोउनि के अंतराल सबधी अठ्याणवै शलाका जाननी । सो ए जितने भेद भए, तितने समय सूक्ष्म पर्याप्त का जघन्य स्थितिवंध मेंस्यों घटाइए, तव बादर पर्याप्त का जघन्य स्थितिवध हो है । सो यहु जघन्य स्थितिबंध एकेंद्री जीव कैं जघन्य स्थितिवंध कह्या था, सोई जानना ।

ऐसैं चौदह जीवसमासनि विषै एकेंद्री के सूक्ष्म वादर के पर्याप्त-अपर्याप्त तैं च्यारि जीवसमास हैं, तिनके जघन्य स्थितिवंध अर उत्कृष्ट स्थितिवंध के भेद तैं आठ स्थानक भए, सो आठों स्थानकनि विषै स्थितिवध का प्रमाण कह्या । इन आठों विषै अंतराल सात पाइए, सो अंतराल के विषै स्थिति भेदनि के प्रमाण जानने के निमित्त सात त्रैराशिक करि कथन दिखाया, सो जानना ।

अब आबाधा काल का प्रमाण दिखाइए है –

एकेंद्री जीव कै मिथ्यात्व की उत्कृष्ट आबाधा आवली का असंख्यातवां भाग करि अधिक संख्यात आवली मात्र जो अंतर्मुहूर्त, तीह प्रमाण है । बहुरि जघन्य आवाधा तीहि अधिक विना केवल अंतर्मुहूर्त मात्र ही है । तहां उत्कृष्ट मेंस्यो जघन्य घटाएं एक-एक भेद विषै एक-एक समय वंधती है; तातै एक का भाग दिएं जो प्रमाण होइ, तामें एक मिलाएं एकेंद्री जीव के मिथ्यात्व की सर्व आवाधा का सर्व भेदनि का प्रमाण हो है । सो जैसै स्थितिवंध का कथन विषैं आठ स्थानक कहे अर सात अंतरालनि विषैं भेदनि का प्रमाण जानने के निमित्त सात त्रैराशिक कीएं तैसै इस आवाधा का कथन विषैं भी आठ स्थानक जानने ।

सात अंतरालनि विषैं आवाधा के भेदनि का प्रमाण जानने के निमित्त सात त्रैराशिक करने । तहां प्रमाणराशि तौ पूर्वोक्त प्रकार सातों त्रैराशिक विषै तीन सौ तियालीस शलाका प्रमाण जानना अर फलराशि तहां तौ स्थिति के भेदनि का प्रमाण कह्या था, इहां जघन्य तै लगाय उत्कृष्ट पर्यंत जितना एकेंद्री जीव के मिथ्यात्व को आवाधा के भेदनि का प्रमाण होइ, तितना फलराशि का प्रमाण जानना अर इच्छा-राशि एक सौ छिनवै, अठाईस, च्यारि, एक, दोय, चौदह, अठयानवै शलाका का प्रमाण अनुक्रम तै जानना ।

तहां सर्वत्र फल कौ इच्छा करि गुणैं प्रमाण का भाग दीए जो-जो प्रमाण आवै, सो-सो तहां-तहां अंतराल विषै आवाधा के भेदनि का प्रमाण जानना । तहां

प्रथम त्रैराशिक विषै जितने भेदनि का प्रमाण आया, तीहि मैं एक घटाए, जितना रहै, जितना समय बादर-पर्याप्तक संबधी उत्कृष्ट स्थिति संबधी उत्कृष्ट आबाधा मेस्यो घटाए सूक्ष्म पर्याप्तक उत्कृष्ट स्थितिबंध संबधी आबाधाकाल का प्रमाण हो है। बहुरि द्वितीय त्रैराशिक विषै जितना भेदनि का प्रमाण आया, जितना समय घटाए, बादर अपर्याप्तक उत्कृष्ट स्थितिबंध संबधी आबाधा का प्रमाण हो है। असे ही तृतीयादिक त्रैराशिक विषै जितने भेद होंहि, तितने समय घटाइ-घटाइ तहां-तहां जो स्थितिबंध का प्रमाण कह्या होइ, तिस-तिस स्थितिबंध संबधी आबाधा का प्रमाण जानना।

असें एकेंद्री जीव के स्थितिबंध का वा आबाधा के भेदनि का वा काल का प्रमाण कह्या।

अब बेंद्री जीव कौ कहै है—

बेंद्री जीव के मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति पचीस सागर प्रमाण है। जघन्य स्थिति च्यारि बार संख्यात का जाकौ भाग दीजिए असा एक घाटि पल्य का प्रमाण कौं उत्कृष्ट स्थिति मे घटाए जितनी अवशेष रहै, तीहि प्रमाण है। तहा उत्कृष्ट मेस्यों जघन्य कौं घटाएं एक-एक भेद विषै एक-एक समय बधै है, तातै वृद्धि का प्रमाण एक, ताका भाग दीए, बहुरि अवशेष विषै एक मिलाए, जितने होहि, तितने बेंद्री जीव कै मिथ्यात्व की सर्वस्थिति के भेद जानने।

तहा बेंद्री के च्यारि स्थाननि का तीन अंतराल, तिन संबंधी अंकनि की सहनानी करि एक, दोय, च्यारि शलाका प्रमाण है। असा अगली गाथा का अर्थ विषै कहेगे, सो इन सब शलाकानि का जोड दीए सात शलाका भई, तहां जो सात शलाकानि विषै बेंद्री-जीव कै जघन्य तै लगाइ उत्कृष्ट पर्यंत मिथ्यात्व की स्थिति के सर्व भेद च्यारि बार संख्यात का जाकौ भाग दीजिए, असा पल्य प्रमाण पाइए, तौ च्यारि शलाकानि विषै केते भेद पाइए ? असैं त्रैराशिक करना।

तहा प्रमाणराशि शलाका सात, फलराशि बेंद्री के मिथ्यात्व की स्थिति के भेदनि का प्रमाण, इच्छाराशि शलाका च्यारि। तहा फल करि इच्छा कौ गुणे प्रमाण का भाग दीए जो लब्धराशि का प्रमाण आया, जितने बेंद्री पर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिबंध स्यों लगाय बेंद्री अपर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिबंध पर्यंत स्थिति के भेद जानने। इस अंतराल संबधी च्यारि शलाका जानननी। सो ए जितने भेद भए तितने

में एक घटाएं जो रहै, तितने समय पर्याप्तक वेंद्री की उत्कृष्ट स्थिति पचीस सागर प्रमाण, तामेंस्यों घटाएं अंत विषै कह्या, जो वेंद्री अपर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिवंध ताका प्रमाण जानना ।

बहुरि प्रमाणराशि सात शलाका, फलराशि वेंद्री कै मिथ्यात्व की स्थिति के सर्व भेदनि का प्रमाण, इच्छाराशि शलाका एक । सो फल करि इच्छा कौं गुणें प्रमाण का भाग दीए जो लब्धराशि का प्रमाण आया, तितने वेंद्री अपर्याप्तक के उत्कृष्ट स्थितिवंध तै एक समय हीन अनंतर भेद तै लगाय वेंद्री अर्याप्तक के जघन्य स्थितिवंध पर्यंत स्थिति के भेद जानने । इस अंतराल संवंधी एक शलाका जाननी । सो ए जितने भेद भए, तितने समय वेंद्री अपर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थिति वंध मेंस्यों घटाएं बेंद्री अपर्याप्तक कै जघन्य स्थिति का प्रमाण हो है ।

बहुरि प्रमाणराशि शलाका सात, फलराशि बेंद्री के मिथ्यात्व की सर्व-स्थिति के भेदनि का प्रमाण, इच्छाराशि शलाका दोय । तहां फलराशि करि इच्छा-राशि कौं गुणें प्रमाण का भाग दीएं जो लब्धराशि का प्रमाण आया, तितने वेंद्री अपर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध तैं एक समय घाटि अनंतर स्थितिवंध तै लगाइ वेंद्री पर्याप्तक का जघन्य स्थितिवंध पर्यंत स्थिति के भेद जानने । इस अंतराल संबंधी दोय शलाका जाननी । सो ए जितने भेद भए, तितने समय वेंद्री अपर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध मेंस्यों घटाइए, तब वेंद्री पर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध का प्रमाण होइ । सो वेंद्री के जघन्य स्थितिवंध का प्रमाण कह्या था, सो यहु जाननी ।

असै वेंद्री के स्थितिबंध के भेदनि का प्रमाण वा काल का प्रमाण कह्या ।

अब आबाधा का प्रमाण कहिए हैं—

वेंद्री जीव कै उत्कृष्ट मिथ्यात्व की स्थिति संबंधी उत्कृष्ट आबाधा च्यारि वार संख्यात का जाकौं भाग दीजिए, असी आवली करि अधिक संख्यात आवली मात्र अंतर्मूहूर्त पचीस प्रमाण है । जघन्य आबाधा उस अधिक विना केवल पचीस अंतर्मूहूर्त प्रमाण है । तहां उत्कृष्ट मेंस्यों जघन्य घटाए एक-एक भेद विषैं एक-एक समय वंघती है, तातै एक का भाग दीए जो प्रमाण होइ, तामैं एक मिलाए सर्व आवाधा के भेदनि का प्रमाण जानना । तहां पूर्वै स्थितिवंध का कथन विषै जैसे तीन त्रैराशिक कीए, तैसै ही आवाधा के कथन विषैं तीन त्रैराशिक करने ।

तहां प्रमाणराशि अर इच्छाराशि तौ स्थितिबंध का कथन विषै जैसे कहे तैसे ही जानने, अर फलराशि इहां बेंद्री कै मिथ्यात्व की आबाधा के जितने भेद है सो जानना। सो तहां फलकरि इच्छा कौ गुणै प्रमाण का भाग दीए जो-जो प्रमाण आवै, तितवे-तितने तहां आबाधा के भेदनि का प्रमाण जानना। सो प्रथम त्रैराशिक विषैं तौ जितना भेदनि का प्रमाण होइ, तामे एक घटाए जो प्रमाण रहै, तितने समय बेंद्री पर्याप्तक की उत्कृष्ट स्थिति संबधी उत्कृष्ट आबाधा मेस्यौ घटाएं, जो प्रमाण रहै, तितना बेंद्री अपर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिबध संबधी आबाधाकाल का प्रमाण जानना। यामैं स्यो द्वितीय त्रैराशिक विषै जितने भेद भए, तितने समय घटाए, बेंद्री अपर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध संबधी आबाधाकाल का प्रमाण हो है। यामैंस्यो तीसरा त्रैराशिक विषै जितने भेद भए, तितने समय घटाएं बेंद्री पर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध संबंधी आबाधाकाल का प्रमाण हो है, सो यहु जघन्य आबाधा है।

असें बेंद्री विषैं दोय जीवसमास, तिनके जघन्य उत्कृष्ट तै च्यारि प्रकार, स्थितिबंध वा आबाधा का प्रमाण कह्या, अर च्यारि के तीन अंतराल, तिनिविषै भेदनि का प्रमाण कह्या।

बहुरि जैसे बेंद्री का कथन कीया, तैसे ही तेंद्री वा चौंद्री वा असंज्ञी पंचेंद्री का कथन जानना। विशेष इतना जो इहां स्थिति के वा आबाधा के भेदनि का प्रमाण और है, तातैं फलराशि का प्रमाण और-और जानना। वा जघन्य उत्कृष्ट स्थिति का वा आबाधा का प्रमाण और-और जानना। बहुरि जहां बेंद्री कह्या है, तहां तेंद्रियादिक कहने। इतना विशेष है और सर्व कथन बेंद्रीवत् जानना।

तहां स्थिति के वा आबाधा के भेदनि का प्रमाण कहिए हैं—

तहां तेंद्री कै मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति पचास सागर प्रमाण है। जघन्य स्थिति यामेंस्यो तीन वार संख्यात का जाकौ भाग दीजिए, असा एक घाटि पल्य का प्रमाण कौ घटाए अवशेष रहै तितना है। तहां उत्कृष्ट मेंस्यौ जघन्य कौं घटाए भेद विषै एक-एक समय बधती है, तातैं एक का भाग दीए जो प्रमाण होइ, तामैं एक मिलाए, तेंद्री संबधी मिथ्यात्व की स्थिति के सर्व भेदनि का प्रमाण पल्य कौं तीन वार संख्यात का भाग दीजिए, इतना हो है। सोई तेंद्री का स्थितिबंध कथन विषै तीनों त्रैराशिक विषै फलराशि जानना।

वहुरि तेंद्री कै उत्कृष्ट मिथ्यात्व की स्थिति विषै आवाधा तीन वार संख्यात का जाकौ भाग दीजिए असी आवली करि अधिक संख्यात आवली प्रमाण अंतर्मूहूर्त पचास अर जघन्य-आवाधा उस अधिक विना केवल पचास अंतर्मुहूर्त प्रमाण। सो उत्कृष्ट मेस्यों जघन्य कौ घटाएं, एक-एक समय वधती भेदनि विषै है; तातै एक का भाग दीए जो प्रमाण होइ, तामै एक मिलाए आवाधा के सर्वभेदनि का प्रमाण हो है, सोई तेंद्री का आवाधा का कथन विषै तीनों त्रैराशिक विषै फलराशि जानना।

वहुरि चौंद्री कै मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति सौ सागर प्रमाण है। जघन्य स्थिति इस उत्कृष्ट स्थिति मेंस्यों दोय वार संख्यात का भाग जाकौं दीजिए असा एक घाटि पल्य का प्रमाण कौ घटाए अवशेष दोय वार संख्यात का भाग जाकौ दीजिये, ऐसा पल्य प्रमाण है। तहां उत्कृष्ट मेंस्यों जघन्य कौं घटाए भेदनि विषै एक-एक समय वधती पाइए; तातै एक का भाग दीए जो प्रमाण होइ, तामैं एक मिलाए चौंद्री संवंधी मिथ्यात्व की स्थिति के सर्व भेदनि का प्रमाण पल्य कौं दोय वार संख्यात का भाग दीजिए इतना है। सोई चौंद्री का स्थितिवंध का कथन विषै तीनों त्रैराशिक विषैं फलराशि जानना।

वहुरि चौंद्री कैं मिथ्यात्व की स्थिति की उत्कृष्ट आवाधा दोय वार संख्यात का जाकौं भाग दीजिए, असी आवली करि अधिक संख्यात-आवलीप्रमाण अंतर्मुहूर्त सौ, अर जघन्य आवाधा उस अधिक बिना केवल सौ अंतर्मुहूर्त प्रमाण। सो उत्कृष्ट मेंस्यों जघन्य कौं घटाए एक-एक समय भेदनि विषैं वधै; तातै एक का भाग दीए जो प्रमाण होइ, तामैं एक मिलाए आवाधा के सर्व भेदनि का प्रमाण चौंद्री कै हो है। सोई चौंद्री का आवाधा का कथन विषै तीनों त्रैराशिक विषैं फल-राशि जानना।

वहुरि असंज्ञी पंचेंद्री कैं मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति एक हजार सागर प्रमाण है, यामै एक घाटि पल्य का संख्यातवां भाग घटाएं जघन्य स्थिति हो है। सो उत्कृष्ट मेंस्यों जघन्य कौ घटाएं एक-एक भेद विषैं एक-एक सम वधै है; तातै एक ही का भाग दीए, जो प्रमाण होइ, तामैं एक मिलाए असंज्ञी कै मिथ्यात्व की सर्व स्थिति के भेदनि का प्रमाण एक वार संख्यात का भाग जाकौं दीजिए, असा पल्य-मात्र है। सोई असैनी पंचेंद्री का स्थिति कथन विषै तीनों त्रैराशिक विषै फलराशि जानना।

बहुरि असैनी पचेंद्री के मिथ्यात्व की उत्कृष्ट आबाधा आवली का संख्यातवां भाग करि अधिक सख्यात आवली प्रमाण अतर्मुहूर्त हजार जानना । अर जघन्य आबाधा उस अधिक बिना केवल हजार अतर्मुहूर्त प्रमाण जाननी । सो उत्कृष्ट मेंस्यों जघन्य कौ घटाए एक-एक भेद विषै एक-एक समय बधती है, तातै एक का भाग दीए जो प्रमाण होइ, तामै एक मिलाए असैनी पचेंद्री कै मिथ्यात्व की आबाधा के सर्व भेदनि का प्रमाण हो है, सोई असैनी पंचेंद्री का आबाधा का कथन विषै तीन त्रैराशिक विषै फलराशि जानना ।

अैसें जो विशेष कथन कीया सो तौ विशेष जानना । अवशेष सर्व कथन बेंद्री का कथनवत् तेंद्री, चौंद्री, असंज्ञी पचेंद्री का जानना ।

सो जैसै यहु मिथ्यात्व की उत्कृष्ट-जघन्य स्थिति वा उत्कृष्ट-जघन्य आबाधा के अनुसारि स्थितिबंध का वा आबाधा का कथन कीया, तैसै ही सर्व प्रकृतिनि का अपनी-अपनी उत्कृष्ट-जघन्य स्थिति वा उत्कृष्ट-जघन्य आबाधा के अनुसारि स्थिति बंध का वा आबाधा का कथन जानि लेना । बहुरि इहां जो शलाकानि का प्रमाण कह्या है, सो यथायोग्य सख्यात की सहनानी दोय का अक कल्पि करि शलाकानि का प्रमाण कह्या है । अर्थ करि जैसा संभवै तैसा जानना ।।१४८।।

अैसे सर्व मन में धारि शलाकानि कौ जानने के निमित्त सूत्र कहै है—

मज्झे थोवसलागा, हेट्ठा उवरिं च संखगुणिदकमा ।
सव्वजुदी संखगुणा, हेट्ठुवरिं संखगुणमसण्णित्ति ।।१४९।।

मध्ये स्तोकशलाका, अधस्तनमुपरि च संख्यगुणितक्रमाः ।
सर्वयुतिः संख्यगुणा, अधस्तनोपरि संख्यगुणा असंज्ञी तु ।।१४९।।

टीका – जो विवक्षित विभाग करने के अर्थि किछू प्रमाण कल्पना कीजिए ताका नाम इहां **शलाका** जानना । सो मध्ये कहिए बादर पर्याप्तक की उत्कृष्ट स्थिति तै लगाय बादर पर्याप्तक का जघन्य स्थितिबध पर्यंत जे एकेंद्री के सर्वस्थिति के भेद है, तिनके विषै जे सूक्ष्म अपर्याप्तक की उत्कृष्ट स्थिति तै लगाय एक-एक समय घटता, सूक्ष्म अपर्याप्तक का जघन्य स्थितिबध पर्यत जेते स्थिति के भेद पाइए, ते आगे जिनिका कथन कीजिए है, तिन सबनि तै स्तोक है – थोरे है, तातै तहा एक शलाका जाननी '△१△' । यहा त्रिकूटीरचना का अभिप्राय यह है, जो जहा ऐसी '△' त्रिकूटी सहनानी होइ, तहां स्थिति का कथन जानना ।

वहुरि हेट्ठा कहिए याके नीचे सूक्ष्म अपर्याप्तक का जघन्य स्थितिवध ते अनंतर स्थितिवंध स्यों लगाय एक-एक समय घटता वादर अपर्याप्तक का जघन्य स्थितिवंध पर्यंत स्थिति के भेद संबंधी अधस्तन शलाका। सो उन शलाकानि तै संख्यात गुणी है अर ऊपरि सूक्ष्म अपर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थिति के अनंतर स्थिति-वंध तै लगाय एक-एक समय वधती बादर अपर्याप्तक के उत्कृष्ट स्थितिवंध पर्यंत स्थिति के भेद सवंधी उपरितन शलाका तिनतै संख्यात गुणी है। ऐसै संख्यात गुणा अनुक्रम कह्या, सो संख्यात का प्रमाण तो यथायोग्य है; परंतु इहां समझने के अर्थि संख्यात की सहनानी दोय का अंक जानना। सो एक तै दूणा दोय, सो नीचै दोय शलाका अर यातै दुगुणा च्यारि, सो ऊपरि च्यारि शलाका जाननी '△४△१△२△'।

वहुरि **सर्वयुतिः** कहिए पूर्वै शलाका कही, तिनका जोड दीएं जो प्रमाण होइ, तिसतै हेट्ठा कहिए नीचै बादर अपर्याप्त का जघन्य स्थितिवंध के अनंतर भेद तैं लगाय एक-एक समय घटता सूक्ष्म पर्याप्तक के जघन्य स्थितिवंध पर्यंत स्थिति के भेद संवंधी अधस्तन शलाका संख्यात गुणी जाननी अर ऊपरि कहिए वादर अपर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिवंध के अनंतर तैं लगाय एक-एक समय वधता सूक्ष्म पर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिवंध पर्यंत स्थिति के भेद सवंधी उपरितन शलाका तिस तै संख्यात गुणी जाननी। सो पहिले शलाका च्यारि, एक, दोय; इनिका जोड दीए सात भया, ताकौं संख्यात की सहनानी दोय करि गुणें नीचै तो चौदह शलाका भईं, इसकौ संख्यात की सहनानी दोय करि गुणे ऊपरि अठाईस शलाका भईं '△२८△४△१△-२△१४।

वहुरि 'चकार' तै फेरि भी **सर्वयुतिः** कहिए पहिली शलाकानि का जोड दीए जो प्रमाण होइ तिसतै **हेट्ठा** कहिए सूक्ष्म पर्याप्तक का जघन्य स्थिति के अनंतर स्थितिवंध तै लगाय एक-एक समय घटता वादर पर्याप्तक के जघन्य स्थितिवंध पर्यंत स्थिति के भेद संवंधी अधस्तन शलाका संख्यात गुणी हैं। अर ऊपरि सूक्ष्म पर्याप्तक के उत्कृष्ट के अनंतरि स्थितिवंध तै लगाय एक-एक समय वधता वादर पर्याप्तक उत्कृष्ट स्थितिवंध पर्यंत स्थिति के भेद संवंधी उपरितन शलाका संख्यात गुणी हैं। सो अगिली शलाका अठाईस, च्यारि, एक, दोय, चौदह; तिनका जोड दीए गुणचास भए। इनकौ संख्यात की सहनानी दोय करि गुणें अठ्याणवै अधस्तन शलाका जाननी। इनकौ संख्यात की सहनानी दोय करि गुणें एक सौ छिनवै उपरितन शलाका जाननी '△१६६△२८∠४△२△१△१४△६८∠'।

अैसें एकेंद्री का कथन कीया ।

बहुरि इस ही सूत्र का अर्थ बेंद्री प्रति कहिए है—

मध्य कहिए बेंद्री पर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिबंध तैं लगाय बेंद्री पर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध पर्यंत भेदनि विषैं जे बेंद्री अपर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिबंध तैं लगाय एक-एक समय घटता बेंद्री अपर्याप्तक का जघन्य स्थितिबध पर्यंत जे स्थिति के भेद हैं, ते थोरे है; तातैं ते एक शलाका जानवे '△१△' । बहुरि 'हेट्ठा' कहिए नीचें बेंद्री अपर्याप्तक का जघन्य तैं अनंतर स्थितिबध तैं लगाय एक-एक समय घटता, बेंद्री पर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध पर्यंत स्थिति के भेद सबधी अधस्तन शलाका सख्यात गुणी हैं; अर ऊपरि बेंद्री अपर्याप्तक का उत्कृष्ट के अनतर स्थितिबध तैं लगाय बेंद्री पर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिबध पर्यंत स्थिति के भेद संबंधी उपरितन शलाका, तिसतैं भी सख्यात गुणी है । सो एक कौं सख्यात की सहनानी दोय करि गुणैं अधस्तन शलाका दोय है । याकौं सख्यात की सहनानी दोय करि गुणैं उपरितन शलाका च्यारि है '△४△१△२△' ।

बहुरि जैसें ए बेंद्री कैं शलाका कही, तैसें ही तेंद्री के वा चौद्री कैं वा असज्ञी पचेंद्री कैं शलाका जानना । विशेष इतना–जहां बेंद्री का नाम कह्या है, तहा तेंद्री वा चौद्री वा असज्ञी पंचेंद्री का नाम कहना और किछू विशेष नाही ।

अैसें शलाका अपनी-अपनी स्थिति के भेद विषें जाननी । इनकी स्थिति के भेदनि का प्रमाण वा स्थिति का प्रमाण वा आबाधा के भेदनि का प्रमाण वा आबाधाकाल का प्रमाण यथासभव जानना ॥१४९॥

आगैं संज्ञी पंचेंद्रिय विषैं पर्याप्तक के उत्कृष्ट, अपर्याप्तक के उत्कृष्ट, अपर्याप्तक के जघन्य, पर्याप्तक के जघन्य स्थितिबध के भेद, तिनविषैं विशेष है, सो कहै है—

सण्णिस्स हु हेट्ठादो, ठिदिठाणं संखगुणिदमुवरुवरिं ।
ठिदिआयामोवि तहा, सगठिदिठाणं व आबाहा ॥१५०॥

संज्ञिनो हि अधस्तनात्, स्थितिस्थानं संख्यगुणितमुपर्युपरि ।
स्थित्यायामोऽपि तथा, स्वकस्थितिस्थानं व आबाधा ॥१५०॥

टीका – संज्ञी पंचेंद्रिय कैं पूर्वोक्त च्यारि भेदनि विषै पूर्वोक्त एकेंद्रियादिक के भेदनि तै विशेष है; सो कहिए है – **'हेट्ठादो'** कहिए नीचै तै संज्ञी पर्याप्तक के जघन्य स्थितिबंध तै लगाय तिन च्यारि भेदनि का अंतरालनि विषै स्थिति के भेदनि का प्रमाण संख्यात गुणा अनुक्रम तै जानना। वहुरि स्थिति का आयाम कहिए समयनि का प्रमाण सो भी ऊपरि-ऊपरि संख्यात गुणा अनुक्रम तैं जानना। सोई कहिए है—

सज्ञी जीव के मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोडाकोडी सागर प्रमाण है। सो दोय वार संख्यात करि पल्य कौं गुणिए तीहि प्रमाण है। वहुरि जघन्य स्थिति मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा कोडि के ऊपरि कोडाकोडी के नीचैं असैं अंत:कोटा-कोटी सागर प्रमाण है। सो एक वार संख्यात करि पल्य कौं गुणिये तीहि प्रमाण है। सो उत्कृष्ट मेंस्यों जघन्य कौ घटाएं एक-एक समय वधै है, तातै एक का भाग दीए जो प्रमाण होइ, तामैं एक मिलाएं संज्ञी के मिथ्यात्व की सर्व स्थिति के भेदनि का प्रमाण हो है। सो याकौ संख्यात का भाग दीजिये, तहां एक भाग विना अवशेष वहु भाग मात्र संज्ञी पर्याप्तक के उत्कृष्ट स्थितिबंध तैं लगाय संज्ञी अपर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिबंध पर्यंत स्थिति के भेदनि का प्रमाण है।

सो इनमें एक घटाएं जो प्रमाण रहै, तितने संज्ञी पर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिवध सत्तरि कोडाकोडी सागर प्रमाण मेंस्यों घटाएं जो प्रमाण रहै, सो संज्ञी अपर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिबंध का प्रमाण जानना। वहुरि वह जो एक भाग रह्या था, ताकौ संख्यात का भाग दीजिये, तहां एक भाग विना अवशेप वहुभाग मात्र संज्ञी अपर्याप्तक के उत्कृष्ट तैं एक समय घाटि स्थितिबंध तैं लगाय संज्ञी अपर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध पर्यंत स्थिति के भेदनि का प्रमाण हो है। सो इतने समय संज्ञी अपर्याप्तक के उत्कृष्ट स्थितिबंध मेंस्यों घटाएं संज्ञी अपर्याप्तक का जघन्य स्थिति-बंध का प्रमाण हो है।

वहुरि जो वह एक भाग रह्या था, तीहि प्रमाण मात्र संज्ञी अपर्याप्तक का जघन्य तैं एक समय घाटि अनंतर स्थितिबंध तैं लगाय, संज्ञी पर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध पर्यंत स्थिति के भेदनि का प्रमाण है। सो इस प्रमाण कौ संज्ञी अपर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध मेंस्यों घटाएं संज्ञी पर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध का प्रमाण हो है, सो यहु प्रमाण अंत:कोटाकोटी सागर प्रमाण जानना।

असें स्थिति का कथन किया।

अब आबाधा का कथन कहिए है– सो स्वकस्थितिस्थानवत् आबाधा कहिए अपनी स्थिति स्थानकवत् आबाधा का कथन जानना । संज्ञी कै मिथ्यात्व की उत्कृष्ट आबाधा सात हजार वर्ष प्रमाण । सो तीन बार सख्यात करि गुणिए इसी आवली प्रमाण अर जघन्य आबाधा एक समय घाटि एक मुहूर्त प्रमाण, दोय बार सख्यात करि गुणिए इसी आवली प्रमाण ।

सो उत्कृष्ट में जघन्य कौ घटाएं एक-एक भेद विषै एक-एक समय बधै है, तातै एक का भाग दोए जो प्रमाण होइ, तामै एक मिलाएं आबाधा के सर्व भेदनि का प्रमाण हो है । सो तैसे स्थिति के भेदनि कौ सख्यात का भाग देय-देय, बहुभाग-बहुभाग, एक भाग प्रमाण भेद कहे, तैसे आबाधा के भेदनि कौ सख्यात का भाग देय-देय, बहुभाग-बहुभाग, एक भाग प्रमाण तीनो अतरालनि विषै भेदनि का प्रमाण जानना । बहुरि जैसे स्थिति के भेदनि करि समय घटाइ-घटाइ स्थिति का प्रमाण कह्या, तैसे इहां आबाधा के भेदनि करि समय घटाय-घटाय तिस-तिस स्थिति सबधी आबाधा का प्रमाण जानना ।

ऐसे पचेंद्रिय सज्ञी विषै विशेष कथन कह्या ।। १५० ।।

आगै जघन्य स्थितिबध कौन जीवनि कै होइ, सो कहै है–

सत्तरसपंचतित्थाहाराणं सुहुमबादरापुव्वो ।
छव्वेगुव्वमसण्णी, जहण्णमाऊण सण्णी वा ।।१५१।।

सप्तदशपंचतीर्थाहाराणां सूक्ष्मबादरापूर्वः ।
षड्वैगूर्वमसंज्ञी, जघन्यमायुषां संज्ञी वा ।।१५१।।

टीका – पाच ज्ञानावरण, च्यारि दर्शनावरण, पाच अंतराय, यशस्कीर्ति, उच्चगोत्र, सातावेदनीय – इन सतरह प्रकृतिनि का जघन्य स्थितिबध सूक्ष्मसापराय गुणस्थानवर्ती जीव करै है । बहुरि पुरुषवेद, सज्वलन कषाय च्यारि – इनि पचनि का जघन्य स्थितिबध अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती जीव करै है । बहुरि तीर्थकर, आहारकद्विक – इनका जघन्य स्थितिबंध अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीव करै है । बहुरि देवगति वा आनुपूर्वी, नरकगति वा आनुपूर्वी, वैक्रियिक-वैक्रियिक अगोपांग इन वैक्रियिक षट्क का जघन्य स्थितिबध असंज्ञी पचेद्री जीव करै है । आयुकर्म की प्रकृतिनि का जघन्य स्थितिबंध संज्ञी वा असज्ञी जीव करै है ।।१५१।।

आगै अजघन्यादिक स्थिति के भेदनि विषै संभवै हैं, जे साद्यादिक भेद, तिनिकौ कहैं है—

अजहण्णट्ठिदिबंधो, चउव्विहो सत्तमूलपयडीणं।
सेसतिये दुवियप्पो, आउचउक्केवि दुवियप्पो ॥१५२॥

अजघन्यस्थितिबंधः, चतुर्विधः सप्तमूलप्रकृतीनां।
शेषत्रये द्विविकल्पः, आयुश्चतुष्केऽपि द्विविकल्पः ॥१५२॥

टीका – आयु विना सात मूल प्रकृतिनि का अजघन्य स्थितिबंध तो सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव भेद तैं च्यारि प्रकार है। बहुरि आयु विना सात मूल प्रकृतिनि का उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य स्थितिबंध सादि, अध्रुव दोय ही प्रकार है। आयु कर्म का च्यार्यों ही प्रकार का स्थितिबंध सादि, अध्रुव दोय प्रकार ही है। सो यहु कथन किछू संदेहरूप नाही, नीकै संभवै है; तातैं विशेष न कह्या है ॥१५२॥

इहां उत्तर प्रकृतिनि विषै विशेष है, सो कहै है—

संजलणसुहुमचोदस, घादीणं चदुविधो दु अजहण्णो।
सेसतिया पुण दुविहा, सेसाणं चदुविधावि दुधा ॥१५३॥

संज्वलनसूक्ष्मचतुर्दश, घातिनां चतुर्विधस्तु अजघन्यः।
शेषत्रयः पुनर्द्विविधाः, शेषाणां चतुर्विधापि द्विधा ॥१५३॥

टीका – च्यारि संज्वलन, सूक्ष्मसांपराय विषै जिनका बंध पाइए – ऐसे पांच ज्ञानावरण, च्यारि दर्शनावरण, पांच अंतराय – ए घातिया चौदह – इन अठारह प्रकृतिनि का अजघन्य स्थितिबंध तौ सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव च्यारि प्रकार है। बहुरि जघन्य, अनुत्कृष्ट, उत्कृष्ट – ए तीन स्थितिबंध सादि अर अध्रुव दोय ही प्रकार हैं। इनि विना अवशेष सर्व प्रकृतिनि का अजघन्य, जघन्य, अनुत्कृष्ट, उत्कृष्ट च्यार्यों ही प्रकार स्थितिबंध है, सो आदि अर अध्रुव दोय प्रकार ही है।

अजघन्यादिक का स्वरूप वा सादि इत्यादिक का स्वरूप पूर्वै कह्या था, सो जानना ॥१५३॥

सव्वाओ दु ठिदीओ, सुहासुहाणंपि होंति असुहाओ।
माणुसतिरिक्खदेवाउगं च मोत्तूण सेसाणं ॥१५४॥

सर्वास्तु स्थितयः, शुभाशुभानामपि भवंति अशुभाः ।
मनुष्यतिर्यग्देवायुष्कं च मुक्त्वा शेषाणां ॥१५४॥

टीका – मनुष्यायु, तिर्यचायु, देवायु बिना अवशेष सर्व शुभ प्रकृति वा अशुभ प्रकृतिनि की स्थिति सो अशुभ ही है, जातै ससार कौ कारण है । याही तै तीन प्रकृतिनि बिना अवशेष सर्व प्रकृतिनि का बहुत कषायी संक्लेशी जीव कै स्थितिबध बहुत प्रमाण लीए हो है । स्तोक कषायी विशुद्ध जीव कै थोरा प्रमाण लीए हो है ॥ १५४ ॥

आगै आबाधा का लक्षण कहै है–

कम्मसरूवेणागयदव्वं ण य एदिउदयरूवेण ।
रूवेणुदीरणस्स व, आबाहा जाव ताव हवे ॥१५५॥

कर्मस्वरूपेणागतद्रव्यं न चैति उदयरूपेण ।
रूपेणोदीरणाया वा, आबाधा यावत्तावद्भवेत् ॥१५५॥

टीका – कार्मण शरीर नामा नामकर्म के उदय तै जीव के प्रदेशनि का जो चंचलपना सोई योग, तिसके निमित्त करि कार्माणवर्गणारूप पुद्गल स्कध मूल प्रकृति वा उत्तर प्रकृति रूप होइ आत्मा के प्रदेशनि विषै परस्पर प्रवेश है; लक्षण जाका – असे बंधरूप करि जे तिष्ठै है, ते यावत् उदयरूप वा उदीरणारूप करि प्राप्त होंइ, तावत् काल आबाधा कहिए ।

भावार्थ – कर्म प्रकृति का बध भए पीछे यावत् काल उदयरूप वा उदीरणारूप न प्रवर्तै, तिस काल कौ आबाधाकाल कहिए है । तहा फल देने रूप परिणमना, सो तो उदय कहिए । बिना ही काल आए अपक्व कर्म का पचना, सो उदीरणा कहिए ॥१५५॥

आगै तिस आबाधा कौ मूल प्रकृतिनि विषै कहै है–

उदयं पडि सत्तण्हं, आबाहा कोडकोडि उवहीणं ।
वाससयं तप्पडिभागेण य सेसट्ठिदीणं च ॥१५६॥

उदयं प्रति सप्तानामाबाधा कोटीकोटिरुदधीनां ।
वर्षशतं तत्प्रतिभागेन च शेषस्थितीनां च ॥१५६॥

टीका – आयु विना सात कर्मनि की उदय की अपेक्षा आबाधा एक कोडाकोड़ी सागर स्थिति का एक सौ वर्ष जानने । अवशेष स्थिति की इस ही प्रतिभाग करि आबाधा जाननी । सो कहिए है – एक कोडाकोडी सागर स्थिति की सौ वर्ष आबाधा होइ, तौ सत्तरि कोडाकोडी सागर स्थिति को आवाधा केती होइ ? असें त्रैराशिक करिए ।

तहां प्रमाणराशि एक कोडाकोडी सागर, फलराशि सौ वर्ष, इच्छाराशि सत्तरि कोडाकोडी सागर, तहां फलराशि करि इच्छा कौ गुणें प्रमाण का भाग दीए लब्धराशि का प्रमाण सात हजार वर्ष आए, सोई मिथ्यात्व प्रकृति की उत्कृष्ट आवाधा जाननी ।

असें ही अपनी-अपनी स्थिति प्रमाण इच्छाराशि कीएं अपना-अपना आवाधा काल का प्रमाण आवै है । जिनकी चालीस कोडाकोडी सागर की स्थिति है, तिनका च्यारि हजार वर्ष प्रमाण आबाधाकाल है । जिनकी तीस कोडाकोडी सागर की स्थिति है, तिनका तीन हजार वर्ष प्रमाण आबाधा का काल है ।

असैं और भी प्रकृतिनि का आवाधाकाल जानना ।

बहुरि '**सण्णिअसण्णि चउक्के एगे अंतोमुहुत्तमाबाहा**' इस सूत्र करि पूर्वे वेंद्रियादिक कैं स्थिति संबंधी आवाधा कहि आए हैं, सो जाननी ।।१५६।।

आगें अंत:कोटाकोटी सागर प्रमाण स्थिति की आवाधा का प्रमाण कहिए है—

अंतोकोडाकोडिट्ठिदिस्स अंतोमुहुत्तमाबाहा ।
संखेज्जगुणविहीणं, सव्वजहण्णट्ठिदिस्स हवे ।।१५७।।

अंत:कोटीकोटिस्थितेः अंतर्मुहूर्त आबाधा ।
संख्यातगुणविहीनः, सर्वजन्यस्थितेर्भवेत् ।।१५७।।

टीका – अत:कोटाकोटी सागर प्रमाण स्थिति की आवाधा अंतर्मुहूर्त प्रमाण है । बहुरि सर्व कर्मनि की जघन्य स्थिति तैं ताकी आवाधा तीहिस्यों संख्यात गुणी घाटि है, तहां सौ वर्ष के दश लाख असी हजार मुहूर्त होंइ, सो इतने प्रमाण आवाधा एक कोडाकोडी सागर स्थिति की होइ, तौ एक मुहूर्त आवाधा कितनी स्थिति की होइ, असैं त्रैराशिक करिए ।

तहां प्रमाणराशि मुहूर्त दश लाख असी हजार, फलराशि एक कोडाकोडी सागर, इच्छाराशि एक मुहूर्त । सो फल करि इच्छा कौ गुणि प्रमाण का भाग दीए नव कोडी पचीस लाख वाणवे हजार पाच सौ वाणवै सागर अर एक सागर का एक सौ आठ भाग कीजिए, तामैं चौसठि भाग इतनी स्थिति कीएं एक मुहूर्त आबाधा भई ।

बहुरि प्रमाणराशि – सत्तर कोडाकोडी सागर, फलराशि – दश लाख असी हजार मुहूर्त, इच्छा राशि – नव कोडी पचीस लाख वाणवे हजार पांच सौ वाणवै अर चौंसठि, एक सौ आठवां भाग प्रमाण सागर कीए तिस स्थिति को आबाधा एक मुहूर्त हो है ।

बहुरि प्रमाणराशि सत्तर कोडाकोडी सागर, फलराशि आबाधा का प्रमाण सात हजार वर्ष, इच्छाराशि एक सागर, सो फल करि इच्छा कौं गुणि प्रमाण का भाग दीए जो लब्ध प्रमाण साधिक संख्यात उच्छ्वास मात्र आया, सो एक सागर की आबाधा जाननी ॥१५७॥

आयुकर्म की आबाधा कहै है—

पुव्वाणं कोडितिभागादासंखेयअद्धवोत्ति हवे ।
आउस्स य आबाहा, ण ट्ठिदिपडिभागमाउस्स ॥१५८॥

पूर्वाणां कोटित्रिभागादसंक्षेपाद्धा वा इति भवेत् ।
आयुषश्च आबाधा, न स्थितिप्रतिभाग आयुषः ॥१५८॥

टीका – आयुकर्म की उत्कृष्ट आबाधा कोटीपूर्व वर्ष का तीसरा भाग प्रमाण जाननी । बहुरि जघन्य आबाधा अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है अथवा [illegible] असंक्षेपाद्धा प्रमाण है । नाही है संक्षेप कहिए थोरा, अद्धा कहिए काल [illegible] **असंक्षेपाद्धा** कहिए, सो यहु काल आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण है, सो [illegible] कर्म की आबाधा असै ही है । अन्य कर्मनि की ज्यों स्थिति के अनुसारि [illegible] नाही है ।

तहा प्रश्न – जो असंख्यात वर्ष की जिनकी आयु है [illegible] आबाधा क्यो न कही ?

ताका समाधान – जो देव, नारकी, [illegible] अवशेष रहै अर भोगभूमिया कै नव महीना आयु [illegible]

आयु बंधै है। अर कर्मभूमिया मनुष्य तिर्यंच कै अपनी सर्व आयु का त्रिभाग करि आयु बंधै है, सो कर्मभूमिया की उत्कृष्ट स्थिति कोडि पूर्व वर्ष प्रमाण है, तातैं तिसही का त्रिभाग उत्कृष्ट आबाधाकाल कह्या, सो त्रिभाग करि आठ अपकर्षनि विषै आयु बंधैं अर जो कदाचित् किसी ही अपकर्ष में आयु न बंधै तो कोई आचार्य के मत तो आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण अर कोई आचार्य के मत एक समय घाटि मुहूर्त प्रमाण आयु का अवशेष रहै, तींहि के पहिले ही उत्तर भव कौं अंतर्मुहूर्त काल प्रमाण समयप्रबद्धनि विषैं बंध करि निष्ठापन करै है। ए दोऊ पक्ष आचार्यनि का परंपरा उपदेश करि अंगीकार कीए हैं ।।१५८।।

आगै उदीरणा की अपेक्षा आबाधा कौं कहै हैं—

आवलियं आबाहोउदीरणमासिज्ज सत्त कम्माणं ।
परभवियआउगस्स य, उदीरणा णत्थि णियमेण ।।१५९।।

आवलिकमाबाधोदीरणामाश्रित्य सप्तकर्मणां ।
परभवीयायुष्कस्य च, उदीरणा नास्ति नियमेन ।।१५९।।

टीका — उदीरणा कौं आश्रय करि आयु विना सात मूल प्रकृतिनि की आबाधा एक आवलीकाल प्रमाण है।

भावार्थ – जो कर्म उदय आवै तौ बंधै पीछै पूर्वै कह्या था आबाधाकाल का प्रमाण, सो व्यतीत भए पीछै उदय आवै। बहुरि जो कर्म उदीरणारूप प्रवर्तै तौ बंधै पीछैं एक आवली प्रमाणकाल गए पीछै भी उदीरणारूप होइ, तातैं उदीरणा की अपेक्षा आबाधा एक आवली प्रमाण कही। बहुरि आयुकर्म की उदीरणा जिस आयु कौं भोगवै है, तिस ही आयु की उदीरणा होइ अर बध्यमान जो आगामी उत्तर भव की आयु, ताकी उदीरणा न होइ नियमकरि।

बहुरि कर्म है सो आवलीकाल प्रमाण तौ जैसै बंधैं है, तैसै ही रहै, उदयरूप वा उदीरणा रूप न होई, तातैं इस आवली कौं **अचलावली** कहिए है। तिस अचलावली कौं छोड़ि करि पीछै कर्म परमाणूनि का समुदाय मेंम्यों केतीक कर्मपरमाणूनि का अपकर्षण करि जे उदयावली विषै प्राप्त करी, ते तौ आवलीकाल विषैं उदय देकरि खिरै। अर जे उपरितन स्थिति विषैं प्राप्त करीं, ते उदयावली तैं उपरि की स्थिति के अनुसार खिरै। ते अंत के विषैं आवली का प्रमाण अतिस्थापनावली

कौ छोडि असैं जे परमाणू प्राप्त करी ते नानागुणहानि करि सर्व निषेकनि विषै खिरै है ।

तहां उदयावली विषै दीया उदीरणा द्रव्य कैसे खिरै है ? सो कहिए है—

"अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे मज्झिमधणमागच्छदि तं रूऊणद्धाणद्धेण ऊणेण णिसेयभागहारेण मज्झिमधणमवहरदे पचयं तं दोगुणहाणिणा गुणिदे आदिणिसेयं तत्तो विसेस हीणकमं ।"

अध्वान कहिए विवक्षित काल के समयनि का प्रमाण सो गच्छ ताकरि सर्व धन कहिए विवक्षित सर्वपरमाणूनि का प्रमाण कौ, खडिते कहिए भाग दीए, मध्यमधन कहिए बीचि का समय विषै जेती खिरै तिसका प्रमाण आवै है । तिस मध्यम धन कौ एक घाटि गच्छ का आधा प्रमाण सो निषेक भागहार जो दोगुणहानि, तामेंस्यों घटाए जो प्रमाण होइ, ताका भाग दीएं जो प्रमाण होइ, सो चय का प्रमाण जानना । तिस चय कौ, दोगुणहानि कहिए गुणहानि के प्रमाण तै दूणा प्रमाण ताकरि गुणिए तब आदि निषेक कहिए पहिला समय विषै जेती परमाणू खिरै, तिनका प्रमाण जानना । बहुरि द्वितीयादिक समय संबंधी निषेकनि विषै जेती विशेष कहिए एक-एक चय घाटि परमाणूनि का खिरणा जानना । इनि सबनि का विशेष स्वरूप पूर्वै कहि आए है, तथा आगे कहैंगे, सो जानना । असैं विना ही काल आए जैसैं पाल करि अंब पकाइए है, तैसैं अपक्क कर्म कौ उदीरणा करि उदयावली विषै प्राप्त कीया । तिस कर्म के खिरने का असा विधान जानना ।।१५६।।

आगे निषेक का स्वरूप कहै है—

आबाहूणियकम्मट्ठिदी णिसेगो दु सत्तकम्माणं ।
आउस्सणिसेगो पुण, सगट्ठिदी होदि णियमेण ।।१६०।।

आबाधोनितकर्मस्थितिः निषेकस्तु सप्तकर्मणां ।
आयुषो निषेकः पुनः, स्वकस्थितिर्भवति नियमेन ।।१६०।।

टीका – आयु विना सात कर्मनि का निषेक आबाधा करि हीन कर्मस्थिति प्रमाण जानना, समय-समय प्रति विषै कर्म परमाणू खिरै तिनके समूह का नाम निषेक जानना । सो विवक्षित कर्म की जेती स्थिति बंधी होइ, तिसमेंस्यों आबाधाकाल विषै तौ कोइ परमाणू खिरै नाही, पीछै समय-समय प्रति विवक्षित कर्म परमाणू

अनुक्रम तें खिरै, तातै जो कर्म की स्थिति होइ, तामेंस्यो आबाधाकाल घटाएं जो काल रहै, ताके समयनि का जो प्रमाण, सोई निषेकनि का प्रमाण जानना सो सात कर्म का निषेक तो असै जानना।

बहुरि आयुकर्म की जेती स्थिति होइ, सोइ निषेकनि का प्रमाण जानना। इहां आबाधा न घटावनी, जातै आयुकर्म की आबाधा तौ पहला भव ही मे होय गई, पीछे जो पर्याय धरया, तहां आयुकर्म की स्थिति के जेते समय है, तिन सर्व समयनि विषै प्रथम समयस्यों लगाय अंत समय पर्यंत सयय-समय प्रति परमाणू क्रम ते खिरे है, तातै आयुकर्म की जेती स्थिति होइ, तेते समयनि का जो परिमाण, सोई आयुकर्म के निषेकनि का प्रमाण जानना ॥१६०॥

आबाहं बोलाविय, पढमणिसेगम्मि देय बहुगं तु।
तत्तो विसेसहीणं, बिदियस्सादिमणिसेओत्ति ॥१६१॥

आबाधां वा अपलाप्य, प्रथमनिषेके देयं बहुकं तु।
ततो विशेषहीनं, द्वितीयस्यादिमनिषेक इति ॥१६१॥

टीका – सो कर्म की जेती स्थिति बंधी होइ, तामै जिससमय बंध भया हो, तीहि का प्रथम समयस्यों लगाय आबाधाकाल पर्यंत तौ कोई परमाणू खिरै नाही, तातै तिस आबाधाकाल कौ छोडि करि जो अनंतर समय है, तहां प्रथम गुणहानि का प्रथम निषेक है, सो इस विषै और निषेकनि तैं बहुत द्रव्य दीजिए है, बहुत परमाणू खिरै है। बहुरि प्रथम गुणहानि का द्वितीयादि निषेकनि विषैं द्वितीय गुणहानि का प्रथम निषेक पर्यंत एक-एक विशेष कहिए चय, ताकों घटाएं जो-जो प्रमाण आवै, तितना-तितना द्रव्य दीजिए है, तितने-तितने परमाणूं खिरै हैं ॥१६१॥

बिदिये बिदियणिसेगे, हाणी पुव्विल्लहाणिअद्धं तु।
एवं गुणहाणिं पडि हाणी अद्धद्धयं होदि ॥१६२॥

द्वितीये द्वितीयनिषेके, हानिः पूर्वहान्यर्धं तु।
एवं गुणहानिं प्रति, हानिरर्धार्धं भवति ॥१६२॥

टीका– बहुरि दूसरी-गुणहानि विषै जो-जो दूसरा निषेक, ताके विषै प्रथम निषेक तै पूर्वे निषेक-निषेक प्रति जितना घटाया था, तिसतै आधा घटाएं जो प्रमाण

रहै, तितना द्रव्य देना। ऐसें ही तृतीयादि निषेकनि विषै तृतीय गुणहानि का प्रथम निषेक पर्यंत इतने-इतने ही घटावने। बहुरि ऐसें ही गुणहानि-गुणहानि प्रति आधा-आधा अनुक्रम जानना, सो इस सर्व कथन कौ पूर्वे कहि आए है वा आगै विशेष करि कहैगे, सामान्य-सा इहां अंकसंदृष्टि करि कहिए है—

विवक्षित कर्म की परमाणू तरेसठि सौ (६३००), आबाधा बिना स्थिति का प्रमाण अठतालीस समय (४८), गुणहानि एक, आठ समय प्रमाण (८)। तहां सर्व-स्थिति विषै गुणहानि छह (६), दोगुणहानि सोलह (१६), अन्योन्याभ्यस्तराशि चौसठि (६४)। तहां प्रथम गुणहानि विषै परमाणू बत्तीस सौ खिरै, द्वितीयादिक गुणहानि विषै आधे-आधे खिरै – ३२००, १६००, ८००, ४००, २००, १००। एक घाटि अन्योन्याभ्यस्तराशि का सर्व द्रव्य कौ भाग दीए अंत की गुणहानि विषै परिमाण आवै है, यातै दूणा-दूणा द्रव्य आदि की गुणहानि पर्यंत जानना।

बहुरि प्रथम गुणहानि का सर्व द्रव्य बत्तीस सौ, याकौ प्रथम गुणहानि का गच्छ का प्रमाण आठ, ताका भाग दीए मध्य धन च्यारिसै, याकौ एक घाटी गच्छ का आधा प्रमाण साढा तीन, सो निषेक भागहार जो सोला, तामैस्यों घटाएं साढ़ा बारह रहे, ताका भाग दीएं बत्तीस पाए, सो चय जानना। याकौ दोगुणहानि सोला करि गुणै पांचसै बारह भए, सो निषेक सबंधी द्रव्य जानना। यातै एक-एक चय घटाएं द्वितीयादि निषेक संबंधी द्रव्य होइ ५१२,४८०,४४८,४१६,३८४,३५२,३२०,२८८।

बहुरि इस दोय सौ अठयासी में एक चय घट्या तब दोय सौ छप्पन भया, सो प्रथम गुणहानि के प्रथम निषेक तै आधा परिमाण भया, सो यहु द्वितीय-गुणहानि का प्रथम निषेक जानना। इहां हानिरूप चय का प्रमाण पूर्व तै आधा सोला, सो तीसरी गुणहानि का प्रथम निषेक पर्यंत सोला-सोला घटावना – २५६, २४०, २२४, २०८, १९२, १७६, १६०, १४४।

यामै एक चय घटाए एक सौ अठाईस सो दूसरी गुणहानि के प्रथम निषेक तै आधा भया, सो यहु तीसरी गुणहानि का प्रथम निषेक है। इहां चय का प्रमाण तिसतै आधा आठ जानना। ऐसे अंत की छठी गुणहानि पर्यत सर्व धन का वा निषेकनि विषै द्रव्य का वा चय का आधा-आधा प्रमाण जानना।

इस अनुक्रम तै सर्व तरेसठि सौ परमाणू निजस्थिति विषै खिरै है।

इस दृष्टांत करि यथायोग्य सर्व कर्मनि विषै कथन जानना ॥१६२॥

॥ इति स्थितिबंधप्रकरणं समाप्तं ॥

आगे अनुभागबंध तेईस गाथानि करि कहै है-

सुहपयडीण विसोही, तिव्वो असुहाण संकिलेसेण ।
विवरीदेण जहण्णो, अणुभागो सव्वपयडीणं ॥१६३॥

शुभप्रकृतीनां विशुद्धया, तीव्रोऽशुभानां संक्लेशेन ।
विपरीतेन जघन्योऽनुभागः सर्वप्रकृतीनां ॥१६३॥

टीका – शुभ प्रकृति जो सातावेदनीयादिक प्रशस्त प्रकृति, तिनका विशुद्ध परिणामनि करि तीव्र कहिए उत्कृष्ट अनुभागबध हो है । बहुरि अशुभ प्रकृति जे असातावेदनीयादिक अप्रशस्त प्रकृति, तिनका सक्लेश परिणाम करि तीव्र अनुभाग बध हो है ।

बहुरि **'विपरीतेन'** कहिए शुभ प्रकृतिनि का संक्लेश परिणाम करि अर अशुभ प्रकृतिनि का विशुद्ध परिणाम करि जघन्य अनुभागबध हो है ।

सर्व प्रकृतिनि का असै अनुभागबंध जानना । तहां मंदकषायरूप विशुद्ध परिणाम जानने । तीव्रकषायरूप संक्लेश परिणाम जानने ॥१६३॥

बादालं तु पसत्था, विसोहिगुणमुक्कडस्स तिव्वाओ ।
वासीदि अप्पसत्था, मिच्छुक्कडसंकिलिट्ठस्स ॥१६४॥

द्वाचत्वारिंशत्तु प्रशस्ता, विशुद्धिगुणोत्कटस्य तीव्राः ।
द्वयशीतिरप्रशस्ताः, मिथ्योत्कटसंक्लिष्टस्य ॥१६४॥

टीका – सातावेदनीयादिक बियालीस (४२) प्रशस्त-प्रकृति हैं, ते विशुद्धता गुण की उत्कृष्टता तीव्रता जाकै पाइए तिस जीव कै तीव्र अनुभाग लीएं बंधै है । बहुरि असातादिक बियासी (८२) अप्रशस्त प्रकृति, ते मिथ्यादृष्टि उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम का धारी, ताकै तीव्र अनुभाग सहित बधै है । इहां वर्णादि च्यारि प्रकृति शुभरूप तौ प्रशस्त प्रकृतिनि मे गिनी और अशुभरूप अप्रशस्त प्रकृतिनि में गिनी, दोऊ जायगा इनिका ग्रहण कीया है ॥१६४॥

आदाओ उज्जोओ, मणुवतिरिक्खाउगं पसत्थासु ।
मिच्छस्स होंति तिव्वा, सम्माइट्ठिस्स सेसाओ ॥१६५॥

आतप उद्योतो, मानवतिर्यगायुष्कं प्रशस्तासु ।
मिथ्यस्य भवंति तीव्राः, सम्यग्दृष्टेः शेषाः ॥१६५॥

टीका – तिन बियालीस प्रशस्त प्रकृतिनि विषै आतप, उद्योत, मनुष्यायु, तिर्यंचायु – इन च्यारि प्रकृतिनि का तौ विशुद्ध मिथ्यादृष्टि कै तीव्र अनुभागबध हो है। बहुरि अवशेष अठतीस प्रकृतिनि का विशुद्ध सम्यग्दृष्टि कै तीव्र अनुभागबध हो है ॥१६५॥

मणुऔरालदुवज्जं, विसुद्धसुरणिरयअविरदे तिव्वा ।
देवाउ अप्पमत्ते, खवगे अवसेसबत्तीसा ॥१६६॥

मनुष्यौदारिकद्विवज्रं, विशुद्धसुरनिरयाविरते तीव्राः ।
देवायुरप्रमत्ते, क्षपके अवशेषद्वात्रिंशत् ॥१६६॥

टीका – सम्यग्दृष्टि कै अठतीस का तीव्र अनुभागबध कह्या था, तिनविषै मनुष्यगति वा आनुपूर्वी, औदारिक शरीर वा अगोपांग, वज्रवृषभनाराच संहनन – इन पचनि कौ तीव्र अनुभाग सहित जो जीव अनंतानुबंधी की विसयोजन विषै तीन करण करै है, तहां अनिवृत्तिकरण का अत के समय विशुद्ध देव-नारकी असंयत सम्यग्दृष्टि है, सो बांधै है। बहुरि देवायु कौ तीव्र अनुभाग सहित अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीव बांधै है। अवशेष बत्तीस प्रकृति तीव्र अनुभाग सहित क्षपक श्रेणीवाला जीव बांधै है ॥१६६॥

उवघादहीणतीसे, अपुव्वकरणस्स उच्चजससादे ।
संमेलिदे हवंति हु, खवगस्सऽवसेसबत्तीसा ॥१६७॥

उपघातहीनत्रिंशति, अपूर्वकरणस्य उच्चयशःसातं ।
संमेलिते भवंति हि, क्षपकस्यावशेषद्वात्रिंशत् ॥१६७॥

टीका – अपूर्वकरण का छठा भाग मे तीस व्युच्छित्ति गई. तिनविषै उपघात बिना गुणतीस अर उच्च गोत्र, यशस्कीर्ति, सातावेदनीय – ए सर्व मिली हुई अवशेष बत्तीस प्रकृति कही थी, ते जाननी ॥१६७॥

मिच्छस्संतिमणवयं, णरतिरियाऊणि वामणरतिरिये ।
एइंदियआदावं, थावरणामं च सुरमिच्छे ॥१६८॥

मिथ्यात्वस्यांतिमनवकं, नरतिर्यगायुषी वामनरतिरश्चि ।
एकेंद्रियमातापं, स्थावरनाम च सुरमिथ्यात्वे ।।१६८।।

टीका – बियासी अप्रशस्त अर आतप, उद्योत, मनुष्यायु, तिर्यंचायु – इन छियासी का मिथ्यादृष्टि ही कै तीव्र अनुभाग सहित बंध है। तिनविषै जे मिथ्यादृष्टि विषै सोलह प्रकृति की व्युच्छित्ति कही थी; तिनमें सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारणादिक अंत की नव प्रकृति, तिनकौ तौ संक्लेश परिणाम युक्त मनुष्य वा तिर्यंच, अर मनुष्यायु, तिर्यंचायु कौ विशुद्ध मनुष्य वा तिर्यंच है, सो तीव्र अनुभाग सहित बांधै है। बहुरि एकेंद्री, स्थावर – इन दोऊ का तौ संक्लेश परिणामनि का धारी अर आतप का विशुद्ध परिणाम का धारी देव है, सो अपनी आयु का छह महीना अवशेष रहे तीव्र अनुभाग बांधै है ।।१६८।।

उज्जोवो तमतमगे, सुरणारयमिच्छगे असंपत्तं ।
तिरियदुगं सेसा पुण, चदुगदिमिच्छे किलिट्ठे य ।।१६९।।

उद्योतः तमस्तमके, सुरनारकमिथ्यके असंप्राप्तं ।
तिर्यग्द्विकं शेषाः पुनः, चतुर्गतिमिथ्ये क्लिष्टे च ।।१६९।।

टीका – तमस्तमक सातवां नरक तिसविषै उपशम सम्यक्त्व कौ सन्मुख भया ऐसा विशुद्ध मिथ्यादृष्टि जीव सो उद्योत प्रकृति कौ तीव्र अनुभाग सहित बांधै है, जातै अतिविशुद्ध कै उद्योत प्रकृति का बंध न हो है। बहुरि असंप्राप्तसृपाटिका संहनन अर तिर्यंचगति वा आनुपूर्वी, इनकौ तीव्र अनुभाग सहित देव वा नारकी मिथ्यादृष्टि बांधै है। बहुरि अवशेष रही अडसठि (६८) प्रकृतिनि कौ तीव्र अनुभाग सहित च्यार्यों गति के संक्लेश परिणामनि के धारी मिथ्यादृष्टि जीव बांधै है ।।१६९।।

आगे जघन्य अनुभागबंध जिनकै हो है, तिनकौ कहैं है—

वण्णचउक्कमसत्थं, उवघादो खवगघादि पणवीसं ।
तीसाणमवरबंधो, सगसगवोच्छेदठाणम्हि ।।१७०।।

वर्णचतुष्कमशस्तमुपघातः क्षपकघाति पंचविंशतिः ।
त्रिंशतामवरबंधः, स्वकस्वकव्युच्छेदस्थाने ।। १७० ।।

टीका – अप्रशस्त वर्णादिक च्यारि, उपघात, ज्ञानावरण पाच, अतराय पाच, दर्शनावरण च्यारि, निद्रा, प्रचला, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, सज्वलन कषाय च्यारि – इन तीस प्रकृतिनि की अपनी-अपनी जहा बध विषै व्युच्छित्ति भई है, तहां इनका जघन्य अनुभागबध हो है ।।१७०।।

अणथीणतियं मिच्छं, मिच्छे अयदे हु बिदियकोधादी ।
देसे तदियकसाया, संजमगुणपच्छिदे सोलं ।। १७१ ।।

अन-स्थानत्रयं मिथ्यात्वं, मिथ्ये अयते हि द्वितीयक्रोधादयः ।
देशे तृतीयकषायाः, संयमगुणप्रस्थिते षोडश ।। १७१ ।।

टीका – अनंतानुबंधी कषाय च्यारि, स्त्यानगृद्ध्यादिक तीन, मिथ्यात्व – ए आठ मिथ्यादृष्टि विषै, अर अप्रत्याख्यान कषाय च्यारि असंयत विषै, प्रत्याख्यान च्यारि कषाय देशसंयत विषैं – ए सोला प्रकृति इन गुणस्थान विषै जो जीव सयम गुण धरने कौं सन्मुख भया, असा विशुद्ध जीव, ताकै जघन्य अनुभाग सहित बंधै हैं ।।१७१।।

आहारमप्पमत्ते, पमत्तसुद्धे य अरदिसोगाणं ।
णरतिरिये सुहुमतियं, वियलं वेगुव्वछक्काओ ।।१७२।।

आहारमप्रमत्ते, प्रमत्तशुद्धे च अरतिशोकयोः ।
नरतिरश्चि सूक्ष्मत्रयं, विकलं वैगूर्वषट्कं ।।१७२।।

टीका – आहारद्विक प्रशस्त प्रकृति है, तातै प्रमत्त गुणस्थान कौ सन्मुख भया असा सक्लेशी अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीव ताकै जघन्य अनुभाग सहित बंधै है । बहुरि अरति अर शोक ए – अप्रशस्त है, तातै अप्रमत्त गुणस्थान कौ सन्मुख भया असा विशुद्ध प्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीव, ताकै जघन्य अनुभाग सहित बधै है । बहुरि सूक्ष्म, अपर्याप्ति, साधारण – ए तीन अर बेद्री, तेंद्री, चौद्री – तीन, देवद्विक, नरकद्विक, वैक्रियिकद्विक – ए छह, आयु च्यारि – ए सोला प्रकृति मनुष्य वा तिर्यच कै जघन्य अनुभाग सहित बधै है ।।१७२।।

सुरणिरये उज्जोवोरालदुगं तमतमम्हि तिरियदुगं ।
णीचं च तिगदिमज्झिमपरिणामे थावरेयक्खं ।।१७३।।

मिथ्यात्वग्रंतिमनवकं, नरतिर्यगायुषी वामनरतिरश्चि ।
एकेंद्रियमातापं, स्थावरनाम च सुरमिथ्यात्वे ।।१६८।।

टीका – वियासी अप्रशस्त अर आतप, उद्योत, मनुष्यायु, तिर्यंचायु – इन छियासी का मिथ्यादृष्टि ही कै तीव्र अनुभाग सहित बंध है। तिनविषै जे मिथ्यादृष्टि विषै सोलह प्रकृति की व्युच्छित्ति कही थी; तिनमें सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारणादिक अंत को नव प्रकृति, तिनकौ तौ संक्लेश परिणाम युक्त मनुष्य वा तिर्यंच, अर मनुष्यायु, तिर्यंचायु कौ विशुद्ध मनुष्य वा तिर्यंच है, सो तीव्र अनुभाग सहित बांधै है। बहुरि एकेंद्री, स्थावर – इन दोऊ का तौ संक्लेश परिणामनि का धारी अर आतप का विशुद्ध परिणाम का धारी देव है, सो अपनी आयु का छह महीना अवशेष रहे तीव्र अनुभाग बांधै है ।।१६८।।

उज्जोवो तमतमगे, सुरणारयमिच्छगे असंपत्तं ।
तिरियदुगं सेसा पुण, चदुगदिमिच्छे किलिट्ठे य ।।१६९।।

उद्योतः तमस्तमके, सुरनारकमिथ्यके असंप्राप्तं ।
तिर्यग्द्विकं शेषाः पुनः, चतुर्गतिमिथ्ये क्लिष्टे च ।।१६९।।

टीका – तमस्तमक सातवां नरक तिसविषै उपशम सम्यक्त्व कौं सन्मुख भया असा विशुद्ध मिथ्यादृष्टि जीव सो उद्योत प्रकृति कौ तीव्र अनुभाग सहित बांधै है, जातै अतिविशुद्ध कै उद्योत प्रकृति का बंध न हो है। बहुरि असंप्राप्तसृपाटिका संहनन अर तिर्यंचगति वा आनुपूर्वी, इनकौं तीव्र अनुभाग सहित देव वा नारकी मिथ्यादृष्टि बांधै है। बहुरि अवशेष रही अडसठि (६८) प्रकृतिनि कौं तीव्र अनुभाग सहित च्यार्यो गति के संक्लेश परिणामनि के धारी मिथ्यादृष्टि जीव बांधै हैं ।।१६९।।

आगै जघन्य अनुभागबंध जिनकै हो है, तिनकौ कहैं है —

वण्णचउक्कमसत्थं, उवघादो खवगघादि पणवीसं ।
तीसाणमवरबंधो, सगसगवोच्छेदठाणम्हि ।।१७०।।

वर्णचतुष्कमशस्तमुपघातः क्षपकघाति पंचविंशतिः ।
त्रिंशतामवरबंधः, स्वकस्वकव्युच्छेदस्थाने ।। १७० ।।

टीका - अप्रशस्त वर्णादिक च्यारि, उपघात, ज्ञानावरण पाच, अंतराय पाच, दर्शनावरण च्यारि, निद्रा, प्रचला, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, सज्वलन कषाय च्यारि - इन तीस प्रकृतिनि की अपनी-अपनी जहा बध विषै व्युच्छित्ति भई है, तहां इनका जघन्य अनुभागबध हो है ।।१७०।।

अणथीणतियं मिच्छं, मिच्छे अयदे हु विदियकोधादी ।
देसे तदियकसाया, संजमगुणपच्छिदे सोलं ।। १७१ ।।

अन-स्त्यानत्रयं मिथ्यात्वं, मिथ्ये अयते हि द्वितीयक्रोधादयः ।
देशे तृतीयकषायाः, संयमगुणप्रस्थिते षोडश ।। १७१ ।।

टीका - अनतानुबधी कषाय च्यारि, स्त्यानगृद्ध्यादिक तीन, मिथ्यात्व - ए आठ मिथ्यादृष्टि विषै, अर अप्रत्याख्यान कषाय च्यारि असयत विषै, प्रत्याख्यान च्यारि कषाय देशसयत विषै - ए सोला प्रकृति इन गुणस्थान विषै जो जीव संयम गुण धरने कौ सन्मुख भया, ऐसा विशुद्ध जीव, ताकै जघन्य अनुभाग सहित बधै हैं ।।१७१।।

आहारमप्पमत्ते, पमत्तसुद्धे य अरदिसोगाणं ।
णरतिरिये सुहुमतियं, वियलं वेगुव्वछक्काओ ।।१७२।।

आहारमप्रमत्ते, प्रमत्तशुद्धे च अरतिशोकयोः ।
नरतिरश्चि सूक्ष्मत्रयं, विकलं वैगूर्वषट्कं ।।१७२।।

टीका - आहारद्विक प्रशस्त प्रकृति है, तातै प्रमत्त गुणस्थान कौ सन्मुख भया ऐसा संक्लेशी अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीव ताकै जघन्य अनुभाग सहित बधै है। बहुरि अरति अर शोक ए - अप्रशस्त है, तातै अप्रमत्त गुणस्थान कौ सन्मुख भया ऐसा विशुद्ध प्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीव, ताकै जघन्य अनुभाग सहित बधै है । बहुरि सूक्ष्म, अपर्याप्ति, साधारण - ए तीन अर बेद्री, तेद्री, चौद्री - तीन, देवद्विक, नरकद्विक, वैक्रियिकद्विक - ए छह, आयु च्यारि - ए सोला प्रकृति मनुष्य वा तिर्यच कै जघन्य अनुभाग सहित बधै है ।।१७२।।

सुरणिरये उज्जोवोरालदुगं तमतमम्हि तिरियदुगं ।
णीचं च तिगदिमज्झिमपरिणामे थावरेयक्खं ।।१७३।।

सुरनिरये उद्योतौरालद्विकं तमस्तमसि तिर्यग्द्विकं ।
नीचं च त्रिगतिमध्यमपरिणामे स्थावरैकाक्षं ।।१७३।।

टीका – उद्योत अर औदारिक द्विक – ए देव अर नारकी कै जघन्य अनुभाग सहित वधै है। तहां उद्योत प्रकृति अतिविशुद्ध परिणामी देव, ताकै तौ बंधै नाही; तातै संक्लेश परिणामी कै जघन्य अनुभाग लीएं वधै है, जातै उद्योत प्रकृति प्रशस्त है। बहुरि तिर्यचगति वा आनुपूर्वी, नीचगोत्र – ए तमस्तमक सातवां नरक विषै विशुद्ध जीव कै जघन्य अनुभाग सहित बंधै हैं। बहुरि स्थावर, एकेंद्री – ए दोय प्रकृति नारकी विना तीन गतिवाले जीव उत्कृष्ट संक्लेश वा विशुद्ध परिणाम करि रहित जो जीव मध्यम परिणामी होइ, ताकै जघन्य अनुभाग सहित वधै है ।।१७३।।

सोहम्मोत्ति य तावं, तित्थयरं अविरदे मणुस्सम्हि ।
चदुगदिवामकिलिट्ठे, पण्णरस दुवे विसोहीये ।।१७४।।

सौधर्म इति च आतपं, तीर्थंकरमविरते मनुष्ये ।
चतुर्गतिवामक्लिष्टे, पंचदश द्वे विशुद्धे ।।१७४।।

टीका – आतप प्रकृति, भवनत्रिक अर सौधर्मद्विक देव संक्लेश परिणामी होइ, ताकै जघन्य अनुभाग सहित वधै है। बहुरि तीर्थंकर प्रकृति जो नरक जाने कौं सन्मुख भया ऐसा असंयत गुणस्थानवर्ती मनुष्य, ताकै जघन्य अनुभाग युक्त बंधै है। बहुरि पंद्रह प्रकृति च्यार्यों गति का संक्लेशी जीवनि कै अर दोय प्रकृति च्यार्यों गति का विशुद्ध जीवनि कै जघन्य अनुभाग सहित बंधै हैं ।।१७४।।

तिन पंद्रह अर दोय प्रकृतिनि के नाम कहैं हैं—

परघाददुगं तेजदु, तसवण्णचउक्क णिमिणपंचिदी ।
अगुरुलहुं च किलिट्ठे, इत्थिणउंसं विसोहीये ।।१७५।।

परघातद्विकं तेजोद्वि, त्रसवर्णचतुष्कं निर्माणपंचेंद्रियं ।
अगुरुलघु च क्लिष्टे, स्त्रीनपुंसकं विशुद्धे ।। १७५ ।।

टीका – परघात-उच्छ्वास ए दोय, तैजस-कार्माण ए दोय, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक – ए च्यारि, शुभरूप वर्णादिक च्यारि, निर्माण, पंचेंद्री, अगुरुलघु – ये पंद्रह प्रकृति च्यार्यों गति का संक्लेशी जीव कैं जघन्य अनुभाग सहित बंधै है,

जातें ए प्रकृति प्रशस्त है । बहुरि स्त्रीवेद अर नपुसक वेद – ए दोऊ अप्रशस्त है, तातै च्यारयो गति का विशुद्ध जीव के जघन्य अनुभाग सहित बधै है ।।१७५।।

सम्मो वा मिच्छो वा, अट्ठ अपरियत्तमज्झिमो य जदि ।
परियत्तमाणमज्झिम, मिच्छाइट्ठी दु तेवीसं ।।१७६।।

सम्यग्वा मिथ्यो वा, अष्ट अपरिवर्तनमध्यमश्च यदि ।
परिवर्तमानमध्यम,मिथ्यादृष्टिस्तु त्रयोविंशतिः ।।१७६।।

टीका – अगली गाथा विषै इकतीस प्रकृति कहिए है, तिन विषै पहिली आठ प्रकृति तो अपरिवर्तमान मध्यम परिणामी सम्यग्दृष्टि वा मिथ्यादृष्टि जीव जो होइ तो जघन्य अनुभाग सहित बाधै है । बहुरि अवशेष तेईस प्रकृति परिवर्तमान मध्यम परिणामी मिथ्यादृष्टि जीव ही जघन्य अनुभाग सहित बांधै है ।।१७६।।

ते प्रकृति कौन ? सो कहै है—

थिरसुहजससादद्दुगं, उभये मिच्छेव उच्चसंठाणं ।
संहदिगमणं णरसुरसुभगादेज्जाण जुम्मं च ।।१७७।।

स्थिरशुभयशस्सातद्विकमुभयस्मिन् मिथ्ये एव उच्चसंस्थानं ।
संहतिगमनं नरसुरसुभगादेयानां युग्मं च ।।१७७।।

टीका – स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यश.-अयशः, साता-असाता – ए आठ अपरिवर्तमान मध्यम परिणामी सम्यग्दृष्टि वा मिथ्यादृष्टि दोऊ कै जघन्य अनुभाग सहित बधै है । बहुरि उच्चगोत्र, सस्थान छह, सहनन छह, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति, मनुष्यगति वा आनुपूर्वी, देवगति वा आनुपूर्वी, सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय – ए तेईस प्रकृति परिवर्तमान मध्यम परिणामी मिथ्यादृष्टि जीव ही कै जघन्य अनुभाग सहित बधै हैं ।

इहा अपरिवर्तमान मध्यम परिणाम अर परिवर्तमान मध्यम परिणाम का लक्षण कहिए है—

अणुसमयं केवलं वड्ढमाणा हीयमाणा च जे संकिलेस्स-विसोहिपरिणामा ते अपरियत्तमाणा णाम । जेत्थ पुण ठाविदूण परिणामांतरं गंतूण एगदोहि आगमणं संभवदि ते परियत्तमाण णाम । तत्थ उक्कस्सा मज्झिमा जहण्णा तिविहा परिणामा

ण। तत्थ सव्व विसुद्धपरिणामेहि य जहण्णो अणुभागो होदि अप्पसत्थपयडीणं अणुभागादो अणंतगुणपसत्थपयडी अणुभागस्स अणंतगुणवड्ढिप्पसंगादो ण सव्व संकिलेट्ठपरिणामेहि य तिव्वसंकिलिस्सेण असुहाणं पयडीणं अणुभाग वड्ढिप्पसंगादो तम्हा जहण्णुक्कस्स परिणामणिराकरणट्ठं परियत्तमाणमज्झिमपरिणामेहि त्ति उत्तं।

'अणुसमयं' कहिए समय-समय प्रति, केवल वर्धमान कहिए बधते ही जाय वा हीयमान कहिए घटने ही जाय ऐसे जे सक्लेश रूप वा विशुद्ध रूप परिणाम, ते **अपरिवर्तमान** ऐसै नाम कहिए। जातै इहा परिणाम पलटि उलटा न आया। बहुरि जिस परिणाम विषै तिष्ठ करि और परिणामातर कौ प्राप्त होइ कोइ एक परिणाम थकी पलटि तिसही परिणाम विषै प्राप्त होना सभवै, ते परिणाम **परिवर्तमान** ऐसे नाम कहिए, जातै इहा परिणाम पलटि उलटा आया।

तहा उत्कृष्ट,मध्यम, जघन्य ऐसै परिणाम तीन प्रकार है। तहा नाही सर्वोत्कृष्ट विशुद्ध परिणामनि करि जघन्य अनुभागवध हो है, जातै अप्रशस्त प्रकृतिनि के अनुभाग तै अनत गुणा प्रशस्त प्रकृतिनि का अनुभाग है। तहा अनत गुणवृद्धि का प्रसग है।

भावार्थ – सर्वोत्कृष्ट विशुद्ध परिणामनि तै तौ शुभ प्रकृतिनि का उत्कृष्ट अनुभागवध हो है, इहा जघन्य अनुभाग का कथन है, तातै सर्वोत्कृष्ट विशुद्ध परिणाम का ग्रहण न करना। बहुरि सर्वोत्कृष्ट संक्लेश परिणामनि करि भी जघन्य अनुभागवध न होइ, जातै तीव्र सक्लेश करि अशुभ प्रकृतिनि का अनुभाग वृद्धिरूप बहुत होइ। इहा जघन्य अनुभाग का कथन है, तातै सर्वोत्कृष्ट सक्लेश परिणाम का भी ग्रहण न करना, तातै जघन्य वा उत्कृष्ट परिणामनि के निराकरण के अर्थि परिवर्तमान मध्यम परिणामनि करि पूर्वोक्त प्रकृतिनि का जघन्य अनुभागबंध हो है, ऐसै कह्या ॥१७७॥

आगै मूल प्रकृतिनि के उत्कृष्टादि के अनुभाग; तिनके सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव भेद सभवै है वा न सभवै है ? सो कहै है—

घादीणं अजहण्णोऽणुक्कस्सो वेयणीयणामाणं।
अजहण्णमणुक्कस्सो, गोदे चदुधा दुधा सेसा ॥१७८॥

घातिनामजघन्योऽनुत्कृष्टो वेदनीयनाम्नोः।
अजघन्योऽनुत्कृष्टो, गोत्रे चतुर्धा द्विधा शेषाः ॥१७८॥

टीका – च्यार्‍यों घाति कर्मनि का अजघन्य अनुभागबंध, वेदनीय अर नामकर्म का अनुत्कृष्ट अनुभागबंध, गोत्रकर्म का अजघन्य अर अनुत्कृष्ट बंध – ए तौ सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव भेद तै च्यार्‍यों प्रकार हैं। बहुरि अवशेष च्यार्‍यों घाति कर्मनि का अजघन्य बिना तीन प्रकार, वेदनीय नाम का अनुत्कृष्ट बिना तीन प्रकार, गोत्र का अजघन्य, अनुत्कृष्ट बिना दोय प्रकार, आयुकर्म का जघन्य, अजघन्य, उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट च्यार्‍यों प्रकार अनुभागबंध, सो सादि अर अध्रुव के भेद तै दोय ही प्रकार है ॥१७८॥

आगे ध्रुव प्रकृतिनि विषै तौ प्रशस्त वा अप्रशस्त प्रकृति अर अध्रुव प्रकृति तिनकै जघन्य, अजघन्य, अनुत्कृष्ट, उत्कृष्ट अनुभागबंध संभवै हैं, तहां साद्यादिक भेद कहै हैं–

सत्थाणं धुवियाणमणुक्कस्समसत्थगाण धुविणाणं।
अजहण्णं च य चदुधा, सेसा सेसाणयं च दुधा ॥१७९॥

शस्तानां ध्रुवाणामनुत्कृष्टोऽशस्तकानां ध्रुवाणां।
अजघन्यश्च च चतुर्धा, शेषाः शेषाणां च द्वेधा ॥१७९॥

टीका – तैजस, कार्माण, अगुरुलघु, निर्माण, प्रशस्तवर्णादिक च्यारि – ए ध्रुवबधी प्रशस्त प्रकृति है, सो इनका तौ अनुत्कृष्ट अनुभागबध और ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अतराय की उगणीस (१९), मिथ्यात्व एक, सोलह कषाय, भय-जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णादिक च्यारि, उपघात – ए ध्रुवबधी अप्रशस्त प्रकृति है, सो इनिका अजघन्य अनुभागबध सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव के भेदतैं च्यारि प्रकार है।

बहुरि निरंतर जिनका बंध पाइए असी कही जे ध्रुवबध प्रकृति, तिनिका तौ इनि बिना जघन्यादिक तीन प्रकार अनुभागबंध अर अध्रुवबधी तेहत्तरि (७३) प्रकृति तिनका जघन्यादिक च्यारि प्रकार सर्व अनुभागबध – सो सादि अर अध्रुव के भेद तै दोय ही प्रकार है ॥१७९॥

अनुभाग कहा कहिए ? असा प्रश्न करतै तिस अनुभाग का स्वरूप प्रथम घाति कर्मनि विषैं कहै हैं—

सत्ती[1] य लदादारूअट्ठीसेलोवमाहु घादीणं।
दारुअणंतिमभागोत्ति देसघादी तदो सव्वं ॥१८०॥

१–विपाकोऽनुभव.। मोक्षशास्त्र अध्याय ८, सूत्र २१।

शक्तिश्च लतादार्वस्थिशैलोपमा आहुः घातिनां ।
दार्वनंतिम भागः, इति देशघाति ततः सर्वं ।।१८०।।

टीका – घातिया जे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय कर्म तिनकी शक्ति कहिए स्पर्धक ते लता, दारु, अस्थि, शैल की उपमा कौं धरें च्यारि भागनि करि तिष्ठै है। तहां लता कहिए वेलि, दारु कहिए काष्ठ, अस्थि कहिए हाड, शैल कहिए पाषाण-पर्वत – ए जैसे अधिक-अधिक कठोरता कौं अनुक्रम तैं धरै है, तैसे स्पर्धक कहिए वर्गणानि का समूह ते लताभाग, दारुभाग, अस्थिभाग, शैलभाग करि च्यारि प्रकार है। तिनविषै अनुक्रम तैं अपने फल देने की शक्तिरूप अनुभाग अधिक-अधिक जानना।

तहां लताभाग तैं आदि देकरि दारुभाग का अनंतवां भाग पर्यंत जे स्पर्धक है, ते देशघाति जानने। इनके उदय होत संतैं भी आत्मा का गुण प्रगट रहै है। बहुरि दारुभाग का अनंत भाग मेस्यों एक भाग बिना अवशेष बहुभाग कौं आदि देकरि अस्थिभाग, शैलभाग विषै जे स्पर्धक है, ते सर्वघाति है। इनके उदय होत संतै आत्मा के गुण का अंश भी प्रगट न होइ।

यहां उदाहरण कहिए—

जहां अवधिज्ञान का अंश भी न पाइए, तहां अवधिज्ञानावरण का सर्वघातिया स्पर्धकनि का उदय जानना। जहां अवधिज्ञान पाइए अर अवधिज्ञानावरण का उदय भी पाइए तहां अवधिज्ञानावरण के देशघातिया स्पर्धकनि का उदय जानना। ऐसे और भी प्रकृतिनि विषै जानना।।१८०।।

तहां उत्तर प्रकृतिनि विषै मिथ्यात्व प्रकृति विषै विशेष है, सो कहैं है—

देसोत्ति हवे सम्मं, तत्तो दारूअणंतिमे मिस्सं ।
सेसा अणंतभागा, अट्ठिसिलाफड्डया मिच्छे ।।१८१।।

देश इति भवेत् सम्यक्त्वं, ततः दार्वनंतिमे मिश्रं ।
शेषा अनंतभागा, अस्थिशिलास्पर्द्धका मिथ्यात्वे ।।१८१।।

टीका – मिथ्यात्व प्रकृति के लताभाग ते आदि देकरि दारुभाग का अनंत भागनि मध्ये एक भाग पर्यंत देशघातिया स्पर्धक है, ते सर्व सम्यक् प्रकृतिरूप है। बहुरि दारुभाग के एक भाग बिना जे अवशेष बहुभाग रहे, तिनके प्रमाण का अनंत

खड कीजिए, तहा एक खड प्रमाण जुदी ही जाति का सर्वघातिया स्पर्धक है, ते मिश्रप्रकृतिरूप जानने । बहुरि अवशेष दारुभाग का जो बहुभाग, ताका एक भाग बिना बहुभाग रहे, तिनकौ आदि देकरि अस्थिभाग, शैलभागरूप जे स्पर्धक है, ते सर्वघाति मिथ्यात्व प्रकृतिरूप जानने ।।१८१।।

आवरणदेसघादंतरायसंजलणपुरससत्तरसं ।
चदुविधभावपरिणदा, तिविधा भावा हु सेसाणं ।।१८२।।

आवरणदेशघात्यंतरायसंज्वलनपुरुषसप्तदश ।
चतुर्विधभावपरिणताः, त्रिविधा भावा हि शेषाणां ।।१८२।।

टीका – आवरणनि विषै देशघातिया मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय ज्ञानावरण अर चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शनावरण ए सात, पाच अतराय, च्यारि संज्वलन, पुरुषवेद – ए सतरह प्रकृति शैल, अस्थि, दारु, लता भाग रूप च्यारि प्रकार भाव लीएं प्रवर्तै है । तहा शैल, अस्थि, दारु, लता भागरूप प्रवर्तै । बहुरि जहा शैलभाग न होइ तहा अस्थि, दारु, लता भागरूप ही प्रवर्तै । जहा अस्थिभाग भी न होइ तहां दारु, लता भागरूप ही प्रवर्तै है । बहुरि जहा दारुभाग भी न पाइए तहां केवल लता भागरूप ही प्रवर्तै है – ऐसै सतरह प्रकृति च्यारि प्रकार भावरूप प्रवर्तै है ।

बहुरि इन सतरह बिना अवशेष प्रकृति रही तिनविषै सम्यक्त्व प्रकृति, मिश्रप्रकृति बिना समस्त घातिया कर्मनि की प्रकृति तिनके तीन प्रकार ही भाव जानना । तहां केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, पच निद्रा, अनतानुबधी-अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान बारह कषाय – इन उगणीस प्रकृतिनि कै स्पर्धक सर्वघाति ही है, देशघाति नाही, तातै शैलभाग अर अस्थिभाग अर दारुभाग का अनत बहुभाग रूप स्पर्धक पाइए, तहा ए तीनो प्रकार पाइए वा शैलभाग बिना दोय प्रकार पाइए वा अस्थिभाग बिना भी एक प्रकार ही पाइए है, ऐसै तीनो प्रकार भाव है ।

बहुरि पुरुषवेद बिना नोकषाय आठ, ते शैल, अस्थि, दारु, लता च्यारि प्रकार अनुभाग धरै है । तहां ए शैल, अस्थि, दारु, लतारूप वा अस्थि, दारु, लता रूप वा दारु, लतारूप ऐसे तीन प्रकार भाव कौ धरै है, कदाचित् केवल लताभागरूप न प्रवर्तै है ।।१८२।।

बहुरि अघाति कर्म की प्रकृतिनि कौं कहै है—

अवसेसा पयडीओ, अघादिया घादियाण पडिभागा ।
ता एव पुण्णपावा, सेसा पावा मुणेयव्वा ।।१८३।।

अवशेषाः प्रकृतयः, अघातिकाः घातिकानां प्रतिभागाः ।
ता एव पुण्यपापाः, शेषाः पापा मंतव्याः ।।१८३।।

टीका – अवशेष अघातिया कर्मनि की प्रकृति घातिया कर्मवत् प्रतिभाग युक्त जाननी । इनके स्पर्धक भी तीन भावरूप ही प्रवर्तें हैं । ते अघातिया कर्मनि की प्रकृति पुण्य प्रकृति वा पाप प्रकृति रूप हैं । अवशेष घातिया कर्मनि की सर्व प्रकृति पापरूप ही जाननी ।।१८३।।

तहां घातिया कर्मनि के स्पर्धक तिनके तौ लता, दारु, अस्थि, शैल असें नाम कहे । अत्र प्रशस्त-अप्रशस्त अघातिया कर्मनि के स्पर्धक तिनकौं और नाम करि कहिए हैं—

गुडखंडसक्करामियसरिसा सत्था हु णिबकंजीरा ।
विसहालाहलसरिसाऽसत्था हु अघादिपडिभागा ।।१८४।।

गुडखंडशर्करामृत, सदृशाः शस्ता हि निंबकांजीराः ।
विषहालाहलसदृशाः, अशस्ता हि अघातिप्रतिभागाः ।।१८४।।

टीका – अघातिया कर्मनि के प्रतिभाग कहिए शक्ति के भेद, ते प्रशस्तनि के तौ गुड, खंड, शर्करा, अमृत समान जानने । जैसें गुड अर खांड, शर्करा (मिश्री) अर अमृत ए अधिक-अधिक सुख कौं कारण मिष्ट हैं, तैसें गुडभाग, खांडभाग, शर्करा-भाग, अमृतभाग रूप प्रशस्त-प्रकृतिनि के स्पर्धक अधिक-अधिक सांसारिक सुख कौं कारण हैं ।

बहुरि अप्रशस्त प्रकृति के निंब, कांजीर, विष, हलाहल समान जानने । जैसें निंब, कांजीर, विष, हलाहल अधिक-अधिक दुःख का कारण कटुक हैं, तैसें निंबभाग, कंजीरभाग, विषभाग, हलाहलभाग रूप अप्रशस्त प्रकृतिनि के स्पर्धक क्रम तें अधिक-अधिक दुःख कौं कारण जानने । तहां प्रशस्त प्रकृति बियालीस (४२) हैं । अप्रशस्त सैंतीस (३७) हैं । इहां वर्णादिक च्यारि प्रकृति प्रशस्त विषैं वा अप्रशस्त विषैं-दोऊ जायगा गिनी हैं ।

तहा प्रशस्त प्रकृति गुड, खंड, शर्करा, अमृतरूप वा गुड, खड, शर्करा रूप वा गुड, खंड रूप असै तीन प्रकार भावरूप प्रवर्तै है। बहुरि अप्रशस्त प्रकृति निब, कांजीर, विष, हलाहल रूप वा निब, कांजीर, विषरूप वा निब, काजीर रूप तीन-प्रकार भावरूप प्रवर्तै है ॥१८४॥

॥ इति अनुभागबंधः समाप्तः ॥

आगे प्रदेशबंध कौं तेतीस गाथानि करि कहै है—

एयक्खेत्तोगाढं, सव्वपदेसेहिं कम्मणो जोग्गं ।
बंधदि सगहेदूहिं य, अणादियं सादियं उभयं ॥१८५॥

एकक्षेत्रावगाढं, सर्वप्रदेशैः कर्मणो योग्यं ।
बध्नाति स्वकहेतुभिश्च, अनादिकं सादिकमुभयं ॥१८५॥

टीका – सूक्ष्म निगोदिया का शरीर घनागुल के असख्यातवे भाग मात्र जघन्य अवगाहनारूप क्षेत्र है, ताकौ **एकक्षेत्र** कहिए। तिस एकक्षेत्र विषै अवगाहरूप तिष्ठता जो कर्मरूप परिणमने कौ योग्य अनादिक वा सादिक वा उभयरूप पुद्गल द्रव्य ताकौ जीव नामा पदार्थ अपने सर्व प्रदेशनि करि मिथ्यात्वादिक के निमित्त तै बाधै है ॥१८५॥

एयसरीरोगाहियमेयक्खेत्तं अणेयखेत्तं तु ।
अवसेसलोयखेत्तं, खेत्तणुसारिट्ठियं रूवी ॥१८६॥

एकशरीरावगाहितमेकक्षेत्रमनेकक्षेत्रं तु ।
अवशेषलोकक्षेत्रं, क्षेत्रानुसारिस्थितं रूपि ॥१८६॥

टीका – एक शरीर की अवगाहना करि रुक्या असा जो आकाश, सो **एक-क्षेत्र** कहिए, सो घनागुल के असंख्यातवे भाग प्रमाण एकक्षेत्र जानना। यद्यपि शरीर की अवगाहना जघन्य अवगाहना तै लगाइ उत्कृष्ट पर्यंत वा समुद्घात अपेक्षा लोक पर्यंत है। तहां जघन्य अवगाहना के आदि भेद, सो तौ घनागुल कौ पल्य के असंख्यातवा भाग का भाग दीजिए तीहि प्रमाण अर अत भेद लोक प्रमाण तहां अत विषै आदि कौ घटाय एक मिलाए समस्त अवगाहना के भेद हो है, तथापि बहुत जीव घनागुल के असंख्यातवे भाग प्रमाण शरीर की अवगाहना के धारक है, तातै

मुख्यता करि एकक्षेत्र का प्रमाण घनागुल के असंख्यातवें भाग मात्र कह्या है, सो इतने क्षेत्र के वहुत प्रदेश हैं, तातैं प्रदेशनि की अपेक्षा यहु अनेकक्षेत्र है, तथापि विवक्षा करि इहां इस क्षेत्र कौं एकक्षेत्र कह्या है।

वहुरि इस एकक्षेत्र का परिणाम करि हीन ऐसा-ऐसा अवशेष लोकाकाश का क्षेत्र, ताकौं **अनेकक्षेत्र** कहिए है। सो तिस-तिस क्षेत्र के अनुसारि तिष्ठता रूपी जो पुद्गल द्रव्य का ताका परिमाण ऐसे जानना – जो समस्त लोक विषै सर्व पुद्गल द्रव्य पाइए, तो एकक्षेत्र विषै कितना पुद्गल द्रव्य पाइए, ऐसा त्रैराशिक करना।

तहां प्रमाणराशि समस्त लोक, फलराशि पुद्गल द्रव्य का परिमाण, इच्छा-राशि एकक्षेत्र का परिमाण। तहां फल करि इच्छा कौं गुणैं प्रमाण का भाग दीएं जो लब्धराशि का प्रमाण आया, तितने एकक्षेत्र संबंधी पुद्गल द्रव्य जानने। वहुरि इच्छाराशि अनेकक्षेत्र करि पूर्वोक्त सर्व विधान कीएं जो लब्धराशि का प्रमाण आया, तितने अनेकक्षेत्र संबंधी पुद्गल द्रव्य जानने ॥१८६॥

एयाणेयक्खेत्तट्ठियरूविअणंतिमं हवे जोग्गं।
अवसेसं तु अजोग्गं, सादि अणादी हवे तत्थ ॥१८७॥

एकानेकक्षेत्रस्थितरूप्यनंतिमं भवेत् योग्यं।
अवशेषं तु अयोग्यं, सादि अनादि भवेत्तत्र ॥१८७॥

टीका– तिन एक-अनेक क्षेत्र विषै तिष्ठता रूपी पुद्गल द्रव्य का परिमाण, ताके अनंतवें भाग प्रमाण तौ अपना-अपना योग्य पुद्गल द्रव्य है, अवशेष अयोग्य पुद्गल द्रव्य है। तहां एकक्षेत्र संबंधी पुद्गल द्रव्य का परिमाण, ताकौं अनंत का भाग दीजिए, तहां एक भाग प्रमाण तौ कर्मरूप परिणमने कौं योग्य ऐसे पुद्गलनि का प्रमाण है, अवशेष भाग प्रमाण जे कर्मरूप परिणमने कौं योग्य नाहीं, ऐसे पुद्गलनि का प्रमाण है। वहुरि अनेकक्षेत्र संबंधी पुद्गल परिमाण कौं अनंत का भाग दीजिए, तहां एक भाग प्रमाण कर्मरूप होने कौं योग्य पुद्गलनि का प्रमाण है। अवशेष भाग प्रमाण कर्मरूप होने कौं अयोग्य पुद्गलनि का प्रमाण है।

ऐसे एकक्षेत्र स्थितियोग्य, एकक्षेत्र स्थिति अयोग्य, अनेकक्षेत्र स्थितियोग्य, अनेकक्षेत्र स्थिति अयोग्य – ए च्यारि भेद भए। तहां एक-एक भेद विषैं सादि द्रव्य अर अनादि द्रव्य जानना। जो अतीत-काल विषैं जीव करि ग्रहण कीया होइ, सो

सादि द्रव्य कहिये । जो अनादि तै लगाय कबहू जीव करि न ग्रह्या होइ, अैसा पुद्गल द्रव्य, सो अनादि द्रव्य कहिए ।।१८७।।

अब इनके प्रमाण जानने के अर्थि कथन करै हैं—

जेट्ठे समयपबद्धे, अतीदकाले हदेण सव्वेण ।
जीवेण हदे सव्वं, सादी होदित्ति णिद्दिट्ठं ।।१८८।।

ज्येष्ठे समयप्रबद्धे, अतीतकालेन हतेन सर्वेण ।
जीवेन हते सर्व, सादि भवतीति निर्दिष्टं ।।१८८।।

टीका – उत्कृष्ट योग के परिणामनि करि निपजै अैसा उत्कृष्ट समयप्रवद्ध का प्रमाण, ताकौ अतीत काल करि गुणिए जो प्रमाण होइ, ताकौ सर्व जीवराशि का प्रमाण करि गुणै सर्व जीव सबधी सादि द्रव्य का प्रमाण हो है। तहा जो एक समय विषै उत्कृष्ट समयप्रबद्ध प्रमाण पुद्गल द्रव्य कौ ग्रहै तौ सख्यात आवली करि सिद्ध-राशि कौ गुणै जो प्रमाण होइ, तितना अतीतकाल का समयनि विषै केते पुद्गल कौ ग्रहै, अैसै त्रैराशिक करना ।

तहां प्रमाणराशि एक समय, फलराशि उत्कृष्ट समयप्रवद्ध, इच्छाराशि अतीत काल के समयनि का प्रमाण । तहां फल करि इच्छा कौ गुणै प्रमाण का भाग दीए जो प्रमाण होइ, तितना एक जीव सवधी सादि पुद्गल द्रव्य जानना । याकौं सर्व जीवराशि का प्रमाण करि गुणै जो प्रमाण होइ, तितना सर्व जीव संबधी सादि पुद्गल द्रव्य जानना । इस प्रमाण कौ सर्व पुद्गलराशि का प्रमाण मेस्यो घटाएं जो प्रमाण अवशेष रहै, तितना अनादि पुद्गल द्रव्य जानना ।।१८८।।

आगे पूर्वोक्त भेदनि विषै सादि द्रव्य का प्रमाण कहै है—

सगसगखेत्तगयस्स य, अणंतिमं जोग्गदव्वगयसादी ।
सेसं अजोग्गसंगयसादी होदित्ति णिद्दिट्ठं ।।१८९।।

स्वकस्वकक्षेत्रगतस्य च, अनंतिमं योग्यद्रव्यगतसादि ।
शेषमयोग्यसंगतसादि भवतीति निर्दिष्टं ।।१८९।।

टीका – एक-अनेक क्षेत्र विषै तिष्ठता सादि द्रव्य कौ जैसा जिनदेव ने देख्या होइ, तैसै अनत का भाग दीजिए, तहां एक भाग प्रमाण तौ अपना-अपना योग्य सादि द्रव्य है, अवशेष अयोग्य सादि द्रव्य है, अैसा कह्या है । सोई कहिए है—

जो सर्वलोक के प्रदेशनि विषै सर्व जीव संबंधी सादि द्रव्य पूर्वोक्त प्रमाण पाइए तौ एक जीव की अवगाहनारूप घनांगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण एकक्षेत्र ताके विषै कितना पाइए ? वा एकक्षेत्र का परिमाण करि हीन लोक प्रमाण अनेकक्षेत्र विषै कितना पाइए ? – असें दोय त्रैराशिक करना ।

तहां प्रमाण सर्वलोक, फल सादि द्रव्य का प्रमाण, इच्छा एकक्षेत्र । फल कौं इच्छा करि गुणें प्रमाण का भाग दीए जो लब्धराशि का प्रमाण भया, तितना एकक्षेत्र संबंधी सादि द्रव्य जानना ।

बहुरि प्रमाण सर्वलोक, फल सादि द्रव्य का प्रमाण, इच्छा अनेकक्षेत्र । फल कौं इच्छा करि गुणें प्रमाण का भाग दीए जो लब्धराशि का प्रमाण भया, तितना अनेकक्षेत्र संबंधी सादि द्रव्य जानना । तहां एकक्षेत्र संबंधी सादि द्रव्य कौं अनंत का भाग दीजिए, तहां एक भाग प्रमाण एकक्षेत्र संबंधी कर्मरूप होने को योग्य सादि द्रव्य जानना । अवशेष भाग प्रमाण एकक्षेत्र संबंधी अयोग्य सादि द्रव्य जानने ।

असैं ही अनेकक्षेत्र संबंधी सादि द्रव्य कौं अनंत का भाग दीजिए, तहां एक भाग प्रमाण अनेकक्षेत्र स्थित योग्य सादि द्रव्य जानना । अवशेष भाग प्रमाण अनेक क्षेत्र स्थित अयोग्य सादि द्रव्य जानना ॥१८९॥

आगै अनादि द्रव्य का प्रमाण कहैं हैं –

सगसगसादिविहीणे, जोग्गाजोग्गे य होदि णियमेण ।
जोग्गाजोग्गाणं पुण, अणादिदव्वाण परिमाणं १९०॥

स्वकस्वकसादिविहीने, योग्यायोग्ये च भवति नियमेन ।
योग्यायोग्यानां पुनः, अनादिद्रव्याणां परिमाणं ॥१९०॥

टीका – एकक्षेत्र स्थित योग्य द्रव्य वा अयोग्य द्रव्य, बहुरि अनेकक्षेत्र स्थित योग्य द्रव्य वा अयोग्य द्रव्य का जो परिमाण कह्या, तामैंस्यौं अपना-अपना सादि द्रव्य का परिमाण घटाएं जो किछू अवशेष प्रमाण रहै, तितना-तितना अनुक्रम तैं एकक्षेत्र स्थित योग्य अनादि द्रव्य का वा एकक्षेत्र स्थित अयोग्य अनादि द्रव्य का व अनेकक्षेत्र स्थित योग्य अनादि द्रव्य का वा अनेक क्षेत्रस्थित अयोग्य अनादि द्रव्य का प्रमाण जानना । असैं ए भेद भए तिनविषैं योग्य सादि द्रव्य तैं वा योग्य अनादि

द्रव्य तै वा योग्य उभय द्रव्य तै एक समय विषै समयप्रबद्ध प्रमाण मूलप्रकृति, उत्तर प्रकृति उत्तरोत्तर प्रकृतिरूप करि समय-समय प्रति प्रदेशबध करै है ।

भावार्थ – मिथ्यात्वादिक कै निमित्त तै जीव समय-समय प्रति कर्मरूप परिणमन कौ योग्य असे समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणूनि का समूह कौ ग्रहण करि कर्म-रूप परिणमावै है, तहां कोई समय विषै तो जीव करि पूर्वे ग्रहणे मे आए असे सादि द्रव्य रूप परमाणू तिन का ही ग्रहण करै है । कोई समय विषै किसी जीव करि अतीत काल मे ग्रहणे मे न आए असे अनादि द्रव्यरूप परमाणू तिनही का ग्रहण करै है । कोई समय विषै केई सादि द्रव्यरूप परमाणू, केई अनादि द्रव्यरूप परमाणू – तिनका ग्रहण करै है ।।१९०।।

तिस समयप्रबद्ध का प्रमाण कहै है —

सयलरसरूवगंधेहिं परिणदं चरमचदुहिं फासेहिं ।
सिद्धादोऽभव्वादो, ऽणंतिमभागं गुणं दव्वं ।।१९१।।

सकलरसरूपगंधैः, परिणतं चरमचतुर्भिः स्पर्शैः ।
सिद्धादभव्यादनतिमभागं गुणं द्रव्यं ।।१९१।।

टीका – सो समयप्रबद्धरूप परमाणूनि का समूह सर्व – पाच प्रकार रस, पांच प्रकार वर्ण, दोय प्रकार गध करि है । बहुरि स्पर्श का आठ भेदनि विषै अंत का च्यारि भेद – शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष तिनही करि सयुक्त परिणम्या है; गुरु, लघु, मृदु, कठिन – ए च्यारि न पाइए है । सो समयप्रबद्ध सिद्धराशि के अनतवे भाग वा अभव्यराशि तै अनत गुणा जानना । इतनी परमाणूनि का समूहरूप वर्गणानि कौ समय-समय ग्रहण करि कर्मरूप परिणमावै है । ।।१९१।।

सो समयप्रबद्ध एक समय विषै ग्रह्या हूवा आठ मूल प्रकृति रूप परिणमै, तहां एक-एक मूल प्रकृति का कैसे वट होइ, सो कहै है —

आउगभागो थोवो, णामागोदे समो तदो अहियो ।
घादितियेवि य तत्तो, मोहे तत्तो तदो तदिये ।।१९२।।

आयुष्कभाग स्तोकः, नामगोत्रे समः ततोऽधिकः ।
घातित्रयेऽपि च ततो, मोहे ततस्ततस्तृतीये ।।१९२।।

टीका – सर्व मूल प्रकृतिनि विषै आयुकर्म का भाग वहिए वट, सो थोरा है। वहुरि नामकर्म अर गोत्रकर्म इन दोन्या का भाग परस्पर समान है, तथापि आयुकर्म के भाग तै अधिक है। अंतराय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण – इन तीनो का भाग परस्पर समान है, तथापि नाम, गोत्र के भाग तै अधिक है। वहुरि यातै मोहनीय का भाग अधिक है। वहुरि यातै तीसरा कर्म वेदनीय ताका अधिक भाग है। तहा मिथ्यादृष्टि गुणस्थान विषै च्यारि आयु का वंध है। सासादन विषै नरक-विना तीन आयु का वध है। असंयत विषै नरक, तिर्यंच विना दोय आयु ही का वंध है। देशसयत, प्रमत्त, अप्रमत्त विषैं एक देवायु ही का वंध है। ऊपरि अनिवृत्तिकरण पर्यंत विषै आयु विना सात कर्म ही का वध है। सूक्ष्मसांपराय विषै आयु, मोहनीय विना छह कर्म का वंध है। ऊपरि तीन गुणस्थाननि विषै एक वेदनीय का वंध है, सो उदयरूप ही है, तहा जितने कर्मनि का जहां वध होइ, तहां समयप्रवद्ध विषै तितने ही कर्म का वटवारा जानना ॥१९२॥

आगै वेदनीय कर्म कै सर्वतै अधिक भाग कह्या था, सो कारण कहिए हैं –

सुहदुक्खणिमित्तादो, बहुणिज्जरगोत्ति वेदणीयस्स ।
सव्वेहिंतो बहुगं, दव्वं होदित्ति णिद्दिट्ठं ॥१९३॥

सुखदुःखनिमित्तात्, वहुनिर्जरक इति वेदनीयस्य ।
सर्वेभ्यो वहुकं, द्रव्यं भवतीति निर्दिष्टं ॥१९३॥

टीका – वेदनीय कर्म सुख-दुःख कौ कारण है, तातैं सुख-दु.ख कौ होत संतै याकी निर्जरा वहुत हो है, तातै अन्य मूल प्रकृतिनि के भागरूप द्रव्य प्रमाण तै वेदनीय के वहुत द्रव्य है, असा परमागम विषै कह्या है ॥१९३॥

आगै और कर्मनि का हीनाधिक भाग का कारण कहैं हैं —

सेसाणं पयडीणं, ठिदिपडिभागेण होदि दव्वं तु ।
आवलिअसंखभागो, पडिभागो होदि णियमेण ॥१९४॥

शेषाणां प्रकृतीनां, स्थितिप्रतिभागेन भवति द्रव्यं तु ।
आवल्यसंख्यभागः, प्रतिभागो भवति नियमेन ॥१९४॥

टीका – वेदनीय बिना अवशेष मूल सर्व प्रकृतिनि का स्थिति प्रतिभाग करि द्रव्य हो है। जिस कर्म की स्थिति बहुत है, ताके अधिक द्रव्य है, जिसकी स्थिति परस्पर समान है, तिसका द्रव्य परस्पर समान जानना। जिसकी स्थिति हीन है, तिसका द्रव्य थोरा जानना।

तहा अधिक कितना है ? असा प्रमाण ल्यावने के निमित्त प्रतिभागहार आवली का असख्यातवां भाग जानना, नियम करि और प्रतिभागहार नाही। ताकी संदृष्टि नव का अंक जानना। सो इस प्रतिभागहार का भाग दीए जो एक भाग का प्रमाण होइ, सो एक भाग जानना। एक भाग का प्रमाण बिना अवशेष सर्व भागनि का प्रमाण, सो बहुभाग जानना। बहुरि जिस कर्म का जितना द्रव्य कहिए है, तितना तिस कर्म के परमाणुनि का प्रमाण जानना ।।१९४।।

आगै विभाग का अनुक्रम दिखावै है—

बहुभागे समभागो, अट्ठण्हं होदि एक्कभागम्हि ।
उत्तकमो तत्थवि, बहुभागो बहुगस्स देओ दु ।।१९५।।

बहुभागे समभागः, अष्टानां भवति एकभागे ।
उक्तक्रमतत्रापि, बहुभागो बहुकस्य देयस्तु ।।१९५।।

टीका– मूलप्रकृति आठ – तिनकौ बहुभाग तौ समान देना। बहुरि जो एक भाग रह्या, ताकौ जैसें अनुक्रम कह्या है, तैसें देना। बहुरि तहां भी बहुभाग जाका बहुत द्रव्य होइ, ताकौं देना। सोई कहिए है—

एक समय विषै कार्माण संबंधी समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणु ग्रहै, तिन परमाणुनि का जो प्रमाण, सो कार्माण समयप्रबद्ध द्रव्य है। ताकौ आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां एक भाग कौ जुदा राखि बहुभाग के आठ भाग कीजिए, तहां एक-एक समान भाग आठ स्थानकनि विषै जुदा-जुदा स्थापना। बहुरि जो एक भाग जुदा रह्या, ताकौ आवली का असख्यातवा भाग का भाग दीजिए, तहां एक भाग कौ जुदा राखि अवशेष वहुभाग है, सो 'बहुकस्य' कहिए जाका वहुत द्रव्य कह्या है, असा वेदनीय नामा कर्म ताकौ देना, सो पूर्वोक्त आठ भागनि विषै एक समान भाग का प्रमाण में इस प्रमाण कौ मिलाए जो प्रमाण होइ, तितनी परमाणु समयप्रबद्ध विषै वेदनीय कर्मरूप परिणमै है।

वहुरि जो एकभाग रह्या, ताकौं आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां एकभाग कौं जुदा राखि वहुभाग मोहनीय कर्म कौ देना । सो उन आठ भागनि विषै एक समान भाग का प्रमाण में इस प्रमाण कौं मिलाए जो प्रमाण होइ, तितनी परमाणु मोहनीय कर्मरूप परिणमैं है ।

वहुरि जो एक भाग रह्या, ताकौ आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां एक भाग कौ जुदा राखि अवशेप वहुभाग के तीन भाग कीजिए, सो एक-एक भाग ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय कौ देना, सो उन आठ भागनि विषैं एक-एक समान भाग का प्रमाण इस एक-एक भाग कौ मिलाए जो-जो प्रमाण होइ, तितने-तितने परमाणु अनुक्रम तैं ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय रूप होइ परिणमैं हैं; इनि तीनों कर्मनि का द्रव्य परस्पर समान जानना ।

वहुरि जो वह एक भाग रह्या, ताको आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां एक भाग कौं जुदा राखि वहुभाग के दोय भाग कीजिए, सो एक-एक भाग नाम, गोत्र कौं देना । सो उन आठ भागनि विषै एक-एक समान भाग का प्रमाण में इस एक-एक भाग कौं मिलाएं जो-जो प्रमाण होइ तितने-तितने परमाणु अनुक्रम तैं नाम वा गोत्ररूप होइ परिणमै हैं । इन दोऊ कर्मनि का द्रव्य परस्पर समान जानना ।

वहुरि जो वह एक भाग रह्या, सो आयुकर्म कौं देना, सो उन आठ भागनि विषै एक समान भाग का प्रमाण में इस एक-भाग का प्रमाण कौ मिलाएं, जो प्रमाण होइ, तितने परमाणु आयुकर्मरूप परिणमै हैं ।

ऐसे **'आउग भागो थोवो'** ऐसा गाथा विषै अनुक्रम कह्या, सो सिद्ध भया ।

इसप्रकार एक समय विषैं समय-समयप्रवद्ध प्रमाण पुद्गल द्रव्य, आठ कर्मरूप होइ परिणमै है ।।१९५।।

आगै मूलप्रकृतिनि विषै जो पिंडरूप द्रव्य कह्या, ताका अपनी-अपनी उत्तर प्रकृतिनि विषैं कैसै वटवारा हो है ? सो अनुक्रम कहै हैं—

उत्तरपयडीसु पुणो, मोहावरणा हवंति हीणकमा ।
अहियकमा पुण णामाविग्घा य ण भंजणं सेसे ।।१९६।।

उत्तरप्रकृतिषु पुनः, मोहावरणाः भवंति हीनक्रमाः ।
अधिकक्रमाः पुनः नाम, विघ्नाश्च न भंजनं शेषे ।।१९६।।

टीका – बहुरि उतर प्रकृतिनि विषै मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण – ए तौ हीनक्रम कहिए अनुक्रम तै घाटि-घाटि जानना। जैसै – ज्ञानावरण विषै मति-ज्ञानावरण के द्रव्य तै श्रुतज्ञानावरण का द्रव्य थोरा है। यातै अवधिज्ञानावरण का थोरा है – असै ही अनुक्रम जानना। बहुरि नामकर्म अर अतराय कर्म – ए दोऊ अधिक क्रम कहिए अनुक्रम तै अधिक-अधिक है। जैसे अतराय कर्म विषै दानांतराय के द्रव्य तै लाभांतराय का द्रव्य अधिक है, यातै भोगातराय का द्रव्य अधिक है – असैं अधिक क्रम जानना।

बहुरि अवशेष वेदनीय, गोत्र, आयु इनविषैं बटवारा नाही है, जातै इनकी एक-एक ही प्रकृति एकै काल बंधै है। वेदनीय कर्म विषै कै साता का बंध होइ, कै असाता का बंध होइ, दोऊनि का एक काल विषै बंध न होइ। गोत्र विषै कै नीच-गोत्र का बध होइ, कै उच्चगोत्र का बंध होइ। आयु विषै एक ही आयु का बंध होइ। तातैं इन तीनों कर्मनि का उत्तरप्रकृतिनि विषैं बटवारा नाही। जिस काल जिस उत्तर प्रकृति का बध होइ, तिस काल जो मूलप्रकृति के द्रव्य का प्रमाण है, सोई सर्व तिस उत्तर-प्रकृति का द्रव्य जानना ॥१९६॥

आगे घातिकर्मनि विषै सर्वघाति-देशघाति द्रव्य का बटवारा कहै हैं—

सव्वावरणं दव्वं, अणंतभागो दु मूलपयडीणं।
सेसा अणंतभागा, देसावरणं हवे दव्वे ॥१९७॥

सर्वावरणं द्रव्यमनंतभागस्तु मूलप्रकृतीनां।
शेषा अनंतभागा, देशावरणं भवेद् द्रव्यं ॥१९७॥

टीका – ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय इन तीन मूलप्रकृतिनि का जो-जो अपना-अपना द्रव्य है, ताकौ जैसा जिनदेव देख्या, तैसा यथायोग्य अनंत का भाग दीजिए, तहां एक भाग प्रमाण तौ सर्वावरण कहिए सर्वघाति सबधी द्रव्य है, अवशेष अनंत भाग रहे, तिन प्रमाण देशावरण कहिए देशघाति संबंधी द्रव्य है।

जैसै ज्ञानावरण का जो पूर्वै परमाणुनि का प्रमाण कह्या, ताकौ अनंत का भाग दीजिये, तहा एक भाग प्रमाण परमाणु तौ सर्वघाति सबंधी है। अवशेप सर्व-भाग प्रमाण परमाणु देशघाति संबधी है। असै ही दर्शनावरण वा मोहनीय विषै भी जानना।

कह्या जो सर्वघातिया द्रव्य का परिमाण, तीहि विषै आगे वटवारा करेंगे। तहां देशघाति प्रकृति वा सर्वघाति प्रकृतिनि का वटवारा करेंगे, सो देशघाति मतिज्ञानावरणादिक, तिनके द्रव्य का जो परिमाण, तिनविषै सर्वघाति परमाणुनि का प्रमाण के अर्थि प्रतिभागहार का प्रमाण कहिए है।

इहां कोऊ कहै कि देशघाति प्रकृतिनि विषै सर्वघाति परमाणु कैसै कहो हौ ?

ताका समाधान – जो पूर्वं अनुभाग विषै कहि आए है, जो मतिज्ञानावरणादिक का अनुभाग शैल, अस्थि, दारु, लताभाग करि च्यारि प्रकार है। तहां दारु भाग का तौ अनंतवां भाग अर समस्त लताभाग – ए तौ देशघाति है, सो ऐसे अनुभाग कौं धरै जे परमाणु ते देशघाति द्रव्य जानने। वहुरि शैलभाग अर अस्थिभाग अर दारुभाग के वहुभाग – ए सर्वघाति है, सो ऐसे अनुभाग कौ धरै जे परमाणु ते सर्वघाति द्रव्य जानने।

सो सर्वघातिनि का उदय होत संतै किंचिन्मात्र भी आत्मगुण प्रकट न होइ। जैसैं एकेंद्रियादिक जीवनि के चक्षुदर्शन का सर्वघातिया का भी उदय पाइए है, तहां किंचिन्मात्र भी चक्षुदर्शन न हो है।

वहुरि देशघातिनि का उदय होतै भी आत्मगुण प्रकट हो है। जैसैं चतुरिंद्रियादिक जीवनि के चक्षुदर्शन के देशघातिनि का ही उदय पाइए हैं, तहां चक्षुदर्शन भी पाइए है। सो ऐसैं देशघातिनि विषै सर्वघाति-देशघाति द्रव्य हैं ।।।१६७।।

तहां सर्वघाति द्रव्य का परिमाण के अर्थि प्रतिभागहार का प्रमाण कहिए हैं—

देसावरणण्णोण्णब्भत्थं तु अणंतसंखमेत्तं खु।
सव्वावरणधणट्ठं, पडिभागो होदि घादीणं ।।१६८।।

देशावरणान्योन्याभ्यस्तं तु अनंतसंख्यामात्रं खलु।
सर्वावरणधनार्थं, प्रतिभागो भवति घातिनां ।।१६८।।

टीका – च्यारि ज्ञानावरण, तीन दर्शनावरण, पांच अंतराय, च्यारि संज्वलन, नव नोकषाय – इनके परमाणुनि का प्रमाण तिनकी नाना गुणहानि शलाका अनंत है; अर जितनी नाना गुणहानि है, तितना दूवा मांडि परस्पर गुणिए, तव अन्योन्याभ्यस्तराशि होइ सो भी अनंत संख्यामात्र है।

अंकसंदृष्टि करि – जैसै द्रव्य इकतीस सौ (३१००), स्थिति स्थान चालीस (४०), एक गुणहानि का प्रमाण आठ (८), इसतै दूणा दोगुणहानि का प्रमाण (१६), नाना गुणहानि पांच (५), नानागुणहानि प्रमाण दूवा मांडि परस्पर गुणन कीजिए तब अन्योन्याभ्यस्तराशि (३२), सो इनकी रचना जैसै तरेसठि सौ (६३००) द्रव्य अर स्थान अठतालीस का दृष्टांत पूर्वे कह्या है, तथा आगे कहेंगे, तैसै ही जानना ।

विशेष इहा छठी नाना गुणहानि की रचना न करनी; द्रव्यादिक का प्रमाण इहां कह्या है; सो जानना । अर्थसंदृष्टि करि तैसै जेता तिन पूर्वोक्त प्रकृति का परमाणुनि का प्रमाण, सो द्रव्य जानना । स्थितिस्थान तीन बार अनंत कौ परस्पर गुणिए, तितना जानना । गुणहानि दोय वार अनत कौ परस्पर गुणिए, तितनी जाननी । इसतें दूणी दोगुणहानि जाननी । नानागुणहानि अनंत जाननी । नानागुणहानि प्रमाण दूवे माडि परस्पर गुणन कीजिए, तितनी अन्योन्याभ्यस्तराशि जाननी । सो इहां जो अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण सोई सर्वघाति द्रव्य का परिमाण अवधारने के निमित्त प्रतिभाग जानना ।

सोई कहिए है—

मतिज्ञानावरणादिक च्यारि, तिनका द्रव्य केवलज्ञान का वट बिना अपना सर्वघातिनि का द्रव्य सहित देशघातिनि का द्रव्य प्रमाण है, सो किछू अधिक समयप्रबद्ध के आठवें भाग प्रमाण है । याकौ एक घाटि अन्योन्याभ्यस्तराशि का भाग दीजिए, तब शैलभाग की अनंत गुणहानि विषै द्रव्य का प्रमाण हो है । पीछै नीचै एक-एक गुणहानि प्रति दूणा-दूणा द्रव्य होइ करि दारुभाग का अनत भागनि विषै एक भाग बिना अवशेष बहुभाग सवधी द्रव्य, तिनकी प्रथम गुणहानि विषै शैलभाग का अत की गुणहानि के द्रव्य कौ यथायोग्य आधा अनत करि गुणै जो प्रमाण होइ, तितना द्रव्य जानना । जातै इहा पर्यंत जेती गुणहानि भई, सोई गच्छ जानना । सो एक घाटि गच्छमात्र दोय के अकनि कौ गुणै सर्वघाति सवधी अन्योन्याभ्यस्तराशि अनत प्रमाण हो है, ताका जो आधा प्रमाण, सोई इहा गुणकार जानना । इहां सर्वघाति द्रव्य पूर्ण हुवा । इन सर्व गुणहानिनि का द्रव्य कौं जोडे जो प्रमाण होइ, तितने परमाणु सर्वघाति सवधी जानने, ताही तै सर्वघातिनि का द्रव्य के अर्थि अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रतिभाग कह्या है ।

अब आगे देशघाति का द्रव्य कहैं है —

दारुभाग का बहुभाग की प्रथम गुणहानि का द्रव्य तै नीचै दारुभाग का अनंत भागनि विषै एक भाग की अंत गुणहानि का द्रव्य दूणां है । बहुरि नीचे गुण-हानि-गुणहानि प्रति दूणां-दूणां द्रव्य होइ, लताभाग की प्रथम गुणहानि विषै एक घाटि सर्व नाना-गुणहानि का जो प्रमाण, तितना दूवा मांडि परस्पर गुणन कीए जो प्रमाण होई, सोई अन्योन्याभ्यस्तराशि का आधा प्रमाण करि शैलभाग की अंत गुणहानि का द्रव्य कौं गुणं जो प्रमाण होइ, तितना द्रव्य जानना । इन गुणहानिनि का जोड़ दीएं जो प्रमाण होइ- तितने परमाणु देशघाति संबंधी जानने ।

अंकसंदृष्टि करि जैसे – सर्व द्रव्य इकतीस सौ (३१००) याकौं एक घाटि अन्योन्याभ्यस्तराशि इकतीस (३१) का भाग दीएं सौ (१००) पाया, सो शैल-भाग की अंत गुणहानि का द्रव्य जानना । पीछैं गुणहानि-गुणहानि प्रति दूणां-दूणां होइ २००,४००,८०० एक घाटि नानागुणहानि च्यारि, जितना दूवा मांडि (२।२। २।२) । परस्पर गुणन कीजै, तव सोला भए, सोई अन्योन्याभ्यस्तराशि वत्तीस का आधा प्रमाण है । याकरि शैलभाग की अंत गुणहानि द्रव्य सौ (१००), ताकौं गुणिए तब सोलह सौ (१६००) भए, सो लताभाग की प्रथम गुणहानि का द्रव्य जानना ।

ऐसे ही तीन दर्शनावरणादिक के द्रव्यनि विषै भी सर्वघाति-देशघाति द्रव्य का प्रमाण जानना ॥१९८॥

आगें पूर्वे कह्या सर्वघाति-देशघाति द्रव्य, तिनका विशेष विभाग का अनुक्रम कहैं हैं —

सव्वावरणं दव्वं, विभंजणिज्जं तु उभयपयडीसु ।
देसावरणं दव्वं, देसावरणेसु णेविदरे ॥१९९॥

सर्वावरणं द्रव्यं, विभंजनीयं तु उभयप्रकृतिषु ।
देशावरणं द्रव्यं, देशावरणेषु नैवेतरेऽस्मिन् ॥१९९॥

टीका – घातिया कर्मनि कै अपने-अपने द्रव्य कौं अनत का भाग दीजिए, तहां एक भाग प्रमाण सर्वघाति द्रव्य है । बहुभाग प्रमाण देशघाति द्रव्य है । तहां सर्वघाति द्रव्य तो सर्वघाति वा देशघाति प्रकृतिनि विषैं विभाग करि देना अर देशघाति द्रव्य है, सो देशघाति प्रकृतिनि विषैं ही देना, केवलज्ञानावरणादिक सर्वघातिनि विषैं न देना ॥१९९॥

आगै उत्तर प्रकृतिनि विषै विभाग कहैं है —

बहुभागे समभागो, बंधाणं होदि एक्कभागम्हि ।
उत्तकमो तत्थवि बहुभागो बहुगस्स देग्रो दु ॥२००॥

बहुभागे समभागो, बंधानां भवति एकभागे ।
उक्तक्रमस्तत्रापि बहुभागः बहुकस्य देयस्तु ॥२००॥

टीका – युगपत् जिनका बंध संभवै है, ग्रैसी जे उत्तरप्रकृति, तिनकौ ग्रपना-ग्रपना पिडरूप द्रव्य कौ ग्रावली का ग्रसंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां बहु-भाग का तौ बरोबरि ब्रट करि ग्रपनी-ग्रपनी उत्तरप्रकृतिनि विषै समान द्रव्य देना ग्रर एक भाग विषै मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण इनकी प्रकृतिनि कौ तौ ग्रनुक्रम तै घटता-घटता ग्रर नामकर्म, ग्रंतरायकर्म इनकी प्रकृतिनि कौ ग्रनुक्रम तै ग्रधिक-ग्रधिक द्रव्य देना, ग्रैसा ग्रनुक्रम कह्या है, सो करना । तहां भी जाका बहुत द्रव्य कह्या होइ, ताकौ बहुभाग देना ॥२००॥

सोई कहिए हैं —

घादितियाणं सगसगसव्वावरणीयसव्वदव्वं तु ।
उत्तकमेण य देयं, विवरीयं णामविग्घाणं ॥२०१॥

घातित्रयाणां स्वकस्वकसर्वावरणीयसर्वद्रव्य तु ।
उक्तक्रमेण च देयं, विपरीतं नामविघ्नानां ॥२०१॥

टीका – ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय इन तीन कर्मनि का ग्रपना-ग्रपना सर्वघाति द्रव्य जैसे प्रकृतिनि का ग्रनुक्रम है, तैसे ग्रादि प्रकृति तै लगाय ग्रंत प्रकृति पर्यंत द्रव्य देना ।

बहुरि नामकर्म, अंतरायकर्म इनका **विपरीत** कहिए अत प्रकृति तै लगाय ग्रादि-प्रकृति पर्यंत ग्रनुक्रम तै द्रव्य देना ।

सोईं दिखाइए है —

ज्ञानावरणीय कर्म का सर्वद्रव्य पूर्वै कह्या था, ताकौ जैसा जिनदेव ने देख्या तैसा यथायोग्य ग्रनंत का भाग दीजिए, तहां एक भाग प्रमाण सर्वघाति द्रव्य है, सो इस सर्वघाति द्रव्य का विभाग कीजिए है – इस सर्वघाति द्रव्य कौ ग्रावली का

असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए । तहां एक भाग विना बहुभाग के पांच भाग कोजिए ते एक-एक समान भाग पांचौ प्रकृतिनि कौ दीजिए । बहुरि एकभाग रह्या ताकौ प्रतिभाग जो आवली का असंख्यातवां भाग ताका भाग दीजिए, तहां बहुभाग मतिज्ञानावरण कौ दीजिए । बहुरि जो एक-भाग रह्या, ताकौ तिस ही प्रतिभाग का भाग दीजिए, तहां बहुभाग, श्रुतज्ञानावरण कौ दीजिए । बहुरि जो एकभाग रह्या ताको तिस ही प्रतिभाग का भाग दीजिए, तहां बहुभाग अवधिज्ञानावरण कौ दीजिए। बहुरि जो अवशेष एकभाग रह्या, ताकौ तिस प्रतिभाग का भाग दीजिए, तहां बहुभाग मन:पर्यय ज्ञानावरण कौ दीजिए । बहुरि जो अवशेष एकभाग रह्या, सो केवलज्ञानावरण कौ दीजिए है । ऐसे पहिली जे पंच समान भाग कहे थे, तिन एक-एक में पीछैं जो-जो प्रमाण कह्या, सो मिलाएं अनुक्रम तै मतिज्ञानावरणादिकनि का सर्वघाति द्रव्य का परिमाण हो है ।

बहुरि ज्ञानावरण द्रव्य का अनत भागनि विषै एकभाग विना अवशेष बहुभाग प्रमाण देशघाति द्रव्य है, ताकौं पूर्वोक्त अनुक्रम करि तिसही आवली का असंख्यातवां भाग मात्र प्रतिभाग का भाग दीजिए, तहां एकभाग विना बहुभाग के च्यारि भाग कीजिए, ते एक-एक समान भाग मतिज्ञानावरणादिक च्यारि प्रकृतिनि कौं देना । बहुरि अवशेष एकभाग रह्या, ताकौ प्रतिभाग का भाग दीजिए तहां बहुभाग मतिज्ञानावरण कौ देना । अवशेष एकभाग रह्या, ताकौ प्रतिभाग का भाग दीजिए, तहां बहुभाग श्रुतज्ञानावरण कौं देना । बहुरि अवशेष एकभाग रह्या, ताकौं प्रतिभाग का भाग दीजिए, तहां बहुभाग अवधिज्ञानावरण कौं देना । बहुरि अवशेष एकभाग रह्या, सो मन:पर्ययज्ञानावरण कौ देना – ऐसें पहिली जे समान च्यारि भाग कहे थे, तिन एक-एक में पीछे जो-जो प्रमाण कह्या, सो-सो मिलाए अनुक्रम तै मतिज्ञानावरणादि का देशघाति द्रव्य का परिमाण हो है । बहुरि अपना-अपना देशघाति वा सर्वघाति द्रव्य मिलाएं अपना-अपना ज्ञानावरण की उत्तर-प्रकृतिनि का सर्व द्रव्य का परिमाण हो है । इहा इतना जानना —

प्रकृतिनि के द्रव्य का विभाग विषै सर्वत्र जहा प्रतिभाग का भाग कहे, तहां आवली का असंख्यातवां भाग का भाग जानना ।

बहुरि ऐसें ही दर्शनावरणी कर्म का पूर्वोक्त सर्वद्रव्य का परिमाण, ताकौ अनंत का भाग दीजिए, तहां एकभाग प्रमाण सर्वघाति द्रव्य है । तिस सर्वघाति

द्रव्य कौ प्रतिभाग का भाग दीजिए, तहां एकभाग बिना बहुभाग के नव भाग करने, सो एक-एक समान भाग नवौं प्रकृतिनि कौ देना । बहुरि अवशेष एकभाग कौ प्रतिभाग का भाग देय बहुभाग स्त्यानगृद्धि कौ देना । अवशेष एकभाग कौ प्रतिभाग का भाग देय बहुभाग निद्रानिद्रा कौ देना – असैं ही ज्ञानावरण का पंचक की ज्यों प्रतिभाग का भाग देइ-देइ बहुभाग-बहुभाग अनुक्रम तै प्रचलाप्रचला कौ, निद्रा कौं, प्रचला कौ, चक्षुदर्शनावरण कौं, अचक्षुदर्शनावरण कौ, अवधिदर्शनावरण कौं हीन अनुक्रम तै देना । अवशेष एक भाग केवलदर्शनावरण कौ देना । सो पहिलैं कहे समान भाग तिन एक-एक भाग विषै पीछै कह्या प्रमाण मिलाए, अपना-अपना स्त्यानगृद्ध्यादिक का सर्वघाति द्रव्य का प्रमाण हो है ।

बहुरि दर्शनावरण द्रव्य का अनंत भागनि विषै एकभाग बिना बहुभाग प्रमाण देशघाति द्रव्य है, ताकौ प्रतिभाग का भाग दीजिए, तहां एकभाग विना बहुभाग के तीन भाग कीजिए, सो एक-एक समान भाग चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शनावरण कौ देना । बहुरि एकभाग कौ प्रतिभाग का भाग देइ बहुभाग चक्षु-दर्शनावरण कौ देना । अवशेष एकभाग कौ प्रतिभाग का भाग देइ बहुभाग अचक्षु-दर्शनावरण कौ देना । अवशेष एकभाग अवधिदर्शनावरण कौ देना, सो पहिलैं कह्या तीन समान भागनि विषै एक-एक समान भाग में पीछै कह्या प्रमाण मिलाए अपना-अपना चक्षुदर्शनावरणादि का देशघाति द्रव्य हो है । चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शनावरण का सर्वघाति-देशघाति द्रव्य मिलाएं, तिनका सर्वद्रव्य का प्रमाण हो है । अवशेष छहों (**निद्रापंचकं केवलदर्शनावरणं चेति षट्**) प्रकृतिनि का सर्वघाति ही सर्वद्रव्य ही जानना ।

बहुरि अतरायकर्म का सर्वद्रव्य का जो प्रमाण, ताकौ प्रतिभाग का भाग दीजिए, तहां एक भाग बिना बहुभाग के पंच भाग करि एक-एक समान भाग एक-एक प्रकृति कौ देना । अवशेष एक भाग कौ प्रतिभाग का भाग देइ बहुभाग वीर्या-तराय कौ देना । बहुरि अवशेष एक भाग कौ प्रतिभाग का भाग देइ बहुभाग उपभोगांतराय कौ देना । असैं ही जो-जो अवशेष एक-एक भाग रहै, ताकौ प्रतिभाग का भाग देइ-देइ, बहुभाग-बहुभाग भोगातराय कौ, लाभांतराय कौ देना । अवशेष एक भाग दानांतराय कौ देना, सो पहिलै पंच समान भाग कहे, तिन एक-एक मे पीछै कह्या प्रमाण मिलाए अपना-अपना द्रव्य का प्रमाण हो है । असैं अतराय अधिक अनुक्रमरूप जानना ।।२०१।।

आगें मोहनीय विशेष है, सो कहैं हैं —

मोहे मिच्छत्तादी, सत्तरसण्हं तु दिज्जदे हीणं ।
संजलणाणं भागेव, होदि पणणोकसायाणं ॥२०२॥

मोहे मिथ्यात्वादिसप्तदशानां तु दीयते हीनं ।
संज्वलनानां भाग इव, भवति पंचनोकषायाणां ॥२०२॥

टीका – मोहनीयकर्म विषैं मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी-संज्वलन-प्रत्याख्यान-अप्रत्याख्यान-लोभ, माया, क्रोध, मान (१६) – इन सतरह प्रकृतिनि कौं हीनक्रम कहिए अनुक्रम तैं घाटि-घाटि द्रव्य देना । बहुरि पंच नोकषायनि का भाग संज्वलन का भागवत् जानना । नोकषाय नव है, तिन विषै एक समय युगपत् पंच ही का बंध होइ, तातैं इहां पंच नोकषाय कहे । तीन वेद विषै एक ही वेद का बंध होइ । रति-अरति विषै एक ही का बंध होइ, हास्य-शोक विषै एक ही का बंध होइ । भय-जुगुप्सा इन दोऊ का बंध होइ, असैं युगपत् पंच नोकषाय बंधै है ॥२०२॥

अब इनका विभाग कैसे हो है, सो कहै हैं —

संजलणभागबहुभागद्धं अकसायसंगयं दव्वं ।
इगिभागसहियबहुभागद्धं संजलणपडिबद्धं ॥२०३॥

संज्वलनभागबहुभागार्धमकषायसंगतं द्रव्यं ।
एकभागसहितबहुभागार्धं संज्वलनप्रतिबद्धं ॥२०३॥

टीका – मोहनीयकर्म का सर्वद्रव्य का प्रमाण पूर्वें कह्या, ताकौ अनंत का भाग दीजिए, तहां एक भाग प्रमाण सर्वघाति द्रव्य है । अवशेष बहुभाग प्रमाण देश-घाति द्रव्य है । तहां देशघाति द्रव्य कौ आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां बहुभाग का आधा तौ नोकषायनि कौ देना । बहुरि बहुभाग का आधा अर एकभाग अवशेष रह्या, सो सर्व संज्वलन का देशघाति संबंधी द्रव्य जानना । असैं ए तीन प्रकार द्रव्य भए । तिनविषै सर्वघाति द्रव्य का विभाग कीजिए हैं—

सर्वघाति द्रव्य कौ आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण जो प्रतिभाग, ताका भाग दीजिए । तहां एकभाग कौ जुदा राखि अवशेष बहुभाग के सतरह भाग कीजिए, सो एक-एक समान भाग एक-एक प्रकृति कौ दीजिए । बहुरि जो एकभाग

रह्या, ताकौ प्रतिभाग का भाग देइ बहुभाग मिथ्यात्व कौ देना। अवशेष एकभाग कौ प्रतिभाग का भाग देइ वहुभाग अनंतानुबंधी लोभ कौं देना। अवशेष एकभाग कौ प्रतिभाग का भाग देइ वहुभाग अनंतानुबंधी माया कौ देना। इसही अनुक्रम तै जो-जो एकभाग अवशेष रहता जाइ, ताकौ तिसही प्रतिभाग का भाग देइ-देइ बहु-भाग-वहुभाग अनंतानुवंधी क्रोध कौं, अनंतानुबंधी मान कौ, संज्वलन लोभ कौं, संज्वलन माया कौ, संज्वलन क्रोध कौ, संज्वलन मान कौं, प्रत्याख्यान लोभ कौ, प्रत्याख्यान माया कौ, प्रत्याख्यान क्रोध कौ, प्रत्याख्यान मान कौ, अप्रत्याख्यान लोभ कौ, अप्रत्याख्यान माया कौ, अप्रत्याख्यान क्रोध कौ देना, अवशेष एकभाग रहै, सो अप्रत्याख्यान मान कौ देना। सो पहिलै सतरह समान भाग कहे थे, तिनका एक-एक भाग मैं पीछै कह्या अपना-अपना प्रमाण कौ मिलाएं अपना-अपना प्रकृतिनि का सर्वघाति द्रव्य का प्रमाण हो है।

वहुरि दूसरा संज्वलन का देशघाति सबधी द्रव्य का जो प्रमाण कह्या, ताकौ प्रतिभाग का भाग दीजिए, तहां एक भाग कौ जुदा राखि अवशेष बहुभाग के च्यारि भाग करि एक-एक समान भाग च्यारचों कौ देना अवशेष एकभाग रह्या, ताकौ प्रतिभाग का भाग देइ वहुभाग सज्वलन लोभ कौ देना, अवशेष एक भाग कौ प्रतिभाग का भाग देइ बहुभाग सज्वलन माया कौ देना। अवशेष एक भाग कौ प्रतिभाग का भाग देइ बहुभाग सज्वलन क्रोध कौ देना। अवशेष एकभाग सज्वलन मान कौ देना। सो पहिलै च्यारि समान भाग कहे, तिन एक-एक भाग में पीछे कह्या अपना-अपना प्रमाण मिलाये, अपना-अपना देशघाति द्रव्य हो है। सो संज्वलन च्यारि प्रकृतिनि का देशघाति-सर्वघाति द्रव्य मिलाएं सर्व द्रव्य हो है।

मिथ्यात्व, बारह कषाय इनका सर्वघाति ही द्रव्य है अर नोकषाय का सर्व द्रव्य अघाति ही है।

सो नोकषाय का बटवारा कहिए है—

पूर्वै जो तीसरा नोकषायसंबधी द्रव्य कह्या, ताकौ प्रतिभाग का भाग दीजिए। तहां एक भाग कौ जुदा राखि बहुभाग के पंच भाग कीजिए। सो एक-एक समान भाग पाञ्चौ प्रकृतिनि कौ दीजिए। बहुरि अवशेष एक भाग रह्या, ताकौ प्रतिभाग का भाग देइ बहुभाग तीनो वेदनि विषै जिसका बंध होइ, ताकौ दीजिए। अवशेष एकभाग कौ प्रतिभाग का भाग देइ, बहुभाग रति, अरति विषै जाका बंध होइ,

ताकौ दीजिए। अवशेप एक भाग कौ प्रतिभाग का भाग देइ, वहुभाग हास्य-शोक विषै जाका वत्र होइ, ताकौ दोजिये। अवशेष एकभाग कौ प्रतिभाग का भाग देइ वहुभाग भय कौं देना। अवशेष एक भाग जुगुप्सा कौ देना। सो पहिले समान पंच भाग कहे, तिन एक-एक में पीछे कह्या अपना-अपना प्रमाण मिलाएं, अपना-अपना प्रकृतिनि का द्रव्य हो है ॥२०३॥

इहां नोकषायरूप पिंडप्रकृतिनि का द्रव्य विषै विशेष है, सो कहैं हैं—

तण्णोकसायभागो, सबंधपणणोकसायपयडीसु ।
हीणकमो होदि तहा, देसे देसावरणदव्वं ॥२०४॥

तन्नोकषायभागः, सबंधपंचनोकषायप्रकृतिषु ।
हीनक्रमो भवति तथा, देशे देशावरणद्रव्यं ॥२०४॥

टीका – सो नोकषाय सवंधी द्रव्य है, सो युगपत् वंध कौ प्राप्त होइ, अैसे जो पच नोकषाय, तिनविषै हीन क्रम करि देना। सो मिथ्यादृष्टि तै लगाइ पुरुषवेद, रति, हास्य, भय, जुगुप्सा इन पंचनि का अपूर्वकरण पर्यंत अथवा पुरुपवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा इन पंचनि का प्रमत्त पर्यंत युगपत् वंध होइ। बहुरि स्त्रीवेद, रति, हास्य, भय, जुगुप्सा इन पंचनि का अथवा स्त्रीवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा इन पंचनि का मिथ्यादृष्टि, सासादन विषैं युगपत् वंध होइ। वहुरि नपुसकवेद, रति, हास्य, भय, जुगुप्सा इन पंचनि का अथवा नपुसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा – इन पंचनि का मिथ्यादृष्टि विषै युगपत् वंध होइ, सो नोकपाय संवंधी द्रव्य का जैसे पूर्वै वटवारा कह्या, तैसे जिन पंच प्रकृतिनि का वध होइ, तिनकौ अनुक्रम तै घाटि-घाटि द्रव्य देना।

वहुरि अनिवृत्तिकरण विषै एक पुरुषवेद ही का वंध है, तातै तहां सवेदभाग पर्यंत नोकषाय संवंवी सर्व ही द्रव्य एक पुरुषवेद कौं देना। वहुरि देशघाति जो संज्वलन कपाय, ताका देशघाति संवंधी द्रव्य, सो युगपत् जेती प्रकृति वंधै तिनकौ हीन क्रम करि देना। सो मिथ्यादृष्टि तै लगाय अनिवृत्तिकरण का दूसरा क्रोधवंध भाग पर्यंत तौ च्यार्यो का वटवारा करना। तीसरा भाग विषै जहां क्रोध का वंध नाहीं, तहा तीन ही प्रकृति का वटवारा करना। चौथा भाग में जहां मान का भी वंध नाही, तहां दोय ही प्रकृति का वटवारा करना। पांचवां भाग विषै जहां माया का

भी बंध नाही, तहां संज्वलन का देशघाति संबंधी सर्वद्रव्य एक लोभ ही कौ देना। बट पूर्वोक्त रीति करि अनुक्रम तै घाटि-घाटि जानना ।।२०४।।

आगै बंध कौं प्राप्त होंइ जे नोकषाय, तिनका निरंतर बंध होइ, तौ कितने काल होइ ? सो कहै है —

पुंबंधऽद्धा अंतोमुहुत्त इत्थिम्हि हस्सजुगले य ।
अरदिदुगे संखगुणा, णपुंसकऽद्धा विसेसहिया ।।२०५।।

पुंबंधाद्धा अंतर्मुहूर्तः स्त्रियां हास्ययुगले च ।
अरतिद्वये संख्यगुणा, नपुंसकाद्धा विशेषाधिकः ।।२०५।।

टीका – पुरुषवेदनि का निरतर-बंध होइ, बीचि और कोई वेद का बंध न होइ, तीहि निरतर-बंध का 'अद्धा' कहिए काल जैसा जिनदेव देख्या तैसा अंतर्मुहूर्त प्रमाण है, सो संख्यात गुणा संख्यात आवली प्रमाण है। ताकी सहनानी दोय गुणा अंतर्मुहूर्त। बहुरि स्त्रीवेद का निरतर-बंध का काल तीहिस्यों संख्यात गुणा है, ताकी सहनानी च्यारि गुणा अंतर्मुहूर्त, हास्य अर रति का तीहिस्यों भी संख्यात गुणा है, ताकी सहनानी सोलह गुणा अंतर्मुहूर्त, बहुरि अरति, शोक का तीहिस्यों भी संख्यात गुणा है, ताकी सहनानी बत्तीस गुणा अंतर्मुहूर्त। बहुरि नपुंसक-वेद का तीहिस्यों किछू अधिक है, ताकी सहनानी बियालीस गुणा अंतर्मुहूर्त (४२), तहां तीनो वेद का काल मिलाए सहनानी की अपेक्षा अंतर्मुहूर्त अठतालीस (४८), अर हास्य-शोक का वा रति-अरति का मिलाएं अंतर्मुहूर्त अठतालीस (४८)।

तहां मिल्या हूवा काल कौं प्रमाणराशि कीए पिंडरूप द्रव्य कौं फलराशि कीए, अपना-अपना काल कौं इच्छाराशि कीए, लब्धराशि विषै अपना-अपना द्रव्य का प्रमाण त्रैराशिक करि आवै है।

तहां तीनों वेद का द्रव्य का जो सत्ता विषै प्रमाण, ताकौ तिस मिल्या हुवा काल की सहनानी रूप अंतर्मुहूर्त अठतालीस का भाग दीए जो प्रमाण होई, ताकौं पुरुषवेद का काल की सहनानी अंतर्मुहूर्त दोय करि गुणे जो प्रमाण होई, तितना पुरुषवेद संबंधी द्रव्य जानना। सो सब तै थोरा है। बहुरि स्त्रीवेद का काल की सहनानी अंतर्मुहूर्त च्यारि करि गुणे जो प्रमाण होइ, तितनी स्त्रीवेद संबंधी द्रव्य है, सो पुरुषवेद के द्रव्य तै संख्यात गुणा है। बहुरि नपुंसक वेद का काल की सहनानी

अंतर्मुहूर्त वियालीस करि गुणै जो होइ, सो नपुंसकवेद संबंधी द्रव्य है, सो स्त्रीवेद के द्रव्य तै संख्यात गुणा है ।

बहुरि रति-अरति संबंधी द्रव्य कौ सहनानी की अपेक्षा अंतर्मुहूर्त अठतालीस का भाग दीए जो प्रमाण होइ, ताकौ सहनानी की अपेक्षा रति का काल अंतर्मुहूर्त सोलह करि गुणै जो प्रमाण होइ, सो रति नोकषाय संबंधी द्रव्य जानना, सो स्तोक है । बहुरि अरति का काल अंतर्मुहूर्त बत्तीस करि गुणै जो प्रमाण होइ, सो अरति नोकषाय संबंधी द्रव्य जानना, सो रति के द्रव्य तै संख्यात गुणा है ।

बहुरि हास्य, शोक संबंधी जो द्रव्य ताकौं सहनानी की अपेक्षा अंतर्मुहूर्त अठतालीस का भाग दीए जो प्रमाण होइ, ताकौ सहनानी की अपेक्षा हास्य का काल अंतर्मुहूर्त सोलह करि गुणैं जो प्रमाण होइ, सो हास्य नोकषाय संबंधी द्रव्य है, सो शोक के द्रव्य तै संख्यात गुणा घाटि है । बहुरि शोक का काल अंतर्मुहूर्त बत्तीस करि गुणै जो प्रमाण होइ, सो शोक संबंधी द्रव्य है, सो हास्य के द्रव्य तै संख्यात गुणा है ।

सो युगपत् जिनका बंध होइ, असे पंच नोकषाय पूर्वोक्त प्रकार अनुक्रम तैं घाटि-घाटि द्रव्यरूप कहे, तथापि पिंड विषैं परस्पर नानाकाल विषै एकठे होने की अपेक्षा इस प्रकार करि द्रव्य का बटवारा अपने-अपने बंधकाल विषैं हो है । तीन वेदनि का एक पिंड जानना । रति-अरति का एक पिंड जानना । हास्य-शोक का एक पिंड जानना । सो पूर्वोक्त पिंड का द्रव्य इस प्रकार बंधै है ॥२०५॥

आगे अंतराय की पांच प्रकृति अर नाम के बंधस्थान तिनविषै कहैं हैं—

पणविग्घे विवरीयं, सबंधपिंडिदरणामठाणेवि ।
पिंडं दव्वं च पुणो, सबंधसगपिंडपयडीसु ॥२०६॥

पंचविघ्ने विपरीतं, सबंधपिंडेतरनामस्थानेऽपि ।
पिंडं द्रव्यं च पुनः, सबंधस्वकपिंडप्रकृतिषु ॥२०६॥

टीका – दानांतरायादिक पंच अंतराय तिनविषै **विपरीतं** कहिए पूर्वोक्त क्रमस्यों विपरीत अंततैं लगाय आदि पर्यंत क्रम जानना । सो ऊपरि कथन करही आए हैं । बहुरि नामकर्म के स्थानकनि विषै युगपत् बंध कौं प्राप्त होंइ असी जो नामकर्म की प्रकृति गत्यादिक पिंडरूप अर अगुरुलघु आदिक अपिंडरूप, तिनविषै भी 'विपरीतं' कहिए अंत तैं लगाय आदि पर्यंत क्रम जानना ।

सोई कहिए है—

युगपत् जाका बंध होइ अैसा नामकर्म का त्रयोविशतिक स्थान है, सो तिर्यंच गति, एकेंद्री जाति, औदारिक-तैजस-कार्माण – ए तीन शरीर, हुंडकसंस्थान, वर्ण, गध, रस, स्पर्श, तिर्यंचानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति, निर्माण – इन तेईस प्रकृतिनि का युगपत् वध मनुष्य वा तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव करै है। सो यहु त्रयोविशतिक स्थान साधारण-सूक्ष्म एकेंद्री-लब्धि अपर्याप्तक भव कौ प्राप्त करने कौ योग्य है।

अब इनका बटवारा दिखाइए है—

पूर्वै मूलप्रकृतिनि का बटवारा में जो नामकर्म का द्रव्य कह्या, ताकौ आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां एक भाग कौ जुदा राखि बहुभाग के इकईस भाग कीजिए, सो एक-एक समान भाग, एक-एक प्रकृति कौ देना। तेईस प्रकृतिनि का बध था, तिन विषै औदारिक-तैजस-कार्माण – ए तीनों प्रकृति एक शरीर नामा पिंडप्रकृति विषै आय गई अर और पिंडप्रकृतिनि विषैं एक-एक प्रकृति ही का वंध है, तातै इहां इकईस हीं भाग कीए। बहुरि जो एक भाग रह्या, ताकौ आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण प्रतिभाग का भाग दीजिए, तहां बहुभाग अंत विषै कही जो निर्माण प्रकृति ताकौ देना, अवशेष एक भाग रह्या, ताकौ प्रतिभाग का भाग देइ, बहुभाग अयशस्कीर्ति कौ देना। अवशेष एक भाग रह्या, ताकौ प्रतिभाग का भाग देइ बहुभाग अनादेय कौ देना।

अैसै ही जो-जो एक भाग अवशेष रहता जाय, ताकौ प्रतिभाग का भाग देइ-देइ, बहुभाग-बहुभाग दुर्भग कौ, अशुभ कौ, अस्थिर कौ, साधारण कौ, अपर्याप्त कौ, सूक्ष्म कौ, स्थावर कौ, उपघात कौ, अगुरुलघु कौ, तिर्यंचानुपूर्वी कौ, स्पर्श कौ, रस कौ, गंध कौं, वर्ण कौ, हुंड सस्थान कौ, शरीर पिंडप्रकृतिनि कौ, एकेंद्रियजाति कौ देना। अवशेष एक भाग रह्या, सो आदि विषै कही जो तिर्यंचगति प्रकृति ताकौ देना, सो पूर्वै इकईस समान भाग कहे थे, तिन एक-एक भाग में अपना-अपना पीछै कह्या प्रमाण मिलाए, अपना-अपना प्रकृति का द्रव्य हो है।

सो जैसै तेईस का बंध का उदाहरण दिखाया, तैसै ही जहां पचीस का युगपत् बंध होइ, तहां अैसै ही पचीस का बटवारा जानना। अैसै ही छबीस, अठाईस, गुणतीस, तीस, इकतीस प्रकृतिनि का बंध विषै भी बटवारा जानना।

बहुरि जहां ऊपरले गुणस्थान में एक यशस्कीर्ति ही का बंध है, तहां सर्व ही नामकर्म का द्रव्य तिस एक प्रकृति ही कौं देना। बहुरि इन स्थानकौ विषै जिनका युगपत् बंध होइ, तिन पिंडप्रकृति के भेदनि का बटवारा एक पिंडप्रकृतिनि का द्रव्य विषैं अधिक अनुक्रम करि ही जानना।

जैसे त्रयोविंशतिक स्थानक विषै एक शरीर नामा पिंडप्रकृति के तीन भेद पाइए, तो तहां जो शरीर प्रकृति का बटवारा विषै जो द्रव्य आया, ताकौ प्रतिभाग का भाग देइ बहुभाग के तीन भाग करि एक-एक समान भाग तीनों को देना, अवशेष एक भाग कौ प्रतिभाग का भाग देइ बहुभाग कार्माण कौ देना। अवशेष एक भाग कौ प्रतिभाग का भाग देइ बहुभाग तैजस कौ देना। अवशेष एक भाग औदारिक कौं देना। पूर्वोक्त समान भागनि विषैं इनको मिलाएं अपना-अपना द्रव्य होइ। असैं ही और ठिकाने भी जानना।

बहुरि जहां पिंडप्रकृति विषै एक ही प्रकृति का बंध होइ, तहां पिंडप्रकृति का सर्व ही द्रव्य तिस एक प्रकृति कौं देना। इकतालीस जीव पदनि विषैं नामकर्म के स्थाननि का जैसे बंध होइ, सो कथन आगै स्थान समुत्कीर्तन अधिकार विषै कहैंगे, तहां जानने।

असै प्रदेशबंध का कथन विषैं द्रव्य का बटवारा कह्या, सो एक-एक समय विषै जो एक-एक समयप्रबद्ध बंधै है, तहां समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणुनि विषै जिस-जिस प्रकृति का जितना-जितना द्रव्य कह्या, तितना-तितना परमाणु तिस-तिस प्रकृतिरूप होइ परिणमै है, असा भावार्थ जानना।

कोऊ बहुभाग समभागादिक विषैं न समझै, ताकौ एक दृष्टान्त दिखाइए हैं —

जैसे सर्वद्रव्य च्यारि हजार छिनवै (४०९६), तिनका बटवारा च्यारि जायगा करना। प्रतिभाग का प्रमाण आठ, तहां च्यारि हजार छिनवै कौ आठ का भाग दीजिये, तहां एक भाग बिना अवशेष बहुभाग पैंतीस सौ चौरासी (३५८४) ताके च्यारि भाग करि समान देनै, तहां एक एक भाग में आठ सौ छिनवै आए। अवशेष एक भाग का प्रमाण पांच सौ बारा, ताकौ प्रतिभाग आठ का भाग दीए चौसठि पाए, सो जुदा राखि, अवशेष बहुभाग च्यारि सौ अठतालीस बहु द्रव्यवालों कौ देना। अवशेष एक भाग चौसठि कौ प्रतिभाग का भाग दीए आठ पाए, सो

जुदा राखि अवशेष बहुभाग छप्पन, तिस तै हीन द्रव्यवाले कौ देना। अवशेष एक भाग कौ प्रतिभाग का भाग दीए एक पाया, सो जुदा राखि अवशेष बहुभाग सात, तिस तै हीन द्रव्यवाले कौ देना। अवशेष एक भाग एक, सो तिसतै हीन द्रव्यवाले कौ देना, सो समान भागनि विषै इनकौ मिलाए क्रम तै तेरा सौ चवालीस, नौ सौ बावन, नौ सौ तीन, आठ सौ सत्याणवे प्रमाण द्रव्य आया (१३४४,९५२,९०३, ८९७)।

ऐसे च्यारि हजार छिनवै द्रव्य का बटवारा भया, सो ऐसे ही पूर्वोक्त प्रकृतिनि का बटवारा जानना।

बहुरि ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय इनकी प्रकृतिनि विषैं अनुक्रम तैं घटता-घटता द्रव्य जानना। अंतराय अर नामकर्म की प्रकृतिनि विषै अनुक्रम तै अधिक-अधिक द्रव्य जानना। वेदनीय, आयु, गोत्र इनकी उत्तर प्रकृति एक समय विषै एक ही बंधै है; तातैं मूल प्रकृतिवत् इनका द्रव्य जानना ॥२०६॥

ऐसे प्रदेश कहिए परमाणु, तिन का बंध का विधान कह्या। आगैं उत्कृष्टादिक प्रदेशबंधनि के साद्यादिक विशेष मूल प्रकृतिनि विषैं कहै है —

छण्हंपि अणुक्कस्सो, पदेसबंधो दु चदुवियप्पो दु।
सेसतिये दुवियप्पो, मोहाऊणं च दुवियप्पो ॥२०७॥

षण्णामपि अनुत्कृष्टः, प्रदेशबंधस्तु चतुर्विकल्पस्तु।
शेषत्रये द्विविकल्पः, मोहायुषोश्च द्विविकल्पः ॥२०७॥

टीका – ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, नाम, गोत्र अंतराय इन छहौ का अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध तो सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव भेद तै च्यारि प्रकार है। बहुरि इनही छहो का अवशेष उत्कृष्ट, अजघन्य, जघन्य प्रदेशबंध सादि, अध्रुव भेद तै दोय ही प्रकार है। बहुरि मोहनीय, आयु इन का उत्कृष्टादिक च्यारयों ही प्रकार का प्रदेशबंध सादि, अध्रुव के भेद तै दोय प्रकार है ॥२०७॥

आगे उत्तर प्रकृतिनि कौ कहै हैं —

तीसण्हमणुक्कस्सो, उत्तरपयडीसु चउविहो बंधो।
सेसतिये दुवियप्पो, सेसचउक्केवि दुवियप्पो ॥२०८॥

त्रिशतामनुत्कृष्टः, उत्तरप्रकृतिषु चतुर्विधो वंधः ।
शेषत्रये द्विविकल्पः, शेषचतुष्केऽपि द्विविकल्पः ।।२०८।।

टीका – उत्तर प्रकृतिनि विषै तीस प्रकृतिनि का अनुत्कृष्ट प्रदेशवंध तौ सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव के भेद तै च्यारि प्रकार है। अवशेप उत्कृष्ट, अजघन्य, जघन्य प्रदेशवंध सादि, अध्रुव के भेद तै दोय प्रकार है। अवशेप निवै (९०) प्रकृतिनि का उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य, जघन्य च्यारचों प्रकार का प्रदेशवंध सादि, अध्रुव के भेद तै दोय प्रकार ही है ।।२०८।।

तैतीस प्रकृति कौंन ? सो कहै हैं—

णाणंतरायदसयं, दंसणछक्कं च मोहचोद्दसयं ।
तीसण्हमणुक्कस्सो, पदेसबंधो चदुवियप्पो ।।२०९।।

ज्ञानांतरायदशकं, दर्शनषट्कं च मोहचतुर्दशकं ।
त्रिशतामनुत्कृष्टः, प्रदेशबंधः चतुर्विकल्पः ।।२०९।।

टीका – पांच ज्ञानावरण, पांच अंतराय, निद्रा, प्रचला, चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल, दर्शनावरणीय छह, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संज्वलन, क्रोध-मान-माया-लोभ, ए अर भय, जुगुप्सा ए चौदह इन तीसनि का अनुत्कृप्ट प्रदेशवंध सादि इत्यादिक च्यारि प्रकार है। सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव का स्वरूप पूर्वं कह्या है, सो जानना ।।२०९।।

आगे उत्कृष्ट प्रदेशवंध होने की सामग्री कहै हैं—

उक्कडजोगो सण्णी, पज्जत्तो पयडिबंधमप्पदरो ।
कुणदि पदेसुक्कस्सं, जहण्णये जाण विवरीयं ।।२१०।।

उत्कृष्टयोगः संज्ञी, पर्याप्तः प्रकृतिवंधाल्पतरः ।
करोति प्रदेशोत्कृष्टं, जघन्यके जानीहि विपरीतं ।।२१०।।

टीका – जो जीव उत्कृष्ट योगकरि संयुक्त होइ, सैनी होइ, पर्याप्त होइ, जाकै थोरी प्रकृतिनि कौ वंध होइ ऐसा जीव उत्कृष्ट प्रदेशवंध कौ करै। वहुरि जघन्य प्रदेशवंव विषै **'विपरीतं'** कहिए अन्यथा जानहु। सो जो जीव जघन्य योग

करि संयुक्त, असैनी, अपर्याप्त, बहुत प्रकृतिनि का बांधनेवाला होइ, सो जघन्य प्रदेश बंध कौ करै है ॥२१०॥

आगे मूल प्रकृतिनि के उत्कृष्ट बंध का स्वामीपना गुणस्थाननि विषैं कहै है—

आउक्कस्स पदेसं, छक्कं मोहस्स णव दु ठाणाणि ।
सेसाण तणुकसाओ, बंधदि उकस्सजोगेण ॥२११॥

आयुष्कस्य प्रदेशं, षट्कं मोहस्य नव तु स्थानानि ।
शेषाणां तनुकषायो, बध्नाति उत्कृष्टयोगेन ॥२११॥

टीका – आयुकर्म के उत्कृष्ट प्रदेशबंध कौं छह गुणस्थान उलंघि अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती होइ करै है । बहुरि मोहनीय का उत्कृष्ट प्रदेशबंध नवमा गुणस्थान को पाई अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती करै है । बहुरि अवशेष ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय नाम, गोत्र, अंतराय इनकौ उत्कृष्ट प्रदेशबंध सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानवर्ती जीव करै है । इन तीनों स्थानकनि विषै उत्कृष्ट योग का धारक अर थोरी प्रकृति का बांधनेवाला जीव पूर्वोक्त प्रकृतिनि का उत्कृष्ट प्रदेशबंध करै है ॥२११॥

आगे उत्तर प्रकृतिनि कौ कहैं है—

सत्तर सुहुमसरागे, पंचऽणियट्टिम्हि देसगे तदियं ।
अयदे बिदियकसायं, होदि हु उक्कस्सदव्वं तु ॥२१२॥

छण्णोकसायणिद्दा, पयलातित्थं च सम्मगो य जदी ।
सम्मो वामो तेरं, णरसुरआऊ असादं तु ॥२१३॥

देवचउक्कं वज्जं, समचउरं सत्थगमणसुभगतियं ।
आहारमप्पमत्तो, सेसपदेसुक्कडो मिच्छो ॥२१४॥

सप्तदश सूक्ष्मसरागे, पंचानिवृत्तौ देशके तृतीयं ।
अयते द्वितीयकषायं, भवति हि उत्कृष्टद्रव्यं तु ॥२१२॥

षट्नोकषायनिद्रा, प्रचलातीर्थं च सम्यक् च यदि ।
सम्यग्वामः त्रयोदश, नरसुरायुरसातं तु ॥२१३॥

देवचतुष्कं वज्रं, समचतुरस्रं शस्तगमनसुभगत्रयं ।
आहारमप्रमत्तः, शेषप्रदेशोत्कटो मिथ्यः ॥२१४॥

टीका – पांच ज्ञानावरण, च्यारि दर्शनावरण, पांच अंतराय, यशस्कीर्ति, उच्चगोत्र, सातावेदनीय – इन सतरहौं प्रकृतिनि का उत्कृष्ट प्रदेशबंध सूक्ष्मसांपराय विषैं हो है । बहुरि पुरुषवेद, संज्वलन च्यारि – इन पंचनि का अनिवृत्तिकरण विषैं हो है । बहुरि प्रत्याख्यान च्यारि कषायनि का देशविरत विषै हो है । बहुरि अप्रत्याख्यान च्यारि कषायनि का असंयत विषै हो है । बहुरि हास्यादिक छह नोकषाय, निद्रा, प्रचला, तीर्थंकर – इन नवौं का उत्कृष्ट प्रदेशबंध सम्यग्दृष्टि करै है । बहुरि मनुष्यायु, देवायु, असातावेदनीय, देवगति वा आनुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर वा अंगोपांग – ए च्यारि, वज्रवृषभनाराच संहनन, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर आदेय, इन तेरह प्रकृतिनि का उत्कृष्ट प्रदेशबंध सम्यग्दृष्टि वा मिथ्यादृष्टि दोऊ करैं हैं । आहारकद्विक का उत्कृष्ट प्रदेशबंध अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती करैं हैं । इन चौवन विना अवशेष छ्यासठि प्रकृतिनि का उत्कृष्ट प्रदेशबंध मिथ्यादृष्टि करैं है । सर्वत्र उत्कृष्ट योगादिक सामग्री होत संतै ही प्रकृतिनि का उत्कृष्ट प्रदेशबंध जानना ॥२१२-२१४॥

आगै जघन्य प्रदेशबंध का स्वामित्वपना मूलप्रकृतिनि विषैं कहै हैं—

सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स पढमे जहण्णये जोगे ।
सत्तण्हं तु जहण्णं, आउगबंधेवि आउस्स ॥२१५॥

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य प्रथमे जघन्यके योगे ।
सप्तानां तु जघन्यमायुष्कबंधेऽपि आयुषः ॥२१५॥

टीका – सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक जीव अपना पर्याय का पहला समय विषै जघन्य योग करि सात मूल प्रकृतिनि का जघन्य प्रदेशबंध करैं है । अर तिस जीव के आयु का बंध होतैं आयु का भी जघन्य प्रदेशबंध हो है ॥२१५॥

आगैं उत्तर प्रकृतिनि विषै कहै हैं—

घोडणजोगोऽसण्णी, णिरयदुसुरणिरयआउगजहण्णं ।
अपमत्तो आहारं, अयदो तित्थं च देवचऊ ॥२१६॥

घोटमानयोगः असंज्ञो, निरयद्विसुरनिरयायुष्कजघन्यं ।
अप्रमत्तः आहारमयतः तीर्थं च देवचतुः ।। २१६ ।।

टीका – जिन योगस्थानकनि की वृद्धि भी होइ, वा हानि भी होइ, वा जैसै के तैसै भी रहै तिन योगस्थानकनि कों **घोटमान योगस्थान** कहिए अथवा **परिणाम-योगस्थान** कहिए। सो असा योग का धारी असैनी जीव सो नरकगति वा आनुपूर्वी, देवायु-नरकायु इन च्यार्यों का जघन्य प्रदेशबध करै हैं। बहुरि आहारकद्विक का अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती जघन्य प्रदेशबंध करै हैं, जातै याके अपूर्वकरणतै बहुत प्रकृतिनि का बंध है। बहुरि पर्याय का पहिला समय विषै जघन्य उपपादयोग का धारी असंयत सम्यग्दृष्टि जीव सो तीर्थंकर, देवगति वा आनुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर वा अंगोपांग इन पचनि का जघन्य प्रदेशबंध करै है ।।२१६।।

चरिमअपुण्णभवत्थो, तिविग्गहे पढमविग्गम्हि ठिओ ।
सुहमणिगोदो बंधदि, सेसाणं अवरबंधं तु ।। २१७ ।।

चरमापूर्णभवस्थः, त्रिविग्रहे प्रथमविग्रहे स्थितः ।
सूक्ष्मनिगोदो बध्नाति, शेषाणामवरबंधं तु ।।२१७।।

टीका – बहुरि छह हजार बारह क्षुद्रभवनि का अत का क्षुद्रभव विषै तिष्ठता विग्रहगति का वक्र मुडना तीहि में पहिला वक्र विषै तिष्ठता असा सूक्ष्म-निगोद जीव सो पूर्वोक्त ग्यारह तै अवशेष रही एक सौ नव प्रकृति, तिनका जघन्य प्रदेशबंध करै है।

असै उत्कृष्ट जघन्य प्रदेशबंध का स्वामित्वपना कहा, सो जहां उत्कृष्ट घणा परमाणु बंधै, तहां उत्कृष्ट प्रदेशबंध कहिये, जहां जघन्य थोरा परमाणु बधै, तहां जघन्य प्रदेशबंध कहिए। सो पूर्वोक्त प्रकार जानना।

बहुरि इहां च्यारि प्रकार बध विषै पहिलै कह्या जो प्रकृतिबंध, तिस मूल प्रकृति वा उत्तर प्रकृतिनि विषै एक जीव कै एक समय विषै युगपत् बंध कौं जे प्राप्त होंइ, तिन प्रकृतिनि का जघन्यादिक भेदरूप स्थिति, अनुभाग, प्रदेशरूप बंध के भेद हों है। तहां एक जीव कै एक काल विषै कितनी-कितनी प्रकृतिनि का बंध होइ सो मिथ्यादृष्टि आदिक गुणस्थाननि विषै टीकाकार रचना दिखावै है—

गुण-स्थान	ज्ञाना-वरण	दर्शना-वरण	वेद-नीय	मोहनीय	आयु	नामकर्म	गोत्र	अंत-राय	सर्वप्रकृतिनिका एकजीव कैं एककाल बध का प्रमाण
अ	०	०	०	०	०	०	०	०	०
स	०	०	१	०	०	०	०	०	१
क्षी	०	०	१	०	०	०	०	०	१
उ	०	०	१	०	०	०	०	०	१
सू	५	४	१	०	०	१	१	५	१७
अ	५	४	१	५।४।३।२।१	०	१	१	५	२२।२१।२०।१९।१८
अं	५	६।४	१	९	०	२८।२९।३०।३१।१	१	५	५५।५६।५७।५८।२६
अ	५	६	१	९	१	।३०८।२९२।३१	१	५	५६।५७।५८।५९
प्र	५	६	१	९	१	२८।२९	१	५	५६।५७
दे	५	६	१	१३	१	२८।२९	१	५	६०।६१
अं	५	६	१	१७	१	२८।२९।३०	१	५	६४।६५।६६
मि	५	६	१	१७	०	२८।२९	१	५	६३।६४
सा	५	९	१	२१	१	२८।२९।३०	१	५	७१।७२।७३
मि	५	९	१	२२	१	२३।२५।२६।२८।२९।३०	१	५	६७।६९।७०।७२।७३।७४
सर्व-गुण स्थान	ज्ञा५	द९।६।४	वेद१	मो २६ मध्ये २२।२१।१७।१३।९।५।४।३।२।१	मे१ आ४	ना २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१	गोत्र मे १	अ ५	ज्ञानावरणादिक की प्रकृति जोडे ज्ञा५ द९ वे१ मो२२ आ१ ना२३ गो१ अ५ सर्व६७ एव सर्वत्रज्ञेय

इस यंत्र का अर्थ लिखिए है—एक जीव कै एक काल विषै ज्ञानावरण पाच का ही बंध होइ। दर्शनावरण नव का छह का वा च्यारि का बंध होइ। वेदनीय दोय में एक का बंध होइ। मोहनीय की छब्बीस में बाईस वा इकईस वा सतरह वा तेरह वा नव वा पांच, च्यारि, दोय, एक का बंध होइ। आयु चारि में एक का बध होइ। नामकर्म की तेईस वा पचीस वा छब्बीस वा अठाईस वा गुणतीस वा तीस वा इकतीस वा एक प्रकृति का बंध होइ। गोत्र दोय में एक का बंध होइ। अंतराय पाच का बंध होइ।

तहां मिथ्यादृष्टि गुणस्थान विषै ज्ञानावरण पांच का, दर्शनावरण नव का, वेदनीय एक का, मोहनीय बाईस का, आयु एक का, नाम तेईस, वा पचीस, वा छब्बीस वा अठाईस वा गुणतीस वा तीस का, गोत्र एक का, अंतराय पांच का बंध होइ। तहां सर्व प्रकृति जोडै सडसठि, वा गुणहत्तरी, वा सत्तरि, वा बहत्तरि, वा तेहत्तरि, वा चहोत्तरि का बंध होइ।

असै ही सासादनादिक गुणस्थाननि विषै जैसे यंत्र विषै कह्या है, तैसै प्रकृतिनि का बंध जानना। तहां प्रकृतिनि के बदलने तै भग उपजै है। जैसै चहोत्तरि का बंध विषै वेदनीय कर्म का एक का बध तहां साता का वा असाता का बंध की अपेक्षा भंग दोय भया। असै प्रकृतिनि का प्रमाण के घटने बधने तै स्थानभेद हो है। एक ही स्थान विषै प्रकृतिनि के बदलनै तै भंग हो है। सो कहिए है—

मिथ्यादृष्टि विषै सतसठि का स्थान मे एक भंग है। गुणहत्तरि का स्थान में नव भंग, सत्तरि का स्थान में आठ भंग, बहत्तरि का स्थान में नव भंग, तेहत्तरि का स्थान मे बाणवै सौ सोला भंग- चहोत्तरि का स्थान में छियालीस सौ आठ भग। बहुरि सासादन विषै एकहत्तरि का स्थान में आठ भंग, बहत्तरि का स्थान में चौसठि सौ भंग, तेहत्तरि का स्थान मे बत्तीस सौ भग। मिश्र विषै तरेसठि-चौसठि का दोऊ स्थानकनि मे आठ-आठ भंग। असंयत विषै चौसठि, पैसठि, छयासठि के स्थाननि विषै आठ-आठ भग। देशसंयत विषै साठि, इकसठि का स्थानकनि मे आठ-आठ भंग। प्रमत्त का छप्पन, सतावन का स्थानकनि मे आठ-आठ भंग। अप्रमत्त विषै छप्पन, सतावन, अट्ठावन, गुणसठि का स्थानकनि विषै एक-एक भंग। अपूर्वकरण का – पचावन, छप्पन, सतावन, अठावन, छब्बीस का स्थानकां विषै एक-एक भंग। अनिवृत्तिकरण का बाइस, इकईस, बीस, उगणीस, अठारह का स्थानकां विषै एक-

एक भंग । सूक्ष्मसांपराय का सतरह का स्थान विषै एक भंग है । सो इन भंगनि का वा प्रकृतिनि का कथन स्थानसमुत्कीर्तन अधिकार विषै आगे नामकर्म के स्थानक कहैंगे, तहां प्रगट जानि लेना ॥२१७॥

आगे प्रकृति, प्रदेशबंध कौ कारण योगस्थान, तिनका स्वरूप, संख्या वा स्वामी बियालीस गाथानि करि कहै है—

जोगट्ठाणा तिविहा, उववादेयंतवड्ढिपरिणामा ।
भेदाएक्केक्कंपि य, चोद्दसभेदा पुणो तिविहा ॥२१८॥

योगस्थानानि त्रिविधानि, उपपादैकांतवृद्धिपरिणामानि ।
भेदादेकैकमपि च, चतुर्दशभेदाः पुनः त्रिविधाः ॥२१८॥

टीका – योगस्थान तीन प्रकार है – उपपादयोगस्थान, एकांतवृद्धियोगस्थान, परिणामयोगस्थान । बहुरि एक-एक भेद के, चौदह जीवसमासनि की अपेक्षा, चौदह-चौदह भेद हो है । सूक्ष्म एकेंद्री अपर्याप्त का उपपादयोगस्थान, सूक्ष्म एकेंद्री पर्याप्त का उपपादयोगस्थान, असें ही बादर एकेंद्री, बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, असैनी पंचेंद्री, सैनी पंचेंद्री पर्याप्त-अपर्याप्त के उपपादयोगस्थान जानने । एक उपपादयोगस्थान के चौदह भेद भए । असें ही एकांतवृद्धि वा परिणाम योगस्थान के चौदह-चौदह भेद जानने । बहुरि ये एक-एक के चौदह भेद सामान्य, जघन्य, उत्कृष्ट की अपेक्षा तीन प्रकार हैं । तहा सामान्य की अपेक्षा चौदह भेद, सामान्य अर जघन्य की अपेक्षा अठाईस भेद, सामान्य अर जघन्य अर उत्कृष्ट की अपेक्षा बियालीस भेद हो है ॥२१८॥

आगे उपपादयोगस्थानकनि का स्वरूप कहै है—

उववादजोगठाणा, भवादिसमयट्ठियस्स अवरवरा ।
विग्गहइजुगइगमणे, जीवसमासे मुणेयव्वा ॥२१९॥

उपपादयोगस्थानानि, भवादिसमयस्थितस्थावरवराणि ।
विग्रहर्जुगतिगमने, जीवसमासे मंतव्यानि ॥ २१९ ॥

टीका – उपपादयोगस्थान जो पर्याय धरै, ताका पहिला समय विषैं तिष्ठता जीव कैं हो है । तहां जो जीव विग्रहगति कहिए वक्रगति करि बीचि मे मुडि करि जाय अर नवीन पर्याय कौ प्राप्त होइ, ताकै जघन्य उपपादयोगस्थान हो

है । बहुरि जो जीव ऋजुगति कहिए सूधा, बीचि में मुड़ै नाही असी गति करि नवीन पर्याय कौ धरै, ताकै उत्कृष्ट उपपादयोगस्थान हो है । ते उपपादयोगस्थान चौदह जीवसमासनि विषै जानने ।

इहां प्रश्न – जो पर्याय का पहिला समय विषै तौ अपर्याप्त अवस्था ही है, तहां पर्याप्त जीवसमासनि विषै उपपाद योगस्थान कैसे कहिए है ?

ताका समाधान— जो निर्वृत्ति अपर्याप्त जीव कै पर्याय का पहिला समय विषै योगस्थान हो है, ते तौ पर्याप्त जीवसमासनि विषै उपपादयोगस्थान जानने । अर जे लब्धि अपर्याप्तक जीव कै पर्याय का पहिला समय विषै योगस्थान हो हैं, ते अपर्याप्त जीवसमासनि विषै उपपादयोगस्थान जानने । जातै निर्वृति अपर्याप्त अवस्था विषै भी पर्याप्त नामकर्म का ही उदय है ।

'उपपद्यते' कहिए जीव करि पर्याय का पहिला समय विषै प्राप्त करिए, सो उपपाद कहिए, सो इस उपपादयोगस्थान के सर्व सामान्य कौ आदि देकरि भेद, जो जीव नवीन पर्याय धरै ताका पहिला समय विषै ही संभवै है ।।२१९।।

आगे परिणामयोगस्थान का स्वरूप कहै है—

परिणामजोगठाणा, सरीरपज्जत्तगादु चरिमोत्ति ।
लद्धिअपज्जत्ताणं, चरिमतिभागम्हि बोधव्वा ।।२२०।।

परिणामयोगस्थानानि, शरीरपर्याप्तकात् चरम इति ।
लब्ध्यपर्याप्तकानां, चरमत्रिभागे बोद्धव्यानि ।।२२०।।

टीका – बहुरि परिणामयोगस्थान शरीर पर्याप्ति कौ पूर्ण होत संतै पहिला समयस्यों लगाय अपनी आयुर्बल का अंत समय पर्यंत जानने । बहुरि लब्धि अपर्याप्तक जीव के अपनी स्थिति सांस के अठारहवे भाग प्रमाण, ताका त्रिभाग करतैं अंत का जो त्रिभाग ताका पहिला समयस्यों लगाय अंत का समय पर्यंत परिणाम योगस्थान जानने ।।२२०।।

सगपज्जत्तीपुण्णे, उवरिं सव्वत्थ जोगमुक्कस्सं ।
सव्वत्थ होदि अवरं, लद्धिअपुण्णस्स जेट्ठंपि ।।२२१।।

स्वकपर्याप्तिपूर्णे, उपरि सर्वत्र योगोत्कृष्टं ।
सर्वत्र भवत्यवरं, लब्ध्यपर्याप्तस्य ज्येष्ठमपि ।।२२१।।

टीका – अपना-अपना शरीर नामा पर्याप्ति कौ संपूर्ण होत संतै तीहि शरीर पर्याप्ति का पूर्ण होने का समयस्यों लगाय ऊपरि सर्व अपनी आयुर्बल का समयनि विषै परिणामयोगस्थान उत्कृष्ट भी, अर जघन्य भी संभवै है। बहुरि लब्धि अपर्याप्तक का अपनी स्थिति सांस का अठारहवां भाग प्रमाण, ताका अंत का त्रिभाग का पहिला समयस्यों लगाय अंत का समय पर्यंत सर्व स्थिति के भेदनि विषै उत्कृष्ट परिणामयोग भी, अर जघन्य परिणामयोग भी संभवै है। सो दोनों ही जीवां के ते सर्व परिणामयोगस्थान घोटमानयोग जानने। जातै ए योगस्थान घटै भी हैं, वा वधै भी हैं, वा जैसैं के तैसे भी रहै है ॥२२१॥

आगै एकांतानुवृद्धियोगस्थाननि का स्वरूप कहै हैं—

एयंतवड्ढिठाणा, उभयट्ठाणाणमंतरे होंति।
अवरवरट्ठाणाओ, सगकालादिम्हि अंतम्हि ॥२२२॥

एकांतवृद्धिस्थानानि, उभयस्थानानामंतरे भवंति।
अवरवरस्थानानि, स्वककालादौ अंते ॥ २२२ ॥

टीका – एकांतानुवृद्धियोगस्थान पर्याय धरने का दूसरा समयस्यों लगाय एक समय घाटि शरीर पर्याप्ति के अंतर्मुहूर्त काल का अत समय पर्यंत उपपादयोग अर परिणामयोग का अंतराल विषै हो है। तीहि एकांतवृद्धि का जघन्य स्थान तो अपने काल का आदि समय विषै हो है अर उत्कृष्ट स्थान अंत के समय विषै हो है। ताही तै एकांत कहिए नियम करि अपने काल का पहिला समयस्यों लगाय अंत का समय पर्यंत समय-समय प्रति असंख्यात-असख्यात गुणा अविभाग प्रतिच्छेदनि की वृद्धि जिस विषै होइ, सो एकांतानुवृद्धियोगस्थान कहिए है। ऐसैं कहे योगनि के विशेष ते सर्व चौदह जीवसमासनि विषै जानने ॥२२२॥

आगै योगस्थानकनि के अवयव कहै है—

अविभागपडिच्छेदो, वग्गो पुण वग्गणा य फड्ढयगं।
गुणहाणीवि य जाणे, ठाणं पडि होदि णियमेण ॥२२३॥

अविभागप्रतिच्छेदो, वर्गः पुनः वर्गणा च स्पर्धकं।
गुणहानिरपि च जानीहि स्थानं प्रति भवति नियमेन ॥२२३॥

टीका – समस्त योगस्थान जगच्छ्रेणी के असंख्यातवे भाग प्रमाण है, तिन विषैं एक-एक स्थान के प्रति अविभाग प्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, गुणहानि – इतने भेद हो है, नियमकरि असा जानहु ।।२२३।।

इनका स्वरूप आगे कहैं है—

पल्लासंखेज्जदिमा, गुणहाणिसला हवंति इगिठाणे ।
गुणहाणिफड्ढयाओ, असंखभागं तु सेढीये ।।२२४।।

पल्यासंख्येयमिमा, गुणहानिशला भवंति एकस्थाने ।
गुणहानिस्पर्धकानि, असंख्यभागं तु श्रेण्याः ।।२२४।।

टीका – एक स्थानक विषैं गुणहानि शलाका पल्य के असंख्यातवे भाग प्रमाण है। सो यहु नानागुणहानि का प्रमाण है। बहुरि एक गुणहानि विषै स्पर्धक जगच्छ्रेणी के असख्यातवे भाग प्रमाण है ।।२२४।।

फड्ढयगे एक्केक्के, वग्गणसंखा हु तत्तियालावा ।
एक्केक्कवग्गणाए, असंखपदरा हु वग्गाओ ।।२२५।।

स्पर्धके एकैके, वर्गणासंख्या हि तावदालापाः ।
एकैकवर्गणायामसंख्यप्रतरा हि वर्गाः ।।२२५।।

टीका – एक-एक स्पर्धक विषै वगर्णानि की संख्या **'तावन्मात्रालापाः'** कहिए तितनी ही जगच्छ्रेणी के असख्यातवे भाग प्रमाण ही आलाप करि कहिए है। बहुरि एक-एक वर्गणा विषै वर्ग असख्यात जगत्प्रतर प्रमाण है ।।२२५।।

एक्केक्के पुण वग्गे, असंखलोगा हवंति अविभागा ।
अविभागस्स पमाणं, जहण्णउड्ढी पदेसाणं ।।२२६।।

एकैके पुनर्वर्गे, असंख्यलोका भवंति अविभागाः ।
अविभागस्य प्रमाणं, जघन्यवृद्धिः प्रदेशानां ।।२२६।।

टीका – बहुरि एक-एक वर्ग विषै असंख्यात लोकप्रमाण अविभाग प्रतिच्छेद है। तहां अविभाग का प्रमाण प्रदेशनि विषै जघन्य वृद्धिरूप जानना। जाका दूसरा भाग न होइ असा जु शक्ति का अंश, ताकौ अविभाग प्रतिच्छेद कहिए है।

इहां उलटी गति करि कह्या है, तातै अविभाग प्रतिच्छेद का समूह सो वर्ग, अर वर्ग का समूह सो वर्गणा, अर वर्गणा का समूह सो स्पर्धक अर स्पर्धक का समूह सो गुणहानि अर गुणहानि का समूह सो स्थान है, असैं सूधा मार्ग करि जानना ॥२२६॥

आगे एकस्थान विषै सर्व स्पर्धकादिकनि का प्रमाण कहै है—

इगिठाणफड्ढयाओ, वग्गणसंखा पदेसगुणहाणी ।
सेढिअसंखेज्जदिमा, असंखलोगा हु अविभागा ॥२२७॥

एकस्थानस्पर्धकानि, वर्गणासंख्या प्रदेशगुणहानिः ।
श्रेण्यसंख्यातिमा, असंख्यलोका हि अविभागाः ॥२२७॥

टीका – एक योगस्थान विषै सर्व स्पर्धक अर सर्व वर्गणानि की संख्या अर असंख्यात प्रदेशनि विषै गुणहानि आयाम का प्रमाण – ए सामान्य पनै करि जगच्छ्रेणी के असंख्यातवे भाग मात्र है । तारतम्य करि ए परस्पर हीन-अधिक है । तहां एक गुणहानि विषै जो स्पर्धकनि का प्रमाण है । ताकौ एक स्थान विषै जो गुणहानि का प्रमाण, तीहि करि गुणै जो प्रमाण होइ, तितनां तौ एक योगस्थान विषै स्पर्धक जानने । बहुरि जो एक स्पर्धक विषै वर्गणानि का प्रमाण कह्या, ताकौ एक योगस्थान विषै जो स्पर्धकनि का प्रमाण कह्या, ताकरि गुणैं जो प्रमाण होइ, तितना एक योगस्थान विषै वर्गणानि का प्रमाण जानना ।

बहुरि एक स्पर्धक विषै जो वर्गणानि का प्रमाण जगच्छ्रेणी के असंख्यातवे भाग मात्र कह्या, ताकौ एक गुणहानि विषै जो स्पर्धकनि का प्रमाण कह्या, ताकरि गुणै जो प्रमाण होइ, तितना एक गुणहानि विषै वर्गणानि का प्रमाण जानना । इहां गुणकार का प्रमाण है, सो तिस जगच्छ्रेणी का भागहार के प्रमाण तै असंख्यात गुणा घाटि जानना । अन्यथा श्रेणी का असंख्यातवा भाग की सिद्धि न होइ, सो इस ही कौं गुणहानि का आयाम कहिए हैं । सो इन सबनि कौं सामान्यपनै जगच्छ्रेणी का असंख्यातवां भाग मात्र कहिए, जातै असंख्यात के भेद बहुत हैं ।

बहुरि एक योगस्थान विषै समस्त अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यात लोकप्रमाण हो हैं । कर्मपरमाणूनि का प्रमाणवत् वा जघन्य ज्ञान के, अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाणवत् अनंत नाही हैं ।

बहुरि जीव के प्रदेश लोकप्रमाण है । बहुरि एकस्थान विषै नाना गुणहानि पल्य कौ दोय वार असंख्यात का भाग दीजिए, तीहि प्रमाण है । बहुरि नानागुण-हानि का जो प्रमाण, तितना दूवा माडि परस्पर गुणै जो प्रमाण होइ, सो अन्योन्याभ्यस्त राशि है । सो पल्य कौ एक बार असख्यात का भाग दीजिए, तीहि प्रमाण है । बहुरि एक गुणहानि विषै स्पर्धक जगच्छ्रेणी कौ दोय बार असंख्यात का भाग दीजिए, तीहि प्रमाण है । बहुरि एक स्पर्धक विषै वर्गणा जगच्छ्रेणी कौ एक बार असंख्यात का भाग दीजिए, तीहि प्रमाण है । बहुरि एक गुणहानि विषै जो स्पर्धकनि का प्रमाण ताकौ एक स्पर्धक विषै जो वर्गणानि का प्रमाण ताकरि गुणै एक गुण-हानि विषै सर्व वर्गणानि का प्रमाण हो है ।

याकौ एक योगस्थान विषै जो नानागुणहानि का प्रमाण, ताकरि गुणै एक योगस्थान विषै सर्व वर्गणानि का प्रमाण हो है । सो ए नानागुणहानि नै आदि दे करि अनुक्रम तै असख्यात-असख्यात गुणा जानना ।।२२७।।

सव्वे जीवपदेसे, दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा ।
उवरिं उत्तरहीणं, गुणहाणिं पडि तदद्धकमं ।।२२८।।

सर्वस्मिन् जीवप्रदेशे, द्व्यर्धगुणहानिभाजिते प्रथमा ।
उपरि उत्तरहीनं, गुणहानिं प्रति तदर्धक्रमः ।।२२८।।

टीका – सर्वही लोकप्रमाण जे जीव के प्रदेश तिनकौ द्व्यर्धगुणहानि का भाग दीएं प्रथम गुणहानि का प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा हो है । **उपर्युत्तर** कहिए एक-एक विशेष घटाए एक-एक वर्गणा हो है । बहुरि गुणहानि-गुणहानि प्रति आधा-आधा प्रमाण अनुक्रम करि जानना । बहुरि प्रथम वर्गणा कौ दोगुणहानि का भाग दीएं जो प्रमाण होइ, तितना विशेष का प्रमाण जानना ।।२२८।।

फड्ढयसंखाहि गुणं, जहण्णवग्गं तु तत्थ तत्थादी ।
बिदियादिवग्गणाणं, वग्गा अविभाग अहियकमा ।।२२९।।

स्पर्धकसंख्याभिः गुणो, जघन्यवर्गस्तु तत्र तत्रादिः ।
द्वितीयादिवर्गणानां, वर्गा अविभागाधिकक्रमाः ।।२२९।।

टीका – प्रथम गुणहानि तै लगाय अत गुणहानि पर्यंत सर्व स्पर्धकनि विषै तहां-तहा प्रथम वर्गणा तौ जघन्य वर्ग कौ स्पर्धकनि की संख्या करि गुणे हो है ।

बहुरि द्वितीयादिक वर्गणा अनुक्रम तैं एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद बधाएं हो है। अब **'अविभागपडिच्छेदो'** इत्यादिक इन गाथानि का अर्थ स्पष्ट दिखाइए है—

अविभाग-प्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, गुणहानि, स्थान इतने भेद कहे। तहां एक जीव कै एक-समय विषै संभवै है असा जो गुणहानि का समूह, सो स्थान कहिए। बहुरि स्पर्धकनि का समूह सो गुणहानि कहिए। बहुरि अनुक्रम तै वृद्धि-हानिरूप जो वर्गणा तिनिका समूह सो स्पर्धक कहिए। बहुरि वर्ग का समूह सो वर्गणा कहिए। बहुरि अविभाग प्रतिच्छेदनि का समूह सो वर्ग कहिए। बहुरि जीव का प्रदेश कै कर्म के ग्रहण करने की शक्ति विषै जघन्य वृद्धि, सो अविभाग प्रतिच्छेद कहिए। इहां योग का अधिकार है, तातै योगरूप शक्ति का विभाग रहित अंश का ग्रहण कीया। जघन्य वृद्धि का प्रमाण कहा ? सो कहिए हैं—

लोकप्रमाण जीव के प्रदेश है, तिनिका स्थापन करि इन सर्व प्रदेशनि विषै जिस प्रदेश में योग की जघन्य शक्ति पाइए, तिस प्रदेश कौ जुदा ग्रहण करि तीहि प्रदेश में जितनी योग शक्ति पाइए है, ताकौं अपनी बुद्धि करि फैलावनी। बहुरि तिस जघन्य शक्ति तैं अधिक अर अन्य शक्ति तैं हीन असी शक्ति जामैं पाइए असा कोई अन्य प्रदेश, ताका ग्रहण करि तिस माही जितनी योग शक्ति पाइए है, ताकौं जो पहिले जघन्य शक्ति फैलाई थी, ताके ऊपरि बुद्धि ही करि फैलावनी, सो तिस जघन्य शक्ति तै ऊपरि स्थापन करी जो शक्ति जितनी बधती होइ, तिस बधती प्रमाण का नाम योगनि का अविभाग प्रतिच्छेद है।

भावार्थ—जो जघन्य शक्ति लीए प्रदेश है, तिसतै एक अविभाग अंश करि अधिक शक्ति का धारी दूसरा प्रदेश तिसविषै तिस जघन्य शक्ति तै जितनी शक्ति बधती होइ, सो तिस बधती प्रमाण का नाम योगनि का अविभाग प्रतिच्छेद है। तिस अविभाग प्रतिच्छेद का प्रमाण करि पहिलै फैलाई थी जो प्रदेश की जघन्य शक्ति, ताका खंड कीजिए, तब असंख्यात लोकप्रमाण खंड हो हैं।

भावार्थ—एक-एक खंड अविभाग प्रतिच्छेद का प्रमाण के समान कीजिए तौ जिस प्रदेश में जघन्य शक्ति कही थी, तिस प्रदेश की जघन्य शक्ति का असंख्यात लोकप्रमाण खंड हो है, तातै असंख्यात लोकप्रमाण अविभाग प्रतिच्छेदनि का समूह जघन्य शक्ति है, ताकौं वर्ग कहिए। ताही तै एकवर्ग विषै असंख्यात लोक प्रमाण अविभाग प्रतिच्छेद कहे है, तिस वर्ग की सहनानी 'व' असा अक्षर जानना।

बहुरि ताके आगे जिन प्रदेशनि विषै जिनि विषै जघन्य शक्ति प्रमाण शक्ति पाइए असे जितने प्रदेश होहि तितने लिखने, सो असे जघन्य शक्ति प्रमाण शक्ति के धारक जीव के प्रदेश असंख्यात जगत्प्रतर प्रमाण है ।

काहैतै ? लोकप्रमाण जीव के प्रदेशनि कौ द्वयर्धगुणहानि का भाग दीए जो प्रमाण आवै, तितने जघन्य शक्ति प्रमाण शक्ति के धारक प्रदेश है, सो एक गुणहानि विषै जितना वर्गणा का प्रमाण कह्या है, तिस प्रमाण का ड्योढा कीजिए सो द्वयर्धगुणहानि का प्रमाण है । सो जगच्छ्रेणी के असंख्यातवे भाग मात्र ही है । सो याका भाग जीव के प्रदेशनि कौ दीएं असख्यात जगत्प्रतर प्रमाण हो है । सो इतने प्रदेशनि का समूह कौ प्रथम वर्गणा कहिए । एक प्रदेश संबंधी शक्ति का नाम वर्ग कह्या था, इहां असख्यात जगत्प्रतर प्रमाण प्रदेशनि का समूह का नाम वर्गणा है, ताही तै एक वर्गणा विषै असख्यात जगत्प्रतर प्रमाण वर्ग कहे है ।

बहुरि तिस जघन्य शक्तिरूप वर्ग विषै जितने अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण कह्या, तिसतैं एक अधिक अविभाग प्रतिच्छेद जिनमै पाइए असी शक्ति के धारक जितने प्रदेश होहि, तितने प्रदेश ताके ऊपरि लिखने । ते प्रदेश प्रथम वर्गणा विषै जितने प्रदेश कहे थे, तिनतै एक विशेष घाटि जानने, सो प्रथम वर्गणा विषै जो प्रदेशनि का प्रमाण है, ताकौ दोगुणहानि का भाग दीए जो प्रमाण होइ, सोई विशेष का प्रमाण जानना । सो विशेष की सहनानी 'वि' असा अक्षर जानना ।

बहुरि जो एक गुणहानि विषै वर्गणानि का प्रमाण, ताकौ दूणा कीजिए, सो दोगुणहानि का प्रमाण जानना । सो प्रथम वर्गणा का प्रदेशनि का प्रमाण मेंस्यों विशेष का प्रमाण घटाए जो प्रमाण रहे, तितने प्रदेशनि का समूह कौ द्वितीय वर्गणा कहिए ।

इहां पूर्वोक्त जघन्य शक्ति तै एक अविभाग प्रतिच्छेद करि अधिक शक्ति का धारक जो प्रदेश ताकौ वर्ग कहिए, इनका समूह सो द्वितीय वर्गणा जाननी ।

बहुरि द्वितीय वर्गणा संबधी वर्ग विषै जितने अविभाग प्रतिच्छेद है, तातै एक अविभाग प्रतिच्छेद जिन मे बधता होइ असी शक्ति के धारक जितने प्रदेश होंइ, तितने ताके ऊपरि लिखने । ते प्रदेश द्वितीय वर्गणा विषै जितने कहे थे, तिनमेंस्यों विशेष

का प्रमाण घटाएं जितना प्रमाण रहै, तितने जानने । इहां द्वितीय वर्गणा संबंधी वर्ग के अविभाग प्रतिच्छेदनि तै एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक शक्ति का धारक प्रदेश कौ वर्ग कहिए, तिनका समूह तृतीय वर्गणा जाननी ।

इस ही अनुक्रम तै एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद करि अधिक शक्ति कौ लीऐं एक-एक विशेप करि घटते-घटते प्रमाण कौ लिएं जो वर्ग तिनका समूहरूप एक-एक वर्गणा हो है, सो असैं जगच्छ्रेणी का असंख्यातवां भाग प्रमाण वर्गणा होइ, तव प्रथम स्पर्धक होइ, ताही तै एक स्पर्धक विपै जगच्छ्रेणी का असंख्यातवां भाग प्रमाण वर्गणा कही है, ताकी सहनानी च्यारि का अंक है (४) । इस प्रथम स्पर्धक ही कौ **जघन्य स्पर्धक** कहिए हैं ।

वहुरि इस प्रथम स्पर्धक की अंत की वर्गणा का वर्ग विषै अविभाग प्रतिच्छेदनि का जो प्रमाण भया, ताके ऊपर प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा संबंधी जघन्य वर्गणा विषै जितने अविभाग प्रतिच्छेद हैं, तीहिस्यों दूणा अविभाग प्रतिच्छेद होंइ असे शक्ति के धारक प्रदेश पाइये । तिसतै घाटि शक्ति का धारक कोई प्रदेश न पाइये । तातै जिन विषै जघन्य वर्ग तै दूणा अविभाग प्रतिच्छेद पाइये ऐसी शक्ति के धारक जितने प्रदेश होंइ, तिनकी रचना प्रथम स्पर्धक की अंत की वर्गणा के ऊपरि करनी, ते प्रदेश प्रथम स्पर्धक की अंत की वर्गणा का प्रदेशनि के प्रमाण मेंस्यों पूर्वोक्त एक विशेष का प्रमाण घटाएं जो प्रमाण रहै, तितने जानने ।

इहां जघन्य वर्ग तै दूणां अविभाग प्रतिच्छेदरूप शक्ति का धारक जो प्रदेश, सो वर्ग जानना । तिनका जो समूह सो द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा जाननी । वहुरि इस प्रथम वर्गणा के वर्ग तै एक अविभाग प्रतिच्छेद जामैं अधिक होइ असी शक्ति के धारक जे प्रदेश, तेई भए वर्ग, तिन द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा का प्रदेशनि का प्रमाण तै एक विशेप के प्रमाण करि हीन प्रदेशरूप वर्गनि का जो समूह सो द्वितीय स्पर्धक की द्वितीय वर्गणा है । असैं ही अनुक्रमतै एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद करि अधिक शक्ति कौं लीएं एक-एक विशेष करि घटते प्रमाण कौं लीएं जे वर्ग, तिन का समूहरूप एक-एक वर्गणा कौ होत संतै जगच्छ्रेणी का असंख्यातवां भाग प्रमाण वर्गणा होइ । तिन वर्गणानि का समूह द्वितीय स्पर्धक जानना ।

वहुरि तिस द्वितीय स्पर्धक की अंत की वर्गणा के ऊपरि प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा संबंधी जघन्य वर्ग के अविभाग प्रतिच्छेदनि तै तिगुणा अविभाग प्रतिच्छेद

जाविषै पाइए असी शक्ति के धारक प्रदेश पाइए, घाटि शक्ति के धारक नाहीं । तातै जघन्य वर्ग तै तिगुणा अविभाग प्रतिच्छेदरूप शक्ति के धारक जे प्रदेश, तेई वर्ग तिन द्वितीय स्पर्धक की अंत की वर्गणा का प्रदेशनि तै एक विशेष करि हीन प्रदेशरूप वर्गनि का जो समूह सो तृतीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा है । याकै ऊपरि पूर्ववत् एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद करि अधिक शक्ति कौ लीए एक-एक विशेष करि हीन प्रमाण कौ लीए वर्गनि का समूहरूप एक-एक वर्गणा कौ होतै जगच्छ्रेणी का असंख्यातवां भाग प्रमाण वर्गणा होइ । तिन वर्गणानि का समूह तृतीय स्पर्धक है ।

असै ही अनुक्रम तै – **'फद्दयसंखाहिगुणं जहण्णवग्गं तु तत्थ तत्थादी'** इत्यादि सूत्रोक्त अनुक्रम करि जघन्य वर्ग कौ स्पर्धकनि की संख्या करि गुणै प्रथम वर्गणा होइ । प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा संबंधी जघन्य वर्ग के अविभाग प्रतिच्छेदनि के प्रमाण कौं चौगुणा कीए चौथा स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के वर्ग का अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण होइ । पांच गुणा कीए पाचवां स्पर्धक की प्रथम वर्गणा का होइ । छह गुणा कीए छठा स्पर्धक की प्रथम वर्गणा का होइ ।

असै जेथवां स्पर्धक की प्रथम वर्गणा विवक्षित होइ, तितना गुणा जघन्य वर्ग कौ कीए तिस स्पर्धक की प्रथम वर्गणा का वर्ग का अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण आवै ।

बहुरि प्रथम वर्गणा का वर्ग तै एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद बधाएं द्वितीयादिक वर्गणानि के वर्गनि का अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण हो है, वर्गणा वर्गणानि विषै एक-एक विशेष करि हीन वर्गनि का प्रमाण अनुक्रम तै जानना । जगच्छ्रेणी का असख्यातवां भाग प्रमाण वर्गणानि का समूह एक-एक स्पर्धक जानना । सो असै जगच्छ्रेणी का असख्यातवां भाग प्रमाण स्पर्धक भए एक गुणहानि हो है । ताही तै एक गुणहानि विषै जगच्छ्रेणी का असंख्यातवां भाग प्रमाण स्पर्धक कहे है । याकी सहनानी नव का अंक जानना ।

बहुरि याके ऊपर द्वितीय गुणहानि का प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के प्रदेश रूप वर्ग – ते प्रथम गुणहानि का प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा तै आधा जानने । इस वर्गणा के वर्गनि विषै अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण एक अधिक एक गुणहानि के स्पर्धकनि का प्रमाण करि जघन्य वर्ग के अविभाग प्रतिच्छेदनि कौ गुणै जो प्रमाण होइ, तितना जानना, सो अविभाग प्रतिच्छेदनि का अनुक्रम तौ पूर्वोक्त ही जानना । अर प्रदेशरूप वर्गनि का प्रमाण प्रथम गुणहानि का प्रथम स्पर्धक की

वर्गणा का प्रमाण तै द्वितीय गुणहानि का प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा का प्रमाण आधा जानना । यामै एक विशेष घटाएं द्वितीय वर्गणा का प्रमाण हो है, सो इस द्वितीय गुणहानि विषै विशेप का प्रमाण प्रथम गुणहानि के विशेप के प्रमाण तै आधा जानना ।

ऐसै ही एक-एक विशेष घटाएं तृतीयादि वर्गणानि का प्रमाण जानना ।

इस ही प्रकार दूसरी गुणहानि तै तीसरी गुणहानि की वर्गणानि विषै वर्गनि का प्रमाण वा विशेष का प्रमाण आधा-आधा जानना । ऐसै ही गुणहानि-गुणहानि प्रति आधा-आधा प्रमाण जानना । सो इसप्रकार पल्य का असख्यातवे भाग प्रमाण गुणहानि होइ, तव एक योगस्थान होइ ताही तै एक स्थानक विषै पल्य के असंख्यातवे भाग प्रमाण गुणहानि कही है । सो यहु सर्व कथन जघन्य योगस्थान का जानना ।

ऐसै यहु कथन शक्ति की प्रधानता करि कीया है ।

अब प्रदेशनि की प्रधानता करि दिखाइए है । तहां अंकसदृष्टि करि कथन दिखाइए हैं—

सर्व जीव के प्रदेश इकतीस सौ (३१००), नानागुणहानि पांच (५), एक गुणहानि विषैं वर्गणा का प्रमाणरूप गुणहानि आयाम आठ (८), नानागुणहानि प्रमाण दूवा मांडि परस्पर गुणन कीएं अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण बत्तीस (३२), सो एक घाटि अन्योन्याभ्यस्तराशि इकतीस का भाग सर्व द्रव्य इकतीस सौ कौ दीएं – सौ (१००) पाया । सो अंत की गुणहानि का प्रमाण है । यातैं आदि की गुणहानि पर्यंत दूणा-दूणा प्रमाण है– १००, २००, ४००, ८००, १६०० । याही तै आदि की गुणहानि तै गुणहानि-गुणहानि प्रति आधा-आधा द्रव्य कह्या है ।

तहां सर्व द्रव्य इकतीस सौ कौ किछू अधिक द्वचर्धगुणहानि का भाग दीजिए, सो गुणहानि का आयाम आठ, ताका ड्योढा वारह अर किछू अधिक कहने तैं एक का चौसठि-भाग मे भाग सात अधिक $१२\frac{७}{६४}$ इसका भाग दीएं दोय सौ छप्पन पाए, सो प्रथम गुणहानि का प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा जाननी । याकौ दूणा गुणहानि का आयामरूप जो दोगुणहानि सोलह, ताका भाग प्रथम वर्गणा कौ दीए जो प्रमाण सोलह आया, सोई विशेप का प्रमाण जानना । विशेष कौ दोगुणहानि करि गुणैं प्रथम वर्गणा का प्रमाण हो है । सो प्रथम वर्गणा तै एक-एक विशेष घटाए द्वितीयादिक वर्गणा हो हैं ।

असैं एक घाटि गुणहानि का आयाम सात, सो इतना विशेष घटाए गुणहानि का अंत का स्पर्धक की अंत की वर्गणा हो है । बहुरि गुणहानि-गुणहानि प्रति आदि वर्गणा तै आदि-वर्गणा का प्रमाण आधा-आधा जानना अर विशेष का भी प्रमाण आधा-आधा जानना । जातै प्रथम वर्गणा कौ दोगुणहानि का भाग दीए विशेष का प्रमाण हो है । याही तै दोगुणहानि कौ निषेकहार कहिए है । असैं अकसदृष्टि करि कथन दिखाया ।

प्रथमादिक गुणहानि सबधी आठ-आठ वर्गणानि विषै वर्गनि का प्रमाणरूप यत्र ।

१४४	७२	३६	१८	६
१६०	८०	४०	२०	१०
१७६	८८	०४	२२	११
१९२	९६	४८	२४	१२
२०८	१०४	५२	२६	१३
२२४	११२	५६	२८	१४
२४०	१२०	६०	३०	१५
२५६	१२८	६४	३२	१६

याही प्रकार अर्थसदृष्टि करि कथन जानना । सब जीव के प्रदेश लोकप्रमाण नानागुणहानि पल्य के असख्यातवे भाग प्रमाण एक गुणहानि का आयाम जगच्छ्रेणी के असख्यातवे भाग प्रमाण, सो इन विषै यथायोग्य कथन जानि लेना । ऊपरि कथन करि आए हैं, तातै इहां विशेष न कह्या है । बहुरि वर्ग वा वर्गणा वा स्पर्धक वा नानागुणहानि वा जघन्य स्थान विषै अविभाग प्रतिच्छेद मिलावने का विधान इस ही ग्रंथ की सस्कृत टीका विषै कह्या है, सो मेरे बुद्धि की मदता तै नीकै समझने में न आया अर प्रयोजन इतना ही है, जो अविभाग प्रतिच्छेदनि का जोड दिया अर कठिन कथन भएं मदबुद्धिनि की बुद्धिभ्रमरूप होइ; तातै इस बालबोध टीका विषै नाहीं लिख्या है ।

असैं जघन्य योगस्थानक का कथन जानना ।।२२९।।

अंगुलअसंखभागप्पमाणमेत्तऽवरफड्ढयावड्ढी ।
अंतरछक्कं मुच्चा, अवरट्ठाणादु उक्कस्सं ।।२३०।।

अंगुलासंख्यभाग, प्रमाणमात्रावरस्पर्धकवृद्धिः ।
अंतरषट्कं मुक्त्वा, अवरस्थानादुत्कृष्ट ।।२३०।।

टीका – सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक जीव कै पूर्वोक्त सर्व तै जघन्य उपपाद योगस्थान पाइए है । तिसतै अनंतर स्थान कौ आदि देकरि सर्वोत्कृष्ट योग-

स्थान पर्यंत सांतर वा निरतर वा सातर-निरंतर सर्व ही जे ए योगस्थान तिन विषै एक-एक योगस्थान प्रति निरतर सूच्यगुल का असख्यातवे भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक युगपत् वधै है, तव उत्तरोत्तर स्थान हो है। प्रथम जघन्य स्थान तै सूच्यगुल का असंख्यातवे भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक दूसरे स्थानक विषै वधती है।

भावार्थ – जघन्य स्थान विषै प्रथम गुणहानि का प्रथम स्पर्धक विषै जितने अविभाग प्रतिच्छेद है, तिनतै सूच्यंगुल के असंख्यातवे भाग गुणे अविभाग प्रतिच्छेद जघन्य स्थानक के अविभाग प्रतिच्छेदनि तै ताके ऊपरि दूसरा योगस्थान विषै बधती जानने। असै ही दूसरे स्थानक तै तीसरा स्थानक विषै सूच्यगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक बधती जानने। तीसरे तै चौथा विषै, चौथे तै पंचम विषै असै ही सर्वोत्कृष्ट परिणाम योगस्थान पर्यंत एक-एक स्थान विषै सूच्यंगुल का असंख्यातवा भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक वधते जानने ॥२३०॥

वहुरि आगे कहिए हैं छह अतर – तिनको छोड़ जघन्य स्थान तै लगाय उत्कृष्ट पर्यंत जीवनि के योगस्थान हो है, असै होतै कहा ? सो कहै है—

सरिसायामेणुवरिं, सेढिअसंखेज्जभागठाणाणि ।
चडिदेक्केक्कमपुव्वं, फड्ढयमिह जायदे चयदो ॥२३१॥

सदृशायामेनोपरि, श्रेण्यसंख्येयभागस्थानानि ।
चटितैकैकमपूर्वं, स्पर्धकमिह जायते चयतः ॥२३१॥

टीका – तीहि सर्व तै जघन्य योगस्थान का समान आयाम के ऊपरि पूर्वोक्त प्रमाण स्थानक-स्थानक विषै वृद्धिरूप चय करि एक-एक अपूर्व स्पर्धक उपजै है। सूच्यंगुल का असंख्यातवा भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धकनि के जेते अविभाग प्रतिच्छेद होहि, तिनको वधतै एक स्थान होइ, तौ जघन्य स्थान का सर्व अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण विषै एक गुणहानि संवंधी स्पर्धकनि की सख्या कौ नानागुणहानि करि गुणित ताकी अन्योन्याभ्यस्तराशि का भाग दीए जो प्रमाण होइ, तितने जघन्य स्पर्धक वंधै कितने स्थानक होहि ? असै त्रैराशिक कीएं लब्धराशि का प्रमाण जगच्छ्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण आया।

वहुरि तैसै ही ताके अनंतर समान आयाम कौ लीए द्वितीय स्थानक तै लगाय सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक एक-एक स्थानक विषै

बधै असै जगच्छ्रेणी का असख्यातवा भाग प्रमाण स्थानक भएं, एक दूसरा अपूर्व स्पर्धक उपजै है। बहुरि ताके ऊपरि जगच्छ्रेणी का असख्यातवां भाग प्रमाण स्थानक भए तीसरा अपूर्व स्पर्धक हो है। असै ही एकगुणहानि विषै जितना स्पर्धकनि का प्रमाण कह्या था, तितने अपूर्व स्पर्धक भए जघन्य योगस्थान दूणा हो है। इहां अपूर्व स्पर्धक होने का विधान मेरे समझने में नीकै न आया, तातै स्पष्ट नाही लिख्या है।

भावार्थ – एकगुणहानि विषै स्पर्धकनि का प्रमाण जगच्छ्रेणी कौं दोय बार असख्यात का भाग दीजिये, इतना कह्या था, सो तितने ही अपूर्व स्पर्धक भएं जो योगस्थान होइ, ताके जितने अविभाग प्रतिच्छेद है, ते जघन्य योगस्थानक के अविभाग प्रतिच्छेदनि तै दूणे है। बहुरि याके ऊपरि तितने ही अपूर्व स्पर्धक गएं जो योगस्थान होइ सोइ तिस योगस्थान तै भी दूणा हो है। असे दूणा-दूणा क्रम तै होतै संज्ञी पचेंद्री पर्याप्तिक जीव का सर्वोत्कृष्ट परिणाम योगस्थान हो है।

इहा स्थानभेद ल्यावने कौ त्रैराशिक करने। तहा सर्वत्र प्रमाणराशि सूच्यगुल का असख्यातवा भाग मात्र जघन्य स्पर्धक, फलराशि एक स्थान, इच्छाराशि जगच्छ्रेणी का असख्यातवा भाग मात्र जघन्य स्पर्धकनि कौ अनुक्रम तै एक, दोय, च्यारि, आठ, सोलह, बत्तीस गुणा कीए जो होइ तीह प्रमाण जानना। इहां फल-करि इच्छा कौ गुणै, प्रमाण का भाग दीए जगच्छ्रेणी का असख्यातवा भाग कौ सूच्यगुल का असख्यातवा भाग का भाग दीए जो प्रमाण होइ, ताकौ अनुक्रम तै एक गुणा, दो गुणा, च्यारि गुणा, आठ गुणा, सोलह गुणा कीए जो-जो प्रमाण होइ तितने-तितने स्थानभेद हो है। इहा अकसदृष्टि अपेक्षा सोलह पर्यंत ही गुणकार कह्या है। अब इनका जोड दीजिए है—

'अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रूऊणुत्तरभजियं' इस करणसूत्र करि अंत का धन जगच्छ्रेणी का असंख्यातवा भाग कौ सूच्यंगुल का असख्यातवां भाग करि गुणै जो प्रमाण होइ, तातै सोलह गुणा है। ताकौ गुणकार दोय करि गुणिए तामै आदि का प्रमाण जगच्छ्रेणी का असख्यातवां भाग कौ सूच्यंगुल का असख्यातवां भाग का भाग दीजिए तीहि प्रमाण है, सो घटाए जगच्छ्रेणी का असंख्यातवा भाग कौ सूच्यंगुल का असख्यातवा भाग करि गुणि इकतीस गुणा कीजिए इतना हो है। बहुरि एक घाटि उत्तर एक, ताका भाग दीए भी इतने ही रहै, सो इतना सब योग-स्थाननि के भेदनि का प्रमाण है।

बहुरि याकौ एक घाटि गुणकार एक, ताका भाग दीएं भी इतना ही रहै है। सो याकौ प्रभव जो आदि ताका भाग दीए इकतीस पाए, तामैं एक मिलाएं बत्तीस भए, सो जेती वार गुणकार जो दोय ताका भाग दीएं एक रहै तीहिं प्रमाण गच्छ जानना। सो पांच वार दोय का भाग बत्तीस कौ दीए एक रहै, तातै अन्योन्याभ्यस्त-राशि कौ गुणकार शलाका पाच है। पांच जायगा दोय-दोय मांडि परस्पर गुणै अन्योन्याभ्यस्त राशि का प्रमाण बत्तीस आवै है, असा अर्थ जानना।

बहुरि असें ही जघन्य स्थान तैं लगाय उत्कृष्ट स्थान पर्यंत सर्व योगस्थान के जघन्य भेदनि विषै जघन्य योगस्थान जहां-जहां दूणा होइ तहां-तहां केते-केते योग-स्थाननि के भेद होंहि ? सो कहिए हैं–

तहां पूर्वोक्त प्रकार प्रमाण, फल, इच्छाराशि अनुक्रम तैं करने। विशेष इतना – इहां यथार्थ अपेक्षा कथन है, तातै पूर्वै जैसैं अंत विषै सोलह का गुणकार कह्या, तैसें इहां क्रम तैं दूणा-दूणा अंत विषै पल्य के अर्धच्छेदनि का असंख्यातवां भाग का आवा प्रमाण मात्र गुणकार जानना। तहां **'अंतधणं गुणगुणियं'** इत्यादि सूत्रकरि जोडै सर्व योगस्थाननि के भेदनि का प्रमाण हो है। याकों एक घाटि गुणकार एक, ताकरि गुणि प्रभव जो आदिस्थान ताका भाग तामैं एक मिलाए पल्य के अर्धच्छेदनि का असंख्यातवां भाग मात्र प्रमाण हो है। ताकौ जेती वार गुणकार दोय का भाग दीए एक रहै, तेती वार प्रमाण नानागुणहानि शलाका हैं, सो असंख्यात घाटि पल्य की वर्गशलाका प्रमाण है, जातैं पल्य की वर्गशलाका प्रमाण दूवा मांडि परस्पर गुणें तो पल्य का अर्धच्छेद मात्र प्रमाण होइ अर घटाएं असंख्यात, सो तितने दूवे मांडि परस्पर गुणै, ताकौं असंख्यात का भागहार हो है।

भावार्थ – असंख्यात घाटि पल्य की वर्गशलाका का जो प्रमाण तेती वार जघन्य योगस्थान दूणां-दूणां भए उत्कृष्ट योगस्थान हो है; तातै याकौ नानागुणहानि शलाका कहिए। बहुरि इस नानागुणहानि प्रमाण दूवे मांडि परस्पर गुणें पल्य के अर्धच्छेदनि का असंख्यातवां भाग मात्र अन्योन्याभ्यस्तराशि हो है। याकरि जघन्य कौ गुणें उत्कृष्ट योगस्थाननि के अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण हो है। बहुरि पूर्वोक्त प्रकार कीए योगस्थाननि का प्रमाण हो है ॥२३१॥

आगे जो अब कथन कीजियेगा, ताकी प्रतिज्ञा करै हैं —

एदेसिं ठाणाणं, जीवसमासाण अवरवरविसयं।
चउरासीदिपदेहिं, अप्पाबहुगं परूवेमो ॥२३२॥

एतेषां स्थानानां, जीवसमासानामवरवरविषयं ।
चतुरशीतिपदैः, अल्पबहुकं प्ररूपयामः ।।२३२।।

टीका – ए कहे जे योगस्थान तिनि विषै चौदह जीवसमासनि के जघन्य-उत्कृष्ट की अपेक्षा अर चकार तै उपपादादिक तीन प्रकार योगनि की अपेक्षा चौरासी ठिकानानि करि अल्प-बहुत्व प्ररूपण करै है –थोरा इहा है, बहुत इहां है, असा कथन करै है ।।२३२।।

सोई कहिए है —

सुहुमगलद्धिजहण्णं, तण्णिव्वत्तीजण्हणयं तत्तो ।
लद्धिअपुण्णुक्कस्सं, बादरलद्धिस्स अवरमदो ।।२३३।।

सूक्ष्मकलब्धिजघन्यं, तन्निर्वृत्तिजघन्यकं ततः ।
लब्ध्यपूर्णोत्कृष्टं, बादरलब्धेरवरमतः ।।२३३।।

टीका – सूक्ष्म, बादर, एकेंद्री, बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, असैंनी पचेंद्री, सैंनी पचेंद्री इनकी सहनानी अैसी जाननी —

सू	बा.	वि	ति	च.	अ	सै
०१	०१	०२	०३	०४	०५	०६
		०	०	०	०	०
			०	०	०	०
				०	०	०
					०	०
						०

इन सदृष्टिनि करि सदृष्टि कथन करते रचना आगे लिखेंगे । तहां सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक जीव का जघन्य उपपाद योगस्थान सब तै स्तोक-थोरा है ।१। तातै सूक्ष्म निगोदिया निर्वृत्ति अपर्याप्त जीव का जघन्य उपपाद योगस्थान पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा है । पल्य का असंख्यात भागनि मध्ये एक भाग करि पूर्व योगस्थान के अविभाग प्रतिच्छेदनि के प्रमाण कौ गुणे जो प्रमाण होइ, तितवें अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण लीए द्वितीय स्थान है ।२। असे ही आगे भी

समझना। बहुरि तातै सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्तक का उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान पल्य का असंख्यातवा भाग गुणा है ।३। बहुरि तिसतै बादर लब्धि अपर्याप्तक का जघन्य उपपाद योगस्थान पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा है ।४। ।।२३३।।

णिव्वत्तिसुहुमजेट्ठं, बादरणिव्वत्तियस्स अवरं तु ।
बादरलद्धिस्स वरं, बीइंदियलद्धिगजहण्णं ।।२३४।।

निर्वृत्तिसूक्ष्मज्येष्ठं, बादरनिर्वृत्तिकस्यावरं तु ।
बादरलब्धेर्वरं, द्वींद्रियलब्धिकजघन्यं ।।२३४।।

टीका – बहुरि तिसतै सूक्ष्म निर्वृत्ति अपर्याप्तक का उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान पल्य के असख्यातवे भाग गुणा है ।५। बहुरि तातै बादर निर्वृत्ति अपर्याप्तक का जघन्य उपपाद योगस्थान पल्य के असख्यातवे भाग गुणा है ।६। बहुरि तातै बादर लब्धि अपर्याप्तक का उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान पल्य के असख्यातवे भाग गुणा है ।७। बहुरि तातै बेद्री लब्धि अपर्याप्तक का जघन्य उपपाद योगस्थान पल्य के असंख्यातवे भाग गुणा है ।८। ।।२३४।।

बादरणिव्वत्तिवरं, णिव्वत्तिबिइंदियस्स अवरमदो ।
एवं बितिबितितिचतिचचउविमणो होदि चउविमणो ।।२३५।।

बादरनिर्वृतिवरं, निर्वृत्तिद्वींद्रियस्यावरमतः ।
एवं द्वित्रिद्वित्रित्रिचत्रिचचतुर्विमनो भवति चतुर्विमनः ।।२३५।।

टीका – बहुरि तातै बादर एकेंद्री निर्वृत्ति अपर्याप्तक का उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान पल्य का असख्यातवा भाग गुणा है ।९। बहुरि तातै बेद्री निर्वृत्ति अपर्याप्तक का जघन्य उपपाद योगस्थान पल्य का असंख्यातवा भाग गुणा है ।१०। बहुरि ऐसे ही तातै बेद्री लब्धि अपर्याप्तक का उत्कृष्ट अर तेद्री लब्धि अपर्याप्तक का जघन्य उपपाद योगस्थान अनुक्रम तै पल्य का असख्यातवा भाग गुणा है ।११। १२। अनुक्रम तै ऐसै शब्द करि एक-एक विषै पल्य का असख्यातवां भाग का गुणाकार जानना।

बहुरि तातै निर्वृत्ति अपर्याप्तक बेद्री का उत्कृष्ट अर निर्वृत्ति अपर्याप्त तेंद्री का जघन्य उपपाद योगस्थान अनुक्रम तै पल्य का असंख्यातवा भाग गुणे

है ।१३। १४। बहुरि तातै लब्धि अपर्याप्तक तेद्री का उत्कृष्ट अर लब्धि अपर्याप्तक चौंद्री का जघन्य उपपाद योगस्थान अनुक्रम तै पल्य का असंख्यातवां भाग गुणे है ।१५। १६। बहुरि तातै निर्वृत्ति अपर्याप्तक तेद्री का उत्कृष्ट अर निर्वृत्ति अपर्याप्तक चौद्री का जघन्य उपपाद योगस्थान अनुक्रम तै पल्य के असंख्यातवे भाग गुणे है ।१७।१८। बहुरि तातै लब्धि अपर्याप्तक चौद्री का तौ उत्कृष्ट अर लब्धि अपर्याप्तक असंज्ञी पंचेद्री का जघन्य उपपाद योगस्थान अनुक्रम तै पल्य का असंख्यातवां भाग गुणे है ।१९।२०। बहुरि तातै निर्वृत्ति अपर्याप्तक चौद्री का तौ उत्कृष्ट अर निर्वृत्ति अपर्याप्तक असंज्ञी पंचेद्री का जघन्य उपपाद योगस्थान पल्य का असंख्यातवे भाग गुणे है ।२१।२२। ॥२३५॥

तह य असण्णीसण्णी, असण्णिसण्णिस्स सण्णिउववादं ।
सुहुमेइंदियलद्धिगअवरं एयंतवड्ढिस्स ॥२३६॥

तथा च असंज्ञीसंज्ञी, असंज्ञिसंज्ञिनः सञ्ज्युपपाद ।
सूक्ष्मैकेंद्रियलब्धिकावरं एकांतवृद्धेः ॥२३६॥

टीका – बहुरि तैसे ही तातै असज्ञी लब्धि अपर्याप्तक का उत्कृष्ट अर सज्ञी लब्धि अपर्याप्तक का जघन्य उपपाद योगस्थान अनुक्रम तै पल्य का असख्यातवा भाग गुणे है ।२३।२४। बहुरि तातै असज्ञी निर्वृत्ति अपर्याप्तक का उत्कृष्ट अर संज्ञी निर्वृत्ति अपर्याप्तक का जघन्य उपपाद योगस्थान अनुक्रम तै पल्य का असख्यातवा भाग गुणे हैं । ।२५।२६ । बहुरि तातै सज्ञी पचेद्री लब्धि अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा है ।२७। बहुरि तातै सूक्ष्म एकेद्री लब्धि अपर्याप्त का जघन्य एकातानुवृद्धि योगस्थान पल्य का असख्यातवां भाग गुणा है ।२८। ॥२३६॥

सण्णिस्सुववादवरं, णिव्वत्तिगदस्स सुहुमजीवस्स ।
एयंतवड्ढिअवरं, लद्धिदरे थूलथूले य ॥२३७॥

संज्ञिन उपपादवरं, निर्वृत्तिगतस्य सूक्ष्मजीवस्य ।
एकांतवृद्धचवरं, लब्धीतरस्मिन् स्थूलस्थूले च ॥२३७॥

टीका – बहुरि तातै सज्ञी पचेद्री निर्वृत्ति अपर्याप्तक का उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान पल्य के असख्यातवे भाग गुणा है ।२९। बहुरि तातै सूक्ष्म एकेद्री निर्वृत्ति

अपर्याप्त का जघन्य एकांतानुवृद्धि योगस्थान पल्य के असंख्यातवे भाग गुणा है ।३०। बहुरि तातैं बादर एकेंद्री लब्धि अपर्याप्तक का अर बादर एकेंद्री निर्वृत्ति अपर्याप्तक का जघन्य एकांतानुवृद्धि योगस्थान अनुक्रम तैं पल्य का असंख्यातवां भाग गुणे हैं ।३१।३२।। ।२३७।।

तह सुहुमसुहुमजेट्ठं, तो बादरबादरे वरं होदि ।
अंतरमवरं लद्धिगसुहुमिदरवरंपि परिणामे ।।२३८।।

तथा सूक्ष्मसूक्ष्मज्येष्ठं, ततो बादरबादरे वरं भवति ।
अंतरमवरं लब्धिकसूक्ष्मेतरवरमपि परिणामे ।।२३८।।

टीका – बहुरि तैसे ही तातैं सूक्ष्म एकेद्री लब्धि अपर्याप्तक अर सूक्ष्म एकेंद्री निर्वृत्ति अपर्याप्तक इनके उत्कृष्ट एकांतानुवृद्धि योगस्थान अनुक्रम तै पल्य का असंख्यातवां भाग गुणे हैं । ३३ । ३४ । बहुरि तातैं बादर एकेंद्री लब्धि अपर्याप्तक अर बादर एकेद्री निर्वृत्ति अपर्याप्तक इनके उत्कृष्ट एकांतानुवृद्धि योगस्थान अनुक्रम तै पल्य के असंख्यातवे भाग गुणे है । ३५ । ३६ ।

'ततः अंतरं' कहिए बादर एकेद्री निर्वृत्ति अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकांतानुवृद्धि योगस्थान अर सूक्ष्म एकेद्री लब्धि अपर्याप्तक का जघन्य परिणाम योगस्थान इन दोऊनि के बीचि जगच्छ्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थान ऐसे है, जिनका कोऊ स्वामी नाही । ए योगस्थान किसी जीव कै न पाइए, तातै यहु अंतर पड्या । सो इन स्थानकनि कौ उलंघि करि छोडि करि सूक्ष्म एकेद्री वा बादर एकेद्री लब्धि अपर्याप्तक इनके जघन्य वा उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान अनुक्रम तै पल्य का असंख्यातवां भाग गुणे हैं ।

इहां सूक्ष्म का जघन्य, बादर का जघन्य, सूक्ष्म का उत्कृष्ट, बादर का उत्कृष्ट – ऐसे क्रम जानना ।३७।३८।३९।४०। ।।२३८।।

अंतरमुवरीवि पुणो, तप्पुण्णाणं च उवरि अंतरियं ।
एयंतवड्ढिठाणा, तसपणलद्धिस्स अवरवरा ।।२३९।।

अंतरमुपर्यपि पुनः तत्पूर्णानां च उपर्यंतरितं ।
एकांतवृद्धिस्थानानि, त्रसपंचलब्धेरवरवराः ।।२३९।।

टीका – बहुरि 'अंतरं' कहिए इहां दूसरा अंतर है। बादर एकेंद्री लब्धि अपर्याप्तक का उत्कृष्ट परिणामयोग के पीछै जगच्छ्रेणी के असख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थान असे हैं, जिनका कोऊ स्वामी नाही। सो इनकौं छोडि करि बहुरि सूक्ष्म एकेंद्री वा बादर एकेंद्री पर्याप्तक तिनका जघन्य वा उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान – अनुक्रम तै ए च्यारि पल्य का असंख्यातवां भाग गुणे है।४१।४२।४३।४४। बहुरि याके ऊपरि तीसरा अतर है, सो बादर एकेंद्री पर्याप्त का उत्कृष्ट योगस्थान, पीछै जगच्छ्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र योगस्थान असे है, जिनका कोऊ स्वामी नाही; तिनकौ छोडि करि बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, असैनी पचेंद्री, लब्धि अपर्याप्त तिनका जघन्य वा उत्कृष्ट एकांतानुवृद्धि योगस्थान अनुक्रम तै ए दश पल्य का असंख्यातवां भाग गुणे है।४५। ४६।४७।४८।४९।५०।५१।५२।५३।५४। ॥२३९॥

लद्धीणिव्वत्तीणं, परिणामेयंतवड्ढिठाणाओ ।
परिणामट्ठाणाओ, अंतरअंतरिय उवरुवरिं ॥२४०॥

लब्धिनिर्वृत्तीनां, परिणामैकांतवृद्धिस्थानानि ।
परिणामस्थानानि, अंतरांतरितान्युपर्युपरि ॥२४०॥

टीका – बहुरि इहां चौथा अंतर है। सैनी पचेंद्री लब्धि अपर्याप्तक का उत्कृष्ट एकांतानुवृद्धि योगस्थान पीछै जगच्छ्रेणी के असख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थान असे है, जिनका कोऊ स्वामी नाही। सो इनकौ उलघि करि बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, असैनी पचेंद्री, सैनी पचेंद्री लब्धि अपर्याप्तक जीव तिनका जघन्य अर उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान अनुकम तै ए दश पल्य का असख्यातवां भाग गुणा जानना। ५५।५६।५७।५८।५९।६०।६१।६२।६३।६४।

बहुरि इहां पांचवां अतर है। सो सैनी पचेंद्री लब्धि अपर्याप्तक जीव का उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान के पीछै जगच्छ्रेणी का असख्यातवां भाग प्रमाण योगस्थान असे है, जिनिका कोऊ स्वामी नाही। तिनकौ छोड़ि करि बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, असैनी पंचेंद्री, सैनी पचेंद्री निर्वृत्ति अपर्याप्तक जीव, तिनका जघन्य अर उत्कृष्ट एकांतानुवृद्धियोगस्थान – सो ए दश अनुक्रम तै पल्य का असख्यातवां भाग गुणा जानना।६५।६६।६७।६८।६९।७०।७१।७२।७३।७४।

बहुरि इहां छठा अंतर है। सैनी पचेंद्री निर्वृत्ति अपर्याप्तक जीव का उत्कृष्ट एकांतानुवृद्धि योगस्थान पीछै जगच्छ्रेणी के असख्यातवे भाग प्रमाण योगस्थान

ऐसे हैं, जिनका कोऊ स्वामी नाही। सो इनकौ उलघि करि बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, असैनी पंचेंद्री, सैनी पंचेंद्री, पर्याप्तक जीव तिनका जघन्य अर उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान – ए दश अनुक्रम तै पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा जानना ।७५।७६।७७।७८।७९। ८०।८१।८२।८३।८४।

ऐसे ए चौरासी ठिकाने योगों के कहे ।

सो इहां ऐसा भावार्थ जानना–जे योगस्थान कहे तिन विषै प्रथम योगस्थान सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्तक का जघन्य उपपाद योगस्थान है, ताके अविभाग प्रतिच्छेद सबनि तै थोरे हैं। बहुरि तिन तै सूक्ष्म निर्वृत्ति अपर्याप्तक का जघन्य उपपाद योग-स्थान के अविभाग प्रतिच्छेद पल्य के असंख्यातवां भाग गुणा है। ऐसें ही अनुक्रम तै जानना ॥२४०॥

आगै इस कहे गुणकार कौं ग्रंथकर्ता कहै है—

एदेसिं ठाणाओ, पल्लासंखेज्जभागगुणिदकमा ।
हेट्ठिमगुणहाणिसला, अण्णोण्णब्भत्थमेत्तं तु ॥२४१॥

एतेषां स्थानानि, पल्यासंख्येयभागगुणितक्रमाणि ।
अधस्तनगुणहानिशला, अन्योन्याभ्यस्तमात्रं तु ॥२४१॥

टीका – चौदह जीवसमासनि का उपपादादिक तीन योगनि की अपेक्षा जघन्य उत्कृष्ट भेद तै चौरासी जे ए स्थानक भए, ते अनुक्रम तैं पहिले स्थानक तै पिछला स्थानक पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा क्रम तै है, तथापि जघन्य योगस्थान तै सर्वोत्कृष्ट योगस्थान पल्य के अर्धच्छेदनि का असंख्यातवां भाग गुणा है। तीहि जघन्य योगस्थान अर उत्कृष्ट योगस्थान इन दोऊनि के बीच तिष्ठती अधस्तन गुणहानिशलाका असंख्यात रूप घाटि पल्य की वर्गशलाका प्रमाण है, तेई अन्योन्या-भ्यस्तराशि की गुणकार शलाका कहिए, सो पूर्वे कथन कीया है ॥२४१॥

आगै ए तीनो योग हैं, ते बीच में एक योगस्थान तै अन्य योगस्थान न होइ, ऐसे निरंतर कितने काल प्रवर्तै ? सो कहै हैं —

अवरुक्कस्सेण हवे, उववादेयंतवड्ढिठाणाणं ।
एक्कसमयं हवे पुण, इदरेसिं जाव अट्ठोत्ति ॥२४२॥

अवरोत्कृष्टेन भवेत्, उपपादैकांतवृद्धिस्थानानां ।
एकसमयो भवेत्पुनः इतरेषां यावदष्ट इति ॥२४२॥

टीका – उपपाद योगस्थान अर एकांतानुवृद्धि योगस्थान इनके प्रवर्तन का काल जघन्य वा उत्कृष्ट एक समय ही है। जातै उपपाद योगस्थान जन्म के प्रथम समय विषै ही हो है। एकांतानुवृद्धि योगस्थान समय-समय वृद्धिरूप अन्य-अन्य हो है। बहुरि इतर जे परिणामयोगस्थान तिनके प्रवर्तन का काल दोय समय तैं लगाय आठ समय पर्यंत है।

भावार्थ – एक परिणामयोगस्थान दोय समय तैं लगाय आठ समय पर्यंत रहै, अधिक न रहै, पीछै अन्य योगस्थान हो है ।।२४२।।

अट्ठसमयस्स थोवा, उभयदिसासुवि असंखसंगुणिदा।
चउसमयोत्ति तहेव य, उवरिं तिदुसमयजोग्गाओ ।।२४३।।

अष्टसमयस्य स्तोका, उभयदिशयोरपि असंख्यसंगुणिताः।
चतुःसमय इति तथैव च, उपरि त्रिद्विसमययोगाः ।।२४३।।

टीका – बेंद्री पर्याप्त जीव तीहि का जघन्य परिणाम योगस्थान तै लगाय संज्ञी पंचेंद्री पर्याप्त जीव कै उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान पर्यंत अंतर रूप जे योगस्थान कहे थे, तिन बिना जेते निरंतर योगस्थान है, तिनकी 'यव' नामा अन्न के आकार रचना काल की अपेक्षा जाननी[1]। तहां जे निरंतर आठ समय विषै प्रवर्तैं असे योगस्थान ते मध्य विषै लिखने, अर जे योगस्थान निरंतर सात समय विषै प्रवर्तैं, ते आधे तो आठ समय वालौ के ऊपरि लिखने, आधे नीचै लिखने। बहुरि जे योगस्थान छह समय विषै निरंतर प्रवर्तैं, ते तिनहू के आधे ऊपरि लिखने। बहुरि जे योगस्थान पच समयनि विषै निरंतर प्रवर्तैं ते तिनहू के आधे तौ नीचे अर आधे ऊपरि लिखने। बहुरि जे योगस्थान च्यारि समयनि विषै निरंतर प्रवर्तैं तिनहू के आधे तौ नीचै अर आधे ऊपरि लिखने। बहुरि जे योगस्थान तीन समयनि विषै निरतर प्रवर्तैं ते च्यारि समयावालो के ऊपरि ही लिखने। बहुरि जे योगस्थान दोय समय विषै निरतर प्रवर्तैं, ते तीन समयवालों के ऊपरि लिखने।

इहा त्रसजीव सबधी परिणाम योगस्थाननि विषै मध्यवर्ती स्थान मध्य विषै लिखिए है। तिनतै पहिले स्थान वा पिछले स्थान तिनके ऊपरि वा नीचै लिखिए है, असा अर्थ जानना।

1–इसकी टिप्पणी २५८ पृष्ठ पर है।

यवकार रचना
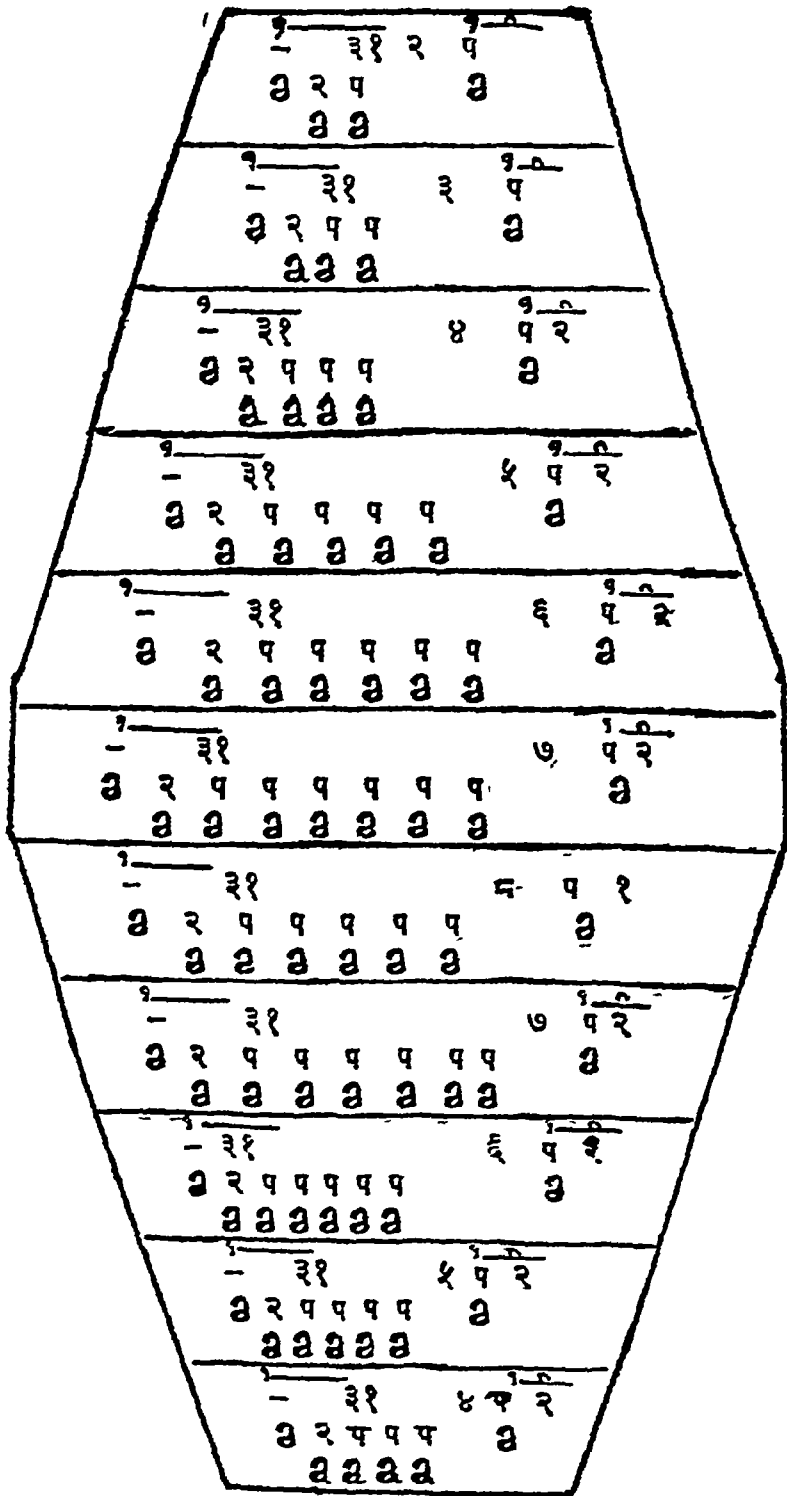
अब इन स्थाननि का प्रमाण कहिए हैं—

पर्याप्त बेंद्री का जघन्य परिणाम योग तें लगाय संज्ञी पर्याप्त का उत्कृष्ट परिणामयोग पर्यंत योगस्थान जगच्छ्रेणी का असंख्यातवां भाग को एक घाटि पल्य के अर्धच्छेदनि का असंख्यातवा भाग करि गुणिए, सूच्यंगुल के असंख्यातवें

भाग का भाग दीजिए जो प्रमाण होइ, तामै एक मिलाइए इतने प्रमाण है । ताकौं पल्य का असख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां एक भाग बिना बहुभाग प्रमाण तौ दोय समय निरंतर प्रवर्तें असे योगस्थान है । बहुरि तिस एक भाग कौ पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहा एक भाग बिना बहुभाग प्रमाण तीन समय निरतर प्रवर्तें असे योगस्थान है । बहुरि तिस एक भाग कौ पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए तहां एक भाग बिना अवशेष बहुभाग का आधा तौ नीचले च्यारि समय निरंतर प्रवर्तें असे योगस्थान है । आधा ऊपरिले च्यारि समय निरतर प्रवर्तें असे योगस्थान है ।

बहुरि तिस एक भाग कौ पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए । तहां एक भाग बिना बहुभाग का आधा तौ नीचले पाच समय निरंतर प्रवर्तें असे योगस्थान है । आधा ऊपरले पाच समय निरंतर प्रवर्तें असे योगस्थान है । बहुरि तिस एक भाग कौं पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए । तहां एक भाग बिना बहुभाग का आधा भाग तौ नीचले छह समय निरंतर प्रवर्तें असे योगस्थान हैं, आधा ऊपरले छह समय निरंतर प्रवर्तनेवाले योगस्थान हैं । बहुरि तिस एक भाग कौ पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहा एक भाग बिना बहुभाग का आधा तौ नीचले सात समय निरंतर प्रवर्तनेवाले योगस्थान है, आधा ऊपरले सात-समय निरंतर प्रवर्तनेवाले योगस्थान है । अवशेष एक भाग रह्या, तीहि प्रमाण आठ समय निरतर प्रवर्तनेवाले योगस्थान जानना ।

याही तैं गाथा विषैं असा कह्या जो आठ समयवालों का थोरा प्रमाण है, अर ऊपर वा नीचे असख्यात-असख्यात गुणा हैं । तहा च्यारि समयवालों पर्यंत नीचें वा ऊपरि दोऊ दिशा विषै जानने । तीन वा दोय समयवाले स्थानक ऊपरि ही जानने ।

असे इहा काल की अपेक्षा यव आकार रचना है । जैसे यव बीचि में मोटा हो है, ऊपरि नीचै पतला हो है, तैसे बीचि में आठ समयवाले लिखे अर ऊपरि नीचै घाटि समयवाले लिखे, असे यव आकार रचना है ॥२४३॥

आगे पर्याप्त त्रस जीवनि का परिणाम योगस्थाननि विषै जीवनि का प्रमाण कहै है, ताकी यव नामा अन्न के आकारि रचना कहै है—

मज्झे जीवा बहुगा, उभयत्थ विसेसहीणकमजुत्ता ।
हेट्ठिमगुणहाणिसला ढुवरि सलागा विसेसऽहिया ॥२४४॥

मध्ये जीवा बहुका, उभयत्र विशेषहीनक्रमयुक्ताः ।
अधस्तनगुणहानिशलाकाः, उपरिशलाका विशेषाधिकाः ।।१४४।।

टीका – जीवनि का प्रमाणरूप यवरचना विषै बीचि मे जीव बहुत हैं, ऊपरि वा नीचै अनुक्रम तें विशेष करि घाटि-घाटि जीव हैं ।

भावार्थ – जैसे यव नामा अन्न बीचि में मोटा हो है अर ऊपरि नीचै क्रम तें घटता-घटता हो है, तैसें त्रस पर्याप्त संबंधी परिणाम योगस्थानकनि विषै यव आकार में जो बीचि का स्थानक है, तहां जीवनि का प्रमाण बहुत है । बीचि का स्थानक के धारक जीव बहुत हैं । बहुरि तिस बीचि के स्थानक तैं ऊपरि के स्थानकनि विषै वा नीचे के स्थानकनि विषै अनुक्रम तै जीवनि का प्रमाण घटता-घटता है । तिन स्थानकनि के धारक जीव अनुक्रम तैं घटते-घटते पाइए है, असें यहु यव आकार रचना है । तहां नीचली गुणहानिशलाका तें ऊपरि की गुणहानिशलाका का प्रमाण किछू अधिक है ।

सोई कहिए हैं—

दव्वतियं हेट्ठुवरिमदलवारा दुगुणमुभयमण्णोण्णं ।।
जीवजवे चोद्दससयबावीसं होदि बत्तीसं ।।२४५।।

चत्तारि तिण्णि कमसो, पण अड अट्ठं तदो य बत्तीसं ।
किंचूणतिगुणहाणिविभजिदे दव्वे दु जवमज्झं ।।२४६।।

द्रव्यत्रयमध उपरिमदलवारा द्विगुणमुभयमन्योन्यं ।
जीवयवे चतुर्दशशतद्वाविंशतिः भवति द्वात्रिंशत् ।।२४५।।

चत्वारि त्रीणि क्रमशः, पंच अष्ट-अष्ट ततश्च द्वात्रिंशत् ।
किंचिदूनत्रिगुणहानिविभाजिते द्रव्ये तु यवमध्यं ।।२४६।।

टीका – यव के आकारि जीवनि की संख्या की रचना विषै प्रथम अंकनि की सहनानी करि कथन दिखाइए हैं—तहां द्रव्य तौ त्रसपर्याप्त जीवनि का प्रमाण, सो चोदह सौ बाईस (१४२२), अर स्थिति त्रसपर्याप्त जीव संबंधी परिणाम योगस्थानकनि का प्रमाण, सो बत्तीस (३२), बहुरि गुणहानि आयाम जो एक गुणहानि विषै तिन स्थानकनि का प्रमाण सो च्यारि (४) । बहुरि असी सर्व गुणहानि आठ

(८), इनकौ नानागुणहानि कहिए। तहां नीचली नानागुणहानि का प्रमाण तीन (३), अर ऊपरि की गुणहानि का प्रमाण पांच (५) – असैं आठ नानागुणहानि जाननी। बहुरि नानागुणहानि प्रमाण दूवा माडि परस्पर गुणें जो प्रमाण होइ, तितनी अन्योन्याभ्यस्तराशि है। तहा नीचली अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण आठ (८), ऊपरि की अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण बत्तीस (३२) असैं सर्व चालीस (४०) है।

तहां तिगुणी गुणहानि किछू घाटि का भाग द्रव्य कौ दीएं जीवनि की संख्या यव आकार के मध्य होइ, सो गुणहानि का आयाम का प्रमाण च्यारि (४), ताकौ तिगुणा कीएं बारह भए। किंचिदून कहने करि यामैंस्यों एक का चौसठि भागनि में जे सत्तावन भाग ते घटाइए, इहां समच्छेद विधान कर तैं सात सौ ग्यारह का चौसठिवां भाग भया। याका भाग सर्वद्रव्य चौदह सौ बाईस कौ दीजिए, तब एक सौ अठाईस पाया, सो जीव यव आकार रचना विषै मध्य प्रमाण जानना, तातैं मध्य विषै जीव बहुत हैं असैं कह्या। बहुरि तींहि मध्य तैं ऊपरि वा नीचैं गुणहानि के जे निषेक तिन विषै अपनी-अपनी गुणहानि विषै जो विशेष का प्रमाण तितना-तितना घाटि क्रम तैं जानना।

सो विशेष का प्रमाण कितना है? अपनी-अपनी गुणहानि का पहिला निषेक कौ दूणा गुणहानि का आयाम प्रमाण जो दोगुणहानि, ताका भाग दीएं जो प्रमाण होइ अथवा अंत का निषेक कौ एक अधिक गुणहानि का आयाम का भाग दीएं जो प्रमाण होइ, सो विशेष का प्रमाण जानना। तातैं नीचली वा ऊपरली गुणहानि का द्रव्य वा विशेष आधा-आधा अनुक्रम तैं जानना।

सोई दिखाइए है – ऊपर की पांच गुणहानि तिन विषै पहली गुणहानि का पहिला निषेक का प्रमाण एक सौ अठाईस (१२८), याकौ दोगुणहानि आठ, ताका भाग दीजिए, तब सोला पाए, सो विशेष जानना। सो एक-एक निषेक विषै सोला-सोला घटावना। अत का निषेक विषै एक घाटि गुणहानि आयाम का जो प्रमाण, तितना विशेष घटाइए, तब आदि निषेक एक सौ अठाईस, मध्य एक सौ बारा अर छिनवै अर अंत निषेक अस्सी असा प्रमाण भया १२८, ११२, ९६, ८०।

इन सबनि का जोड दीजिए 'मुहभूमी जोगदले पदगुणिदे पदधणं होदि' 'मुख' कहिए अत अर 'भूमि' कहिए आदि, सो अत तौ असी (८०) अर आदि एक सौ अठाईस इनका जोग कहिए जोड दोय सौ आठ 'दले' कहिए आधा एक सौ

च्यारि भए। पद कहिए गच्छ आयाम ताकरि गुणिए, सो च्यारि करि गुणिए, तव पद-धन च्यारि सौ सोलह भये।

ऐसें ऊपर की प्रथम गुणहानि का सर्वधन च्यारि सौ सोलह जानना। सो यवमध्य के प्रमाण कौ एक अधिक तिगुना गुणहानि आयाम करि गुणिये गुणहानि आयाम का भाग दीजिए, सोई प्रथम गुणहानि का द्रव्य जानना।

यवमध्य का प्रमाण एक सौ अठाईस ताकौ तिगुणी गुणहानि वारह, एक अधिक भएं तेरा, ताकरि गुणिए गुणहानि आयाम च्यारि का भाग दीए, च्यारि सौ सोला पाए, सोई प्रथम गुणहानि का द्रव्य है। वहुरि ऊपरि एक-एक गुणहानि विषै द्रव्य का प्रमाण वा विशेष का प्रमाण आधा-आधा जानना। वहुरि एक घाटि नाना गुणहानि का जो प्रमाण, तितना दूवा मांडि परस्पर गुणैं, जो प्रमाण होइ, ताका भाग प्रथम गुणहानि के द्रव्य कौ दीएं, अंत की गुणहानि विषै द्रव्य का प्रमाण हो है। तहां ऊपरि की गुणहानि पांच, तामै एक घटाएं च्यारि, सो च्यारि दूवा मांडि, २।२।२।२। परस्पर गुणन कीएं सोला (१६), याका भाग प्रथम गुणहानि-द्रव्य च्यारि सौ सोला कौ दीएं छवीस पाया, सोई अंत गुणहानि का द्रव्य जानना।

वहुरि नीचली गुणहानि तीन, तिन विषैं पहिली गुणहानि विषै यव मध्य विषै जो प्रमाण, तामैंस्यों एक विशेष घटाएं प्रथम निषेक होइ, सो यवमध्य एक सौ अठाईस (१२८) यामैं विशेष का प्रमाण सोला, सो घटाएं एक सौ वारा रह्या, सोई आदि निषेक का प्रमाण जानना। वहुरि यामै एक-एक निषेक में एक-एक विशेष घटावतां अंत का निषेक विषै एक घाटि गुणहानि का आयाम प्रमाण विशेष घटाएं चौंसठि हो है। सो मुख चौंसठि (६४), भूमि एक सौ वारा (११२) – इनकों जोडे एक सौ छिहंतरि, आधा अठ्यासी पद जो च्यारि ताकरि गुणै तीन सौ वावन हुवा, सोई नीचली प्रथम गुणहानि का सर्व द्रव्य जानना। सो यव मध्य जो एक सौ अठाईस, ताकौं ग्यारह करि गुणिए च्यारि का भाग दीजिए, इतने प्रमाण हो हैं। सो ऊपरि की प्रथम गुणहानि के द्रव्य तैं इहां यवमध्य कौ दूणा करि च्यारि का भाग दीजिए, इतना ऋण जानना। सो यवमध्य एक सौ अठाईस ताकौ दूणा करि च्यारि का भाग दीएं चौसठि पाया सो ऋण जानना। इतने ऊपरि की प्रथम गुणहानि के द्रव्य मेंस्यों घटाए नीचली प्रथम गुणहानि का द्रव्य हो है।

वहुरि ऊपरि की गुणहानि का निषेकनि तैं नीचली गुणहानि का निषेकनि विषै ऊपरिली गुणहानि का चय प्रमाण ऋण जानना। जैसें ऊपरि की गुणहानि

का प्रथम निषेक एक सौ अठाईस, तहां चय का प्रमाण सोला घटाए नीचली गुण-हानि का प्रथम निषेक का प्रमाण हो है, अैसैं सर्वत्र जानना।

बहुरि गुणहानि-गुणहानि प्रति द्रव्य आधा-आधा जानना । तहा एक घाटि नीचली गुणहानि मात्र दूवानि का भाग आदि गुणहानि के द्रव्य कौं दीए अंत की गुणहानि विषैं द्रव्य हो है। बहुरि ऋण भी जो प्रथम गुणहानि विषैं कह्या, सो गुणहानि-गुणहानि प्रति आधा-आधा हो है ६४।३२।१६।

तहां **'अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं'** इस सूत्र करि अत धन चौसठि कौं गुणकार दोय करि गुणैं, आदि सोलह घटाएं, सर्व निचली गुणहानिनि विषैं ऋण का प्रमाण होइ है, सो गुणहानि आयाम का प्रमाण करि नीचली अंत की गुणहानि विषैं जो विशेष का प्रमाण, ताकौं गुणे जो प्रमाण होइ, तितना यवमध्य के प्रमाण मेंस्यों घटाए जो प्रमाण होइ, तितना जानना । सो गुणहानि आयाम च्यारि (४), याकरि नीचली अंत की गुणहानि का विशेष च्यारि कौं गुणैं सोलह पाए, सो यव मध्य मेंस्यों घटाए एक सौ बारह रहे, सो सर्व ऋण जानना । चौंसठि, बत्तीस, सोला इनकौं मिलाएं एक सौं बारा हो है ।

बहुरि नीचली वा ऊपरली सर्व गुणहानि का सर्व द्रव्य **'अंतधणं गुणगुणियं'** इत्यादि सूत्र करि जोडि, तामैं तिस ऋण कौं घटाएं शुद्ध द्रव्य चौदह सौ बाईस (१४२२) हो है ।

बहुरि इहां गुणहानि विषैं जितने-जितने निषेकनि विषैं घटैं है, अैसा विशेष प्रमाण, बहुरि योगनि का स्थानक तेईं निषेक तिन विषैं जीवनि का प्रमाण, बहुरि गुणहानि विषैं सर्व द्रव्य का प्रमाण; बहुरि नीचली गुणहानि विषैं ऊपर की गुणहानि तैं जो प्रमाण घाटि होइ सोई ऋण, ताका प्रमाण इन सर्व प्रमाणनि के दिखाने कौं यंत्र लिखिए है[1] —

इस यंत्र का अैसा भावार्थ जानना–जेते त्रस पर्याप्त सबधी परिणाम योग-स्थान बत्तीस कहे, तिन विषैं ऊपरली गुणहानि का प्रथम निषेक रूप जो योगस्थान, ताके धारक एक सौ अठाईस जीव है । याकौं यवमध्य कहिए । बहुरि तिस स्थानक तैं पहिला वा पिछला दोय स्थानक तिनके धारक एक सौ बारा एक सौ बारा जीव है ।

---

१ टिप्पणी २६४ पृष्ठ पर देखे ।

१—पृष्ठ २६३ की टिप्पणी—

नाम	विशेष का प्रमाण	निषेकनि विषै जीवनि का प्रमाण	गुणहानि विषै सर्व द्रव्य का प्रमाण
ऊपरि की पंचम गुणहानि	१	५ ६ ७ ८	२६
ऊपरि की चौथी गुणहानि	२	१० १२ १४ १६	५२
ऊपरि की तीजी गुणहानि	४	२० २४ २८ ३२	१०४
ऊपरि की दूजी गुणहानि	८	४० ४८ ५६ ६४	२०८
ऊपरि की प्रथम गुणहानि	१६	८० ९६ ११२ १२८	४१६
नीचै की प्रथम गुणहानि	१६	उपरि की प्रथम गुणहानि कै निषेकनि तै ऋण १६ ११२ ९६ ८० ६४	उपरि की प्रथम गुणहानि के सर्व द्रव्य तै ऋण ६४ अवशेष ३५२
नीचै की दूजो गुणहानि	८	उपरि की द्वितीय गुणहानि के निषेकनि तै ऋण ८ ५६ ४८ ४० ३२	उपरि की द्वितीय गुणहानि के सर्व द्रव्य तै ऋण ३२ अवशेष १७६
नीचै की तीजी गुणहानि	४	उपरि की तृतीय गुणहानि के निषेकनि तै ऋण ४ २८ २४ २० १६	उपरि की तृतीय गुणहानि के सर्व द्रव्य तै ऋण १६ अवशेष ८८

ऐसे ही सर्व योगस्थानकनि विषै जीवनि का प्रमाण जानना ।

ऐसे जैसे अंकनि की सहनानी करि कथन दिखाया, तैसे ही यथार्थ कथन जानना । विशेष इतना जो द्रव्यादि का प्रमाण जैसा होइ, तैसा जानना । और सर्व विधान अंकसंदृष्टि विषै कह्या, तैसें ही जानना ।।२४५-२४६।।

सो यथार्थ कथन दिखावने के निमित्त सूत्र कहै है—

पुण्णतसजोगठाणं, छेदाऽसंखस्सऽसंखबहुभागे ।
दलमिगिभागं च दलं, दव्वदुगं उभयदलवारा ।।२४७।।

पूर्णत्रसयोगस्थानं, छेदासंख्यस्यासंख्यबहुभागे ।
दलमेकभागं च दलं, द्रव्यद्विकमुभयदलवाराः ।।२४७।।

टीका – जैसे द्रव्य का प्रमाण चौदा सौ बाईस कह्या, तैसे सख्यात का भाग प्रतरांगुल कौ दीएं जो प्रमाण होइ, ताका भाग जगत्प्रतर कौ दीएं जो प्रमाण होइ, तितने पर्याप्त त्रस जीव है । सो जो यहु पर्याप्त त्रस जीवनि का प्रमाण सो द्रव्य जानना । बहुरि जैसे स्थिति का प्रमाण बत्तीस कह्या, तैसे बेद्री पर्याप्त का जघन्य परिणाम योगस्थान तै लगाय संज्ञी पर्याप्तक का उत्कृष्ट परिणामयोग पर्यंत जितने योगस्थान होंइ, तितना स्थिति का प्रमाण जानना । सो चौरासी ठिकाने कहे, तहां द्वीद्रिय पर्याप्त का जघन्य परिणाम योग कै ठिकानें जगच्छ्रेणी का असंख्यातवां भाग कौ पिचहत्तर बार पल्य का असंख्यातवां भाग करि गुणे प्रमाण हो है । ताका अपवर्तन कीएं जगच्छ्रेणी का असंख्यातवां भाग मात्र ही भया । बहुरि यामै सूच्यगुल का असंख्यातवां भाग मात्र मिलै अनंतर स्थान भया, ताकौ आदि देकरि सज्ञी पर्याप्त का उत्कृष्ट योगस्थान संदृष्टि अपेक्षा जघन्य तै बत्तीस गुणा यथार्थ अपेक्षा पल्य के अर्धच्छेदिनि का असंख्यातवा भाग गुणा है ।

तहां पर्यंत स्थाननि का प्रमाण कहिए हैं—

तहा बेंद्री पर्याप्त का जघन्य परिणाम योगस्थान तै अनतर स्थान तौ आदि जानना अर संज्ञी पर्याप्त का उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान अंत जानना । सो **'आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणे'** इस सूत्र करि अंत मेंस्यों आदि का प्रमाण घटाइ दीजै । बहुरि एक-एक स्थान विषे सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण अविभाग प्रतिच्छेद बंधै है, तातै तिनका भाग दीजिए जो प्रमाण होइ, तामें

एक ओर मिलाए त्रस पर्याप्त संबंधी परिणाम योगस्थानकनि का प्रमाण आवै है, सोई स्थिति का प्रमाण जानना ।

बहुरि इन स्थानकनि के धारक केते-केते जीव पाइए, अैसा भेद कहने के अर्थि विधान कहिए है—

जैसें आठ नानागुणहानि विषै तीन नीचली कही थी, पाच ऊपरली कही थी, तैसें पल्य का अर्धच्छेदनि का असंख्यातवां भाग प्रमाण सर्व नानागुणहानि, ताकौ असंख्यात का भाग दीजिए, तहां एक भाग कौं जुदा राखि अवशेष बहुभागनि का जो प्रमाण, ताका आधा तौ नीचली नानागुणहानि का प्रमाण जानना अर बहुभाग का तौ आधा अर एक भाग जुदा राख्या, सो मिलाए जो प्रमाण होइ, तितना ऊपरली नानागुणहानि का प्रमाण जानना ।

णाणागुणहाणिसला, छेदासंखेज्जभागमेत्ताओ ।
गुणहाणीणद्धाणं, सव्वत्थवि होदि सरिसं तु ॥२४८॥

नानागुणहानिशलाः छेदासंख्येयभागमात्राः ।
गुणहानीनामद्धानां, सर्वत्रापि भवति सदृशं तु ॥२४८॥

टीका – सो नीचली वा ऊपरली गुणहानि कौं मिलाएं पल्य का अर्धच्छेदनि का जो प्रमाण, ताके असंख्यातवे भाग नानागुणहानि भई, ताका भाग पूर्वोक्त स्थिति के प्रमाण कौं दीएं जो प्रमाण आवै, तितना एक गुणहानि का आयाम का प्रमाण जानना । जैसें स्थिति बत्तीस (३२) ताकौं सर्व नानागुणहानि आठ (८) का भाग दीएं च्यारि पाया (४), सोई एक गुणहानि का आयाम का प्रमाण है । तैसे इहां भी जानना । सो गुणहानि का आयाम का प्रमाण ऊपरिली वा नीचली गुणहानि विषै समान है । एक-एक गुणहानि विषै इतना – इतना स्थान पाइए है । बहुरि इस गुणहानि आयाम का दूणा प्रमाण सोई दो गुणहानि का प्रमाण जानना ॥२४८॥

अण्णोण्णगुणिदरासी, पल्लासंखेज्जभागमेत्तं तु ।
हेट्ठिमरासीदो पुण, उवरिल्लमसंखसंगुणिदं ॥२४९॥

अन्योन्यगुणितराशिः, पल्यासंख्येयभागमात्रं तु ।
अधस्तनराशितः पुनः, उपरिममसंख्यातसंगुणितं ॥२४९॥

टीका – नानागुणहानि प्रमाण दूवा मांडि परस्पर गुणिए सो अन्योन्याभ्यस्त राशि है। सो जैसैं नीचलो आठ अर ऊपरली बत्तीस अन्योन्याभ्यस्तराशि कह्या, तैसें ही सामान्यपनै पल्य के असंख्यातवे भाग प्रमाण अन्योन्याभ्यस्तराशि है, तथापि नीचली अन्योन्याभ्यस्तराशि तै ऊपरली अन्योन्याभ्यस्तराशि असंख्यात गुणी है।

अब तहां जघन्य परिणामयोग तै लगाय उत्कृष्ट परिणामयोग पर्यंत योग-स्थानक विषै जीवनि का विभाग अंकसंदृष्टिवत् असें जानना —

किंचित् उन तिगुणी गुणहानि आयाम का भाग सर्वद्रव्य कौ दीए यवमध्य का प्रमाण होइ। याकौ दोगुणहानि का भाग दीएं चय का प्रमाण होइ। चय कहौ वा विशेष कहौ दोऊ एकार्थ है। इस चय कौ दोगुणहानि करि गुणें यवमध्य हो है। बहुरि तीहि ऊपर की प्रथम गुणहानि विषै प्रथम निषेक यवमध्य प्रमाण, ऊपरि द्वितीयादि निषेक एक-एक चय घाटि जानना। सो एक घाटि गुणहानि का आयाम प्रमाण चय यवमध्य मेंस्यों घटै प्रथम गुणहानि का अंत निषेक विषै प्रमाण हो है। यामै एक विशेष घटाइये तब यवमध्य तै आधा प्रमाण होइ, सोई द्वितीय गुणहानि का प्रथम निषेक जानना। यातैं ऊपरि एक विशेष घटाएं द्वितीयादिक निषेक होंइ, सो एक घाटि गुणहानि का आयाम प्रमाण विशेष घटै अत निषेक होइ। इहां प्रथम गुणहानि विषै विशेष का प्रमाण था, तीहस्यों आधा द्वितीय गुणहानि विषै विशेष का प्रमाण जानना। बहुरि द्वितीय गुणहानि का अत निषेक मेंस्यो एक घटाएं द्वितीय गुणहानि का प्रथम निषेक तै आधा प्रमाण होइ, सोई तृतीय गुणहानि का प्रथम निषेक जानना। यातै द्वितीय गुणहानि का विशेष तै आधा प्रमाण लिएं जो विशेष, सो एक-एक विशेष घटाएं द्वितीयादिक निषेक होइ – असैं अंत की गुण-हानि पर्यंत जानना। गुणहानि-गुणहानि प्रति जीव द्रव्य आधे-आधे जानने। बहुरि नीचली गुणहानि विषै यवमध्य के नीचे प्रथम गुणहानि का प्रथम निषेक तै लगाय अंत की गुणहानि का अंत निषेक पर्यंत गुणहानि-गुणहानि प्रति समस्त निषेकनि विषै जो-जो ऊपरली गुणहानि का निषेकनि विषै प्रमाण कह्या, तिन मेंस्यो अपनी-अपनी गुणहानि विषै जितना-जितना विशेष का प्रमाण कह्या, तितना-तितना निषेक-निषेक विषै ऋण कीएं निषेकनि का प्रमाण हो है। सोई कहिए है—

ऊपरि की प्रथम गुणहानि का प्रथम निषेक यवमध्य प्रमाण है, तामैंस्यो प्रथम गुणहानि विषै जितना विशेष का प्रमाण कह्या है, तितना घटाएं नीचली प्रथम, गुण-

हानि का प्रथम निषेक का प्रमाण हो है। बहुरि ऊपरि की प्रथम गुणहानि का द्वितीय निषेक विषै जो प्रमाण कह्या है तामैंस्यों प्रथम गुणहानि का विशेष प्रमाण ऋण घटाएं नीचली प्रथम गुणहानि के द्वितीय निषेक का प्रमाण हो है। ऐसे प्रथम गुणहानि का अंत निषेक पर्यंत जानना। बहुरि ऊपरि की द्वितीय गुणहानि विषै जो प्रथम निषेक का प्रमाण था, तामेंस्यो द्वितीय गुणहानि विषै जो विशेष का प्रमाण कह्या है, तितना घटाएं नीचली द्वितीय गुणहानि विषै प्रथम निषेक का प्रमाण जानना। ताका द्वितीय निषेक मेंस्यो तितना ही घटाएं याका द्वितीय निषेक का प्रमाण जानना ऐसे अंत निषेक पर्यंत जानना। ऐसे ही तृतीयादिक गुणहानि विषै भी ऋण का प्रमाण अपना-अपना विशेष के समान जानि निषेक का प्रमाण जानना। नीचली गुणहानि की रचना विषै ऋण कौ मिलाए नीचली गुणहानि का प्रमाण ऊपरि की गुणहानि रचना के समान सर्व रचना हो है। ऐसै गुणहानि जिस-जिस निषेक विषै जितना जितना प्रमाण होइ तिस-तिस योगस्थान विषै तितना-तितना जीवनि का प्रमाण जानना।

बहुरि गुणहानि विषै सर्वद्रव्य जोडने के अर्थि **'मुहभूमी जोगदले पदगुणिदे पदधणं होदी'** इस सूत्रकरि मुख तौ अंत निषेक अर भूमि आदि निषेक इनको मिलाय करि आधा कीजिए, पीछे गुणहानि का आयाम का प्रमाण करि गुणिए, जो-जो प्रमाण होइ, तितना-तितना अपनी-अपनी गुणहानि विषै सर्वद्रव्य का प्रमाण जानना। सो प्रथम गुणहानि के सर्वद्रव्य तै द्वितीय गुणहानि का द्रव्य आधा है।

ऐसे गुणहानि-गुणहानि प्रति द्रव्य आधा-आधा जानना सर्व गुणहानिनि के द्रव्य जोडने के अर्थि **'अंतधणं गुणगुणियं'** इत्यादि सूत्रकरि प्रथम गुणहानि का द्रव्य अंतधन ताकौ दोय गुणकार करि गुणि, तामै अंत गुणहानि का द्रव्य आदि धन सो घटाएं एक घाटि उत्तर एक, ताका भाग दीजिए ऊपरि वा नीचै सर्व गुणहानि का द्रव्य प्रमाण हो है।

बहुरि नीचली गुणहानि विषै जो ऋण कह्या, सो अपना-अपना विशेष प्रमाण जो ऋण, ताकौ गुणहानि का आयाम करि गुणै अपनी-अपनी गुणहानि विषै ऋण का प्रमाण हो है। सर्व ऋण जोडने कौ **'अंतधणं गुणगुणियं'** इत्यादि सूत्र करि प्रथम गुणहानि का ऋण को गुणकार दोय करि गुणि, तामै अंत गुणहानि का ऋण कौ घटाइ, एक घाटि उत्तर एक का भाग दीए जो प्रमाण होइ, तिस ऋण के प्रमाण

कौं ऊपरि के गुणहानि का द्रव्य में घटाए अथवा नीचली गुणहानि का द्रव्य में मिलाएं नीचली-ऊपरली गुणहानि विषै द्रव्य समान हो है । बहुरि ऊपरली वा नीचली सर्व गुणहानि संबंधी सर्व द्रव्य का जोड दीए पर्याप्त त्रस जीवनि का प्रमाण हो है ।

अैसै पर्याप्त त्रस संबंधी परिणाम योगस्थानकनि विषै पर्याप्त त्रस जीवनि का प्रमाण जानना ।

अंकनि की सहनानी पूर्वै कही है, ताकरि कथन कौ नीके समझ लेना । ऊपरि की गुणहानि का प्रथम निषेक रूप जो योगस्थान ताके धारक जीव बहुत है । ताके नीचे वा ऊपरि जे योगस्थान है, तिनके धारक पूर्वोक्त अनुक्रम लीए थोरे जीव हैं । याही तैं यव आकार रचना कही है ।। २४६ ।।

आगै इन योगस्थानकनि के धारक जीव कितना-कितना प्रदेशबंध करे है इस प्रश्न कौ करते समयप्रबद्ध की वृद्धि का प्रमाण कहै हैं—

इगिठाणफड्ढयाओ, समयपबद्धं च जोगवड्ढी य ।
समयपबद्धचयट्ठं, एदे हु पमाणफलइच्छा ॥२५०॥

एकस्थानस्पर्धकानि, समयप्रबद्धं च योगवृद्धिश्च ।
समयप्रबद्धचयार्थं, मेते हि प्रमाणफलेच्छाः ॥२५०॥

टीका – तीहिं बेद्री पर्याप्त का जघन्य परिणामयोगस्थान संवधी स्पर्धक अर समयप्रबद्ध अर योगनि की वृद्धि – ए तीन समयप्रबद्ध का एक-एक योगस्थान विषै बंधनें का प्रमाण ल्यावने के अर्थि प्रमाण, फल, इच्छा – इन तीन राशिरूप हो है । तहां जघन्य योगस्थान विषै श्रेणी का असख्यातवा भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक पाइए है, सो तौ प्रमाणराशि अर तिस जघन्य योगस्थान करि जघन्य समयप्रबद्ध प्रमाण प्रदेशनि का बंध हो है, सो फलराशि । बहुरि एक-एक योगस्थान विषै सूच्यगुल का असख्यातवां भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक वधती पाइए है; तातैं सो इच्छाराशि । तहा फल करि इच्छा कौ गुणैं, प्रमाण का भाग दीएं जो लब्धराशि का प्रमाण आया, तितना-तितना प्रदेशनि की अधिकता ने लीया एक-एक ऊपरि के योगस्थाननि करि समयप्रबद्ध बंधै है । जघन्य योगस्थान करि जघन्य समयप्रबद्ध बंधै है, ताके अनंतर योगस्थान करि इतना प्रमाण करि वधता समयप्रबद्ध बंधै हैं ।

ग्रैसें निरंतर वंधि करि जहां जघन्य योगस्थान दूणां है, तहां जघन्य समय-प्रवद्ध दूणां वंधै हैं, जहां चौगुणा है, तहां चौगुणा वंधै हैं । ग्रैसें संज्ञी पर्याप्त का उत्कृष्ट योगस्थान विषैं जघन्य योगस्थान पल्य का अर्धच्छेदनि कैं असंख्यातवां भाग गुणा हो है । तहां जघन्य समयप्रवद्ध कौं पल्य का अर्धच्छेदनि का असंख्यातवां भाग करि गुणिए ग्रैसा समयप्रवद्ध वंधै है ।।२५०।।

आगैं इस कथन का अर्थ पांच गाथानि करि कहै हैं—

वीइंदियपज्जत्तजहण्णट्ठाणादु सण्णिपुण्णस्स ।
उक्कस्सट्ठाणोत्ति य, जोगट्ठाणा कमे उड्ढा ।।२५१।।

द्वींद्रियपर्याप्तजघन्यस्थानात् संज्ञिपूर्णस्य ।
उत्कृष्टस्थानामिति, च योगस्थानानि क्रमेण वृद्धानि ।।२५१।।

टीका – बेंद्री पर्याप्त जीव का जघन्य परिणामयोगस्थान तैं लगाय संज्ञी-पर्याप्त जीव का उत्कृष्ट परिणामयोगस्थान पर्यंत परिणामयोगस्थान अनुक्रम तैं एक-एक स्थान विषै समान वृद्धि प्रमाण करि बधती जानने ।।२५१।।

सेढियसंखेज्जदिमा, तस्स जहण्णस्स फड्ढया होंति ।
अंगुलअसंखभागा, ठाणं पडिफड्ढया उड्ढा ।।२५२।।

श्रेण्यसंख्येयिमानि, तस्य जघन्यस्य स्पर्धकानि भवंति ।
अंगुलासंख्यभागानि, स्थानं प्रति स्पर्धकानि वृद्धानि ।।२५२।।

टीका – तिनविषैं जो बेंद्री पर्याप्तक का जघन्य परिणामयोगस्थान है, सो जगच्छ्रेणी का असंख्यातवां भाग मात्र स्पर्धकनि का समूहरूप है । बहुरि याके अनंतर स्थान तैं लगाय एक-एक स्थान प्रति सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक बधती जानने । जघन्य स्पर्धक के जेते अविभाग प्रतिच्छेद हैं, तिनकौं सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग करि गुणैं जो प्रमाण होइ, तितने-तितने अविभाग प्रतिच्छेद एक-एक योगस्थान विषै बधती जानने ।।२५२।।

धुववड्ढीवड्ढंतो, दुगुणं दुगुणं कमेण जायंते ।
चरिमे पल्लच्छेदाऽसंखेज्जदिमो गुणो होदि ।।२५३।।

ध्रुववृद्धिवर्धमानानि, द्विगुणं द्विगुणं क्रमेण जायंते।
चरमे पल्यच्छेदा, संख्येयिमो गुणो भवति ॥२५३॥

टीका – ऐसे ध्रुव कहिए एकरूप स्थानक-स्थानक प्रति वृद्धि, ताकरि बधता जघन्य स्थान दूणा है। बहुरि तैसे ही बधता-बधता तिस तै भी दूणा हो है। ऐसे अनुक्रम तै दूणा-दूणा होतै अंत का सज्ञी पर्याप्त जीव का उत्कृष्ट परिणाम योग-स्थान विषै पल्य का अर्धच्छेदनि का असंख्यातवां भाग प्रमाण गुणकार हो है। जघन्य योगस्थान के अविभाग प्रतिच्छेदनि के प्रमाण कौ पल्य का अर्धच्छेदनि का असंख्यातवां भाग करि गुणै जो प्रमाण होइ, तितने सर्वोत्कृष्ट योगस्थानक के अविभाग प्रतिच्छेद जानने ॥२५३॥

ते भेद कितने है ? सो कहिए है —

आदी अंते सुद्धे, वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा।
सेढिअसंखेज्जदिमा, जोगट्ठाणा णिरंतरगा ॥२५४॥

आदौ अंते शुद्धे, वृद्धिहृते रूपसंयुते स्थानानि।
श्रेण्यसंख्येयिमानि, योगस्थानानि निरंतरकानि ॥२५४॥

टीका – आदि तो जघन्य स्थान अर अंत उत्कृष्ट स्थान इनकौ शोधिए, अंत का उत्कृष्ट स्थानक के जेते अविभाग प्रतिच्छेद है, तिन मेस्यो जघन्य स्थानक के अविभाग प्रतिच्छेद घटाइए, जो प्रमाण आवै, ताकौ वृद्धि का भाग दीजिये, सो एक-एक स्थानक विषै सूच्यगुल का असख्यातवां भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धकनि के जेते अविभाग प्रतिच्छेद होंहि तितने बधै है; तातै इनका भाग दीजिए, जो प्रमाण आवै, तितना वृद्धि सहित स्थानक जानना। इनविषै एक जघन्य योगस्थान मिलाइए जो प्रमाण होइ, तितने सर्व निरंतर योगस्थान जानने। ते ए स्थान जगच्छ्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण है ॥२५४॥

अंतरगा तदसंखेज्जदिमा सेढी असंखभागा हु।
सांतरणिरंतराणिवि, सव्वाणिवि जोगठाणाणि ॥२५५॥

अंतरगाणि तदसंख्येयिमानि श्रेण्यसंख्येयभागानि हि।
सांतरनिरंतराण्यपि, सर्वाण्यपि योगस्थानानि ॥२५५॥

टीका – बहुरि अंतरगत योगस्थान ते निरंतर योगस्थाननि के असंख्यातवें भागि प्रमाण हैं। ते भी जगच्छ्रेणी के असंख्यातवे भाग ही हैं। बहुरि सांतर, निरंतर, मिश्ररूप योगस्थान, ते अंतरगत योगस्थाननि के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं, ते पणि जगच्छ्रेणी के असंख्यातवें भाग है। बहुरि इन तीनों योगस्थानकनि कौ मिलाए जो सर्व योगस्थान है, ते भी जगच्छ्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं, जातै असंख्यात के भेद बहुत हैं। सो यथायोग्य असंख्यात का भाग जानना ।।२५५।।

इन योगस्थानकनि विषैं आदि अंतस्थान कहै हैं —

सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स पढमे जहण्णओ जोगो ।
पज्जत्तसण्णिपंचिंदियस्स उक्कस्सओ होदि ।।२५६।।

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य प्रथमे जघन्यको योगः ।
पर्याप्तसंज्ञिपंचेंद्रियस्योत्कृष्टको भवति ।।२५६।।

टीका – इन सर्व योगस्थाननि विषै सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक के अंत का क्षुद्रभव का पहिला समय विषैं जो उपपाद जघन्य योगस्थान हो है, सो आदि स्थान जानना। बहुरि सैनी पंचेंद्री पर्याप्त जीव के जो उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान है, सो अंतस्थान जानना ।।२५६।।

पूर्वं कहे च्यारि प्रकार के बंध, तिनके कारण कहैं है —

जोगा पयडिपदेसा, ठिदिअणुभागा कसायदो होंति ।
अपरिणदुच्छिण्णेसु य, बंधट्ठिदिकारणं णत्थि ।।२५७।।

यौगात्प्रकृतिप्रदेशौ, स्थित्यनुभागौ कषायतो भवतः ।
अपरिणतोच्छिन्नेषु च बंधः स्थितिकारणं नास्ति ।।२५७।।

टीका – प्रकृतिबंध अर प्रदेशबंध – ए दोऊ तौ योगनि के निमित्त तैं हो हैं। जैसा शुभ वा अशुभ योग होइ, तैसी प्रकृति बंधै वा जैसा योगस्थान होइ, तैसा ही समयप्रबद्ध बंधै; तातैं इनकौं निमित्त योग है। बहुरि स्थितिबंध अर अनुभाग बंध कषायनि के निमित्त तैं हो है, जैसी कषाय हो है, तैसी ही यथायोग्य स्थिति बंधै अर जैसा कषाय होइ, तैसा यथायोग्य अनुभाग बंधै; तातैं इनको निमित्त कषाय है।

बहुरि जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त काल प्रमाण जाके कषायस्थान उदयरूप नाही अैसा उपशांतकषाय, बहुरि कषाय रहित क्षीणकषाय, सयोगी जिन – इनकै तत्काल बंध है, ताके स्थितिबंध का कारण नाही। चकार तै अयोगी केवली विषै च्यार्यों बंध का कारण योग अर कषाय नाही है ॥२५७॥

आगे योगस्थान अर प्रकृति संग्रह अर स्थितिभेद अर स्थितिबंधाध्यवसायस्थान अर अनुभागबधाध्यवसायस्थान अर कर्मन के प्रदेश – इनका अल्प-बहुत्व तीन गाथानि करि कहै हैं —

सेढिअसंखेज्जदिमा, जोगट्ठाणाणि होंति सव्वाणि ।
तेहिं असंखेज्जगुणो, पयडीणं संगहो सव्वो ॥२५८॥

श्रेण्यसंख्येयिमानि, योगस्थानानि भवंति सर्वाणि ।
तैरसंख्येयगुण:, प्रकृतीनां सग्रहः सर्वः ॥२५८॥

टीका – निरंतर वा सांतर वा सांतर-निरतर भेद कौं लीएं सर्व योगस्थान जगच्छ्रेणी के असख्यातवे भाग प्रमाण है। बहुरि तिनतै असख्यात लोक गुणा सर्व प्रकृति संग्रह है। सर्व योगस्थान के प्रमाण कौ लोक तै असख्यात गुणा प्रमाण करि गुणै सर्व उत्तरोत्तर कर्म प्रकृतिनि का प्रमाण हो है। सोई कहिए है —

ज्ञानावरणीय कर्म की उत्तर प्रकृति पांच, तहां श्रुतज्ञानावरण विषै पर्याय ज्ञान तौ निरावरण है; तातै असख्यात लोकबार षट्स्थान वृद्धिकरि बधतै अैसे जे पर्यायसमास ज्ञान के भेद, तिनके आवरण की अपेक्षा असंख्यात लोक कौ असंख्यात लोक करि गुणिए इतने श्रुतज्ञानावरण के भेद है। बहुरि श्रुतज्ञान है, सो मतिपूर्वक है; तातै तितने ही मतिज्ञानावरण के भेद है।

बहुरि अवधिज्ञानावरण विषै घनागुल का असंख्यात भाग जामै घटाइए, अैसा जो लौक, ताकौ सूच्यगुल का असख्यातवां भाग करि गुणिए जो प्रमाण होइ, तामैं एक और मिलाइए, एते देशावधि के भेद है, तातै देशावधि आवरण के भी इतने ही भेद है। बहुरि अग्निकाय के जीवनि के प्रमाण कौ अग्निकाय का शरीर की अवगाहना के भेदनि का प्रमाण करि गुणै जो प्रमाण होइ, तितने परमावधि के भेद हैं, तातै परमावधि आवरण के भी इतने ही भेद हैं। बहुरि सर्वावधि एक ही प्रकार है; तातै सर्वावधि आवरण का भी एक ही भेद है।

वहुरि वीस कोडाकोडी सागर का समय प्रमाण कल्पकाल कौं असख्यात गुणा कीजिए, इतने मन:पर्ययज्ञान के भेद हैं; तातै मन पर्ययज्ञानावरण के भी इतने ही भेद हैं।

वहुरि केवलज्ञान अभेद है; तातै केवलज्ञानावरण का एक भेद है।

असैं सर्व मिलि करि अवधि, मन पर्यय, केवलज्ञानावरण करि अधिक श्रुतज्ञानावरण युक्त मतिज्ञानावरण प्रमाण ज्ञानावरण को उत्तरोत्तर प्रकृतिनि के भेद हो हैं।

वहुरि सर्व प्रकृति नामकर्म के निमित्त तै है; तातै नामकर्म की प्रकृतिनि विषै आनुपूर्वी प्रकृति के उत्तरोत्तर भेद कहिए है। आनुपूर्वी क्षेत्रविपाकी है; तातै क्षेत्र की अपेक्षा याके भेद जानने। तहां नारकानुपूर्वी नरकक्षेत्रविपाकी है, सो नरक क्षेत्र एक राजू प्रतर प्रमाण है। वहुरि तहां उष्ट्रादि मुख के आकार जे योनिस्थान, तिन विना अन्यत्र नाही उपजै हैं; तातै तीन अंगुलनि के भेदनि विषै प्रमाण रूप सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण आयाम करि तिस क्षेत्र कौं गुणिए इतना है।

वहुरि पर्याप्त पंचेंद्री तिर्यंच वा मनुष्य जब नरक कौं गमन करै, तव नारकानुपूर्वी का उदय होइ तीहि करि पूर्वै तिर्यंच, मनुष्य पर्याय विषै आकार था, ताका नाश न होइ; तातै तहां पर्याप्त पंचेंद्री तिर्यंच वा मनुष्य की जघन्य अवगाहना तौ घनांगुल के असंख्यातवे भाग प्रमाण है, तिस करि पूर्वोक्त क्षेत्र कौं गुणे जो क्षेत्र का प्रमाण होइ, सो तौ नारकानुपूर्वी का पहिला भेद है। वहुरि तिनही की उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण है, तिस करि पूर्वोक्त क्षेत्र कौं गुणे जो प्रमाण होइ, सो नारकानुपूर्वी का अंत का भेद है। **'आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा'** इस सूत्र करि अंत का भेद विषै जितना क्षेत्र के प्रदेशनि का प्रमाण होइ, तामैं पहिला भेद के क्षेत्र का प्रदेशनि का प्रमाण घटाए अवशेष रहै, ताकौ एक-एक भेद विषै एक-एक प्रदेश वधती है; तातै एक का भाग दीएं जेते के तेते रहै, तामै एक मिलाए जो प्रमाण होइ, तितनी नारकानुपूर्वी के उत्तरोत्तर भेद जानने।

वहुरि असैं ही तिर्यंचानुपूर्वी तिर्यंच क्षेत्रविपाकी है, सो तिर्यंच का क्षेत्र सर्व लोक है।

वहुरि भोगभूमि विना नारकी अर त्रस-स्थावर तिर्यंच अर कर्मभूमिया मनुष्य अर सहस्रार पर्यंत देव – ए तिर्यंचगति विषै उपजै हैं, सो आनुपूर्वी के उदय तै पूर्व

शरीर के आकार कौ न छांडै है; तातैं जघन्य अवगाहना सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक की घनागुल के असख्यातवें भाग प्रमाण ताकरि पूर्वोक्त क्षेत्र कौ गुणै तिर्यचानुपूर्वी का प्रथम भेद होइ है । बहुरि उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात घनागुल प्रमाण, ताकरि गुणै अत का भेद होइ, सो **'आदी अंते सुद्धे'** इत्यादि सूत्र करि अत मेंस्यो आदि कौ घटाए एक का भाग दीए एक मिलाए जो प्रमाण होइ, तितने भेद तिर्यचानुपूर्वी के जानने ।

बहुरि मनुष्यगत्यानुपूर्वी मनुष्यक्षेत्रविपाकी है, सो मनुष्य क्षेत्र तिन मनुष्यनि कै पर्याप्त-अपर्याप्त पचेद्रियपना है; तातै तिनकी उत्पत्तियोग पैतालीस लाख योजन प्रमाण गोल विष्कभ करि गुणित त्रसनाली एक राजू ताका प्रतर प्रमाण है । इहा मानुषोत्तर परै चार्‌यो कोण विषै भी मनुष्य न उपजै, तातै चौकोर क्षेत्र न कह्या । सो आदि की छह पृथ्वी का नारकी वा त्रस स्थावर कर्मभूमिया तिर्यंच वा मनुष्य – ए मनुष्य विषै उपजै है, सो आनुपूर्वी के उदय करि पूर्व आकार कौ न छांडै, तातै जघन्य अवगाहना घनागुल के असख्यातवे भाग प्रमाण तीहि करि गुणै पहिला भेद अर उत्कृष्ट अवगाहना सख्यात घनांगुल प्रमाण, ताकरि गुणै अंत का भेद सो **'आदी अंते सुद्धे'** इत्यादिक सूत्र करि अत मेंस्यों आदि कौ घटाएं एक का भाग दीए, एक मिलाए जो प्रमाण होइ, तितने भेद मनुष्यानुपूर्वी के जानने ।

बहुरि देवानुपूर्वी देवक्षेत्रविपाकी है । तिन देवनि का क्षेत्र तिनकै त्रसपना तैं विवक्षारूप ज्योतिषी लोक का अत पर्यंत नव सौ योजन करि त्रसनाली के प्रतर क्षेत्र कौं गुणै जो प्रमाण होइ, तितना जानना और देवनि का उत्पत्तिक्षेत्र स्तोक – थोरा है; तातै विवक्षा न लीनी, ज्योतिषीनि की ही मुख्यता करि कथन कीया है। तहां पर्याप्त पंचेद्री तिर्यंच वा मनुष्यतै देव विषै उपजै है । तहां देवगति कौं गमनकाल विषै देवगति, देवायु का उदय सहित देवानुपूर्वी का उदय करि पूर्व आकार का नाश न होइ, तातैं तिनकी जघन्य अवगाहना सख्यात घनागुल प्रमाण है । ताकरि तिस क्षेत्र की गुणि प्रथम भेद हो है । उत्कृष्ट अवगाहना सख्यात घनांगुल प्रमाण है, ताकरि गुणै अत भेद हो है । सो **'आदी अंते सुद्धे'** इत्यादिक सूत्र करि अत मेस्यो आदि कौ घटाए एक का भाग दीए, एक मिलाए जो प्रमाण होइ, तितने भेद देवगत्यानुपूर्वी के जानने ।

ए सर्व आनुपूर्वी के उत्तरोत्तर भेद पूर्वोक्त ज्ञानावरण के उत्तरोत्तर भेदनि विषै मिलाइए तब सर्व प्रकृति सग्रह होइ । ज्ञानावरण अर आनुपूर्वी इनकी तौ

उत्तरोत्तर प्रकृति कहीं, शेष प्रकृतिनि का उत्तरोत्तर भेदनि का उपदेश इहां नाहीं, ऐसा कथन टीकाकार रचना के अनुसार कीया है। बहुश्रुतनि कौं शुद्ध करि लेना।

ऐसे कर्मनि की उत्तरोत्तर-प्रकृतिनि का प्रमाण कह्या ।।२५८।।

तेहिं असंखेज्जगुणा, ठिदिअवसेसा हवंति पयडीणं ।
ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणा तत्तो असंखगुणा ।।२५६।।

तैरसंख्येयगुणाः, स्थित्यवशेषा भवंति प्रकृतीनां ।
स्थितिबंधाध्यवसायस्थानानि ततोऽसंख्यगुणानि ।।२५६।।

टीका – तिन प्रकृति-संग्रहनि तें प्रकृतिनि के स्थिति के भेद असंख्यात गुणे हैं। काहेतें ? एक-एक प्रकृति के स्थितिभेद जघन्य स्थिति कौं उत्कृष्ट स्थिति में घटाइ एक समय का भाग देइ, तामैं एक मिलाएं, जघन्य स्थिति तै लगाय एक-एक समय बधता उत्कृष्ट स्थिति पर्यंत संख्यात पल्य प्रमाण पाइए है। सो एक प्रकृति के स्थितिभेद संख्यात पल्य प्रमाण होइ, तौ पूर्वोक्त सर्व उत्तरोत्तर प्रकृतिनि के जे भेद तिनके स्थिति-भेद तै कितने हो हैं ? ऐसे त्रैराशिक करि प्रकृति संग्रह के प्रमाण ते संख्यात पल्य गुणे स्थिति के भेद हो हैं। बहुरि इन स्थिति के भेदनि तैं स्थितिबंधाध्यवसायस्थान असंख्यात गुणे हैं। जिन परिणामनि तै स्थितिबंध होइ, तिनके स्थाननि कौं स्थितिबंधाध्यवसायस्थान कहिए हैं।

सो इनका कथन अंकसंदृष्टि करि दिखाइए हैं—

एक प्रकृति की स्थितिबंध कौं कारण कषाय परिणाम इकतीस सौ (३१००) सो तौ द्रव्य जानना। अर तिस एक प्रकृति के स्थितिभेद चालीस (४०) सो स्थिति स्थान जानना। तहां नानागुणहानि पांच (५), नानागुणहानि प्रमाण दूवा मांडि परस्पर गुणें अन्योन्याभ्यस्तराशि बत्तीस (३२), एक गुणहानि विषें स्थिति का प्रमाण सोई गुणहानि आयाम, सो नानागुणहानि शलाका का भाग सर्व स्थिति कौं दीएं जो प्रमाण होइ, सो गुणहानि आयाम का प्रमाण जानना। सो नाना गुणहानि पांच (५), ताका भाग स्थिति चालीस (४०), ताकौं दीएं आठ पाए, सो आठ एक गुणहानि का आयाम जानना। याकौ दूणा कीएं दोगुणहानि का प्रमाण हो है।

तिन स्थिति के भेदनि विषें सर्व तैं जघन्य स्थितिबंध को कारण ऐसें जो कषायाध्यवसाय ते सर्व तै थोरे हैं, तिनका प्रमाण नव (९)। 'पदहतमुखमादिधनं'

इस सूत्र करि एक गुणहानि का जो आयाम, सोई हूवा पद कहिए गच्छ आठ (८), ताकरि हतं कहिए गुण्या हूवा, मुखं कहिए आदि स्थान नव (९), सो आदि-धन कहिए आदि धन हो है। सो आदि धन बहत्तरि (७२) भया।

बहुरि एक अधिक गुणहानि का भाग आदि स्थानक कौ दीए जो प्रमाण होइ सो चय जानना। सो इहां गुणहानि का प्रमाण आठ, एक अधिक कीए नव, ताका भाग आदि स्थानक नव (९), ताकौ दीए एक पाया, सोई चय जानना। एक-एक स्थानक विषै एक-एक बधता कषायाध्यवसाय स्थान प्रथम गुणहानि पर्यंत जानना। सो **'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं'** एक घाटि गच्छ का आधा कौ चय करि गुणिए पीछै गच्छ करि गुणै जो प्रमाण होइ, सो सर्व चयधन जानना।

सो इहां गच्छ आठ, एक घटाए सात, आधा साढा तीन, चय का प्रमाण एक, ताकरि गुणै साढा तीन ही रहे। बहुरि गच्छ का प्रमाण आठ, ताकरि गुणै अट्ठाइस भए, सो चयधन जानना, सो आदि धन अर उत्तर धन दोऊ मिलाएं, प्रथम गुणहानि का सर्व द्रव्य हो है। सो आदि धन बहत्तरि (७२), उत्तर धन अट्ठाईस (२८), दोऊ मिले सौ भए (१००) सो प्रथम गुणहानि का सर्व द्रव्य जानना। बहुरि गुण-हानि-गुणहानि प्रति दूणा-दूणा द्रव्य जानना १००, २००, ४००, ८००, १६००। एक घाटि नानागुणहानि प्रमाण बार दूणां-दूणां होइ सो अंतस्थानक विषै अन्यो-न्याभ्यस्तराशि का जो आधा प्रमाण ताकरि प्रथम कौ गुणै जो प्रमाण होइ, सो अंत का प्रमाण जानना।

इहां नानागुणहानि पांच में एक घटाए च्यारि, सो इतना दूवा मांडि परस्पर गुणें सोला भए, सोई अन्योन्याभ्यस्तराशि बत्तीस का आधा प्रमाण है, सो सोला करि प्रथम स्थानक सौ कौ गुणें सोला सौ भए, सोई अंत गुणहानि का द्रव्य जानना। इन सबनि का जोड दीजिए है – **'अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रूऊणु-त्तरभजियं'** यहा स्थानक-स्थानक प्रति समान गुणकार होइ, तिनके जोड देने का यहु करणसूत्र है, सो गुणकार करता-करता अंत के विषै जो प्रमाण आवै, ताकौ गुण-कार का प्रमाण करि गुणिए, तामेंस्यों आदि का प्रमाण घटा दीजिए, जो प्रमाण आवे, ताकौ एक घाटि उत्तर का भाग दीजिए, तब सर्वधन होइ।

सो इहा अंतस्थानक का प्रमाण सोला सौ (१६००) अर दूणा-दूणा किया था, तातै गुणकार को प्रमाण करि गुणै बत्तीस सौ (३२००) भए, तामै आदि का

प्रमाण सौ घटाए इकतीस सौ रहे । याकौ इहां दूणा-दूणा कीया है; तातै उत्तर का प्रमाण दोय, तामैं एक घटाए एक, ताका भाग दीएं इकतीस सौ ही रहै, सो पांचौं गुणहानि का जोड दीए एक प्रकृति के स्थितिबंध कौ कारण इकतीस सौ जानने ।

अब यथार्थ करि कहिए है —

एक प्रकृति के स्थितिबंध कौ कारण असंख्यात लोक प्रमाण कषायाध्यवसाय हैं, सो द्रव्य जानना । बहुरि एक प्रकृति का जघन्य स्थिति तै लगाय उत्कृष्ट स्थिति पर्यंत संख्यात पल्य प्रमाण स्थिति के भेद, सो स्थितिस्थान जानना । बहुरि नानागुणहानि पल्य का अर्धच्छेदां के असंख्यातवें भाग मात्र जाननी । बहुरि अन्योन्याभ्यस्तराशि पल्य के असंख्यातवे भाग मात्र जाननी । नानागुणहानि शलाका का स्थिति कौ भाग दीएं जो प्रमाण होइ, सो गुणहानि आयाम जानना । याकौ दूणां कीए दोगुणहानि हो है । तहां सर्व स्थिति के भेद विषै जघन्य स्थितिबंध कौं कारण असैं कषायाध्यवसायस्थान सर्व तै थोरे हैं, ते परिण असंख्यात लोक मात्र हैं ।

'पदहतमुखमादिधनं' गच्छ करि गुण्या हूवा आदि स्थानक सो आदि धन जानना । एक अधिक गुणहानि आयाम का भाग आदि कौ दीएं चय का प्रमाण होइ, सो **'व्येकपदार्थघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं'** एक घाटि गच्छ का आधा कौ चयकरि गुणिए जो प्रमाण होइ, ताकौ गच्छ करि गुणिए तब चयधन होइ । बहुरि आदिधन अर चयधन इन दोउनि कौ मिलाए प्रथम गुणहानि का सर्व द्रव्य होइ, सो गुणहानि-गुणहानि प्रति दूणां-दूणां होते-होते अंत विषैं एक घाटि नानागुणहानि प्रमाण दूणा होतै अन्योन्याभ्यस्तराशि का आधा प्रमाण करि आदि कौ गुणै जो प्रमाण होइ, सोई अंत की गुणहानि का द्रव्य जानना ।

सो **'अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रूऊणुत्तरभजियं'** इस सूत्र करि अंत विषै जो प्रमाण भया, ताकौ गुणकार दोय करि गुणैं, तामैं आदि का प्रमाण घटाइए उत्तर का प्रमाण दोय, तामै एक घटाएं एक रह्या ताका भाग दीजिए, सो तेते ही रहें, यों करता जो प्रमाण भया सो सर्व गुणहानि का धन जानना । सो एक प्रकृति के संख्यात पल्य प्रमाण स्थितिभेद तिनके इतने असंख्यात लोकप्रमाण स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान भए, तौ सर्व उत्तरोत्तर प्रकृति संग्रह के भेदनि के कितने स्थिति बंधाध्यवसाय स्थान होंहि ? असै त्रैराशिक करि स्थिति के भेदनि तैं असंख्यात लोक गुणे प्रकट देखिए है । इन स्थितिबंधाध्यवसाय स्थानकनि विषै अधःप्रवृत्तकरणवत्

अनुकृष्टि विधान है, सो आगे कहैगे । इहा मुख्य कथन नाही; तातै न कह्या है ॥२५९॥

अणुभागाणं बंधज्झवसाणमसंखलोगगुणिदमदो ।
एत्तो अणंतगुणिदा, कम्मपदेसा मुणेयव्वा ॥२६०॥

अनुभागानां बंधाध्यवसायमसंख्यलोकगुणितमत. ।
एतस्मादनंतगुणिताः, कर्मप्रदेशाः मंतव्याः ॥२६०॥

टीका – इन सर्व स्थितिबधाध्यवसाय स्थाननि तै अनुभागाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोक गुणां जानना । सो कहिए है — जघन्य स्थितिबंध नै कारण जे कषायाध्यवसाय स्थान तिन संबंधी अनुभागाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोक करि असंख्यात लोक कौ गुणिए इतने प्रमाण हैं, सो इहा द्रव्य जानना । बहुरि जघन्य स्थितिबंध कौ कारण जे स्थितिबधाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोकवार षट्स्थान वृद्धि कौ लीएं है, तथापि असख्यात लोक मात्र ही है, सो इहा स्थितिस्थान जानने । बहुरि नानागुणहानि शलाका आवली कौ दोय बार असंख्यात का भाग दीजिए तीह प्रमाण है ।

बहुरि तिस नानागुणहानि का भाग स्थितिस्थानकनि कौ दीएं जो प्रमाण होइ तितना एक गुणहानि का आयाम जानना । याकौ दूणां कीए दोगुणहानि हो है । आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण अन्योन्याभ्यस्तराशि है । इहां जघन्य स्थितिबंध कौ कारण जघन्य अध्यवसाय स्थान तीहिं विषै अनुभागाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोक प्रमाण है, ते सब तैं थोरे है, याकौ मुख कहिए । **'पदहतमुखमादिधनं'** पद जो गुणहानि का आयाम, ताकरि इस मुख कौ गुणें जो प्रमाण होइ, सो आदि-धन जानना । **'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं'** एक घाटि पद जो गुणहानि का आयाम, ताकौ आधा कीजिए । बहुरि याकौ एक घाटि पद का भाग आदि कौ दीजिए सो चय का प्रमाण है, ताकरि गुणिए बहुरि जो प्रमाण होइ, ताकौ पदकरि गुणिए, यों करता जो प्रमाण होइ, सो चयधन जानना ।

आदिधन अर चयधन कौ मिलाए प्रथम गुणहानि का सर्व द्रव्य हो है । सो गुणहानि-गुणहानि प्रति दूणा-दूणा अनुक्रम करि अतगुणहानि विषै एक घाटि नाना-गुणहानि प्रमाण दूणा कीए अन्योन्याभ्यस्तराशि का आधा प्रमाण गुणकार हो है । याकरि आदि कौ गुणें अत गुणहानि का सर्व द्रव्य हो है । **'अंतधणं गुणगुणियं**

आदिविहीणं रूऊणुत्तरभजियं' इस सूत्र करि अंत गुणहानि के द्रव्य कौं गुणकार दोय करि गुणिए, तामैस्यो आदि गुणहानि का द्रव्य घटाइए, उत्तर जो दोय, तामैं एक घटाइ एक रह्या, ताका भाग दीए तितने ही रहे, यो करता जो प्रमाण भया, तितना सर्व गुणहानि का द्रव्य भया । सो जघन्य स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान संबंधी अनुभागाध्यवसायस्थानकनि का इतना प्रमाण भया ।

सो जो एक स्थिति भेद का अनुभागाध्यवसाय स्थानभेद इतने भए, तौ पूर्वोक्त सर्वस्थिति के भेदनि का अनुभागाध्यवसाय स्थान केते होइ ? ऐसें त्रैराशिक करतें लब्धराशि का जो प्रमाण होइ, सो स्थिति बंधाध्यवसायनि तैं असंख्यात गुणा जानना ।

बहुरि इन अनुभागाध्यवसाय स्थानकनि तैं कर्म के प्रदेश जे परमाणू ते अनंत गुणे है, सोई कहिए है—अंकसंदृष्टि करि कथन दिखाइए है—

एक समय विषैं जितने परमाणु बंधैं, सो समयप्रबद्ध कहिए तिनका प्रमाण तरेसठि सौ (६३००), कर्म की स्थिति का प्रमाण अठतालीस समय, सो स्थिति (४८) नानागुणहानि छह (६), एक-एक गुणहानि विषै जेती स्थिति होइ, सो गुणहानि के आयाम आठ (८), नानागुणहानि प्रमाण दूवे मांडि परस्पर गुणे अन्योन्याभ्यस्त-राशि चौसठि (६४), गुणहानि का आयाम कौ दूणा कीजिये, सो दोगुणहानि का प्रमाण सोलह ।

सो एक घाटि अन्योन्याभ्यस्तराशि तरेसठि का भाग सर्व द्रव्य तेरसठि सौ कौं दीजै तब सौ (१००) पाया । सो अंत की गुणहानि का प्रमाण जानना । यातैं दूणां-दूणा द्रव्य आदि की गुणहानि पर्यंत जानना । सो आधा अन्योन्याभ्यस्तराशि करि अंतगुणहानि के द्रव्य कौ गुणैं आदि गुणहानि का द्रव्य हो है, सो बत्तीस करि सौ को गुणे बत्तीस सौ हो है । सोई आदि गुणहानि का द्रव्य जानना । यातैं द्वितीयादि गुणहानि का द्रव्य आधा-आधा जानना (३२००, १६००, ८००, ४००, २००, १००) ।

बहुरि तीहि प्रथम गुणहानि संबंधी द्रव्य कौं गुणहानि आयाम का भाग दीजिए तब मध्यधन होइ, सो बत्तीस सौ नै आठ का भाग दीया च्यारि सौ पाया, सो मध्यधन है, याकौ एक घाटि गुणहानि आयाम का आधा प्रमाण कौ निषेक भागहार जो दोगुणहानि तामैस्यों घटाएं जो प्रमाण रहै, ताका भाग दीए जो

प्रमाण आवै, सो चय का प्रमाण जानना । सो एक घाटि गुणहानि आयाम सात, ताका आधा साढा तीन, तिस कौं दोगुणहानि सोलह मेंस्यों घटाए साढा बारा रहे, ताका भाग मध्यधन कौं दीए बत्तीस पाया, सोई प्रथम गुणहानि विषै चय जानना।

इस चय कौ दोगुणहानि करि गुणे जो प्रमाण होइ, सो आदि निषेक जानना, सो बत्तीस कौ सोलह करि गुणे पांच सौ बारा आदि निषेक भया । यामेंस्यो एक चय बत्तीस घटाएं च्यारि सौ असी दूसरा निषेक जानना ।

असें अनुक्रम तें प्रथम गुणहानि का अंत निषेक पर्यंत घटावना ।

बहुरि प्रथम गुणहानि का अंत निषेक में प्रथम गुणहानि संबधी एक चय घटाएं प्रथम गुणहानि का प्रथम निषेक तें आधा प्रमाण होइ, सोई द्वितीय गुणहानि का प्रथम निषेक जानना । यातें द्वितीय गुणहानि सबधी एक-एक चय घटाएं द्वितीयादिक निषेक हो है । इहां पूर्वोक्त प्रकार विधान कीए प्रथम गुणहानि तें द्वितीय गुणहानि विषै चय का प्रमाण वा निषेकनि का प्रमाण सर्व आधा-आधा हो है । याके अंत के निषेक मेंस्यों द्वितीय गुणहानि सबधी एक चय घटाए तृतीय गुण-हानि का प्रथम निषेक हो है । यातें एक-एक चय घटाए द्वितीयादिक निषेक हो है ।

इहां चय का वा निषेकनि का प्रमाण द्वितीय गुणहानि तें आधा-आधा जानना ।

असें ही गुणहानि-गुणहानि प्रति आधा-आधा प्रमाण है, सो सर्व गुणहानि का यंत्र लिखिए है[१] —

इहां असा अर्थ जानना – समयप्रबद्ध तरेसठि सौ वर्गणा कर्म की बधरूप भई अर ताका आबाधाकाल अधिक अठतालीस समय की स्थिति बधी । तहा आबाधा काल विषै तौ कोऊ परमाणु खिरै नाही, आबाधाकाल भए पीछै पहिले समय पांच सौ बारा परमाणु खिरै, पीछै बत्तीस-बत्तीस घाटि खिरै । एक गुणहानि का काल विषै सर्व परमाणु बत्तीस सौ खिरै कर्मवर्गणा कौ छोडै गलि जाई । द्वितीय गुणहानि का प्रथम समय विषै दोय सौ छप्पन खिरै, पीछै सोलह-सोलह घाटि खिरै । सर्व परमाणु द्वितीय गुणहानि विषै सोलह सौ खिरै । असें गुणहानि-गुणहानि प्रति आधा-आधा खिरै । तहां सर्वगुणहानि विषै तरेसठि सौ परमाणु इसप्रकार खिरै है ।

१–टिप्पणी पृष्ठ २८२ पर देखें ।

नाम	चय का प्रमाण	निषेकनि का प्रमाण	सर्वद्रव्य का प्रमाण
प्रथम गुणहानि	३२	५१२ ४८० ४४८ ४१६ ३८४ ३५२ ३२० २८८	३२००
द्वितीय गुणहानि	१६	२५६ २४० २२४ २०८ १९२ १७६ १६० १४४	१६००
तृतीय गुणहानि	८	१२८ १२० ११२ १०४ ९६ ८८ ८० ७२	८००
चतुर्थ गुणहानि	४	६४ ६० ५६ ५२ ४८ ४४ ४० ३६	४००
पंचम गुणहानि	२	३२ ३० २८ २६ २४ २२ २० १८	२००
षष्टम गुणहानि	१	१६ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९	१००
सर्वद्रव्य	६३००		

सो जैसे अंकसंदृष्टि करि कथन दिखाया, तैसें अर्थ करि कथन जानना । विशेष इतना – जो द्रव्यादिक का प्रमाण जैसा होइ, तैसा जानना ।

सोई कहिए हैं । मोहनीय कर्म की अपेक्षा कथन दिखाइए है —

मोहनीय कर्म की परमाणु समयप्रबद्ध विषै जितने बंधें, सो द्रव्य का प्रमाण जानना । मोहनीय कर्म की स्थिति सत्तर कोडाकोडी सागर प्रमाण, तामेंस्यों आबाधा-काल घटाए जो प्रमाण रहे, तीहि का जितना समय, सो स्थिति का प्रमाण जानना । बहुरि पल्य की वर्गशलाका का जेता अर्धच्छेद तिनको पल्य का अर्धच्छेदां मेंस्यों घटाएं जो प्रमाण रहे, सो नानागुणहानि शलाका का प्रमाण जानना । इसका भाग तिस स्थिति कौं दीएं जो प्रमाण आवै, तितना एक गुण-हानि का आयाम का प्रमाण जानना । याकौ दूणा कीए दोगुणहानि का प्रमाण हो है।

नानागुणहानि प्रमाण दूवा मांडि परस्पर गुणें जो प्रमाण होइ, सो अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण जानना । सो अंकसंदृष्टि विषै जैसा विधान कह्या तैसा विधान करतें गुणहानि विषै वा निषेकनि विषै जितना-जितना द्रव्य का प्रमाण आवै, सो जानना । सो आबाधाकाल भए पीछे प्रथम समय विषै तौ प्रथम गुणहानि का प्रथम निषेक विषैं जितना द्रव्य का प्रमाण होइ, तितने परमाणु खिरें । दूसरा समय विषै दूसरा निषेक विषै जितना द्रव्य का प्रमाण होइ, तितने परमाणु खिरें ।

ऐसें एक गुणहानि का काल का जितना समय आयाम होइ, तितने समयनि विषै प्रथम गुणहानि का जितना द्रव्य होइ, तितने परमाणु खिरै । पीछे इस ही अनुक्रम तैं गुणहानि-गुणहानि विषैं आधा-आधा खिरै, सो सर्वगुणहानि विषैं संपूर्ण समयप्रबद्ध इस अनुक्रम तै कर्मपणा कौं छोडि खिरि जांय ।

सो ऐसैं तौ जो समयप्रबद्ध बंधै, ताकी निर्जरा होने का विधान है। अर एक-एक समयप्रबद्ध समय-समय प्रति नवीन बंधै है, सो द्रव्यकर्म तैं अनादि संबंध है, तातैं पूर्वोक्त प्रकार बंध होतैं वा निर्जरा होतैं जीव कै किंचिदून द्व्यर्धगुणहानि करि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सदा काल सत्ता रहे है। गुणहानि का आयाम का जो प्रमाण ताकौं ड्योढा कीएं जो प्रमाण होइ, तामें किछू प्रमाण घटाएं जो प्रमाण रहै, तीहिं करि समयप्रबद्ध का प्रमाण कौं गुणें जो प्रमाण आवै, तितने कर्म परमाणुनि की सत्ता जीव कै सदा काल पाइए।

बहुरि वर्तमान काल विषै एक-एक समयप्रबद्ध का एक-एक निषेक उदय होतैं, समय-समय प्रति एक-एक समयप्रबद्ध का उदय हो है। सो कैसें ? द्व्यर्ध-गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र सत्ता है। बहुरि कैसें एक-एक समयप्रबद्ध प्रमाण उदय है ? इस कथन कौ अंकसंदृष्टि तैं त्रिकोणरचना करि दिखाइए है।

त्रिकोण-यंत्र का अर्थ लिखिए हैं – जो समयप्रबद्ध तरेसठि सौ परमाणु प्रमाण बंधरूप भया, सो आबाधाकाल को छोडि अठतालीस समयरूप स्थिति विषै अनुक्रम तैं अठतालीस समयनि विषै ऐसें खिरै है – ५१२, ४८०, ४४८, ४१६, ३८४, ३५२, ३२०, २८८ यहु प्रथम गुणहानि। २५६, २४०, २२४, २०८, १९२, १७६, १६०, १४४ यहु द्वितीय गुणहानि। १२८, १२०, ११२, १०४, ९६, ८८, ८०, ७२ यहु तृतीय गुणहानि। ६४, ६०, ५६, ५२, ४८, ४४, ४०, ३६ यहु चतुर्थ गुणहानि। ३२, ३०, २८, २६, २४, २२, २०, १८ यहु पंचम गुणहानि। १६, १५, १४, १३, १२, ११, १०, ९ यहु षष्टम गुणहानि।

इन छहो गुणहानिनि विषै तरेसठि सौ परमाणु ऐसें खिरै हैं, तहा जिस समय-प्रबद्ध का बंध भएं आबाधा अधिक अड़तालीस समय होइ गये, तिसतैं लगाय जे याके पहिलै समयप्रबद्ध बधे थे, तिनका तौ कोऊ निषेक सत्ता विषै रह्या नाही; तातैं उनका तौ किछू प्रयोजन रह्या ही नाही। बहुरि जिस समयप्रबद्ध का बंध भए आबाधा अधिक सैतालिस समय भए, तिसके सैंतालीस निषेक तौ गलि गए, एक निषेक अंत का अवशेष रह्या, सो त्रिकोण यंत्र विषै नव परमाणु रूप अंत का निषेक ऊपरि लिख्या।

बहुरि ताके नीचै जिस समयप्रबद्ध का बध भएं आबाधा अधिक छियालीस समय भए, तिसके छियालीस निषेक तौ गलि गए, दोय निषेक अवशेष सत्ता विषै रहै,

सो त्रिकोण यत्र विषै नव परमाणु अर दश परमाणु का दोय निषेक लिखे। बहुरि ताके नीचै जिस समयप्रबद्ध का बध भए आबाधा अधिक पैतालीस समय भए, तिसके पैतालीस निषेक तो खिर गये, तीन निषेक अवशेष सत्ता विषै रहे, सो त्रिकोण यत्र विषै नव परमाणु वा दश परमाणु वा ग्यारह परमाणु का तीन निषेक लिखे।

अैसै ही जिस-जिस समयप्रबद्ध का बंध भए एक-एक घाटि समय भए, तिस-तिस के एक-एक घाटि निषेक तौ गलि गए, अवशेष एक-एक अधिक निषेक सत्ता विषै रहे, तिनकौ नीचै-नीचै लिखतै जिस समयप्रबद्ध का बंध भए आबाधा अधिक एक समय भया होइ, ताका एक निषेक तौ गलि गया, अवशेष सैतालीस निषेक रहे, ते नव सौ लगाय च्यारि सौ असी परमाणु के निषेक लिखे।

बहुरि ताके नीचै अंत विषै जिस समयप्रवद्ध का बध भए आबाधाकाल ही भया अर जाका एक भी निषेक खिर्या नाही ताके नव सौ लगाय पाच सौ बारा पर्यत परमाणुवां का सर्व अठतालीस सौ ही निषेक सत्ता विषै पाइए है, ते लिखे।

अैसे त्रिकोण-यत्र विषै गले पीछे अवशेष निषेक रहे, ते अनुक्रम तै लिखे। सो इस सर्व त्रिकोण-यत्र का जोड दीए जो प्रमाण होइ, तितनी सत्ता जीव कै सदा काल जाननी।

जोड देने का विधान कहिए है —

अत गुणहानि विषै अत का निषेक नव लिखि, ताकौ एक-एक अधिक गुणकार करनां अैसी एक पक्ति करनी अर दूसरी पंक्ति विषै अंत विषै तो शून्य लिखना, पीछै सकलन रूप प्रमाण लिखना। बहुरि द्वितीयादिक गुणहानि विषै प्रथमादिक गुणहानि का सर्वद्रव्य तौ आदि जानना, उत्तर दोऊ पक्तिनि विषै पूर्वोक्त तै दूणा-दूणा प्रमाण जानना। तहां प्रथम गुणहानि की पक्ति दोय अैसे जाननी —

९ १	०
९ २	१ १
९ ३	१ ३
९ ४	१ ६
९ ५	१ १०
९ ६	१ १५
९ ७	१ २१
९ ८	१ २८

तहा नौ एकौ नौ, सो तो पहिला जोड, बहुरि नव दूणा अठारह अर एक एकौ एक, दोऊ मिलै उगणीस भए। सो नव अर दश दोऊ मिले उगणीस भए। बहुरि नवती सत्ताईस अर तीन इक तीन, दोऊ मिलै तीस भए सो नव, दस, ग्यारा इनका जोड़ तीस भया – अैसे जोड़ देतै अंत विषै नव आठो वहत्तरि अर अठाईस एकौ अठाईस दोऊ मिलै सौ भया सो गुणहानि के सर्व निषेकनि का जोड़ सौ भया। बहुरि द्वितीय गुणहानि की पक्ति दोय अैसी जाननी—

९ २ १	०
९ २ २	२ १
९ २ ३	२ ३
९ २ ४	२ ६
९ २ ५	२ १०
९ २ ६	२ १५
९ २ ७	२ २१
९ २ ८	२ २८

नौ दूनौं अठारा, अठारा एकौ अठारा, सो तौ पहिला निषेक अर नव दूनौ अठारा, अठारा दूनौ छत्तीस तौ ए अर दोय एकौ दोय इन कौ मिलाएं अठतीस भये, सो अठारा अर वीस मिलैं अठतीस हो हैं। अैसैं ही अत विषै नव दूनौ अठारा, अठारा आठ एक सौ चवालीस अर अठाईस दूनौ छप्पन, दोऊ मिलें दोय सौ भए, सो द्वितीय गुणहानि विषै सर्व निषेकनि का जोड जानना। सो इस द्वितीय गुणहानि विषै प्रथम गुणहानि का द्रव्य सर्वत्र एक-एक ठिकाने मिलाएं त्रिकोण विषै जोड हो है।

जैसे प्रथम गुणहानि का द्रव्य सौ मिलाए एक सौ अठारा का जोड भया, ताके नीचे अठतीस में सौ मिलाए एक सौ अठतीस का जोड भया अैसे ही जानना। अैसे अंत की गुणहानि पर्यंत दोऊ पंक्तिनि विषै तौ दूणा-दूणा प्रमाण माड़ि तिन दोऊ पंक्तिनि का एक-एक ठिकाना का प्रमाण मिलाए जो-जो प्रमाण आवे तामैं पहिली भई जे गुणहानि तिनका सर्व द्रव्य मिलाए जो-जो प्रमाण होइ, तितना-तितना त्रिकोण विषै अनुक्रम तैं पंक्तिनि का जोड जानना। ९। १९। ३०। ४२। ५५। ६९। ८४। १००। ११८। १३८। १६०। १८४। २१०। २३८। २६८। ३००। ३३६। ३७६। ४२०। ४६८। ५२०। ५७६। ६३६। ७००। ७७२। ८५२। ९४०। १०३६। ११४०। १२५२। १३७२। १५००। १६४४। १८०४। १९८०। २१७२। २३८०। २६०४। २८४४। ३१००। ३३८८। ३७०८। ४०६०। ४४४४। ४८६०। ५३०८। ५७८८। ६३००।

इन सब जोडनि का जोड दीए जो प्रमाण होइ, तितना सर्व त्रिकोण-यत्र का जोड होइ। सो यहु सर्व जोड किंचिदून द्वयर्धगुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण जानना। सर्व त्रिकोण का जोड इकहत्तरि हजार तीन सौ च्यारि भया (७१३०४) सो गुणहानि का आयाम का प्रमाण आठ ताकौ ड्योढा कीए बारा भए, सोई द्वयर्धगुणहानि करि समयप्रबद्ध तरेसठि सौ कौ गुणिए, तब पिचहत्तरि हजार छह सौ हूवा अर इहां इकहत्तरि हजार तीन सौ च्यारि ही हूवा; तातें गुणकार विषै किंचित् ऊन कह्या, सो जितना यहु सर्व त्रिकोण-यत्र का जोड आया, तितनी सत्ता जाननी।

सो जैसें अंकसदृष्टि करि कथन कीया, तैसें अर्थसदृष्टि करि कथन जानना। निषेकादिक का प्रमाण तो जैसा होइ, तैसा जानना। और विधान एवं अंकसंदृष्टि

वत् जानना। संस्कृत टीका विषे अर्थसंदृष्टि वा अंकसंदृष्टि करि जोड देने का विधान कह्या है, तहास्यों विशेष जानना। वा आगे संदृष्टि अधिकार विषै लिखैंगे, प्रयोजन इहां लिख्या ही है।

असैं किंचिदून द्व्यर्धगुणहानि करि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण जीव कै सत्ता सदा काल पाइए है, गुणहानि आयाम के समयनि का जो प्रमाण, ताकौ डचोढा करि, तामैस्यों किंचित् ऊन कहिए पल्य की संख्यात वर्ग शलाका करि अधिक गुणहानि आयाम का अठारह्वां भाग घटाइए तीहि करि समयप्रबद्ध कौं गुणैं जो प्रमाण होइ, तितनी कर्म परमाणु जीव कै सदा काल रहै है। याही तै सर्वस्थिति संबंधी अनुभागबंधाध्यवसाय-स्थाननि तै कर्मप्रदेश अनंत गुणे कहे है। जैसे समय-समय विषै एक समयप्रबद्ध नवीन बधैं, तैसैं एक-एक समयप्रबद्ध उदयरूप होइ खिरै, सत्ता पूर्वोक्त प्रमाण सदा रहे।

'एक समय विषै एक समयप्रबद्ध का खिरना कैस होई? सो कहिए है —

वर्तमान विवक्षित समय विषै जिस समयप्रबद्ध का बंध भए आबाधाकाल ही भया होइ अर जाका पूर्वै एक भी निषेक गल्या नाही होइ, ताका तौ पांच सौ बारा रूप प्रथम निषेक उदय रूप हो है और निषेक आगामीकाल विषै उदय आवैगे। बहुरि जिस समयप्रबद्ध का बंध भये आबाधाकाल अर एक समय होइ गया होइ अर जाका एक निषेक पूर्वै खिरचा होइ, ताका च्यारि सौ असी रूप दूसरा। निषेक वर्तमान समय विषै उदय आवे है। छियालीस निषेक आगामीकाल विषै उदय आवैंगे। बहुरि जिस समयप्रबद्ध का बंध भए आबाधाकाल अर दोय समय होइ गया होइ, ताका दोय निषेक तौ पूर्वै खिरै अर च्यारि सौ अठतालीसरूप तीसरा निषेक वर्तमान समय विषै खिरै है। अवशेष पैंतालीस निषेक आगामीकाल विषै खिरैंगे।

अैसे ही अनुक्रम तै जिस-जिस समयप्रबद्ध का बंध पहिलै-पहिलै भया, ताका पिछला-पिछला निषेक वर्तमान काल विषै उदय होइ। अवशेष निषेक आगामीकाल में उदय होइ। अत विषै जिस समयप्रबद्ध का बध भएं आबाधाकाल अर सैंतालीस समय होड गए अर सैंतालीस निषेक जाके पूर्वै खिर गये ताका नव (९) रूप अंत का निषेक वर्तमान काल विषै उदयरूप हो है। अवशेष निषेक कोऊ रह्या नाही, याके पहिलै जे समयप्रवद्ध वधे थे, तिनके सर्व निषेक गलि गए, तातै तिनका किछू प्रयोजन ही नाही।

असें वर्तमान विवक्षित एक समय विषें पांच सौ बारास्यों लगाइ नव पर्यंत सर्व निषेक एकैकाल उदय होइ, तिनका जोड दीए संपूर्ण समयप्रबद्ध प्रमाण हो है। याही तैं समय-समय प्रति एक-एक समयप्रबद्ध का उदय कह्या है। असें एक समय-प्रबद्ध प्रमाण परमाणु खिरें, सोई एक समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणु नवीन बधैं किंचिदून द्व्यर्धगुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सत्ता रहै।

सो जैसे अंकसदृष्टि करि कथन कीया तैसें ही अर्थसंदृष्टि करि कथन जानना। याही तैं अनुभाग वंधाध्यवसायस्थाननि तैं कर्मपरमाणु अनत गुणे कहिए है, असा जानना ॥२६०॥

॥ इति प्रदेशबंधः ॥

असें वध का निरूपण करि आगे उदय का निरूपण प्रारभै हैं—

आहरं तु पमत्ते, तित्थं केवलिणि मिस्सयं मिस्से ।
सम्मं वेदगसम्मे, मिच्छदुगयदेव आणुदओ ॥२६१॥

आहारं तु प्रमत्ते, तीर्थं केवलिनि मिश्रकं मिश्रे ।
सम्यक् वेदकसम्ये, मिथ्यद्विकायते एव आनूदयः ॥२६१॥

टीका – बहुरि च्यारि प्रकार का बध का निरूपण के अनतर गुणस्थाननि विषै उदय का नियम कहै है – आहारक शरीर वा आहारक अगोपांग इनका उदय प्रमत्त गुणस्थान विषै ही है। तीर्थकर प्रकृति का उदय सयोगी, अयोगी केवली विषै ही है। मिश्र मोहनीय का उदय सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान विषै ही है। सम्यक्त्व मोहनीय का उदय असंयतादि च्यारि गुणस्थानवर्ती वेदक सम्यग्दृष्टि विषै ही है। आनुपूर्वी का उदय मिथ्यादृष्टि, सासादन, असयत विषै ही है। अन्यत्र तिनके उदय का अभाव है ॥२६१॥

आनुपूर्वी के उदय का बहुरि विशेष कहै हैं–

णिरयं सासणसम्मो, ण गच्छदित्ति य ण तस्सणिरयाणू ।
मिच्छादिसु सेसुदओ, सगसगचरिमोत्ति णायव्वो ॥२६२॥

निरयं सासादनसम्यो, न गच्छतीति च न तस्य निरयानुः ।
मिथ्यादिषु शेषोदयः, स्वस्वकचरम इति ज्ञातव्यः ॥२६२॥

टीका – नरकगति कौ सासादन सम्यग्दृष्टि मरि करि न जाय, तातैं सासादन विषैं नारकानुपूर्वी का उदय नाही है । बहुरि पूर्वोक्त प्रकृतिनि का उदय मिथ्यादृष्ट्यादि गुणस्थाननि विषैं अपना-अपना उदयस्थान का अंत पर्यंत जानना ।

इहां उदय प्रकरण विषै व्युच्छित्ति, उदय, अनुदय – अैसै तीन प्रकार करि कथन कीजिए है – तहां जिस गुणस्थान विषै जेती प्रकृतिनि की व्युच्छित्ति कही होइ तिन प्रकृतिनि का तिस गुणस्थान पर्यंत तौ उदय जानना । तिस गुणस्थान तै ऊपरि के गुणस्थाननि विषै तिनका उदय न जानना । बहुरि जिस गुणस्थान विषै जेती प्रकृतिनि का उदय होइ, सो उदय जानना । सो नीचली गुणस्थान विषै जेती प्रकृतिनि का उदय कह्या होइ, तिनमेंस्यों तिस ही गुणस्थान विषै जेती व्युच्छित्ति कही होइ, तिनकौ घटाएं तिस गुणस्थान के अनंतर ऊपरला गुणस्थान विषै उदय प्रकृतिनि का प्रमाण जानना ।

तहां इतना विशेष है – कोई प्रकृति ऊपरला गुणस्थान विषै उदय आवेगी, तिस विवक्षित गुणस्थान विषै उदय नाही है, तौ ताकौ उदय मेंस्यों घटाइ देना अर जो पहिले गुणस्थान विषै जिसका उदय न था अर विवक्षित गुणस्थान विषै वाका उदय होइ, तौ वाकौ मिलाय लेनी, अैसै उदय जानना ।

बहुरि जेती प्रकृतिनि का मूल विषै उदय कह्या होइ, तिन विषै विवक्षित गुणस्थान विषै जेती प्रकृतिनि का उदय कह्या होइ, तिनतैं जे अवशेष प्रकृति रहैं, तिनका अनुदय जानना ।

अैसै व्युच्छित्ति, उदय, अनुदय का कथन जानना ।।२६२।।

तहां गुणस्थान विषैं व्युच्छित्ति पक्षांतर जो महाधवल का दूसरा नाम 'कषाय प्राभृत' ताका कर्ता जो 'यति वृषभाचार्य' ताके अनुसारि ताकरि अनुक्रम तैं कहिए है —

दस चउरिगि सत्तरसं, अट्ठ य तह पंच चेव चउरो य ।
छच्छक्कएक्कदुगदुग, चोद्दस उगुतीस तेरसुदयविधिः ।।२६३।।

दश चतुरेकं सप्तदश, अष्ट च तथा पंच चैव चतस्रश्च ।
षट् षट्कैकद्विकद्विकं, चतुर्दशैकोनत्रिंशत् त्रयोदशोदयविधिः ।।२६३।।

टीका - अभेदविवक्षा करि उदय प्रकृति एक सौ बाईस है। तिन विषै उदयविधि कहिए उदय व्युच्छित्ति विवक्षित गुणस्थान तै ऊपरि उदय का अभाव, सो मिथ्यादृष्टि विषै दश है। सासादन विषै च्यारि है, इस पक्ष विषै एकेंद्री, स्थावर, वेद्री, तेंद्री, चौंद्री इन नामकर्म की प्रकृतिनि की व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टि विषै कही। सासादन विषै इनका उदय न कह्या। दूसरा पक्ष विषै इनका उदय सासादन विषै भी कह्या है। असैं दोऊ पक्ष आचार्यनि करि जानने।

बहुरि मिश्र विषै एक, असयत विषै सतरह, देशसंयत विषै आठ, प्रमत्त विषै पांच, अप्रमत्त विषै च्यारि, अपूर्वकरण विषै छह, अनिवृत्तिकरण विषै छह, सूक्ष्मसांपराय विषै एक, उपशातकषाय विषै दोय, क्षीणकषाय विषै दोय अर चौदह सयोग केवली विषै गुणतीस, जातै नाना जीवनि की अपेक्षा साता-असाता दोऊ ही वेदनीय की व्युच्छित्ति नाही। अयोग केवली विषै तेरह व्युच्छित्ति जाननी।

असैं होतै मिथ्यादृष्टि विषै उदय एक सौ सतरह; तीर्थंकर, आहारक द्विक, मिश्रमोहनी, सम्यक्त्वमोहनी इनका उदय नाही; तातै अनुदय पांच। सासादन विषै उदय एक सौ छह; मिथ्यात्व विषै व्युच्छित्ति दश अर नारकानुपूर्वी इनका उदय नाही; तातैं अनुदय सोला। मिश्र विषै उदय सौ (१००), सासादन की व्युच्छित्ति च्यारि (४) अर आनुपूर्वी तीन का उदय नाही अर मिश्रप्रकृति आनि मिली; तातै अनुदय बाईस। बहुरि असंयत विषै उदय एक सौ च्यारि (१०४), आनुपूर्वी च्यारि अर सम्यक्त्व मोहनी ए तौ आनि मिली अर मिश्रमोहनी की मिश्र ही विषै व्युच्छित्ति भई; तातै अनुदय अठारह।

बहुरि असंयत विषै व्युच्छित्ति सतरह भई; तातै देशसंयत विषै उदय सत्यासी; अनुदय पैंतीस। बहुरि देशसयत विषै आठ व्युच्छित्ति भई अर आहारक द्विक आनि मिले, तातै प्रमत्त विषै उदय इक्यासी, अनुदय इकतालीस। बहुरि प्रमत्त विषै पांच व्युच्छित्ति भई, तातै अप्रमत्त विषै उदय छिहत्तरि (७६), अनुदय छयालीस (४६)। बहुरि इहां चारि व्युच्छित्ति भई, तातै अपूर्वकरण विषै उदय बहत्तरि, अनुदय पचास। बहुरि इहा छह व्युच्छित्ति भई, तातै अनिवृत्तिकरण विषै उदय छयासठि, अनुदय छप्पन। बहुरि इहा छह व्युच्छित्ति भई, तातै सूक्ष्मसांपराय विषै उदय साठि, अनुदय बासठि। बहुरि इहा एक व्युच्छित्ति भई, तातै उपशांत कषाय विषै उदय गुणसठि, अनुदय तरेसठि। बहुरि इहा दोय व्युच्छित्ति भई, तातै क्षीण

कषाय विषै उदय सत्तावन, अनुदय पैंसठि । बहुरि इहां सोलह व्युच्छित्ति भई अर तीर्थंकर आनि मिली, तातैं सयोगी-जिन विषै उदय बियालीस, अनुदय असी । इहां गुणतीस व्युच्छित्ति भई, तातैं अयोगकेवली विषै उदय तेरह, अनुदय एक सौ नव ।

बहुरि उदीरणा व्युच्छित्ति, उदीरणा, अनुदीरणा की रचना विषै प्रमत्त गुणस्थान पर्यंत तौ जैसैं उदय विषै व्युच्छित्ति कही, तैसैं ही व्युच्छित्ति है । जैसैं उदय कह्या, तैसैं ही उदीरणा है । जैसैं अनुदय कह्या, तैसैं ही अनुदीरणा है ।

बहुरि इतना विशेष है, जो मनुष्यायु, साता-असाता वेदनीय इनकी उदीरणा प्रमत्त गुणस्थान पर्यंत ही है, ऊपरि नाहीं । तातैं अप्रमत्त विषै उदीरणा तेहत्तरि, अनुदीरणा गुणचास । इहां व्युच्छित्ति च्यारि; तातैं अपूर्वकरण विषै उदीरणा गुणहत्तरि, अनुदीरणा तरेपन । इहा व्युच्छित्ति छह; तातैं अनिवृत्तिकरण विषै उदीरणा तरेसठि, अनुदीरणा गुणसठि । इहा व्युच्छित्ति छह; तातैं सूक्ष्मसापराय विषैं उदीरणा सत्तावन, अनुदीरणा पैंसठि । इहा व्युच्छित्ति एक; तातैं उपशांत कषाय विषै उदीरणा छप्पन, अनुदीरणा छयासठि । इहां व्युच्छित्ति दोय; तातैं क्षीणकषाय विषै उदीरणा चौवन, अनुदीरणा अडसठि । इहा व्युच्छित्ति सोलह; सयोगकेवली विषै तीर्थंकर के मिलने तै उदीरणा गुणतालीस, अनुदीरणा तियासी । इहां व्युच्छित्ति गुणतालीस; तातैं अयोगकेवली विषै उदीरणा नास्ति, अनुदीरणा एक सौ बावीस ।।२६३।।

आगै 'भूतबलि आचार्य' कृत 'धवल शास्त्र' का उपदेश इत्यादिरूप दूसरा पक्ष करि कथन करैं हैं —

पण णवइगि सत्तरसं, अड पंच च चउर छक्क छच्चेव ।
इगिदुग सोलस तीसं, बारस उदये अजोगंता ।।२६४।।

पंचनवैकं सप्तदशाष्ट, पंच च चतस्रः षट्कं षट् चैव ।
एकद्विकं षोडश त्रिंशत्, द्वादश उदये अयोगांताः ।।२६४।।

टीका — अपना अनुभाग रूप स्वभाव की जो प्रगटता, ताकौं उदय कहिए । अथवा अपना कार्य करि कर्मपणा कौ छोडैं, ताकौ उदय कहिए । तिस उदय का जो अंत, सो इहां व्युच्छित्ति कहिए । जिस गुणस्थान विषै जाकी व्युच्छित्ति कही ताके ऊपरि ताका उदय नाहीं । सो व्युच्छित्ति प्रकृति मिथ्यादृष्टि तैं लगाइ अयोगकेवली

पर्यंत गुणस्थान विषै अनुक्रम तै – पांच, नव, एक, सतरह, आठ, पाच, च्यारि, छह, छह, एक, दोय, सोलह, तीस, बारह जाननी ।।२६४।।

तै व्युच्छित्ति प्रकृति कौन ? सो कहिए है —

मिच्छे मिच्छादावं, सुहुमतियं सासणे अणेइंदी ।
थावरवियलं मिस्से, मिस्सं च य उदयवोच्छिण्णा ।।२६५।।

मिथ्ये मिथ्यातपं, सूक्ष्मत्रयं सासादन अनेकेंद्रियं ।
स्थावरविकलं मिश्रे, मिश्रं च च उदयव्युच्छिन्नाः ।।२६५।।

टीका – मिथ्यादृष्टि गुणस्थान विषै मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण – ए पंच प्रकृति उदय तै व्युच्छित्ति भई । बहुरि सासादन विषै अनंतानुबंधी च्यारि, एकेंद्री, स्थावर, बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री – ए नव उदय तै व्युच्छित्ति भई ।

पूर्वपक्ष विषै अर इस पक्ष विषै इतना विशेष – जो इहां तौ सासादन विषै एकेंद्री, स्थावर, बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री का उदय कह्या अर ऊपरि इनका उदय सासादन विषैं न कह्या, मिथ्यादृष्टि विषै ही कह्या । सो दोऊ कथन आचार्यनि नै कीए है; तातैं दोऊ कथन कहे है ।

बहुरि मिश्र विषै एक सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति उदय तै व्युच्छित्ति भई है ।। ।।२६५।।

अयदे बिदियकसाया, वेगुव्वियछक्क णिरयदेवाऊ ।
मणुयतिरियाणुपुव्वी, दुब्भगणादेज्ज अज्जसयं ।।२६६।।

अयते द्वितीयकषाया, वैगूर्विकषट्कं निरयदेवायु ।
मनुजतिर्यगानुपूर्व्ये, दुर्भगानादेयमयशस्कं ।।२६६।।

टीका – असंयत विषै अप्रत्याख्यानावरण च्यारि, वैक्रियिक शरीर वा ताका अंगोपांग, नरक-देवगति वा तिनकी आनुपूर्वी ए छह, नरक-देव आयु, मनुष्य-तिर्यंच-आनुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति – ए सतरह व्युच्छित्ति भई ।।२६६।।

देसे तदियकसाया, तिरियाउज्जोवणीचतिरियगदी ।
छट्ठे आहारदुगं, थीणतियं उदयवोच्छिण्णा ।।२६७।।

देशे तृतीयकषाया, तिर्यगायुरुद्योतनीचतिर्यग्गतिः ।
षष्ठे आहारकद्विकं, स्त्यानत्रयमुदयव्युच्छिन्नाः ॥२६७॥

टीका-देशसंयत विषै प्रत्याख्यानावरण च्यारि, तिर्यचायु-उद्योत, नीचगोत्र, तिर्यचगति – ए आठ। बहुरि प्रमत्त छठा गुणस्थान विषै आहारक शरीर वा अगोपांग, स्त्यानगृद्धि-निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचला – ए तीन – ऐसे ए पांच उदय तै व्युच्छित्ति भई। 'व्युच्छिन्ना.' असा शब्द मध्य दीपक समान है; तातै अन्यत्र भी यहु जानना जो व्युच्छित्ति कही है ॥२६७॥

अपमत्ते सम्मत्तं, अंतिमतियसंहदी यऽपुव्वम्हि ।
छच्चेव णोकसाया, अणियट्टीभागभागेसु ॥२६८॥

अप्रमत्ते सम्यक्त्वमंतिमसंहतिश्चापूर्वे ।
षट्चैव नोकषायाः, अनिवृत्तिभागभागयोः ॥२६८॥

टीका – अप्रमत्त विषै सम्यक्त्व मोहनीय, अर्धनाराच, कीलित, सृपाटिक संहनन तीन – ए च्यारि। बहुरि अपूर्वकरण विषै हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा – छह नोकषाय व्युच्छित्ति भई। बहुरि अनिवृत्तिकरण विषै प्रकृति नाश का अनुक्रम की अपेक्षा करि सवेद भाग वा अवेद भाग विषै असै व्युच्छित्ति है ॥२६८॥

वेदतिय कोहमाणं, मायासंजलणमेव सुहुमंते ।
सुहुमो लोहो संते, वज्जं णारायणारायं ॥२६९॥

वेदत्रयं क्रोधमानं, मायासंज्वलनमेव सूक्ष्मांते ।
सूक्ष्मो लोभः शांते, वज्रनाराचनाराचं ॥२६९॥

टीका – अनिवृत्तिकरण का वेद सहित जो सवेदभाग तिह विषैं तो तीन वेद व्युच्छित्ति भए। अवेद भागनि विषैं अनुक्रम तै संज्वलनक्रोध, संज्वलनमान, संज्वलनमाया व्युच्छित्ति भई – असै छह व्युच्छित्ति है। बादर लोभ भी अनिवृत्ति करण ही विषै व्युच्छित्ति भया। बहुरि सूक्ष्मसापराय का अंत विषै सूक्ष्मकृष्टि कौं प्राप्त भया जो लोभ सो व्युच्छित्ति भया। बहुरि उपशांत कषाय विषै वज्रनाराच-नाराच – ए दोय संहनन व्युच्छित्ति भए ॥२६९॥

खीणकसायदुचरिमे, णिद्दा पयला य उदयवोच्छिण्णा ।
णाणंतरायदसयं, दंसणचत्तारि चरिमम्हि ॥ २७० ॥

क्षीणकषायद्विचरमे, निद्रा प्रचला च उदयव्युच्छिन्ना ।
ज्ञानांतरायदशकं, दर्शनचत्वारि चरमे ॥२७०॥

टीका – क्षीणकषाय गुणस्थान के अंत के दोय समय तिन विषै पहिला द्विचरम समय विषै निद्रा, प्रचला – ए दोय उदय तै व्युच्छित्ति भई । अंत के समय विषैं पांच ज्ञानावरण, पांच अंतराय, च्यारि दर्शनावरण – ए चौदह व्युच्छित्ति भई – एवं सोलह ॥२७०॥

तदियेक्कवज्जणिमिणं, थिरसुहसरगदिउरालतेजदुगं ।
संठाणं वण्णागुरु, चउक्क पत्तेय जोगिम्हि ॥२७१॥

तृतीयैकवज्रनिर्माणं, स्थिरशुभस्वरगतिऔरालतेजोद्विकम् ।
संस्थानं वर्णागुरुचतुष्कं प्रत्येकं योगिनि ॥२७१॥

टीका – सयोगकेवली गुणस्थान विषै दोऊ वेदनीय विषै एक कोऊ वेदनीय, वज्रवृषभनाराच, निर्माण, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुस्वर-दुस्वर, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति, औदारिक शरीर वा अंगोपाग, तैजस-कार्माण, सस्थान छह, वर्णादिक च्यारि, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास – ए च्यारि, प्रत्येक शरीर – ए तीस व्युच्छित्ति भई ॥२७१॥

तदियेक्कं मणुवगदी, पंचिंदियसुभगतसतिगादेज्जं ।
जसतित्थं मणुवाऊ, उच्चं च अजोगिचरिमम्हि ॥२७२॥

तृतीयैकं मानवगतिः, पंचेंद्रियसुभगत्रसत्रिकादेयं ।
यशस्तीर्थं मानवायुरुच्चं चायोगिचरमे ॥२७२॥

टीका – अयोगी गुणस्थान का अत समय विषै दोऊ वेदनीय विषै एक कोऊ वेदनीय, मनुष्यगति, पंचेद्री, सुभग, त्रस-वादर-पर्याप्त – ए तीन, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थंकरत्व, मनुष्यायु, उच्चगोत्र – ए बारह व्युच्छित्ति भई । ए व्युच्छित्ति नाना जीव की अपेक्षा कहिए अर सयोगी-अयोगी गुणस्थान विषै साता वा असाता विषै एक ही की व्युच्छित्ति कही है । सो एक जीव की अपेक्षा व्युच्छित्ति कही है । नाना जीव की

अपेक्षा सयोगी गुणस्थान विषै साता वा असाता दोऊ की व्युच्छित्ति नाही; तातै सयोगी-अयोगी विषै एक जीव की अपेक्षा तीस अर बारा व्युच्छित्ति है । नाना जीव की अपेक्षा गुणतीस अर तेरा व्युच्छित्ति है ।।२७२ ।।

आगै पहिले गुणस्थानवत् सयोग केवली विषै भी साता-असाता का उदय होइगा, ऐसी शका कौ दूरि करै है—

णट्ठा य रायदोसा, इंदियणाणं च केवलिम्हि जदो ।
तेण दु सादासादजसुहदुक्खं णत्थि इंदियजं ।।२७३।।

नष्टौ च रागद्वेषौ, इंद्रियज्ञानं च केवलिनि यतः ।
तेन तु सातासातजसुखदुःखं नास्ति इंद्रियजम् ।।२७३।।

टीका – जातै सयोग केवली कै घातिकर्मनि का नाश भया है; तातै राग कौ कारणभूत च्यारि प्रकार माया, च्यारि प्रकार लोभ, तीन वेद, हास्य-रति इनका अर द्वेष कौ कारणभूत च्यारि प्रकार क्रोध, च्यारि प्रकार मान, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा – इनका निर्मूल नाश भया है; तातै राग-द्वेष नष्ट भया है । बहुरि युगपत् सकल प्रकाशी ज्ञान विषै क्षयोपशमरूप परोक्ष मतिज्ञान अर श्रुतज्ञान न संभवै है; तातै इंद्रियजनित ज्ञान नष्ट भया है, तिस कारण करि केवली कै साता-असाता वेदनीय के उदय तै सुख-दुःख नाही है, जातै सुख-दुःख इंद्रियजनित है । बहुरि वेदनीय का सहकारी कारण मोहनीय का अभाव भया है; तातै वेदनीय का उदय होत सतै भी अपना सुख-दुःख देनेरूप कार्य करने कौ समर्थ नाही ।।२७३।।

याका हेतु कहै है—

समयट्ठिदिगो बंधो, सादस्सुदयप्पिगो जदो तस्स ।
तेण असादस्सुदओ, सादसरूवेण परिणमदि ।।२७४।।

समयस्थितिको बंधः, सातस्योदयात्मको यतस्तस्य ।
तेनासातस्योदयः, सातस्वरूपेण परिणमति ।।२७४।।

टीका – जातै तिस केवली कै साता वेदनीय का बंध एक समय स्थिति कौ लीएं है; तातै उदयस्वरूप ही है, तातै केवली कै असाता वेदनीय का उदय साता-रूप होइकरि परिणमै है । काहेतें ? केवली के विषै विशुद्धता विशेष है; तातै असाता

वेदनीय की अनुभागशक्ति अनत गुणी हीन भई है अर मोह का सहाय था, ताका अभाव भया है, तातै असाता वेदनीय का अप्रगट सूक्ष्म उदय है। बहुरि जो साता वेदनीय बंधै है, ताका अनुभाग अनत गुणा है, जातै साता वेदनीय की स्थिति की अधिकता तो सक्लेशता तै हो है, अनुभाग की अधिकता विशुद्धता तै हो है। सो केवली कै विशुद्धता विशेष है, तातै स्थिति का तौ अभाव है, बध है सो उदयरूप परिणमता ही हो है। अर ताकै साता वेदनीय का अनुभाग अनत गुणा हो है, ताही तै जो असाता का भी उदय है, सो सातारूप होइकरि परिणमै है।

कोऊ कहै कि साता का उदय असातारूप होइ परिणमै है – ऐसे क्यों न कहों ?

ताका उत्तर ऐसे कहै कि साता का स्थितिबंध दोय समय का ठहरै वा अन्य प्रकार कहै असाता ही का बंध होइ; तातै तै कह्या, तैसे कहना संभवै नाही ।।२७४।।

एदेण कारणेण दु, सादस्सेव दु णिरंतरो उदओ।
तेणासादणिमित्ता, परीसहा जिणवरे णत्थि ।।२७५।।

एतेन कारणेन तु, सातस्यैव तु निरंतर उदयः ।
तेनासातनिमित्ताः, परीषहाः जिनवरे न सन्ति ।।२७५।।

टीका – इसही कारण करि केवली कैं निरंतर साता ही का उदय है, तीहि कारण करि असाता के उदय तै निपजै ऐसा क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, बध, रोग, तृणस्पर्श, मल – ए ग्यारह परीषह केवली विषै नाही है। सूत्र के कर्ता **'एकादश जिने'** बहुरि **'वेदनीये शेषाः'** ऐसा कह्या है, सो कारण असाता वेदनीय का उदय विषै कार्यरूप परीषह का उपचार करि कह्या है। मुख्यपनै करि परीषह का केवली कै अभाव है।

अथ अभेदविवक्षा करि उदय प्रकृति एक सौ बाईस (१२२)। तहां मिथ्यादृष्टि विषै उदय एक सौ सतरह (११७), अनुदय तीर्थंकर, आहारकद्विक, सम्यक्त्व मोहनी, मिश्रमोहनी – ए पांच। बहुरि पांच व्युच्छित्ति अर नारकानुपूर्वी मिलि करि सासादन विषै अनुदय ग्यारह, उदय एक सौ ग्यारह है। बहुरि नव व्युच्छित्ति अर अवशेष तीन आनुपूर्वी का अनुदय है अर सम्यग्मिथ्यात्व का उदय है, तातै मिश्र अनुदय बाइस, उदय सौ (१००)। बहुरि व्युच्छित्ति एक का अनुदय है अर च्यारि आनुपूर्वी अर सम्यक्त्व मोहनीय का उदय है; तातै असयत विषै अनुदय

अठारह, उदय एक सौ च्यारि । बहुरि व्युच्छित्ति सतरह है; तातैं देशसंयत विषैं अनुदय पैंतीस, उदय सित्यासी । बहुरि व्युच्छित्ति आठ का अनुदय है अर आहारक द्विक का उदय है, तातैं प्रमत्त विषैं अनुदय इकतालीस, उदय इक्यासी । बहुरि व्युच्छित्ति पांच है; तातैं अप्रमत्त विषैं अनुदय छियालीस, उदय छिहंत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति च्यारि; तातैं अपूर्वकरण विषैं अनुदय पचास, उदय बहत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति छह; तातैं अनिवृत्तिकरण विषैं अनुदय छप्पन, उदय छयासठि । बहुरि व्युच्छित्ति छह; तातैं सूक्ष्मसांपराय विषैं अनुदय बासठि, उदय साठि । बहुरि व्युच्छित्ति एक; तातैं उपशांतकषाय विषैं अनुदय तरेसठि, उदय गुणसठि । बहुरि व्युच्छिति दोय; तातैं क्षीणकपाय विषैं अनुदय पैंसठि, उदय सत्तावन । बहुरि व्युच्छित्ति सोलह का अनुदय अर तीर्थंकरत्व का उदय है; तातैं सयोग केवली विषैं अनुदय असी, उदय बियालीस । बहुरि व्युच्छित्ति तीस; तातैं अयोगकेवली विषैं अनुदय एक सौ दश, उदय बारह जानना ।।२७५।।

ए कहे उदय, अनुदय तिनकौं दोय गाथानि करि कहैं हैं—

सत्तरसेक्कारख चदुसहियसयं सगिगिसीदि छदुसदरी ।
छावट्ठि सट्ठि णवसग, वण्णास दुदालबारुदया ।।२७६।।

सप्तदशैकादशशून्यचतुःसहितशतं सप्तैकाशीतिः षट्द्विसप्ततिः ।
षट्षष्टिः षष्टिः नवसप्त, पंचाशत् द्विचत्वारिंशद्द्वादशोदयाः ।।२७६।।

टीका – मिथ्यादृष्टयादिक गुणस्थाननि विषैं अनुक्रम तैं एक सौ सतरह, एक सौ ग्यारह, एक सौ, एक सौ च्यारि, सत्यासी, इक्यासी, छिहंतरि, बहत्तरि, छयासठि, साठि, गुणसठि, सत्तावन, बियालीस, बारह – प्रकृति उदयरूप जाननी ।।२७६।।

पंचेक्कारसबावीसट्ठारसपंचतीस इगिछादालं ।
पण्णं छप्पण्णं बितिपणसट्ठि असीदि दुगुणपणवण्णं ।।२७७।।

पंचैकादशद्वाविंशत्यष्टादशपंचत्रिंशदेकषट्चत्वारिंशत् ।
पंचाशत् षट्पंचाशत् द्वित्रिपंचषष्टिरशीतिः द्विगुणपंचपंचाशत् ।।२७७।।

टीका – तिन मिथ्यादृष्टयादिक गुणस्थाननि विषैं अनुक्रम तैं पांच, ग्यारह, बाईस, अठारह, पैंतीस, इकतालीस, छियालीस, पचास, छप्पन, बासठि, तरेसठि, पैंसठि, असी, एक सौ दश – प्रकृति अनुदयरूप जाननी ।।२७७।।

आगे उदय प्रकृतिनि की उदीरणा कहैं है—

उदयस्सुदीरणस्स य, सामित्तादो ण विज्जदि विसेसो ।
मोत्तूण तिण्णिठाणं, पमत्त जोगी अजोगी य ।।२७८।।

उदयस्योदीरणायाश्च, स्वामित्वात् न विद्यते विशेषः ।
मुक्त्वा त्रयस्थानं, प्रमत्तं योग्ययोगी च ।।२७८।।

टीका – उदय कै अर उदीरणा कै स्वामित्वपने तें किछू विशेष नाही । प्रमत्त, सयोगी, अयोगी – इन तीनों गुणस्थानों को छोडि अन्यत्र उदयवत् उदीरणा जाननी ।।२७८।।

तहा विशेष कहा ? सो कहै है—

तीसं बारस उदयुच्छेदं केवलिणमेकदं किच्चा ।
सादमसादं च तहिं, मणुवाउगमवणिदं किच्चा ।।२७९।।

त्रिंशत् द्वादश उदयोच्छेदं केवलिनोरेकत्र कृत्वा ।
सातमसातं च तत्र, मानवायुष्कमपनीतं कृत्वा ।।२७९।।

टीका – सयोगी-अयोगी विषै व्युच्छित्ति तीस अर बारह है, तिनकौ एकट्ठी करि तिनमेंस्यों साता-असाता, मनुष्यायु ए घटाइए ।।२७९।।

अवणिदतिप्पयडीणं, पमत्तविरदे उदीरणा होदि ।
णत्थित्ति अजोगिजिणे, उदीरणा उदयपयडीणं ।।२८०।।

अपनीतत्रिप्रकृतीनां, प्रमत्तविरते उदीरणा भवति ।
नास्तीति अयोगिजिने, उदीरणा उदयप्रकृतीनां ।।२८०।।

टीका – घटाई जे तीन प्रकृति साता, असाता, मनुष्यायु इनकी उदीरणा की व्युच्छित्ति प्रमत्तसयत विषै ही भई, तातै प्रमत्त विषै व्युच्छित्ति आठ है । बहुरि अयोगी जिन विषै उदीरणा का अभाव है । तातै तिन तीन प्रकृतिनि कौ घटाएं अवशेष गुणतालीस प्रकृति रही, तिनकी उदीरणा की व्युच्छित्ति सयोगी विषै जाननी । तिन तीन प्रकृतिनि की उदीरणा अप्रमत्तादिक गुणस्थाननि विषै नाही है, जातै इनकी उदीरणा संक्लेश परिणामनतै हो है ।।२८०।।

आगे उदीरणा की व्युच्छित्ति कहैं है—

पण णव इगि सत्तरसं, अट्ठट्ठ य चदुर छक्क छच्चेव।
इगि दुग सोलुगदालं, उदीरणा होंति जोगंता ॥२८१॥

पंच नवैकं सप्तदश, अष्टाष्ट च चत्वारि षट्कं षट् चैव ।
एकं द्विकं षोडशैकोनचत्वारिंशदुदीरणा भवंति योग्यंताः ॥२८१॥

टीका – मिथ्यादृष्टयादि सयोगी पर्यंत उदीरणा की व्युच्छित्ति अनुक्रम तै पांच, नव, एक, सतरह, आठ, आठ, च्यारि, छह, छह, एक, दोय, सोलह, गुणतालीस – प्रकृति जाननी। असें व्युच्छित्ति होतें मिथ्यादृष्टि विषै उदीरणा एक सौ सतरह, अनुदीरणा तीर्थंकर, आहारक-द्विक, सम्यक्त्वमोहनी, मिश्रमोहनी – ए पांच। बहुरि व्युच्छित्ति पांच अर नारकानुपूर्वी की उदीरणा नाही; तातैं सासादन विषै अनुदीरणा ग्यारह, उदीरणा एक सौ ग्यारह। बहुरि व्युच्छित्ति नव अर अवशेप तीन आनुपूर्वी की उदीरणा नाही अर सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति की उदीरणा है, तातै मिश्र विषै अनुदीरणा बाईस, उदीरणा सौ (१००)। बहुरि व्युच्छित्ति एक की उदीरणा नाही, सम्यक्त्वमोहनीय अर च्यारि आनुपूर्वी की उदीरणा है, तातै असंयत विषै अनुदीरणा अठारह, उदीरणा एक सौ च्यारि। बहुरि व्युच्छित्ति सतरह, तातै देशसयत विषै अनुदीरणा पैंतीस, उदीरणा सित्यासी। बहुरि व्युच्छित्ति आठ की उदीरणा नाही अर आहारकद्विक की उदीरणा है, तातै प्रमत्त विषै अनुदीरणा इकतालीस, उदीरणा इक्यासी। बहुरि व्युच्छित्ति आठ, तातै अप्रमत्त विषै अनुदीरणा गुणचास, उदीरणा तेहत्तरि। बहुरि व्युच्छित्ति च्यारि; तातै अपूर्वकरण विषै अनुदीरणा तरेपन, उदीरणा गुणहत्तरि। बहुरि व्युच्छित्ति छह; तातै अनिवृत्तिकरण विषै अनुदीरणा गुणसठि, उदीरणा तरेसठि। बहुरि व्युच्छित्ति छह; तातै सूक्ष्मसांपराय विषै अनुदीरणा पैंसठि। उदीरणा सत्तावन। बहुरि व्युच्छित्ति एक; तातै उपशांत-कषाय विषै अनुदीरणा छ्यासठि, उदीरणा छप्पन। बहुरि व्युच्छित्ति दोय; तातै क्षीणकषाय विषै अनुदीरणा अडसठि, उदीरणा चौवन। बहुरि व्युच्छित्ति सोलह की उदीरणा नाहीं अर तीर्थंकर की उदीरणा है; तातै सयोग विषै अनुदीरणा तियासी, उदीरणा गुणतालीस। बहुरि व्युच्छित्ति गुणतालीस, तातै अयोगी विषै उदीरणा का अभाव, अनुदीरणा एक सौ बाईस है।

उदीरणा कहा कहिए ? 'अपक्वपाचनं उदीरणा' दीर्घ काल में जिनका उदय आवै असे अगले निषेक, तिनकौ अपकर्षण करि थोरा काल में जिनका उदय आवै, असै निषेकनि को उदयावली विषै देय करि उदयरूप अनुभव करि कर्मपना छुडाय और पुद्गल पर्यायिरूप परिणमावना, ताकौ उदीरणा कहिए ।

भावार्थ – जे कर्मप्रकृति बंधरूप भई थी, ते अपनी-अपनी गुणहानि विषै जे निषेक, तिनका अनुक्रम तै उदयरूप हो है । बहुरि जे निषेक आगामी बहुत काल में उदय आवैंगे, तिन निषेकनि कौ जे निषेक थोरे काल में उदय आवैं, तिन विषै मिलाय देना ।

जैसे आम बहुत काल में पचता, ताकौ पाल में देइ थोरे काल में पचाया, तैसे जे कर्म परमाणू का समुदायरूप निषेक बहुत काल में उदय आवने योग्य थे, तिनकौ थोरे काल में उदय आवने योग्य कीए । बहुरि तिनको उदयरूप अनुभव करि तिन कर्मपरमाणूनि कौ कर्मपने तै छुडाय और पर्यायरूप परिणमावना तिसका नाम उदीरणा है ॥२८१॥

आगै कही जो उदीरणा वा अनुदीरणा रूप प्रकृतिनि की सख्या, ताकौ दोय गाथानि करि कहै है—

सत्तरसेक्कारखचदुसहियसयं सगिगिसीदि तियसदरी ।
णवतिण्णिसट्ठि सगछक्कवण्ण चउवण्णमुगुदालं ॥२८२॥

पंचेक्कारसबावीसट्ठारस पंचतीस इगिणवदालं ।
तेवण्णेक्कुणसट्ठी, पणछक्कडसट्ठि तेसीदी[1] ॥२८३॥

सप्तदशैकादशखचतुः सहितशतं सप्तैकाशीतिः त्रिसप्ततिः ।
नवत्रिषष्ठिः सप्तषट्कपंचाशत् चतुःपंचाशत् एकोनचत्वारिंशत् ॥२८२॥

पंचैकादशद्वाविंशत्यष्टादश पंचत्रिंशत् एकनवचत्वारिंशत् ।
त्रिपंचाशदेकोनषष्टिः, पंचषट्काष्टषष्टिः त्र्यशीतिः ॥२८३॥

टीका – मिथ्यादृष्टयादिक तेरह गुणस्थाननि विषै एक सौ सतरह, एक सौ ग्यारह, पूरा एक सौ, एक सौ च्यारि, सत्यासी, इक्यासी, तिहत्तरि, गुणहत्तरि, तरेसठि,

१–उदीरणा त्रिभङ्गी की रचना सदृष्टि के लिये देखिये अर्थसदृष्टि अधिकार ।

सत्तावन, छप्पन, चौवन, गुणतालीस उदीरणा प्रकृति अनुक्रम तै जाननी । बहुरि पांच, ग्यारह, बाईस, अठारह, पैंतीस, इकतालीस, गुणचास, तरेपन, गुणसठि, पैंसठि अर छ्यासठि, अडसठि, तियासी अनुदीरणा प्रकृति जाननी ॥२८२-२८३॥

ऐसे गुणस्थाननि विषै उदय उदीरणा त्रिभंगी कहि, अब गत्यादिक मार्गणा विषै उदय त्रिभंगी कह्या चाहै हैं। सो प्रथम गत्यादिक विषै उदय का अनुक्रम कहिए हैं—

गदियादिसु जोग्गाणं, पयडिप्पहुदीणमोघसिद्धाणं ।
सामित्तं णेदव्वं, कमसो उदयं समासेज्ज ॥२८४॥

गत्यादिषु योग्यानां, प्रकृतिप्रभृतीनामोघसिद्धानां ।
स्वामित्वं नेतव्यं, क्रमश उदयं समासाद्य ॥२८४॥

टीका – योग्य जे प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश गुणस्थान वर्णन विषै सिद्ध भए तिनका स्वामित्वपना गत्यादिमार्गणानि विषै आगम के अनुसारि क्रम तै उदय की अपेक्षा करि प्राप्त करणा ॥२८४॥

तहा प्रथम परिभाषा पच गाथानि करि कहै है—

गदिआणुआउउदओ, सपदे भूपुण्णबादरे ताओ ।
उच्चुदओ णरदेवे, थीणतिगुदओ णरे तिरिये ॥२८५॥

गत्यान्वायुरुदयः, सपदे भूपूर्णबादरे आतपः ।
उच्चोदयो नरदेवे, स्त्यानत्रिकोदयो नरे तिरश्चि ॥२८५॥

टीका – विवक्षित पर्याय का पहिला समय ही तीहिं विवक्षित पर्याय सबधी गति वा आनुपूर्वी वा आयु का उदय हो है, सपदे कहिए समान एक पर्याय सम्बधी गति का वा आनुपूर्वी वा आयु का उदय एक जीव के युगपत् हो है। बहुरि आतप प्रकृति का उदय बादर पर्याप्तक पृथ्वीकायिक जीव ही कै है और कै नाही । बहुरि उच्च गोत्र का उदय किसी मनुष्य विषै वा सर्व देव के भेदनि विषै पाइए है । बहुरि स्त्यानगृद्धयादिक तीन निद्रा का उदय मनुष्य अर तिर्यच विषै ही है, अन्यत्र नाहीं ॥२८५॥

संखाउगणरतिरिए, इंदियपज्जत्तगादु थीणतियं ।
जोग्गमुदेदुं वज्जिय, आहारविगुव्विणुट्ठवगे ॥२८६॥

संख्यायुष्कनरतिरश्चि, इंद्रियपर्याप्तकात् स्त्यानत्रयं ।
योग्यमुदेतुं वर्जयित्वा, आहारविगूर्वणोत्थापके ॥२८६॥

टीका – बहुरि संख्यात वर्ष की जिनकी आयु है, असें जो कर्मभूमिया मनुष्य वा तिर्यंच तिनही के इंद्रियपर्याप्ति पूर्ण भए पीछे स्त्यानगृद्ध्यादिक तीन प्रकृति उदय योग्य है, तहां भी आहारक ऋद्धि अर वैक्रियिक ऋद्धि का धारक मनुष्य कैं स्त्यानगृद्ध्यादिक तीन प्रकृति उदय योग्य नाही ॥२८६॥

अयदापुण्णे ण हि थी, संढोवि य घम्मणारयं मुच्चा ।
थीसंढयदे कमसो, णाणुचऊ चरिमतिण्णाणू ॥२८७॥

अयतापूर्णे न हि स्त्री, षंढोऽपि च धर्मनारकं मुक्त्वा ।
स्त्रीषंढायते क्रमशो, नानुचत्वारि चरमत्रयानुः ॥२८७॥

टीका – निर्वृत्ति-अपर्याप्त-असयत गुणस्थान विषै स्त्रीवेद का उदय नाही, जातैं असयत मरि स्त्री नाही उपजै है । बहुरि धर्मा नरक बिना नपुसक वेद का भी उदय नाही, जातैं पूर्वैं नरकायु बांध्या होइ, असें तिर्यंच वा मनुष्य सम्यक्त्व सहित मरि धर्मा नरक विषैं ही उपजै है, याही तैं असयत विषै स्त्री वेदी कैं तो च्यारचो आनुपूर्वी का उदय नाही । नपुसक कैं नरक बिना तीन आनुपूर्वी का उदय नाही है ॥२८७॥

इगिविगलथावरचऊ, तिरिए अपुण्णो णरेवि संघडणं ।
ओरालदु णरतिरिए, वेगुव्वदु देवणेरयिए ॥२८८॥

एकविकलस्थावरचत्वारि, तिरश्चि अपूर्णो नरेऽपि संहननं ।
औरालद्विनरतिरश्चि, वैक्रियिकद्विदेवनैरयिके ॥२८८॥

टीका – एकेंद्री, बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री – ए जाति नामकर्म अर स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण – ए तिर्यंच विषै ही उदय योग्य है । अपर्याप्त प्रकृति मनुष्य विषै भी उदय योग्य है । बहुरि छह संहनन, औदारिक शरीर वा अंगोपाग, तिर्यंच,

मनुष्य विषै ही उदय योग्य हैं । बहुरि वैक्रियिक शरीर वा अंगोपांग देव, नारक विषैं ही उदय योग्य है ।।२८८।।

तेउतिगूणतिरिक्खे, सुज्जोवो बादरेसु पुण्णेसु ।
सेसाणं पयडीणं, ओघं वा होदि उदओ दु ।।२८९।।

तेजस्त्रिकोनतिर्यक्षु, उद्योतो बादरेषु पूर्णेषु ।
शेषाणां प्रकृतिनामोघवत् भवति उदयस्तु ।।२८९।।

टीका – तेजस्काय, वातकाय, साधारण वनस्पतिकाय इन विना अन्य बादर पर्याप्त तिर्यंचनि विषै उद्योत प्रकृति का उदय है । बहुरि अवशेष प्रकृतिनि का उदय का अनुक्रम गुणस्थानवत् जानना ।।२८९।।

अैसे पंच परिभाषा सूत्रनि करि उदय का नियम कहि करि च्यारि गतिनि विषै उदय प्रकृति कह्या चाहै है । तहां प्रथम नरकगति विषै कहै हैं —

थीणतिथीपुरिसूणा, घादी णिरयाउणीचवेयणियं ।
णामे सगवचिठाणं, णिरयाणू णारयेसुदया ।।२९०।।

स्त्यानत्रिस्त्रीपूरुषोना, घातिनी निरयायुर्नीचवेदनीयं ।
नाम्नि स्वकवचः स्थानं, निरयानुः नारकेषूदयाः ।।२९०।।

टीका – स्त्यानगृद्ध्यादिक तीन अर स्त्री, पुरुषवेद इन पंच बिना घातिकर्मनि की बियालीस प्रकृति (४२) अर नरकायु, नीच गोत्र, साता-असाता वेदनीय नामकर्म विषै नारकी जीवा कैं भाषापर्याप्ति स्थान विषै होइ – अैसें गुणतीस प्रकृति (२९) अर नारकानुपूर्वी – ए छिहंतरि प्रकृति नरकगति विषैं उदय योग्य है ।।२९०।।

तिन गुणतीस प्रकृतिनि कौ कहैं है —

वेगुव्वतेजथिरसुहदुग दुग्गदिहुंडणिमिणपंचिंदी ।
णिरयगदि दुब्भगागुरु, तसवण्णचऊ य वचिठाणं ।।२९१।।

वैगूर्वतेजः स्थिरशुभद्विकं दुर्गतिहुंडनिर्माणपंचेंद्रियं ।
निरयगतिर्दुर्भगागुरु, त्रसवर्णचत्वारि च वचःस्थानं ।।२९१।।

टीका – वैक्रियिक द्विक, तैजस, कार्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ अप्रशस्त विहायोगति, हुंडसस्थान, निर्माण, पंचेंद्री, नरकगति, दुर्भग, दु.स्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति – ए च्यारि; अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास – ए च्यारि, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक – ए च्यारि, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श – ए च्यारि – असै गुणतीस प्रकृति नारकी जीवनि कै वचन पर्याप्ति के ठिकानै उदयरूप है ।।२९१।।

आगे धर्मानरक विषै उदय की व्युच्छित्ति कहै है—

मिच्छमणंतं मिस्सं, मिच्छादितिए कमा छिदी अयदे ।
बिदियकसाया दुब्भगणादेज्जदुगाउणिरयचऊ ।।२९२।।

मिथ्यमनंतं मिश्रं, मिथ्यात्वादित्रये क्रमात् छित्तिरयते ।
द्वितीयकषाया दुर्भगानादेयद्विकायुर्निरयचत्वारि ।।२९२।।

टीका – मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति एक मिथ्यात्व, सासादन विषै व्युच्छित्ति च्यारि – अनंतानुबधी, मिश्रविषै व्युच्छित्ति एक मिश्र मोहनी, असयत विषै व्युच्छित्ति बारह अप्रत्याख्यान च्यारि, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति, नरक आयु, नरकगति, नारकानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अगोपाग – ए बारह ।

सो असै होतै धर्मा नरक[1] विषै मिथ्यादृष्टि विषै मिश्रमोहनी अर सम्यक्त्व मोहनी – ए अनुदय दोय, उदय चौहत्तरि (७४) । बहुरि मिथ्यात्व व्युच्छित्ति अर नारकानुपूर्वी का उदय नाही; तातै सासादन विषै अनुदय चार, उदय बहत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति च्यारि का उदय नाही अर मिश्रमोहनीय का उदय पाइए, तातै मिश्र विषै अनुदय सात, उदय गुणहत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति एक का उदय नाही अर सम्यक्त्वमोहनी अर नारकानुपूर्वी का उदय पाइए, तातै असयत विषै अनुदय छह; उदय सत्तरि है ।।२९२।।

१–गाथा २९२ के आधार से–

प्रथम नरक रचना

मि	सा	मि	अ
१	४	१	१२
७४	७२	६९	७०
२	४	७	६

आगे द्वितीयादिक पृथ्वीनि विषै कहै है—

बिदियादिसु छसु पुढिविसु, एवं णवरि य असंजदट्ठाणे
णत्थि णिरयाणुपुव्वी, तिस्से मिच्छेव वोच्छेदो ॥२९३॥

द्वितीयादिषु षट्सु पृथिवीषु, एवं नवरि च असंयतस्थाने ।
नास्ति निरयानुपूर्वी, तस्मात् मिथ्ये एव व्युच्छेदः ॥२९३॥

टीका – वंशादिक[1] पृथ्वीनि विषैं धर्मावत् उदययोग्य प्रकृति छिहंतरि । तहां असंयत विषै नरकानुपूर्वी का उदय नाहीं, पूर्वै जिनके नरकायु का वंध भया होइ ऐसा भी सम्यग्दृष्टि वंशादिक पृथ्वीनि विषै उपजै नाही; तातै मिथ्यादृष्टि विषैं नारकानुपूर्वी अर मिथ्यात्व – ए दोय प्रकृति व्युच्छित्ति है । उदय चौहत्तरि अनुदय दोय – मिश्र मोहनी अर सम्यक्त्व मोहनी । बहुरि व्युच्छित्ति दोय, तातै सासादन विषैं अनुदय च्यारि, उदय बहत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति च्यारि का उदय नाही अर मिश्रमोहनीय का उदय पाइए, तातै मिश्र विषै अनुदय सात, उदय गुणहत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति एक का उदय नाही अर सम्यक्त्व मोहनीय का उदय पाइए; तातै असयत विषै अनुदय सात, उदय गुणहत्तरि है ॥२९३॥

आगे तिर्यंच गति विषै कहैं है—

तिरिये ओघो सुरणर णिरयाऊउच्च मणुदुहारदुगं ।
वेगुव्वछक्कतित्थं, णत्थि हु एमेव सामण्णे ॥२९४॥

तिरश्चि ओघः सुरनरनिरयायुरुच्चं मनुद्वि आहारद्विकं ।
वैगूर्विकषट्कतीर्थं, नास्ति हि एवमेव सामान्ये ॥२९४॥

१–गाथा २९३ के आधार से–

द्वितीयादिनरक रचना

मि	सा	मि	अ
२	४	१	११
७४	७२	६९	६९
२	४	७	७

टीका – तिर्यंच गति[1] विषै ओघ. कहिए गुणस्थानवत् उदय योग्य एक सौ बाईस, तिनविषै इहा देव, मनुष्य, नारक आयु तीन, उच्च गोत्र मनुष्यगति वा आनुपूर्वी, आहारक शरीर वा अगोपांग, वैक्रियिक शरीर वा अगोपांग, देव-नारकगति वा आनुपूर्वी – ए छह, तीर्थंकर – ए पंद्रह प्रकृति उदय योग्य नाही, तातै उदय योग्य प्रकृति एक सौ सात है ।

सो पंच प्रकार तिर्यंचनि विषै सामान्य तिर्यंच विषै असै ही उदय योग्य प्रकृति एक सौ सात, गुणस्थान पांच । तहां व्युच्छित्ति गुणस्थाननि विषै कही, तैसै ही पंच, नव इत्यादिक जाननी; तातै मिथ्यादृष्टि विषैं व्युच्छित्ति पांच, उदय एक सौ पाच, अनुदय मिश्रमोहनी, सम्यक्त्व मोहनी – दोय । बहुरि सासादन विषै पच मिलने तैं अनुदय सात, उदय सौ (१००), व्युच्छित्ति नव । बहुरि नव व्युच्छित्ति अर तिर्यंचानुपूर्वी का उदय नाही अर मिश्रमोहनी का उदय, तातै मिश्र विषै अनुदय सोलह उदय इक्याणवै, व्युच्छित्ति एक । बहुरि व्युच्छित्ति एक का उदय नाही अर सम्यक्त्व मोहनी अर तिर्यंचानुपूर्वी का उदय है, तातै असंयत विषै अनुदय पंद्रह, उदय बाणवै, व्युच्छित्ति अप्रत्याख्यान च्यारि, तिर्यचानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति – ए आठ । बहुरि व्युच्छित्ति आठ का उदय नाही, तातै देशसयत विषै अनुदय तेईस, उदय चौरासी, व्युच्छित्ति गुणस्थानवत् आठ ।।२६४।।

आगे पंचेंद्री तिर्यंच वा पर्याप्त तिर्यंच विषै कहै है—

थावरदुगसाहारणताविगिविगलूण ताणि पंचक्खे ।
इत्थिअपज्जत्तूणा, ते पुण्णे उदयपयडीओ ।।२६५।।

स्थावरद्विकसाधारणातपैकविकलोनाः ता. पंचाक्षे ।
स्त्र्यपर्याप्तोनास्ताः, पूर्णे उदयप्रकृतयः ।।२६५।।

१–गाथा २६४ के आधार से— सामान्यतिर्यग् रचना

मि	सा	मि	अ	दे
५	६	१	८	८
१०५	१००	६१	६२	८४
२	७	१६	१५	२३

टीका –स्थावर, सूक्ष्म, साधारण आतप, एकेंद्री, वेंद्री, तेंद्री, चौंद्री – इन आठ विना सामान्य तिर्यंच विषे उदय योग्य प्रकृति कही थी, ते पंचेंद्री तिर्यंच[1] के उदय योग्य निन्याणवै प्रकृति हैं। तहां मिथ्यादृष्टि विषे व्युच्छित्ति मिथ्यात्व, अपर्याप्त – ए दोय, उदय सत्याणवै, अनुदय मिश्रमोहनी, सम्यक्त्व मोहनी – ए दोय। सासादन विषे व्युच्छित्ति अनंतानुबंधी च्यारि, उदय पच्याणवै, अनुदय दोय मिलने तैं च्यारि। मिश्र विषे व्युच्छित्ति मिश्रमोहनी एक, उदय इक्याणवै, अनुदय तिर्यंचानुपूर्वी का उदय नाही अर मिश्रमोहनी का उदय पाइए अर व्युच्छित्ति का च्यारि मिलने तै आठ। असंयत विषे व्युच्छित्ति पूर्वोक्त आठ अर मिश्र संबंधी आठ विषै तहां की व्युच्छित्ति एक मिलाए अर सम्यक्त्व मोहनी अर तिर्यंचानुपूर्वी का उदय पाइए; तातै इनकौ घटाएं अनुदय सात, उदय बाणवै। बहुरि देशसंयत विषै व्युच्छित्ति गुणस्थानवत् आठ, अनुदय आठ मिलावने तैं पंद्रह, उदय चौरासी है।

बहुरि पंचेंद्री-तिर्यंच कै उदय योग्य प्रकृति मेंस्यों स्त्रीवेद अर अपर्याप्त – ए दोय प्रकृति घटाएं, पंचेंद्री पर्याप्तक के उदय योग्य प्रकृति सित्याणवै – तहां मिथ्यादृष्टि विषे व्युच्छित्ति एक मिथ्यात्व, अनुदय सम्यक्त्व मोहनी, मिश्रमोहनी – दोय, उदय पच्याणवै। बहुरि सासादन विषे व्युच्छित्ति अनंतानुबंधी च्यारि, एक मिलने तैं अनुदय तीन, उदय चौराणवै। बहुरि मिश्र विषे व्युच्छित्ति मिश्र-मोहनी एक, अनुदय च्यारि, व्युच्छित्ति की अर तिर्यंचानुपूर्वी के मिलने तैं अर मिश्र मोहनी के घटने तैं सात, उदय निवैं। बहुरि असंयत विषे व्युच्छित्ति आठ, अनुदय एक मिलने तैं अर सम्यक्त्व-मोहनी अर तिर्यंचानुपूर्वी के घटने तैं छह, उदय इक्याणवै। बहुरि देशसंयत विषें व्युच्छित्ति आठ, अनुदय आठ मिलवे तै चौदह, उदय तियासी ॥२९५॥

पुंसंढूणित्थिजुदा, जोणिणिये अविरदे ण तिरयाणू।
पुण्णिदरे थी थीणति, परघाददु पुण्णउज्जोवं ॥२९६॥

---

[1]–गाथा २९५ के आधार से – पंचेंद्रिपर्याप्ततिर्यग् रचना

मि	सा	मि	अ	दे
१	४	१	८	८
९५	९४	९०	९१	८३
२	३	७	६	१४

पुंषंढोनस्त्रीयुता, योनिमती अविरते न तिर्यगानुः ।
पूर्णतरे स्त्री स्त्यानत्रि, परघातद्वि पूर्णोद्योतं ॥२९६॥

टीका – बहुरि योनिमत् तिर्यच[1] जो तिर्यचणी ताके उदययोग्य प्रकृति पंचेंद्री पर्याप्त कै सत्याणवै कही, तामै पुरुषवेद, नपुसकवेद घटाए स्त्रीवेद मिलाए छिनवे हो हैं । तहां व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टि विषै एक मिथ्यात्व, सासादन विषै व्युच्छित्ति अनंतानुबंधी च्यारि अर तिर्यंचानुपूर्वी ए पाच, जातै अविरत सम्यग्दृष्टि मरि तिर्यचणी न उपजै । बहुरि मिश्र विषै व्युच्छित्ति एक मिश्रमोहनी, असंयत विषै आठ मैंस्यों तिर्यचानुपूर्वी बिना व्युच्छित्ति सात । देशसंयत विषै गुणस्थानवत् व्युच्छित्ति आठ ।

अैसे होतै मिथ्यादृष्टि विषै मिश्रमोहनी, सम्यक्त्व मोहनी अनुदय दोय, उदय चौराणवै । एक व्युच्छित्ति भई, तातै सासादन विषै अनुदय तीन, उदय तिराणवै । व्युच्छित्ति पाच का उदय नाही, मिश्रमोहनी का उदय; तातै मिश्र विषै अनुदय सात, उदय निवासी । व्युच्छित्ति एक का उदय नाही अर सम्यक्त्व मोहनी का उदय; तातैं असंयत विषै अनुदय सात, उदय निवासी । व्युच्छित्ति सात, तातै देशसंयत विषै अनुदय चौदह, उदय बियासी ।

बहुरि लब्धि अपर्याप्तक पचेंद्री-तिर्यच विषै योनिमत्तिर्यंच विषै उदय योग्य छिनवै प्रकृति कही थीं, तिनमेस्यों इतनी प्रकृति घटाइए, स्त्रीवेद, स्त्यानगृद्ध्यादिक तीन, परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त, उद्योत ॥२९६॥

सुरगदिदु जसादेज्जं, आदीसंठाणसंहदीपणगं ।
सुभगं सम्मं मिस्सं, हीणा तेऽपुण्णसंढजुदा ॥२९७॥

1–गाथा २९६ के आधार से— योनिमतीतिर्यग्रचना

मि	सा	मि	अ	दे
१	५	१	७	८
९४	९३	८९	८९	८२
२	३	७	७	१४

स्वरगतिद्वि यश आदेय, मादिसंस्थानसंहतिपंचकं ।
सुभगं सम्यक्त्वं मिश्रं, हीनाः ता अपूर्णषंढयुताः ।।२९७।।

टीका – सुस्वर, दु.स्वर, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति, यशस्कीर्ति, आदेय आदि का पंच संस्थान, आदि का पंच सहनन, सुभग सम्यक्त्वमोहनी, मिश्रमोहनी – ए सत्ताईस घटाइए अर अपर्याप्त, नपुसकवेद मिलाएं ऐसे पचेद्री लब्धि अपर्याप्तक के उदय योग्य प्रकृति इकहत्तरि है । गुणस्थान एक मिथ्यादृष्टि है ।।२९७।।

आगे मनुष्यगति विषै कहै है—

मणुवे ओघो थावर, तिरियादावदुगएयवियलिंदी ।
साहरणिदराउतियं, वेगुव्वियछक्क परिहीणो ।।२९८।।

मानवे ओघः स्थावर, तिर्यगातपद्विकैकविकलेंद्रियं ।
साधारणेतरायुस्त्रयं, वैगूर्विकषट्कं परिहीन. ।।२९८।।

टीका – मनुष्य च्यारि प्रकार – तिनविषै सामान्य मनुष्य विषै उदय योग्य प्रकृति गुणस्थान विषै उदय योग्य प्रकृति एक सौ बाईस मेंस्यों स्थावर, सूक्ष्म, तिर्यंच गति वा आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, एकेद्रियादिक च्यारि साधारण, नरक, तिर्यंच, देव आयु वैक्रियिक शरीर वा अंगोपांग, देव, नरक गति वा आनुपूर्वी – ए छह – ऐसैं वीस प्रकृति घटाए एक सौ दोय प्रकृति जाननी ।।२९८।।

मिच्छमपुण्णं छेदो, अणमिस्सं मिच्छगादितिसु अयदे ।
बिदियकसायणराणू, दुब्भगऽणादेज्जअज्जसयं ।।२९९।।

मिथ्यात्वमपूर्ण छेदः, अनमिश्रं मिथ्यकादित्रिषु अयते ।
द्वितीयकषायनरानुः, दुर्भगानादेयायशस्कं ।।२९९।।

टीका – तहां व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टि विषै मिथ्यात्व, अपर्याप्त – दोय; सासादन विषैं अनंतानुबंधी च्यारि, मिश्र विषै मिश्रमोहनी; असंयत विषै अप्रत्याख्यान कषाय च्यारि, मनुष्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति – ए आठ ।।२९९।।

देसे तदियकसाया, णीचं एमेव मणुससामण्णे ।
पज्जत्तेवि य इत्थीवेदापज्जत्तिपरिहीणो ।।३००।।

देशेतृतीयकषाया, नीचमेवमेव मनुष्यसामान्ये ।
पर्याप्तेऽपि च स्त्री, वेदापर्याप्तिपरिहीना ॥३००॥

टीका – देशसयत विषै तीसरा प्रत्याख्यान-कषाय च्यारि अर नीच गोत्र – ए पांच । ऊपरि प्रमत्तादिक विषै गुणस्थानोक्त पांच, च्यारि, छह, छह, एक, दोय, सोला, तीस, बारा व्युच्छित्ति जाननी ।

तहां मिथ्यादृष्टि विषै अनुदय मिश्रमोहनी, सम्यक्त्व-मोहनी, आहारक द्विक, तीर्थंकर – ए पांच, उदय सत्याणवै । बहुरि व्युच्छित्ति दोय, तातैं सासादन विषैं अनुदय सात, उदय पच्याणवै । बहुरि व्युच्छित्ति च्यारि अर मनुष्यानुपूर्वी का उदय नाहीं अर मिश्रमोहनी का उदय; तातै मिश्र विषै अनुदय ग्यारह, उदय इक्याणवै । बहुरि व्युच्छित्ति एक का उदय नाही अर सम्यक्त्वमोहनी अर मनुष्यानुपूर्वी का उदय तातै असंयत विषैं अनुदय दश, उदय बाणवै । बहुरि व्युच्छित्ति आठ; तातै देशसंयत विषै अनुदय अठारह, उदय चौरासी । बहुरि व्युच्छित्ति पांच का उदय नाही, आहारकद्विक का उदय; तातै प्रमत्त विषै अनुदय इकईस, उदय इक्यासी । बहुरि व्युच्छित्ति पांच; तातै अप्रमत्त विषै अनुदय छब्बीस, उदय छिहंतरि । बहुरि व्युच्छित्ति च्यारि; तातैं अपूर्वकरण विषैं अनुदय तीस, उदय बहत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति छह; तातै अनिवृत्तिकरण विषैं अनुदय छत्तिस, उदय छयासठि । बहुरि व्युच्छित्ति छह, तातै सूक्ष्मसांपराय विषै अनुदय बियालीस, उदय साठि । बहुरि व्युच्छित्ति एक; तातै उपशांतकषाय विषै अनुदय तियालीस, उदय गुणसठि । बहुरि व्युच्छित्ति दोय; तातै क्षीणकषाय विषै अनुदय पैतालीस, उदय सत्तावन । बहुरि व्युच्छित्ति सोलह का उदय नाही अर तीर्थंकरत्व का उदय; तातैं सयोगी विषै अनुदय साठि, उदय बियालीस । बहुरि व्युच्छित्ति तीस; तातै अयोगी विषै अनुदय निवै, उदय बारह ।

बहुरि तैसे ही पर्याप्त-मनुष्य विषै, सामान्य मनुष्य विषै कही प्रकृति तिनमेस्यो स्त्रीवेद अर अपर्याप्त घटाएं उदय योग्य प्रकृति सौ (१००) । तहां व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टि विषै मिथ्यात्व, सासादन विषै अनंतानुबंधी च्यारि, मिश्र विषै एक, असंयत विषै आठ, देशसंयत विषै पांच, अप्रमत्त विषै च्यारि, अपूर्वकरण विषै छह, अनिवृत्तिकरण विषैं स्त्रीवेद बिना पांच ही । ऊपरि सामान्य मनुष्यवत् व्युच्छित्ति जाननी ।

ऐसैं होतैं मिथ्यादृष्टि विषै अनुदय पांच पूर्वोक्त, उदय पिच्याणवै। बहुरि व्युच्छित्ति एक, तातैं सासादन विषैं अनुदय छह, उदय चौराणवैं। बहुरि व्युच्छित्ति च्यारि अर मनुष्यानुपूर्वी का उदय नाही अर मिश्र मोहनी का उदय; तातैं मिश्र विषै अनुदय दश, उदय निवै। बहुरि व्युच्छित्ति एक का उदय नाही अर सम्यक्त्व प्रकृति, मनुष्यानुपूर्वी का उदय, तातैं असंयत विषै अनुदय नव, उदय इक्याणवैं। बहुरि व्युच्छित्ति आठ; तातैं देशसंयत विषै अनुदय सतरह, उदय तियासी। बहुरि व्युच्छित्ति पांच का उदय नाही, आहारद्विक का उदय; तातैं प्रमत्त विषै अनुदय वीस, उदय असी। बहुरि व्युच्छित्ति पाच; तातैं अप्रमत्त विषै अनुदय पचीस, उदय पिचहत्तरि। बहुरि व्युच्छित्ति च्यारि; तातैं अपूर्वकरण विषै अनुदय गुणतीस, उदय इकहत्तरि। बहुरि व्युच्छित्ति छह; तातैं अनिवृत्तिकरण विषै अनुदय पैंतीस, उदय पैंसठि। बहुरि व्युच्छित्ति पांच; तातैं सूक्ष्मसांपराय विषै अनुदय चालीस, उदय साठि। बहुरि व्युच्छित्ति एक, तातैं उपशांत-कषाय विषै अनुदय इकतालीस, उदय गुणसठि। बहुरि व्युच्छित्ति दोय; तातैं क्षीणकषाय विषै अनुदय तियालीस, उदय सत्तावन। बहुरि व्युच्छित्ति सोला का उदय नाही, तीर्थंकरत्व का उदय; तातैं सयोगी विषै अनुदय अठावन, उदय बियालीस। बहुरि व्युच्छित्ति तीस; तातैं अयोगी विषै अनुदय अठयासी, उदय बारा है ॥३००॥

मणुसिणिएत्थीसहिदा, तित्थयराहारपुरिससंढूणा।
पुण्णिदरेव अपुण्णे, सगाणुगदिआउगं णेयं ॥३०१॥

मनुष्यिण्यां स्त्रीसहिताः, तीर्थंकराहारपुरुषषंढोनाः।
पूर्णेतर इवापूर्णे, स्वकानुगत्यायुष्कं ज्ञेयं ॥३०१॥

टीका – बहुरि मनुष्यणी[१] विषैं उदय योग्य प्रकृति छिनवै है। पर्याप्त मनुष्य विषैं सौ कही, तिनमें स्त्रीवेद मिलावना अर तीर्थंकर, आहाकद्विक, पुरुषवेद, नपुंसकवेद घटावनां। तहां व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टि विषै एक मिथ्यात्व; सासादन विषै अनंतानुबंधी च्यारि अर मनुष्यानुपूर्वी – ए पांच; मिश्र विषै मिश्रमोहनी एक; असंयत विषै दूसरा कषाय च्यारि, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति – ए सात; देशसंयत विषै तीसरा कषाय च्यारि, नीच-गोत्र – ए पांच; प्रमत्त विषै स्त्यानगृद्धि-त्रिक, अप्रमत्त, अपूर्वकरण विषै गुणस्थानवत् च्यारि अर छह, अनिवृत्तिकरण के भागनि

१–नोट–इस पृष्ठ की तालिका को अगले पृष्ठ पर देखें।

विषै अनुक्रम तै स्त्रीवेद, सज्वलन क्रोध, मान, माया – ए च्यारि, सूक्ष्मसांपराय विषै सूक्ष्म लोभ, उपशांत मोह विषै वज्रनाराच, नाराच – ए दोय क्षीणकषाय विषै सोला, सयोगी विषै तीर्थंकर नाही, तातै ग्यारह ।

असै होतै मिथ्यादृष्टि विषै अनुदय मिश्रमोहनी, सम्यक्त्व-मोहनी – दोय, उदय चौराणवै । बहुरि व्युच्छित्ति एक, तातै सासादन विषै अनुदय तीन, उदय तेराणवै । बहुरि व्युच्छित्ति पाच का उदय नाही, मिश्रमोहनी का उदय, तातै मिश्र विषै अनुदय सात, उदय निवासी । बहुरि व्युच्छित्ति एक का उदय नाही, सम्यक्त्व-मोहनी का उदय, तातै असंयत विषै अनुदय सात, उदय निवासी । बहुरि व्युच्छित्ति सात; तातै देशसयत विषै अनुदय चौदह, उदय बियासी । बहुरि व्युच्छित्ति पाच; तातै प्रमत्त विषै अनुदय उगणीस, उदय सतहत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति तीन, तातै अप्रमत्त विषै अनुदय बाईस, उदय चहोत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति च्यारि, तातै अपूर्वकरण विषै अनुदय छव्वीस, उदय सत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति छह; तातै अनिवृत्तिकरण विषै अनुदय बत्तीस, उदय चौसठि । बहुरि व्युच्छित्ति च्यारि तातै सूक्ष्मसांपराय विषै अनुदय छत्तीस, उदय साठि । बहुरि व्युच्छित्ति एक; तातै उपशांतकषाय विषै अनुदय सैतीस, उदय गुणसठि । बहुरि व्युच्छित्ति दोय; तातै क्षीणकषाय विषै अनुदय गुणतालीस, उदय सत्तावन । बहुरि व्युच्छित्ति सोलह; तातै सयोगी विषै अनुदय पचावन, उदय इकतालीस । बहुरि व्युच्छित्ति तीस; तातै अयोगी विषै अनुदय पिच्यासी, उदय ग्यारह ।

बहुरि मनुष्य लब्धि-अपर्याप्तक विषै उदय प्रकृति इकहत्तरि, तिर्यंच लब्धि अपर्याप्तक विषै इकहत्तरि कही तिनमें तिर्यंच गति वा आनुपूर्वी वा आयु घटावनी । मनुष्यगति वा आनुपूर्वी वा आयु मिलावनी । गुणस्थान एक मिथ्यादृष्टि है ॥३०१॥

---

१ गाथा ३०१ के आधार से— योनिमन्मनुष्यरचना ।

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
१	५	१	७	५	३	४	६	४	१	२	१६	३०	११
९४	९३	८९	८९	८२	७७	७४	७०	६४	६०	५९	५७	४१	११
२	३	७	७	१४	१९	२२	२६	३२	३६	३७	३९	५५	८५

आगें भोगभूमि मनुष्य वा तिर्यंच विषै दोय गाथानिकरि कहै हैं—

मणुसोघं वा भोगे, दुब्भगचउणीचसंढथीणतियं ।
दुग्गदितित्थमपुण्णं, संहदिसंठाणचरिमपणं ॥३०२॥

हारदुहीणा एवं, तिरये मणुदुच्चगोदमणुवाउं ।
अवणिय पक्खिव णीचं, तिरियदुतिरियाउउज्जोवं ॥३०३॥

मनुष्यौघ इव भोगे, दुर्भगचतुर्नीचषंढस्त्यानत्रयं[1] ।
दुर्गतितीर्थमपूर्णं, संहतिसंस्थानचरमपंच ॥३०२॥

आहारद्विहीना एवं, तिरश्चि मनुद्विउच्चगोत्रमानवायुः ।
अपनीय प्रक्षिप्य नीचं, तिर्यग्द्वितिर्यगायुरुद्योतं[2] ॥३०३॥

टीका – भोगभूमियां मनुष्य विषैं सामान्य मनुष्यवत् एक सौ दोय – तामेस्यों दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति – ए च्यारि, नीच गोत्र, नपुंसक वेद, स्त्यानगृद्धयादिक तीन, अप्रशस्त विहायोगति, तीर्थंकरत्व, अपर्याप्त, अंत के पांच संहनन, अंत के पंच संस्थान, आहारक द्विक – इन चौबीस विना उदय योग्य अठहत्तरि । तहां व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टि विषै मिथ्यात्व, सासादन विषै अनंतानुबंधी च्यारि, मिश्र विषै मिश्र मोहनी, असंयत विषैं दूसरा कषाय च्यारि, मनुष्यायु – ए पांच ।

ऐसें होतें मिथ्यादृष्टि विषै मिश्र मोहनी, सम्यक्त्व मोहनी – ए अनुदय दोय, उदय छिहंतरि । बहुरि व्युच्छित्ति एक; तातें सासादन विषै अनुदय तीन, उदय पिचहत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति च्यारि अर मनुष्यानुपूर्वी का उदय नाहीं अर मिश्र

१–गाथा ३०२ के आधार से—
१ भोगभूमिमनुष्यरचना ।

मि	सा	मि	अ
१	४	१	५
७६	७५	७१	७२
२	३	७	६

२–गाथा ३०३ के आधार से—
२ भोगभूमितिर्यग्रचना ।

मि	सा	मि	अ
१	४	१	५
७७	७६	७२	७३
२	३	७	६

मोहनी का उदय, तातै मिश्रविषै अनुदय सात, उदय इकहत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति एक का उदय नाही अर सम्यक्त्व मोहनी, मनुष्यानुपूर्वी का उदय, तातै असंयत विषै अनुदय छह, उदय बहत्तरि है ।

अैसै ही भोगभूमियां तिर्यंच विषै भोगभूमियां मनुष्यवत् अठहत्तरि। तिनमेंस्यों मनुष्य-गति वा आनुपूर्वी, उच्चगोत्र, मनुष्यायु – ए च्यारि दूर करनी अर नीचगोत्र, तिर्यंचगति वा आनुपूर्वी, तिर्यंचायु, उद्योत – ए पांच मिलावनी – अैसै उदय योग्य प्रकृति गुणयासी । तहा मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति मिथ्यात्व, सासादन विषै अनंतानुबंधी च्यारि मिश्र विषै मिश्रमोहनी, असंयत विषै दूसरा कषाय च्यारि तिर्यंचायु – ए पांच व्युच्छित्ति ।

अैसै होतै मिथ्यादृष्टि विषै मिश्रमोहनी, सम्यक्त्वमोहनी अनुदय दोय, उदय सतहत्तरि । बहुरि एक व्युच्छित्ति, तातै सासादन विषै अनुदय तीन, उदय छिहत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति च्यारि, तिर्यंचानुपूर्वी का उदय नाही, मिश्रमोहनी का उदय, तातै मिश्र विषै अनुदय सात, उदय बहत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति एक का उदय नाहीं अर सम्यक्त्व मोहनी अर तिर्यंचानुपूर्वी का उदय, तातै असयत विषै अनुदय छह, उदय तिहत्तरि है ॥३०२ । ३०३॥

आगै देवगति विषै कहै है—

भोगं व सुरे णरचउणराउवज्जूण सुरचउसुराउं ।
खिव देवे णोवित्थी, इत्थिम्मि ण पुरिसवेदो य ॥३०४॥

भोग इव सुरे नरचतुर्नरायुर्वर्ज्जोनित्वा सुरचतुःसुरायुः ।[१]
क्षिप्त्वा देवे नैव स्त्री, स्त्रियां न पुरुषवेदश्च ॥३०४॥

१–गाथा ३०४ के आधार से–

सौधर्माद्युपरिमग्रैवे—यो ७६				
व्यु	१	४	१	६
उ	७४	७३	६६	७०
अ	२मि	३सा	७मि	६अ

टीका – देवनि विषै भोगभूमि मनुष्यवत् अठहत्तरि । तहां मनुष्यगति वा आनुपूर्वी, औदारिक शरीर वा अगोपांग, मनुष्यायु, वज्रवृषभनाराच सहनन एक – ए छह घटावनी अर देवगति वा आनुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर वा अंगोपांग, देवायु – ए पंच मिलावनी ।

ऐसै सामान्य देव विषै उदय योग्य सतहत्तरि । तहां व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टि विषै मिथ्यात्व, सासादन विषै अनंतानुबंधी च्यारि, मिश्र विषै मिश्रमोहनी एक, असंयत विषै दूसरा कषाय च्यारि, देवगति वा आनुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर वा अंगोपांग, देवायु – ए नव ।

ऐसै होतै मिथ्यादृष्टि विषै सम्यक्त्व मोहनी, मिश्रमोहनी – ए अनुदय दोय, उदय पिचहत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति एक; तातै सासादन विषै अनुदय तीन, उदय चहोत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति च्यारि, देवानुपूर्वी इनका उदय नाही, मिश्रमोहनी का उदय; तातै मिश्र विषै अनुदय सात, उदय सत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति एक का उदय नाही अर सम्यक्त्व मोहनी देवानुपूर्वी का उदय; तातै असयत विषै अनुदय छह, उदय इकहत्तरि ।

बहुरि देवनि विषै पुरुष वेद ही का उदय है अर देवांगना विषै स्त्रीवेद ही का उदय है, तातै सौधर्मादिक उपरिम ग्रैवेयक पर्यत देवनि विषै उदय-योग्य प्रकृति स्त्रीवेद बिना छिहंतरि हैं । अन्य सर्व सामान्य देववत् रचना है । तहा मिथ्यादृष्टया-दिक च्यारि गुणस्थाननि विषै व्युच्छित्ति एक, च्यारि, एक, नव, उदय चहोत्तरि, तेहत्तरि, गुणहत्तरि, सत्तरि; अनुदय दोय, तीन, सात, छह अनुक्रम तै जाननी ।।३०४।।

आगै अनुदिशादिक विषै कहै है—

अविरदठाणं एक्कं, अणुद्दिसादिसु सुरोघमेव हवे ।[1]
भवणतिकप्पित्थीणं, असंजदे णत्थि देवाणू ।।३०५।।

अविरतस्थानमेकमनुदिशादिषु सुरौघमेव भवेत् ।
भवनत्रिकल्पस्त्रीणामसंयते नास्ति देवानुः ।।३०५।।

नोट–१–इस पृष्ठ की तालिका को अगले पृष्ठ पर देखें ।

टीका –नव अनुदिश, पच अनुत्तर – इन चौदह विमाननि विषै एक असंयत गुणस्थान हो है; तातै जे देवनि विषै असयत गुणस्थान विषै उदय रूप कही थी, तेई सत्तरि प्रकृति तहा उदय योग्य जानना ।

बहुरि भवनत्रिक अर कल्पवासिनी देवांगना इनकै सामान्य देववत् उदय योग्य प्रकृति सतहत्तरि – तिनविषै केवल देवनि विषै स्त्रीवेद बिना अर केवल देवांगना विषै पुरुष वेद बिना छिहत्तरि प्रकृति उदय योग्य जानना । सो भवनत्रिक अर कल्पवासिनी देवागना इनविषै सम्यग्दृष्टि उपजै नाही, तातै देवानुपूर्वी का चौथे गुणस्थान मे उदय नाही । असै सासादन विषै व्युच्छित्ति पांच अर असयत विषै व्युच्छित्ति आठ कहनी, और सब सुगम है । मिथ्यादृष्टचादिक विषै व्युच्छित्ति एक, पांच, एक, आठ, उदय चहोत्तरि, तेहत्तरि, गुणहत्तरि, गुणहत्तरि, अनुदय दोय, तीन, सात, सात जानना ।।३०५।।

आगै इंद्रिय-मार्गणा विषै तीन गाथानि करि कहै है—

तिरियअपुण्णं वेगे, परघादचउक्कपुण्णसाहरणं ।
एइंदियजसथीणतिथावरजुगलं च मिलिदव्वं ।।३०६।।

रिणमंगोवंगतसं, संहदिपंचक्खमेवमिह वियले ।
अवणिय थावरजुगलं, साहरणेयक्खआदावं ।।३०७।।

खिव तसदुग्गदिदुस्सरमंगोवंगं सजादिसेवट्ट ।
ओघं सयले साहरणिगिविगलादावथावरदुगूणं ।।३०८।।

१–गाथा ३०५ के आधार से—

१ अनुदिशानुत्तररचना

अ
०
७०
०

२ भवनत्रयकल्पस्त्रीयोग्य ७६

व्यु	१	५	१	८
उ	७४	७३	६६	६६
अ	२	३	७	७
	मि	सा	मि	अ

तिर्यगपूर्णमिवैके, परघातचतुष्कपूर्णसाधारणं ।
एकेंद्रिययशः स्त्यानत्रिस्थावरयुगलं मेलितव्यं ।।३०६।।

ऋणमंगोपांगत्रसं, संहतिपंचाक्षमेवमिह विकले[1] ।
अपनीय स्थावरयुगलं, साधारणैकाक्षमातापं ।।३०७।।

क्षिप्त्वा त्रसदुर्गतिदुःस्वरमंगोपांगं स्वजातिसृपाटिकं ।
ओघः सकले[2] साधारणैकविकलातापस्थावरद्विकोनं ।।३०८।।

टीका – एकेंद्रिय मार्गणा विषै तिर्यंच लब्धि अपर्याप्तवत् इकहत्तरि । तहां परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, पर्याप्त, साधारण, एकेंद्री, यशस्कीर्ति, स्त्यानगृद्धित्रिक, स्थावर, सूक्ष्म – ए तेरा मिलावनी अर औदारिक अंगोपांग, त्रस, सृपाटिका-संहनन, पंचेंद्री – ए च्यारि घटावनी – असें उदय योग्य प्रकृति असी । तहां व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टि विषै मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण – ए पांच अर स्त्यानगृद्धि तीन, परघात, उद्योत, उच्छ्वास – इन छहों का एकेंद्री कै सासादन विषै उदय नाही; तातै छह ए – असें सर्व ग्यारह । सासादन विषै अनंतानुबंधी

---

१ – गाथा ३०६, ३०७ एवं ३०८ के आधार से –

१ विकलत्रयरचना

मि	सा
१०	५
८१	७१
०	१०

२ पचेंद्रियरचना

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
२	४	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६	३०	१२
१०९	१०६	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
५	८	१४	१०	२७	३३	३८	४२	४८	५४	५५	५७	७२	१०२

च्यारि, एकेंद्रिय, स्थावर – ए छह व्युच्छित्ति । असें मिथ्यादृष्टि विषै अनुदय नास्ति, उदय असी । बहुरि व्युच्छित्ति ग्यारह; तातै सासादन विषै अनुदय ग्यारह, उदय गुणहत्तरि है ।

बहुरि बेंद्री, तेंद्री, चौद्री – इन विकलत्रय विषै एकेद्रीवत् असी, तिनमेंस्यों स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, एकेंद्री, आतप – ए पाच घटाइए; त्रस, अप्रशस्त विहायोगति, दुःस्वर, अंगोपांग, अपनी-अपनी जाति, सृपाटिक सहनन – ए छह मिलाइए – असें उदय योग्य प्रकृति इक्यासी । तहां व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टि विषै मिथ्यात्व, अपर्याप्त, स्त्यानगृद्धित्रिक, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुःस्वर – ए दश । सासादन विषै अनतानुबधी च्यारि, अपनी एक जाति – ए पांच व्युच्छित्ति । असें मिथ्यादृष्टि विषै अनुदय नास्ति, उदय इक्यासी । बहुरि व्युच्छित्ति दश, तातै सासादन विषै अनुदय दश, उदय इकहत्तरि ।

बहुरि पचेद्रीय विषै गुणस्थानवत् एक सौ बाईस । तहा साधारण, एकेद्रियादिक जाति च्यारि, आतप, स्थावर, सूक्ष्म – ए आठ घटाए उदययोग्य प्रकृति एक सौ चौदह अर गुणस्थान चौदह । तहा व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टि विषै मिथ्यात्व, अपर्याप्त दोय सासादन विषै अनंतानुबधी च्यारि मिश्रादिक विषै गुणस्थानवत् एक, सतरह, आठ, पाच, च्यारि, छह, छह, एक, दोय, सोला, तीस, बारह व्युच्छित्ति जाननी ।

तहां मिथ्यादृष्टि विषै अनुदय गुणस्थानवत् पाच, उदय एक सौ नव । बहुरि व्युच्छित्ति दोय अर नारकानुपूर्वी का उदय नाही, तातै सासादन विषै अनुदय आठ, उदय एक सौ छह । मिश्रादिक विषै गुणस्थानवत् अनुक्रम तै उदय सौ, एक सौ च्यारि, सत्यासी, इक्यासी, छिहंतरि, बहत्तरि, छ्यासठि, साठि, गुणसठि, सत्तावन, बियालीस, बारा प्रकृति जाननी । मूल में आठ घाटि है, तातै मिश्रादिक विषै अनुक्रम तै अनुदय चौदह, दश, सत्ताईस, तेतीस, अठतीस, बियालीस, अठतालीस, चौवन, पचावन, सतावन, बहत्तरि, एक सौ दोय प्रकृति जाननी ॥३०६–३०८॥

आगे कायमार्गणा विषै कहै है—

एवं वा पणकाये, ण हि साहारणमिणं च आदावं ।
दुसु तद्दुगमुज्जोवं, कमेण चरिमम्हि आदावं ॥३०९॥

एकं वा पंच काये, नहि साधारणमिदं चातापं[१] ।
द्वयोस्तद्द्विकमुद्योत , क्रमेण चरमे आतपः ॥३०९॥

टीका – कायमार्गणा विषै पांच काय विषै एकेंद्रीवत् असी तहां साधारण घटाए पृथ्वीकाय विषै उदय योग्य गुण्यासी, बहुरि तिन असी मेंस्यों साधारण, आतप ए दोय घटाए अप्कायिक विषै उदय योग्य अठहत्तरि बहुरि तिन असीनि मेंस्यों साधारण, आतप, उद्योत – ए तीन घटाए तेजस्कायिक, वातकायिक विषै उदय योग्य सतहत्तरि। बहुरि तिन असीनि मेंस्यो आतप घटाए वनस्पति कायिक विषैं उदय योग्य गुण्यासी तहां पृथ्वीकायिक विषै उदय योग्य गुण्यासी, गुणस्थान दोय, जातै **'णहि सासणो अपुण्णो साहारणसुहुमगेय तेउदुगे'** । इस वचन तै पृथ्वी, अप, प्रत्येक वनस्पति विषै ही सासादन मरि उपजै है। तहा उत्पन्न भया सासादन कै तीहि गुणस्थान विषै उदय योग्य नाही असी मिथ्यात्व, आतप उद्योत, सूक्ष्म, अपर्याप्त ए पांच प्रकृति अर तिनके सासादन तौ निर्वृत्ति अपर्याप्त दशा ही में होय अर स्त्यानगृद्धि तीन तौ इंद्रिय-पर्याप्ति पूर्ण भए उदय योग्य होइ। उच्छ्वास, उच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण भए उदय योग्य होइ। परघात शरीर पर्याप्ति पूर्ण भए उदय योग्य होइ, तातै इन पंचनि का उदय सासादन विषै नाही, तातै मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति दश है। सासादन विषै अनंतानुबंधी च्यारि, एकेंद्री स्थावर – ए छह व्युच्छित्ति हैं। असैं होतै मिथ्यादृष्टि विषैं अनुदय नास्ति, उदय गुण्यासी, बहुरि व्युच्छित्ति दश, तातैं सासादन विषै अनुदय दश, उदय गुणहत्तरि।

बहुरि अपकाय विषै उदय योग्य अठहत्तरि तहां मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति पूर्वोक्त दश मेंस्यो आतप विना नव, सासादन विषै पूर्वोक्त छह – असैं होते मिथ्या

१–गाथा ३०९ के आधार से—

पृथ्वीकायरचना ।

मि	सा
१०	६
७९	६९
०	१०

अप्कायरचना ।

मि	सा
९	६
७८	६९
०	९

तेजोवातकायरचना ।

मि
०
७७
०

दृष्टि विषै अनुदय नास्ति, उदय अठहत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति नव, तातै सासादन विषै अनुदय नव, उदय गुणहत्तरि ।

बहुरि तेजस्कायिक, वातकायिक विषै उदय योग्य प्रकृति सतहत्तरि, गुणस्थान एक मिथ्यादृष्टि ।

बहुरि वनस्पतिकायिक विषै उदय योग्य प्रकृति गुण्यासी । तहां मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति मिथ्यात्व, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, स्त्यानगृद्धित्रिक, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, एवं दश सासादन विषै पूर्वोक्त छह असै होतै मिथ्यादृष्टि विषै अनुदय नास्ति, उदय गुण्यासी । बहुरि व्युच्छित्ति दश, तातै सासादन विषै अनुदय दश, उदय गुणहत्तरि है ॥३०९॥

आगै त्रसमार्गणा विषै कहै है—

ओघं तसे ण थावर, दुगसाहरणेयतावमथ ओघं ।
मणवयणसत्तगे ण हि, ताविगिविगलं च थावराणुचओ[1] ॥३१०॥

ओघस्त्रसे न स्थावर, द्विकसाधारणैकातपमथ ओघ ।
मनोवचनसप्तके[2] नहि, आतापैकविकलं च स्थावरानुचतुष्कं ॥३१०॥

टीका – त्रसकायिक विषै गुणस्थानवत् एक सौ बाईस तहां स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, एकेंद्री, आतप ए पांच घटाए उदय योग्य प्रकृति एक सौ सतरह, गुणस्थान तहां चौदह । व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टि विषै मिथ्यात्व अपर्याप्त, ए दोय । सासादन विषै अनंतानुबंधी चतुष्क, विकलत्रय तीन एवं सात । मिश्रादिक विषै अनुक्रमतै गुणस्थानवत्

१-२–गाथा ३१० के आधार से—

त्रसकाययोग्य ११७

	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
व्यु	२	७	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६	३०	१२
उ	११२	१०९	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
अ	५	८	१७	१३	३०	३६	४१	४५	५१	५७	५८	६०	७५	१०५

मनो ४ वा ३ योग्यप्रकृतय १०९

स	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	स	उ	क्षी	स
व्यु	१	४	१	१३	८	५	४	६	६	१	२	१६	४२
उ	१०४	१०३	१००	१००	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२
अ	५	६	९	९	२२	२८	३३	३७	४३	४९	५०	५२	६७

एक, सतरह, आठ, पांच, च्यारि छह, छह, एक दोय, सोला, तीस, वारा व्युच्छित्ति जाननी ।

ऐसे होतै मिथ्यादृष्टि विषै अनुदय पांच, गुणस्थानवत् उदय एक सौ वारह । वहुरि व्युच्छित्ति दोय अर नारकापूर्वी का उदय नाहीं, तातै सासादन विषै अनुदय आठ, उदय एक सौ नव मिश्रादि गुणस्थाननि विषै गुणस्थानवत् अनुक्रम तै उदय सौ, एक सौ च्यारि, सित्यासी, इक्यासी, छिहंतरि, वहत्तरि, छ्यासठि, साठि, गुणसठि, सत्तावन, वियालीस, वारह प्रकृति है । वहुरि मूल में पंच प्रकृति उदय योग्य नाही; तातैं मिश्रादिक विषैं अनुक्रम तै अनुदय सतरह, तेरह, तीस, छत्तीस, इकतालीस, पैंतालीस, इक्यावन, सत्तावन, अठावन, साठि, पिचहत्तरि, एक सौ पांच प्रकृति हैं ।

वहुरि योगमार्गणा विषै च्यारि प्रकार मनोयोग अर सत्य, असत्य, उभय वचनयोग – इन सप्तनि विषैं गुणस्थानवत् एक सौ वाईस । तिनविषै आतप, एकेंद्री, विकलत्रय, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, च्यारि आनुपूर्वी – इन तेरह विना उदय योग्य प्रकृति एक सौ नव, गुणस्थान तेरह । व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टि विषै मिथ्यात्व, सासादन विषैं अनंतानुवंधी च्यारि, मिश्र विषैं मिश्रमोहनी, असंयत विषैं सतरह मेंस्यों च्यारि आनुपूर्वी घटाए तेरह, च्यारि आनुपूर्वी का तौ उदय पर भव कौं गमन करतै होइ अर मनोयोग, वचनयोग अपना पर्याप्ति पूर्ण भएं पीछै होइ; तातैं आनुपूर्वी न कही । देशसंयत विषै तीसरा कपाय च्यारि, तिर्यंचायु, उद्योत, नीचगोत्र, तिर्यंचगति – ए आठ । प्रमत्तादि विषैं गुणस्थानवत् पांच, च्यारि, छह, छह, एक, दोय, सोलह । वहुरि अयोगी विषै योग का अभाव है; तातैं तीस अर वारा मिलाइ सयोगी विषैं वियालीस व्युच्छित्ति जाननी ।

ऐसं होतै मिथ्यादृष्टि विषैं गुणस्थानोक्त अनुदय पांच, उदय एक सौ च्यारि । वहुरि व्युच्छित्ति एक; तातैं सासादन विषैं अनुदय छह, उदय एक सौ तीन । वहुरि व्युच्छित्ति च्यारि का अनुदय, मिश्र मोहनी का उदय; तातैं मिश्र विषैं अनुदय नव, उदय सौ । वहुरि व्युच्छित्ति एक का अनुदय, सम्यक्त्व मोहनी का उदय; तातैं असंयत विषै अनुदय नव, उदय सौ । वहुरि व्युच्छित्ति तेरह; तातैं देशसंयत विषैं अनुदय वाईस, उदय सित्यासी । आगैं प्रमत्तादि विषैं गुणस्थानवत् अनुक्रम तै उदय इक्यासी, छिहंतरि, वहत्तरि, छ्यासठि, साठि, गुणसठि, सत्तावन, वियालीस जानना । मूल में तेरह प्रकृति उदय योग्य नाही; तातैं प्रमत्तादि विषैं

अनुदय अठाईस, तैतीस, सैंतीस, बियालीस, गुणचास, पचास, बावन, सतसठि जानना ।।३१०।।

आगे अनुभय वचन अर औदारिक काययोग विषै कहै है—

अणुभयवचि वियलजुदा, ओघमुराले ण हारदेवाऊ ।
वेगुव्वछक्कणरतिरियाणु अपज्जत्तणिरयाऊ ।।३११।।

अनुभयवचसि विकलयुता, ओघ औराले नाहारदेवायुः ।
वैगूर्वषट्कनरतिरियानुः अपर्याप्तनिरयायुः ।।३११।।

टीका – अनुभय वचन विषै पूर्वोक्त एक सौ नव में विकलत्रय तीन मिलाए उदय योग्य प्रकृति एक सौ बारह, गुणस्थान तेरह । तहां मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति एक मिथ्यात्व । सासादन विषै अनतानुबंधी च्यारि, विकलत्रय तीन – एवं सात । मिश्रादिक विषै पूर्वोक्तवत् एक, तेरह, आठ, पाच, च्यारि, छह, छह, एक, दोय, सोला, बियालीस व्युच्छित्ति हैं ।

असें होतैं मिथ्यादृष्टि विषैं गुणस्थानवत् अनुदय पाच, उदय एक सौ सात । बहुरि व्युच्छित्ति एक; तातै सासादन विषै अनुदय छह, उदय एक सौ छह । मिश्रादिक विषैं पूर्वोक्तवत् उदय सौ, सौ, सित्यासी, इक्यासी, छिहंतरि, बहत्तरि, छ्यासठि, साठि, गुणसठि, सत्तावन, बियालीस जानना । पूर्वोक्त तै उदय योग्य तीन प्रकृति बंधती है; तातै मिश्रादिक विषै क्रम तै अनुदय बारह, बारह, पचीस, इकतीस, छत्तीस, चालीस, छियालीस, बावन, तरेपन,पंचावन, सत्तरि प्रकृति जाननी ।

बहुरि औदारिक[१] काययोग विषै गुणस्थानवत् एक सौ बाईस । तहा आहारक द्विक, देवायु, वैक्रियिक शरीर वा अगोपाग, देव-नारक-गति वा आनुपूर्वी –

१–गाथा ३११ के आधार से— औदारिक काययोग रचना

	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स
व्यु	४	९	१	७	८	३	४	६	६	१	२	१६	४२
उ	१०६	१०२	९४	९४	८७	७९	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२
अ	३	७	१५	१५	२२	३०	३३	३७	४३	४९	५०	५२	६७

ए छह, मनुष्य-तिर्यंच आनुपूर्वी, अपर्याप्त, नरकायु – इन तेरह विना उदय योग्य प्रकृति एक सौ नव, गुणस्थान तेरह । तहां व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टि विषै गुणस्थानवत् पांच में अपर्याप्त विना च्यारि । सासादन विषै अनतानुवंधी च्यारि, एकेंद्री, स्थावर, विकलत्रय – ए नव । मिश्र विषै एक मिश्रमोहनी । असंयत विषै दूसरी कषाय च्यारि, दुर्भग आदि तीन – एव सात । देशसयत विषै गुणस्थानवत् आठ, इस औदारिक योग की प्रवृत्ति होतै आहारक योग की प्रवृत्ति न होइ, एकै काल दोऊ योग न होइ; तातै प्रमत्त विषै व्युच्छित्ति स्त्यानगृद्धयादिक तीन, अप्रमत्तादिक विषै व्युच्छित्ति पूर्वोक्तवत् च्यारि, छह. छह, एक, दोय, सोला, वियालीस हैं ।

ऐसै होतै मिथ्यादृष्टि विषै अनुदय मिश्रमोहनी, सम्यक्त्व मोहनी, तीर्थंकर – ए तीन, उदय एक सौ छह । बहुरि व्युच्छित्ति च्यारि; तातै सासादन विषै अनुदय सात, उदय एक सौ दोय । बहुरि व्युच्छित्ति नव का उदय नाही अर मिश्रमोहनी का उदय; तातैं मिश्र विषै अनुदय पंद्रह, उदय चौराणवै । बहुरि व्युच्छित्ति एक का उदय नाही, सम्यक्त्व मोहनीय का उदय; तातै असंयत विषै अनुदय पंद्रह, उदय चौराणवै । बहुरि व्युच्छित्ति सात; तातैं देशसंयत विषै अनुदय बाईस, उदय सित्यासी । बहुरि व्युच्छित्ति आठ; तातैं प्रमत्त विषै अनुदय तीस, उदय गुण्यासी । बहुरि व्युच्छित्ति तीन; तातै अप्रमत्त विषैं अनुदय तेतीस, उदय छिहंतरि । उपरि अपूर्वकरणादिक विषै क्रम तैं पूर्ववत् उदय बहत्तरि, छ्यासठि, साठि, गुणसठि, सत्तावन, वियालीस जानना । अनुदय सैंतीस, तीयालीस, गुणचास, पचास, बावन, सतसठि जानना ॥३११॥

आगैं औदारिक-मिश्र-काययोग विषैं दोय गाथानि करि कहैं हैं—

तम्मिस्से पुण्णजुदा, ण मिस्सथीणतियसरविहायदुगं ।
परघादचओ अयदे, णादेज्जदुदुब्भगं ण संढिच्छी ॥३१२॥

साणे तेसिं छेदो, वामे चत्तारि चोद्दसा साणे ।
चउदालं वोछेदो, अयदे जोगिम्हि छत्तीसं ॥३१३॥

तन्मिश्रे पूर्णयुता, न मिश्रस्त्यानत्रयस्वरविहायोद्विकं ।
परघातचत्वारः अयतेऽनादेयद्विदुर्भगं न षंढस्त्री ॥३१२॥

साने तेषां छेदो, वामे चत्वारि चतुर्दश साने ।
चतुश्चत्वारिंशत् व्युच्छेदः, अयते योगिनि षट्त्रिंशत् ।।३१३।।

टीका – तीहि औदारिक[1] मिश्रकाययोग विषै, औदारिक योग विषै एक सौ नव कहीं – तिनमें अपर्याप्ति मिलाइए, बहुरि मिश्र मोहनी, स्त्यानगृद्धित्रिक, सुस्वर-दु स्वर प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास – ए बारा घटाइए – ऐसे उदययोग्य प्रकृति अठचाणवै, गुणस्थान च्यारि। सामान्य उदय प्रकृति एक सौ बाईस, तिनमे आहारक द्विक, देवायु, वैक्रियिक षट्, मनुष्य तिर्यंचानुपूर्वी, नरकायु, मिश्रमोहनी, स्त्यानगृद्धित्रिक, स्वरद्विक, विहायोगतिद्विक, परघातादि चतुष्क – ए चौईस उदय योग्य नाही,जातै देव-नरक गति सबधी वा पर्याप्ति काल संबंधी वा विग्रहगति सबधी प्रकृतिनि का इहां उदय नाही हैं, यातै उदय योग्य प्रकृति अठचाणवै ही है। तहा औदारिक-मिश्र योगी असयत गुणस्थानवर्ती कै अनादेय, अयशस्कीर्ति, दुर्भग, नपुसक, स्त्री वेद – इनका उदय नाही; तातै इनकी व्युच्छित्ति सासादन विषै ही जाननी।

ऐसे मिथ्यात्व विषै मिथ्यात्व, सूक्ष्म,अपर्याप्त, साधारण – ए च्यारि व्युच्छित्ति है। आतप प्रकृति पर्याप्त पूर्ण भएं उदय योग्य है, तातै इहां न सभवै है। बहुरि सासादन विषै अनतानुबधी च्यारि, स्थावर, एकेंद्री, विकलत्रय, अनादेय, अयशस्कीर्ति, दुर्भग, नपुसक-वेद, स्त्री-वेद – ए व्युच्छित्ति चौदह। बहुरि असंयत विषै अप्रत्याख्यान-कषाय च्यारि अर क्षीणकषाय पर्यत औदारिक मिश्र योग संभवै नाही; तातै ऊपरला गुणस्थानां की भी व्युच्छित्ति इहा ही कहनी। सो देशसंयत संबंधी उद्योत बिना सात, प्रमत्त सबधी आहारक द्विक स्त्यानगृद्धित्रिक बिना शून्य, अप्रमत्त सबंधी च्यारि, अपूर्वकरण संबधी छह, अनिवृत्ति-करण संबंधी स्त्री नपुंसक वेद बिना च्यारि, सूक्ष्मसापराय सबधी लोभ, उपशातकषाय संबंधी दोय,

१–गाथा ३१२ के आधार से— औदारिक मिश्रकाययोग रचना

मि	सा	अ	स
४	१४	४४	३६
९६	९२	७९	३६
२	६	१९	६२

दुग्गदिदुस्सरसंहदि, ओरालदु चरिमपंचसंठाणं।
ते तम्मिस्से सुस्सर, परघाददुसत्थगदि हीणा[1] ॥३१७॥

दुर्गतिदुस्वरसंहतिः, औरालद्वे चरमपंचसंस्थानं।
तास्तन्मिश्रे सुस्वरं, परघातद्विशस्तगतिर्हीनाः ॥३१७॥

टीका – अप्रशस्त विहायोगति, दुःस्वर, संहनन छह, औदारिक शरीर वा अंगोपांग, अंत का पंच संस्थान – ए बीस नाही; तातै उदय योग्य प्रकृति इकसठि है। बहुरि आहारक मिश्र विषै तिन इकसठि मेंस्यों सुस्वर, परघात, उस्वास, प्रशस्त-विहायोगति – ए च्यारि घटाइए, तहां उदययोग्य प्रकृति सत्तावन हैं। दोऊ विषै गुणस्थान एक प्रमत्त ही है ॥३१७॥

आगै कार्माणकाययोग विषै दोय गाथानि करि कहै हैं—

ओघं कम्मे सरगदिपत्तेयाहारुरालदुग मिस्सं।
उवघादपणविगुव्वदुथीणतिसंठाणसंहदी णत्थि ॥३१८॥

ओघः कर्मणि स्वरगतिप्रत्येकाहारौरालद्विकं मिश्रं।
उपघातपंचवैगूर्वद्विस्त्यानत्रिसंस्थानसंहतिर्नास्ति ॥३१८॥

टीका – कार्माणयोग विषै सामान्य उदय प्रकृति एक सौ बाईस। तिनमें सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति, प्रत्येक, साधारण, आहारक शरीर वा अंगोपांग, औदारिक शरीर वा अंगोपांग, मिश्रमोहनी, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उस्वास, वैक्रियिक शरीर वा अंगोपांग, स्त्यानगृद्धित्रिक, संस्थान छह, संहनन छह – इन तेतीस बिना उदय योग्य प्रकृति निवासी।

१–गाथा ३१७ के आधार से— आ० आ० मि०रचना

प्र	प्र
०	०
६१	५७
०	०

इहां प्रश्न – जो अनादि संसार विषै विग्रहगति, अविग्रहगति विषै मिथ्यादृष्टि आदि सयोगी पर्यंत सर्व गुणस्थान विषै कार्माण का निरंतर उदय है **'विग्रहगतौ कर्मयोगः'** ऐसे सूत्र विषै विग्रहगति ही विषै कार्माणयोग कैसे कह्या ?

ताका उत्तर–**'सिद्धे सत्यारंभो नियमाय'** सिद्ध होतै भी बहुरि आरंभ सो नियम के अर्थि है; तातै इहां ऐसा नियम है, जो विग्रहगति विषैं कार्माणयोग ही है और योग नाही।

बहुरि प्रश्न – जो विग्रहगति का तौ अर्थ यहु है, जो विग्रह कहिए नवीन शरीर ताके धारने के अर्थि जो गमन होइ, सो विग्रहगति कहिए। तहां मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत विषै तौ संभवै। सयोग विषै विग्रहगति का अभाव है, तहां कार्माण योग कैसै कह्या ?

ताका समाधान – जो विग्रहगति विषैं कार्माणयोग है ऐसा तो नियम नाहीं; तातैं प्रतर, लोकपूरण समुद्घात विषै तीन समय कार्माणयोग पाइए है। ॥३१८॥

साणे थीवेदछिदी, णिरयदुणिरयाउगं ण तियदसयं।
इगिवण्णं पणवीसं, मिच्छादिसु चउसु वोच्छेदो ॥३१९॥

साने स्त्रीवेदछित्तिः, निरयद्विनिरायुष्कं न त्रिकदशकं।
एकपंचाशत् पंचविंशतिः, मिथ्यादिषु चतुर्षु व्युच्छेदः ॥३१९॥

टीका – तहां[१] व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टि विषै मिथ्यात्व, सूक्ष्म, अपर्याप्त – ए तीन। सासादन विषै अनंतानुबंधी च्यारि, एकेंद्री, स्थावर, विकल-त्रय, स्त्रीवेद – ए दश। असंयत विषै सतरह, वैक्रियिक-द्विक बिना पद्रह। बहुरि क्षीणकषाय पर्यंत

१–गाथा ३१९ के आधार से—

कार्माणकाययोगरचना

मि	सा	अ	स
३	१०	५१	२५
८७	८१	७५	२५
२	८	१४	६४

कार्माण योग न संभवै; तातै ऊपरला गुणस्थानां की व्युच्छित्ति इहां ही कहनी । तहां देशव्रत संबंधी उद्योत बिना सात, प्रमत्त संबंधी आहारक द्विक स्त्यानगृद्धित्रिक विना शून्य, अप्रमत्त संबधी तीन सहनन विना एक सम्यक्त्व मोहनी, अपूर्वकरण संबंधी छह, अनिवृत्तिकरण संबंधी स्त्रीवेद की सासादन ही मे व्युच्छित्ति भई; तातै पांच, सूक्ष्मसांपराय संबंधी एक, उपशांत मोह सबधी संहनन के अभावतै शून्य, क्षीणकपाय संबंधी सोलह – असै सब मिलि असयत विषै व्युच्छित्ति इक्यावन । बहुरि सयोगी विषै बियालीस मेस्यों वज्रवृषभनाराच, स्वर द्विक, विहायोगति द्विक, औदारिक द्विक, संस्थान छह, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रत्येक – इन सतरह विना व्युच्छित्ति पचीस ।

असै होतै मिथ्यादृष्टि विषै सम्यक्त्व मोहनी, तीर्थंकर – अनुदय दोय, उदय सित्यासी । बहुरि व्युच्छित्ति तीन अर नरक द्विक अर नरकायु का उदय नाहीं; तातै सासादन विषै अनुदय आठ, उदय इक्यासी । बहुरि व्युच्छित्ति दश का उदय नाहीं अर सम्यक्त्व मोहनी, नरकद्विक, नरकायु का उदय; तातै असंयत विषै अनुदय चौदह, उदय पिचहत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति इक्यावन का उदय नाही, तीर्थंकरत्व का उदय, तातै सयोगी विषै अनुदय चौसठि, उदय पचीस पाइए है ॥३१९॥

आगै वेदमार्गणा विषैं कहैं हैं—

मूलोघं पुंवेदे, थावरचउणिरयजुगलतित्थयरं[1] ।
इगिविगलं थीसंढं, तावं णिरयाउगं णत्थि ॥३२०॥

मूलौघः पुंवेदे, स्थावरचतुर्निरययुगलतीर्थंकरं ।
एकविकलं स्त्रीषंढमातपं निरयायुष्कं नास्ति ॥३२०॥

१–गाथा ३२० के आधार से— पुंवेदरचना

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ
१	४	१	१४	८	५	४	६	६४
१०३	१०२	९६	९९	८५	७९	७४	७०	६४
४	५	११	८	२२	२८	३३	३७	४३

टीका – पुरुषवेद विषै मूलौघवत् एक सौ बाईस। तहां स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, नरक द्विक, तीर्थंकरत्व, एकेंद्री, विकलत्रय, स्त्री-नपुसक वेद, आतप, नरकायु – इन पद्रह बिना उदय योग्यप्रकृति एक सौ सात। तहा व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टि विषै मिथ्यात्व, सासादन विषैं अनंतानुबंधी च्यारि, मिश्र विषै एक मिश्र मोहनी, असंयत विषै अप्रत्याख्यान कषाय, वैक्रियिक द्विक, देवद्विक, देवायु, मनुष्य, तिर्यचानुपूर्वी, दूर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति – एवं चौदह। देशसंयतादिक विषै गुणस्थानवत् क्रम तै आठ, पांच, च्यारि, छह। बहुरि अनिवृत्तिकरण का सवेद। पहिला-भाग विषै पुरुषवेद, बहुरि संज्वलन क्रोध-मान-माया, बहुरि सूक्ष्मलोभ, बहुरि वज्रनाराच, नाराच, बहुरि क्षीणकपाय संबंधी सोलह, बहुरि तीर्थकर बिना केवली संबंधी इकतालीस – असें सब मिल चौसठि व्युच्छित्ति जाननी, जातै अनिवृत्तिकरण सवेद भाग के ऊपरि वेद का उदय नाही।

तहां मिथ्यादृष्टि विषै मिश्रमोहनी, सम्यक्त्व मोहनी, आहारक द्विक – ये अनुदय च्यारि, उदय एक सौ तीन। बहुरि व्युच्छित्ति एक; तातै सासादन विषै अनुदय पाच, उदय एक सौ दोय। बहुरि व्युच्छित्ति च्यारि, आनुपूर्वी तीन का उदय नाही, मिश्रमोहनी का उदय; तातै मिश्र विषै अनुदय ग्यारह, उदय छिनवै। बहुरि व्युच्छित्ति एक का उदय नाही अर सम्यक्त्व मोहनी, तिर्यच, मनुष्य, देवानुपूर्वी का उदय, तातै असंयत विषै अनुदय आठ, उदय निन्याणवै। बहुरि व्युच्छित्ति चौदह; तातै देशसंयत विषै अनुदय बाईस, उदय पिच्यासी। बहुरि व्युच्छित्ति आठ का उदय नाही, आहारक द्विक का उदय; तातै प्रमत्त विषै अनुदय अठाईस, उदय गुण्यासी। बहुरि व्युच्छित्ति पाच, तातै अप्रमत्त विषै अनुदय तेतीस, उदय चौहत्तरि। बहुरि व्युच्छित्ति च्यारि, तातै अपूर्वकरण विषै अनुदय सैंतीस, उदय सत्तरि। बहुरि व्युच्छित्ति छह, तातै अनिवृत्तिकरण का सवेद भाग विषै अनुदय तियालीस, उदय चौसठि ॥३२०॥

आगै स्त्री-नपुसक वेदनि विषै कहै है—

इत्थीवेदे वि तहा, हारदुपुरिसूणमित्थिसंजुत्तं।
ओघं संढे ण हि सुरहारदुथीपुंसुराउतित्थयरं ॥३२१॥

स्त्रीवेदेऽपि[१] तथाऽऽहारद्विपुरुषोनं स्त्रीसंयुक्तं ।
ओघः षंढे[२] नहि सुराहारद्विस्त्रीपुंसुरायुस्तीर्थंकरं ।।३२१।।

टीका – स्त्रीवेद विषैं पुरुषवेदवत् एक सौ सात । तहां आहारकद्विक, पुरुष वेद घटाइए, स्त्रीवेद मिलाइए – असैं उदययोग्य प्रकृति एक सौ पांच । तहां व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टि विषै मिथ्यात्व । सासादन विषै अनंतानुबंधी च्यारि, देव, मनुष्य, तिर्यंच-आनुपूर्वी – एवं सात । मिश्र विषै एक मिश्र मोहनी । असंयत विषै अप्रत्याख्यान कषाय च्यारि, देवगति, वैक्रियिक द्विक, देवायु, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति – एवं ग्यारह । देशसंयत विषै गुणस्थानवत् आठ । प्रमत्त विषैं स्त्रीवेदी संक्लेशी है; तातै आहारक द्विक नाही, तातै स्त्यानगृद्धि तीन । अप्रमत्त विषै सम्यक्त्व मोहनी, अंत के संहनन तीन – एवं च्यारि । अपूर्वकरण विषै छह नोकषाय । अनिवृत्तिकरण विषै चौसठि ।

असे होतें मिथ्यादृष्टि विषै मिश्रमोहनी, सम्यक्त्व मोहनी अनुदय दोय, उदय एक सौ तीन । बहुरि एक व्युच्छित्ति; तातै सासादन विषै अनुदय तीन, उदय एक सौ दोय बहुरि व्युच्छित्ति सात का उदय नाही, मिश्रमोहनी का उदय, तातै मिश्र

१–गाथा ३२१ के आधार से— स्त्रीवेदरचना

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ
१	७	१	११	८	३	४	६	६४
१०३	१०२	९६	९६	८५	७७	७४	७०	६४
२	३	९	९	२०	२८	३१	३५	४१

२–गाथा ३२१ के आधार से— षडवेदरचना

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ
५	११	१	१२	८	३	४	६	६४
११२	१०६	९६	९७	८५	७७	७४	७०	६४
२	८	१८	१७	२९	३७	४०	४४	५०

विषै अनुदय नव, उदय छिनवै । बहुरि व्युच्छित्ति एक का उदय नाही, सम्यक्त्व मोहनी का उदय, तातै असंयत विषै अनुदय नव, उदय छिनवै । बहुरि व्युच्छित्ति ग्यारह, तातै देशसंयत विषै अनुदय बीस, उदय पच्यासी । बहुरि व्युच्छित्ति आठ, तातै प्रमत्त विषै अनुदय अठाईस, उदय सतहत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति तीन, तातै अप्रमत्त विषै अनुदय इकतीस, उदय चौहत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति च्यारि, तातै अपूर्वकरण विषै अनुदय पैंतीस, उदय सत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति छह, तातै अनिवृत्ति करण का सवेद भाग विषै अनुदय इकतालीस, उदय चौसठि है ।

बहुरि नपुसक वेद विषै ओघः कहिए मूल प्रकृति एक सौ बाईस । तहां देवगति वा आनुपूर्वी, आहारक द्विक, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, देवायु, तीर्थकरत्व – इन आठ बिना उदय योग्य-प्रकृति एक सौ चौदह । तहां मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्मादि तीन – ए पांच । सासादन विषै अनंतानुबधी च्यारि, एकेद्री, स्थावर, विकलत्रय, मनुष्य, तिर्यचआनुपूर्वी – ए ग्यारह । मिश्र विषै मिश्र-मोहनी । असंयत विषै अप्रत्याख्यान कषाय च्यारि, वैक्रियिक द्विक, नरक गति वा आनुपूर्वी वा आयु, दुर्भगादि तीन – एवं बारह । देशसंयत विषै गुणस्थानवत् आठ । प्रमत्त विषै स्त्यानगृद्धित्रिक । अप्रमत्त विषै सम्यक्त्व मोहनी, अंत के सहनन तीन – ए च्यारि । अपूर्वकरण विषै छह नोकषाय । अनिवृत्तिकरण का नपुसक वेद भाग विषै चौसठि ।

असै होतै मिथ्यादृष्टि विषै मिश्रमोहनी अर सम्यक्त्व-मोहनी अनुदय दोय, उदय एक सौ बारा । बहुरि व्युच्छित्ति पाच, नरकानुपूर्वी का उदय नही, तातै सासा-दन विषै अनुदय आठ, उदय एक सौ छह । बहुरि व्युच्छित्ति ग्यारह का उदय नाही, मिश्रमोहनी का उदय, तातै मिश्र विषै अनुदय अठारह, उदय छिनवै । बहुरि व्युच्छिति एक का उदय नाही, सम्यक्त्व मोहनी, नरकानुपूर्वी का उदय, तातै असंयत विषै अनुदय सतरह, उदय सत्याणवै । बहुरि व्युच्छित्ति बारह, तातै देशसयत विषै अनुदय गुणतीस, उदय पिच्यासी । बहुरि व्युच्छित्ति आठ, तातै प्रमत्त विषै अनुदय सैंतीस, उदय सतहत्तरि । बहुरि व्युच्छिति तीन, तातै अप्रमत्त विषै अनुदय चालीस, उदय चौहत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति च्यारि, तातै अपूर्वकरण विषै अनुदय चवालीस, उदय सत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति छह, तातै अनिवृत्तिकरण का सवेद भाग विषै अनुदय पचास, उदय चौसठि है ।।३२१।।

आगे कषाय मार्गणा विषै कहै हैं—

तित्थयरमाणमायालोहचउक्कूणमोघमिह कोहे[1] ।
अणरहिदे[2] णिगिविगलं, तावऽणकोहाणुथावरचउक्कं ।।३२२।।

तीर्थंकरमानमायालोभचतुष्कोनमोघ इह क्रोधे ।
अनरहिते नैकविकलमातापानक्रोधानुस्थावरचतुष्कं ।।३२२।।

टीका – क्रोध कपाय विषै सामान्य एक सौ वाईस । तिनमें च्यारि क्रोध विना अन्य बारह कषाय अर तीर्थंकर – इन तेरह विना उदय योग्य प्रकृति एक सौ नव । तहा व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टि विषै गुणस्थानवत् पाच । सासादन विषै अनंतानुवंधी क्रोध,एकेंद्री, स्थावर, विकलत्रय – ए छह । मिश्र विषै मिश्रमोहनी । असंयत विषै अप्रत्याख्यान क्रोध, वैक्रियिक षट्क, मनुष्य-तिर्यंच आनुपूर्वी, देव-नरक आयु, दुर्भगादि तीन – एवं चौदह । देशसंयत विषै प्रत्याख्यान क्रोध, तिर्यंचायु, उद्योत, नीचगोत्र, तिर्यंचगति – एवं पांच । प्रमत्त विषै आहारकद्विक, स्त्यानगृद्धित्रिक – ए पांच । अप्रमत्त विषै सम्यक्त्व मोहनी, अत के संहनन तीन – एवं च्यारि । अपूर्वकरण विषै नोकषाय छह, अनिवृतिकरण का पहिला भाग संवंधी तीन वेद, दूसरा भाग संवंधी सज्वलन क्रोध, सूक्ष्मसांपराय संवधी लोभ का ग्रहण नाही, तातै शून्य, उपशात कपाय सवधी दोय, क्षीणकपाय संवंधी सोलह, केवली संवंधो तीर्थंकर विना इकतालोस – असे सर्व मिलि तरेसठि प्रकृति की अनिवृत्तिकरण का द्वितीय भाग विषै व्युच्छित्ति जाननी ।

असै होतै मिथ्यादृष्टि विषै मिश्रमोहनी, सम्यक्त्व मोहनी, आहारकद्विक – एवं अनुदय च्यारि, उदय एक सौ पांच । बहुरि व्युच्छित्ति पांच, नारकानुपूर्वी का उदय नाही; तातै सासादन विषै अनुदय दश, उदय निन्याणवै । वहुरि व्युच्छित्ति छह, अवशेप आनुपूर्वी तीन का उदय नाही, मिश्रमोहनी का उदय, तातै मिश्र विषै

१–गाथा ३२२ के आधार से

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ
५	६	१	१४	५	५	४	६	६३
१०५	९९	९१	९५	८१	७८	७३	६९	६३
४	१०	१८	१८	२८	३१	३६	४०	४६

२–गाथा ३२२ के आधार से

मि
१
९१
०

अनुदय अठारह, उदय इक्याणवै । बहुरि व्युच्छित्ति एक का उदय नाहीं, सम्यक्त्व मोहनी, च्यारि आनुपूर्वी का उदय, तातै असंयत विषै अनुदय चौदह, उदय पिच्याणवै । बहुरि व्युच्छित्ति चौदह, तातै देशसंयत विषै अनुदय अठाईस, उदय इक्यासी । बहुरि व्युच्छित्ति पांच का उदय नाही, आहारक द्विक का उदय, तातै प्रमत्त विषैं अनुदय इकतीस, उदय अठहत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति पांच, तातै अप्रमत्त विषैं अनुदय छत्तीस, उदय तेहत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति च्यारि, तातै अपूर्वकरण विषै अनुदय चालीस, उदय गुणहत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति छह, तातै अनिवृत्तिकरण का दूसरा क्रोध कषायभाग विषै अनुदय छियालीस, उदय तरेसठि है ।

बहुरि अनंतानुबंधी रहित क्रोध विषै मिथ्यादृष्टि विषै उदय, एक सौ पाच का है । तिनमें एकेंद्री, विकलत्रय, आतप, अनतानुबधी क्रोध, च्यारि आनुपूर्वी, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण – इन चौदह बिना उदय योग्य प्रकृति इक्याणवै जाननी । अनतानुबधी का विसयोजन करि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान विषै प्राप्त भया, ताके केतेइक काल अनतानुबधी का उदय न हो है, ताका यहु कथन जानना ।।३२२।।

एवं माणादितिए, मदिसुदअण्णाणगे दु सगुणोघं[1] ।
वेभंगेवि ण ताविगिविगलिंदी थावराणुचऊ[2] ।।३२३।।

एवं मानादित्रये, मतिश्रुताज्ञानके तु स्वगुणौघः ।
वैभंगेऽपि नातापैकविकलेंद्रियं स्थावरानुचत्वारि ।।३२३।।

टीका – इस ही प्रकार जैसे अनतानुबंध्यादिक च्यारि प्रकार क्रोध का कथन किया, तैसे ही मान चतुष्क विषै, माया चतुष्क विषै अन्य बारह कषाय अर तीर्थंकर बिना उदय योग्य प्रकृति एक सौ नव, एक सौ नव है, तातै तिनकी रचना क्रोध रचनावत् जाननी । बहुरि लोभ विषै भी वैसे ही तेरह प्रकृति के अभाव तै उदय योग्य प्रकृति एक सौ नव याकी रचना सूक्ष्म-सांपराय पर्यंत जाननी ।

बहुरि ज्ञानमार्गणा विषै कुमति-कुश्रुतज्ञान विषै एक सौ बाईस प्रकृति मे आहारकद्विक, तीर्थंकर, मिश्र मोहनी, सम्यक्त्व मोहनी बिना उदय योग्य प्रकृति एक

गाथा ३२३ के आधार से—

१–कुमति कुश्रुतरचना

मि	सा
६	९
११७	१११
०	६

२–विभगरचना

मि	सा
१	४
१०४	१०३
०	१

सौ सतरह । तहां मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्मादि तीन, नरकानुपूर्वी – एवं छह । सासादन विषै गुणस्थानवत् नव । असै होतै मिथ्यादृष्टि विषै अनुदय नास्ति, उदय एक सौ सतरह । बहुरि व्युच्छित्ति छह; तातै सासादन विषैं अनुदय छह, उदय एक सौ ग्यारह ।

विभंग ज्ञान विषैं भी असै ही । तहां आतप, एकेंद्री, विकलत्रय, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, आनुपूर्वी च्यारि – असै तेरह बिना पूर्वोक्त उदय योग्य प्रकृति एक सौ च्यारि । तहां मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति एक मिथ्यात्व । सासादन विषैं अनंतानुबंधी च्यारि । असै होतैं मिथ्यादृष्टि विषै अनुदय नास्ति, उदय एक सौ च्यारि । बहुरि व्युच्छित्ति एक; तातै सासादन विषैं अनुदय एक, उदय एक सौ तीन ॥३२३॥

सण्णाणपंचयादी, दंसणमग्गणपदोत्ति सगुणोघं ।
मणपज्जवपरिहारे, णवरि ण संढित्थि हारदुगं ॥३२४॥

सद्ज्ञानपंचकादि, दर्शनमार्गणापदमिति स्वगुणौघः ।
मनःपर्ययपरिहारे, नवरि न षंढस्त्री आहारद्वयं ॥३२४॥

टीका – सुज्ञान पाच तै लगाय दर्शनमार्गणा पर्यंत अपनी गुणस्थान रचनावत् रचना जाननी । सोई कहिए है – मतिज्ञान, श्रुतजान, अवधिज्ञान विषै गुणस्थान असंयतादिक नव, उदय योग्य एक सौ बाईस में पहिला, दूसरा, तीसरा गुणस्थान विषै व्युच्छित्ति पंद्रह अर तीर्थंकर – इन सोलह बिना एक सौ छह प्रकृति है । तहां व्युच्छित्ति गुणस्थानवत् असयतादिक विषै अनुक्रम तै सतरह, आठ, पांच, च्यारि, छह, छह, एक, सोलह जाननी ।

असै होतै असंयत विषै अनुदय आहारकद्विक, उदय एक सौ च्यारि । ऊपरि देशसंयतादिक क्षीणकषाय पर्यंत विषै गुणस्थानवत् अनुक्रम तै उदय सित्यासी, इक्यासी, छिहंतरि, वहत्तरि, छ्यासठि, साठि, गुणसठि, सत्तावन जाननी । बहुरि मूल में सोलह प्रकृति उदय योग्य नाहीं, तातै देशसयतादिक विषैं क्रम तै अनुदय उगणीस, पचीस, तीस, चौतीस, चालीस, छियालीस, सैंतालीस, गुणचास, जानना ।

वहुरि मन.पर्ययज्ञान विषै 'संढित्थीहारदुगं ण' नपुसक-वेद, स्त्रीवेद, आहारकद्विक – ए उदय योग्य नाहीं; तातै प्रमत्त गुणस्थान मे उदय योग्य इक्यासी में – ए च्यारि घटाएं उदय योग्य प्रकृति सतहत्तरि । गुणस्थान प्रमत्तादिक सात ।

तहां व्युच्छित्ति प्रमत्त विषै स्त्यानगृद्धि तीन, अप्रमत्त विषै गुणस्थानवत् च्यारि, अपूर्वकरण विषै नोकषाय छह, अनिवृत्तिकरण विषै पुरुषवेद, संज्वलन, क्रोधादि तीन – ए च्यारि, सूक्ष्मसांपराय विषै सूक्ष्मलोभ, उपशांत कषाय विषै वज्रनाराच, नाराच – ए दोय, क्षीणकषाय विषै गुणस्थानवत् सोलह ।

अैसैं होतैं प्रमत्त विषैं अनुदय शून्य, उदय सतहत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति तीन; तातैं अप्रमत्त विषैं अनुदय तीन,उदय चहोत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति च्यारि, तातैं अपूर्वकरण विषैं अनुदय सात, उदय सत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति छह; तातैं अनिवृत्तिकरण विषैं अनुदय तेरह, उदय चौसठि । बहुरि व्युच्छित्ति च्यारि; तातैं सूक्ष्मसांपराय विषैं अनुदय सतरह, उदय साठि । बहुरि व्युच्छित्ति एक; तातैं उपशांतकषाय विषैं अनुदय अठारह, उदय गुणसठि । बहुरि व्युच्छित्ति दोय; तातैं क्षीणकषाय विषैं अनुदय बीस, उदय सत्तावन है ।

बहुरि केवलज्ञान विषैं उदय योग्य प्रकृति बियालीस । तहां सयोगी विषैं व्युच्छित्ति तीस । अयोगी विषैं बारह । ऐसैं होतैं सयोगी विषैं अनुदय शून्य, उदय बियालीस, अयोगी विषैं अनुदय तीस, उदय बारह ।

बहुरि सयम मार्गणा विषैं सामायिक, छेदोपस्थापना सयम विषैं उदय योग्य प्रकृति प्रमत्तगुणस्थानवत् इक्यासी । गुणस्थान प्रमत्तादिक च्यारि । तहां प्रमत्तादिक विषैं व्युच्छित्ति गुणस्थानवत् पांच, च्यारि, छह, छह । बहुरि उदय भी गुणस्थानवत् इक्यासी, छिहंतरि, बहत्तरि, छचासठि । बहुरि अनुदय शून्य, पांच, नव, पंद्रह जानना ।

बहुरि परिहारविशुद्धि विषैं **'संढित्थीहारदुगं ण'** नपुसक, स्त्रीवेद, आहारकद्विक – इन च्यारि बिना उदय योग्य प्रकृति सतहत्तरि । गुणस्थान दोय । तहां व्युच्छित्ति प्रमत्त विषैं स्त्यानगृद्धि आदिक तीन, अप्रमत्त विषैं गुणस्थानवत् च्यारि । अैसैं होतैं प्रमत्त विषैं अनुदय शून्य, उदय सतहत्तरि । बहुरि व्युच्छित्ति तीन; तातैं अप्रमत्त विषैं अनुदय तीन, उदय चहोत्तरि ।

बहुरि सूक्ष्मसांपराय विषैं उदय योग्य प्रकृति साठि । सूक्ष्मसांपराय-गुणस्थानवत् गुणस्थान एक ।

बहुरि यथाख्यात विषैं उपशांतकषाय की गुणसठि मे तीर्थंकरत्व मिलाए उदय योग्य-प्रकृति साठि, गुणस्थान उपशातकषायादिक च्यारि । तिनमे व्युच्छित्ति

गुणस्थानवत् दोय, सोलह तीस बारा । उदय गुणस्थानवत् गुणसठि, सत्तावन, वियालीस, बारा । अनुदय एक, तीन, अठारह, अठतालीस जानना ।

बहुरि देशसंयत विषै देशसंयत गुणस्थानवत् उदय प्रकृति सित्यासी । गुणस्थान सोई एक जानना ।

बहुरि असंयम विषैं तीर्थंकर, आहारकद्विक विना उदय योग्य प्रकृति एक सौ उगणीस । गुणस्थान मिथ्यात्वादिक च्यारि । तिनमें अनुक्रम तै व्युच्छित्ति गुणस्थानवत् पांच, नव, एक, सतरह । उदय गुणस्थानवत् एक सौ सतरह, एक सौ ग्यारह, सौ, एक सौ च्यारि । बहुरि तीन प्रकृति मूल में उदय योग्य नाही; तातै अनुदय दोय, आठ, उगणीस, पंद्रह जानना ।।३२४।।

चक्खुम्मि ण साहारणताविगिबितिजाइ थावरं सुहुमं ।
किण्हदुगे सगुणोघं, मिच्छे णिरयाणुवोच्छेदो ।।३२५।।

चक्षुषि न साधारणातापैकद्वित्रिजातिः स्थावरं सूक्ष्मं ।
कृष्णद्विके स्वगुणौघो, मिथ्ये निरयानुव्युच्छेदः ।।३२५।।

टीका – बहुरि दर्शनमार्गणा विषै चक्षुदर्शन विषै एक सौ वाईस में साधारण, आतप, एकेद्री, वेद्री, तेंद्री, स्थावर, सूक्ष्म, तीर्थंकर एक – इन आठ विना उदय योग्य प्रकृति एक सौ चौदह, गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदिक वारह । तहां मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति मिथ्यात्व, अपर्याप्त – ए दोय । सासादन विषै अनंतानुवधी च्यारि, चौंद्री – एव पांच । मिश्रादिक विपै गुणस्थानवत् एक, सतरह, आठ, पांच, च्यारि, छह, छह, एक, दोय, सोलह प्रकृति व्युच्छित्ति जाननी ।

ऐसै होतै मिथ्यादृष्टि विषै मिश्रमोहनी, सम्यक्त्वमोहनी, आहारकद्विक – ए च्यारि अनुदय, उदय एक सौ दस । वहुरि व्युच्छित्ति दोय अर नारकानुपूर्वी का उदय नाही; तातै सासादन विषै अनुदय सात, उदय एक सौ सात । बहुरि व्युच्छित्ति पांच, तीन; आनुपूर्वी का उदय नाहीं, मिश्र मोहनीय का उदय; तातै मिश्र विपै अनुदय चौदह, उदय सौ । वहुरि असंयतादिक विपै अनुक्रम तै गुणस्थानवत् उदय एक सौ च्यारि, सित्यासी, इक्यासी, छिहंत्तरि, वहत्तरि, छ्यासठि, साठि, गुणसठि, सत्तावन जानवा ।

बहुरि मूल मे आठ प्रकृति उदय योग्य नाही; ताते असयतादिक विषै क्रम तै अनुदय दस, सत्ताईस, तेतीस, अठतीस, बियालीस, अठतालीस, चौवन, पचावन, सत्तावन जानना, नीचली व्युच्छित्ति ऊपरि का अनुदय मे मिलावना वा यथायोग्य प्रकृति का उदय, अनुदय विचार लेना ।

बहुरि अचक्षुदर्शन विषै तीर्थकरत्व बिना उदय योग्य प्रकृति एक सौ इकईस, गुणस्थान मिथ्यादृष्टयादिक बारह । तहां व्युच्छित्ति गुणस्थानवत् पांच, नव, एक, सतरह, आठ, पांच, च्यारि, छह, छह, एक, दोय, सोलह प्रकृति जाननी । उदय भी गुणस्थानवत् एक सौ सतरह, एक सौ ग्यारह, सौ, एक सौ च्यारि, सित्यासी, इक्यासी, छिहंतर, बहत्तरि, छयासठि, साठि, गुणसठि, सत्तावन जानना । मूल मे एक प्रकृति उदय योग्य नाहीं; ताते अनुदय गुणस्थानोक्त अनुदय ते एक-एक घाटि जानना । सो मिथ्यादृष्टि विषै तीर्थंकर बिना अनुदय च्यारि । सासादनादिक विषै क्रम तै दस, इकईस, सतरह, चौतीस, चालीस, पैंतालीस, गुणचास, पचावन, इकसठि, बासठि, चौसठि अनुदय जानना ।

बहुरि अवधिदर्शन विषै अवधिज्ञानवत् उदय-योग्य प्रकृति एक सौ छह, गुण-स्थान नव । तिन विषै व्युच्छित्ति, उदय, अनुदय अवधिज्ञान रचनावत् जानना ।

बहुरि केवल दर्शन विषै उदय-योग्य प्रकृति बियालीस, गुणस्थान दोय । तहां रचना केवलज्ञानवत् जाननी ।

बहुरि लेश्यामार्गणा विषै कृष्ण – नील विषै तीर्थंकर, आहारक द्विक बिना उदय योग्य प्रकृति एक सौ उगणीस, गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि च्यारि; जातै **'अय-दोत्ति छल्लैसाओ'** इस वचन तैं असयत पर्यत छह लेश्या है । तहा व्युच्छित्ति मिथ्या-दृष्टि विषै गुणस्थानवत् पाच अर एक नारकानुपूर्वी एव छह, जातै सासादन कै मरि नरक विषै गमन नाही । मिश्र कै आनुपूर्वी का उदय नाही, असंयत के द्वितीयादि पृथ्वी विषै उपजना नाही है. तातै कृष्ण, नील लेश्या रूप नारकानुपूर्वी की इहां ही व्युच्छित्ति भई है ।

बहुरि सासादन विषै व्युच्छित्ति गुणस्थानवत् नव अर असंयत संबंधी देवद्विक देवायु, तिर्यंचानुपूर्वी एव तेरह । मिश्र विषै मिश्रमोहनी । असयत विषै दूसरा कषाय च्यारि, नरकगति, नरकायु, वैक्रियिक द्विक, मनुष्यानुपूर्वी, दुर्भग आदि तीन एवं बारह ।

इहां **'भोगा पुण्णगसम्मेकाउस्स जहण्णियं हवे'** इस नियम तै तिर्यंचानुपूर्वी इहां न कही है, जातै देवनारकी असंयत – तिर्यंच विषै उपजते नाही। बहुरि नरक तै आया सम्यग्दृष्टि कै कर्मभूमि का मनुष्य विषै उपजने का नियम है। तहां पहिले अंतर्मुहूर्त काल पर्यंत पूर्व भव संबंधी लेश्या रहै हैं; तातै मनुष्यानुपूर्वी का उदय असंयत विषै इहां संभवै है।

ऐसे होतै मिथ्यादृष्टि विषैं मिश्रमोहनी, सम्यक्त्व मोहनी अनुदय, उदय एक सौ सतरह। बहुरि व्युच्छित्ति छह; तातैं सासादन विषै अनुदय आठ; उदय एक सौ ग्यारह। बहुरि व्युच्छित्ति तेरह, मनुष्यानुपूर्वी का उदय नाही अर मिश्रमोहनी का उदय; तातै मिश्र विषै अनुदय इकईस, उदय अठ्याणवै। बहुरि व्युच्छित्ति एक का उदय नाही अर सम्यक्त्व मोहनी, मनुष्यानुपूर्वी का उदय; तातै असंयत विषै अनुदय वीस, उदय निन्याणवै है।

बहुरि कपोत लेश्या विषै कृष्ण नीलवत् उदय-योग्य प्रकृति एक सौ उगणीस, गुणस्थान आदि के च्यारि। तहां मिथ्यादृष्टि विषैं गुणस्थानवत् व्युच्छित्ति पांच। सासादन विषैं गुणस्थानवत् नव अर देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, देवायु – ए बारह। मिश्र विषैं एक मिश्रमोहनी। असंयत विषैं अप्रत्याख्यान कषाय च्यारि, नरकगति वा आनुपूर्वी, नरकायु, वैक्रियिक – शरीर वा अंगोपांग, तिर्यंच – मनुष्य – आनुपूर्वी, दुर्भगादि तीन – एवं चौदह।

ऐसे होतै मिथ्यादृष्टि विषैं सम्यक्त्वमोहनी, मिश्र मोहनी अनुदय दोय, उदय एक सौ सतरह। बहुरि व्युच्छित्ति पांच अर नारकानुपूर्वी का उदय नाही; तातैं सासादन विषै अनुदय आठ, उदय एक सौ ग्यारह। बहुरि व्युच्छित्ति बारह, आनुपूर्वी दोय का उदय नाही, मिश्र मोहनी का उदय; तातै मिश्र-मोहनी विषै अनुदय इकईस, उदय अठ्याणवै। बहुरि व्युच्छित्ति एक का उदय नाही अर सम्यक्त्व-मोहनी तीन आनुपूर्वी का उदय; तातैं असंयत विषै अनुदय अठारह, उदय एक सौ एक।

भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी देवनि कै अपर्याप्त – काल विषै कृष्ण, नील, कपोत लेश्या ही है। पर्याप्त काल विषै तेजोलेश्या का जघन्य अंश पाइए। बहुरि अशुभ-लेश्या का धारक असंयत भवनत्रिक विषैं उपजै नाही; तातैं देवद्विक, देवायु इन तीन प्रकृतिनि की व्युच्छित्ति सासादन विषैं ही कही ॥३२५॥

सोई कहै हैं—

साणे सुराउसुरगदिदेवतिरिक्खाणुवोछिदी एवं ।
काओदे अयदगुणे, णिरयतिरिक्खाणुवोछेदो ॥३२६॥

साने सुरायुःसुरगति, देवतिर्यगानुव्युच्छित्तिरेवं ।
कापोते अयतगुणे, निरयतिर्यगानुव्युच्छेदः ॥३२६॥

टीका – तातै कृष्ण, नील विषै सासादन–गुणस्थान में देवगति वा आनुपूर्वी, देवायु, तिर्यच–आनुपूर्वी की व्युच्छित्ति जाननी । गुणस्थानवत् नव सर्व तेरह है । बहुरि 'एवं' कहिए असै ही कपोत–लेश्या विषै भी उदय योग्य प्रकृति एक सौ उगणीस है । तहां असयत गुणस्थान विषै नरक-तिर्यच आनुपूर्वी, दुर्भगादि तीन, मनुष्य आनुपूर्वी आदि – असै चौदह व्युच्छित्ति है, असा कह्या है ॥३२६॥

आगै तीन शुभ लेश्या विषै कहै हैं—

तेउतिये सगुणोघं, णादाविगिविगलथावरचउक्कं ।
णिरयदुतदाउतिरियाणुगं णराणू ण मिच्छदुगे ॥३२७॥

तेजस्त्रये स्वगुणौघो, नातावैकविकलस्थावरचतुष्कं ।
निरयद्वितदायुस्तिर्यगानुकं नरानु न मिथ्यद्विके ॥३२७॥

टीका – तेज, पद्म, शुक्ल लेश्या विषै अपना-अपना गुणस्थानवत् रचना । तहां विशेष जो आतप, एकेंद्री, विकलत्रय, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, नरक गति वा आनुपूर्वी, नरकायु, तिर्यचानुपूर्वी – इन तेरह बिना उदय-योग्य प्रकृति एक सौ नव । तहां भी पीत-पद्म विषै तीर्थंकर बिना उदय-योग्य प्रकृति एक सौ आठ । गुणस्थान सात आदि के । तहा व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टि विषै मिथ्यात्व । सासादन विषै अनंतानुबंधी च्यारि । मिश्र विषै मिश्रमोहनी । असयत विषै अप्रत्याख्यान - कषाय च्यारि, देवगति वा आनुपूर्वी, वैक्रियिक-शरीर वा अंगोपांग, देवायु, मनुष्यानुपूर्वी, दुर्भगादि तीन – एवं तेरह । देशसयत, प्रमत्त, अप्रमत्त विषै गुणस्थानवत् आठ, पांच, च्यारि व्युच्छित्ति है ।

असै होतै मिथ्यादृष्टि विषै मिश्रमोहनी, सम्यक्त्वमोहनी, आहारकद्विक अर **'णराणू ण मिच्छदुगे'** इस वचन करि मनुष्यानुपूर्वी – ए पांच अनुदय, उदय एक सौ

तीन । बहुरि व्युच्छित्ति एक; तातै सासादन विषै अनुदय छह, उदय एक सौ दोय । बहुरि व्युच्छित्ति च्यारि, देवानुपूर्वी का अनुदय अर मिश्रमोहनी का उदय; तातै मिश्र विषै अनुदय दस, उदय अठ्याणवै । बहुरि व्युच्छित्ति एक का अनुदय । बहुरि सम्यक्त्वमोहनी, मनुष्य-देवानुपूर्वी का उदय; तातै असंयत विषैं अनुदय आठ, उदय सौ । बहुरि व्युच्छित्ति तेरह; तातै देशसंयत विषै अनुदय इकईस, उदय सित्यासी । बहुरि व्युच्छित्ति आठ का अनुदय, आहारक-द्विक का उदय; तातै प्रमत्त विषै अनुदय सत्ताईस, उदय इक्यासी । बहुरि व्युच्छित्ति पांच; तातै अप्रमत्त विषै अनुदय बत्तीस, उदय छिहंतरि है ।

बहुरि शुक्ल-लेश्या विषै उदय-योग्य प्रकृति एक सौ नव, गुणस्थान तेरह आदि के । तहां व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टयादिक अप्रमत्त पर्यंत पीतपद्मवत् एक, च्यारि, एक, तेरह, आठ, पाच, च्यारि । अपूर्वकरणादिक विषै गुणस्थानवत् छह, छह, एक, दोय, सोलह । सयोगी विषै बियालीस प्रकृति जाननी ।

असै होतै मिथ्यादृष्टि विषै मिश्रमोहनी, सम्यक्त्वमोहनी, आहारकद्विक, तीर्थंकर अर 'णराणू ण मिच्छदुगे' इस वचन तै मनुष्यानुपूर्वी – एवं अनुदय छह, उदय एक सौ तीन । बहुरि व्युच्छित्ति सासादनादिक विषै अनुदय पीतपद्म तै एक तीर्थंकरत्व का अधिक है; तातैं इहां अनुदय सासादनादिक विषै सात, ग्यारह, नव, बाईस, अठाइस, तेतीस जानना । अपूर्वकरणादिक विषै मूल में तेरह प्रकृति उदय योग्य नाही; तातैं गुणस्थानोक्त अनुदय तै तेरह-तेरह घाटि जानना । सो अपूर्वकरणादिक विषै अनुदय क्रम तै सैतीस, तियालीस, गुणचास, पचास, बावन, सतसठि प्रकृति का जानना । बहुरि उदय सासादनादिक विषै तौ पीतपद्मवत् एक सौ दोय, अठ्याणवै, सौ, सत्यासी, इक्यासी, छिहंतरि जानना । अपूर्वकरणादिक विषै गुणस्थानवत् बहत्तरि, छ्यासठि, साठि, गुणसठि, सत्तावन, बियालीस प्रकृति का जानना ॥३२७॥

भव्विदरुवसमवेदगखइये सगुणोघमुवसमे खयिये ।
ण हि सम्ममुवसमे पुण, णादितियाणू य हारदुगं ॥३२८॥

भव्येतरोपशमवेदकक्षायिके स्वगुणौघ उपशमे क्षायिके ।
नहि सम्यगुपशमे पुनर्नादित्रयानु चाहारद्विकं ॥३२८॥

टीका – भव्य, अभव्य, उपशम, वेदक, क्षायिक सम्यक्त्व इन मार्गणानि विषै अपना - अपना गुणस्थान का सामान्य कथनवत् कथन जानना। विशेष इतना जो उपशम सम्यक्त्व विषै दर्शनमोह का प्रशस्त उपशम भया है। क्षयोपशम सम्यक्त्व की ज्यों अप्रशस्तपना नाही है, तातै तहां सम्यक्त्व मोहनी का उदय नाही है। बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व विषै दर्शन मोह का क्षय भया है; तातै सम्यक्त्व मोहनी का उदय नाही है। बहुरि उपशम सम्यक्त्व विषैं नरक, तिर्यच, मनुष्य आनुपूर्वी, आहारक द्विक – ए भी उदय योग्य नाही है, जातै पूर्वै आयुबंध भए भी तहां मरण नाही ॥३२८॥

कैसें ? सो कहिए हैं—

मिस्साहारस्सयया, खवगा चडमाडपढमपुव्वा य।
पढमुवसमया तमतम, गुडपडिवण्णा य ण मरंति ॥१॥
अणसंयोगे मिच्छे, मुहुत्तअंतोत्ति णत्थि मरणं तु।
कदकरणिज्जं जाव दु, सव्वपरट्ठाण अट्ठपदा ॥२॥[१]

टीका – निर्वृत्ति अपर्याप्त अवस्था के धारी, बहुरि आहारकमिश्र योग के धारी, बहुरि क्षपकश्रेणीवाले, बहुरि उपशम श्रेणी चढने विषैं अपूर्वकरण का प्रथम भागवाले, बहुरि प्रथमोपशम सम्यक्त्व संयुक्त, बहुरि तमस्तम सातवी नरक पृथ्वी विषै सम्यक्त्व गुण सहित जीव – एते मरण कौ प्राप्त न होंहि। बहुरि अनंतानुबंधी का विसंयोजन करि अन्य कषायरूप परिणमाइ पीछें मिथ्यात्व कौ प्राप्त भया होइ, ताकै अंतर्मुहूर्तकाल पर्यंत मरण न होइ, बहुरि दर्शन मोह का क्षय करनेवाले जीव कैं यावत् कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टिपना होइ तावत् मरण न होइ। 'तु' शब्द करि जिनके पूर्वै देवायु का बंध भया होइ, तिनके उपशम श्रेणी का उतरनै विषै अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यंत मरण होइ, तब मर करि असयत गुणस्थानवर्ती देव ही होइ, तातैं प्रथमोपशम सम्यक्त्व विषै नरक, तिर्यंच, मनुष्य - आनुपूर्वी का उदय नाही। बहुरि द्वितीयोपशम सम्यक्त्व विषै देवायु बिना और आयु का सत्व नाही। जातै उपशम श्रेणी चढने के निमित्त सातिशय - अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीव ही करि द्वितीयोपशम सम्यक्त्व अगीकार कीजिए है। बहुरि अणुव्रत, महाव्रत, देवायु बिना और आयु का बंधवाले कै होते नाही, तातै उपशम सम्यक्त्व विषै देव बिना तीन आनुपूर्वी का सत्व

१–ये दोनो गाथायें कर्मकाण्डागत स्थानसमुत्कीर्तनसज्ञक पचमाधिकार की ५६० एव ५६१ न० की हैं।

नाहीं; तातै उदय भी नाहीं। बहुरि दोऊ उपशम सम्यक्त्व विषै आहारक ऋद्धि की प्राप्ति न होइ, असैं जानना।

सो भव्य मार्गणा विषै गुणस्थानवत् उदययोग्य प्रकृति एक सौ बाईस, गुणस्थान चौदह, तथा व्युच्छित्ति, उदय, अनुदय सर्व गुणस्थानवत् जानना, विशेष किछू नाहीं। बहुरि अभव्य मार्गणा विषै गुणस्थान एक – मिथ्यादृष्टि। तहां उदय योग्य प्रकृति एक सौ सतरह जाननी।

बहुरि सम्यक्त्व मार्गणा विषै उपशम - सम्यक्त्व विषैं असंयत में उदय योग्य एक सौ च्यारि तहां **'णादितियाणू य हारदुगं'** असे वचन करि नारक, तिर्यंच, मनुष्य आनुपूर्वी तीन, सम्यक्त्व मोहनी – इन च्यारि विना उदय योग्य प्रकृति सौ, गुणस्थान असंयतादिक आठ। तहां असंयत विषै अप्रत्याख्यान कषाय च्यारि, देवनरक-आयु, नरकगति, देवगति वा आनुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर वा अंगोपांग, दुर्भगादि तीन एवं चौदह व्युच्छित्ति। इहां नरकगति, नरकायु का उदय प्रथमोपशम सम्यक्त्व की अपेक्षा जानना।

बहुरि देशसंयत विषै प्रत्याख्यान कषाय च्यारि, तिर्यंचायु, उद्योत, नीचगोत्र, तिर्यंचगति – ए आठ व्युच्छित्ति। इहां भी तिर्यंचायु इत्यादिक च्यारि प्रकृतिनि का उदय प्रथमोपशम सम्यक्त्व की अपेक्षा ही जानना। बहुरि प्रमत्त विषै आहारकद्विक उपशम सम्यक्त्ववाले कै न होइ, यातैं स्त्यानगृद्धित्रिक व्युच्छित्ति है। बहुरि अप्रमत्त विषैं सम्यक्त्व मोहनी का मूल में उदय नाही; तातै अंत के संहनन तीन व्युच्छित्ति। बहुरि अपूर्वकरण विषै छह नोकषाय, अनिवृत्तिकरण विषै वेद तीन, संज्वलन क्रोधादि तीन – एवं छह। सूक्ष्मसांपराय विषै सूक्ष्म लोभ। उपशांत कषाय विषै वज्रनाराच, नाराच – ए दोय व्युच्छित्ति है।

असैं होतै असंयत विषैं अनुदय नास्ति, उदय सौ। बहुरि व्युच्छित्ति चौदह; तातै देशसंयत विषै अनुदय चौदह, उदय छियासी। बहुरि व्युच्छित्ति आठ; तातै प्रमत्त विषै अनुदय बाईस, उदय अठहत्तरि। बहुरि व्युच्छित्ति तीन; तातै अप्रमत्त विषैं अनुदय पचीस, उदय पिचहत्तरि। बहुरि व्युच्छित्ति तीन; तातै अपूर्वकरण विषैं अनुदय अठाईस, उदय बहत्तरि। बहुरि व्युच्छित्ति छह; तातै अनिवृत्तिकरण विषै अनुदय चौंतीस, उदय छयासठि। बहुरि व्युच्छित्ति छह; तातै सूक्ष्मसांपराय विषै अनुदय चालीस, उदय साठि। बहुरि व्युच्छित्ति एक; तातै उपशांतकषाय विषै अनुदय इकतालीस, उदय गुणसठि है।

बहुरि वेदक सम्यक्त्व विषै स्वगुणस्थानवत् । सो मिथ्यादृष्टयादिक तीन गुणस्थान विषै पांच, नव, एक – असै पद्रह व्युच्छित भई । एक तीर्थंकर – असै सोलह बिना उदय योग्य प्रकृति एक सौ छह । गुणस्थान असयतादिक च्यारि । तहां असंयत, देशसंयत, प्रमत्त विषै व्युच्छित्ति गुणस्थानवत् सतरह, आठ, पाच । बहुरि अप्रमत्तादिक की व्युच्छित्ति च्यारि, छह, छह, एक, दोय, सोलह, तीस तीर्थंकर बिना ग्यारह – सब मिलि छिहंतरि अप्रमत्त विषै व्युच्छित्ति जानना, जातै अपूर्वकरणादिक विषै क्षयोपशम सम्यक्त्व नाही ।

असै होतै असंयत विषै आहारकद्विक अनुदय, उदय एक सौ च्यारि । बहुरि सतरह व्युच्छित्ति; तातै देशसंयत विषै अनुदय उगणीस, उदय सित्यासी । बहुरि व्युच्छित्ति आठ का उदय नाही, आहारक द्विक का उदय; तातै प्रमत्त विषै अनुदय पचीस, उदय इक्यासी । बहुरि व्युच्छित्ति पांच; तातै अप्रमत्त विषै अनुदय तीस, उदय छिहंतरि ।

बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व विषैं मिथ्यादृष्टयादिक तीन गुणस्थाननि विषैं व्युच्छित्ति भई पंद्रह अर सम्यक्त्व मोहनी – इन बिना उदय योग्य प्रकृति एक सौ छह, गुणस्थान असंयतादिक ॥१–२॥

खाइयसम्मो देसो, णर एव जदो तहिं ण तिरियाऊ ।
उज्जोवं तिरियगदी, तेसिं अयदम्हिं वोच्छेदो ॥३२९॥

क्षायिकसम्यग् देशो, नर एव यतस्तस्मिन् न तिर्यगायुः ।
उद्योतस्तिर्यग्गति स्तेषामयते व्युच्छेदः ॥३२९॥

टीका – क्षायिक सम्यग्दृष्टि देशसंयत गुणस्थानवर्ती मनुष्य ही होइ, तिर्यंच न होइ; तातै तिर्यचायु, उद्योत, तिर्यचगति – इन तीन का उदय पंचम गुणस्थान विषै नाही । इनकी व्युच्छित्ति चौथे ही भई; यातै असंयत विषै व्युच्छित्ति गुणस्थानवत् सतरह अर तिर्यचायु, उद्योत, तिर्यचगति – तीन ए – असे बीस व्युच्छित्ति है । बहुरि देशसंयत विषै ते तीन नाही, तातै प्रत्याख्यान कषाय च्यारि, नीचगोत्र – असैं पाच व्युच्छित्ति है । प्रमत्त विषै गुणस्थानवत् पांच, अप्रमत्त विषै सम्यक्त्व मोहनी नाही, तातै तीन । बहुरि अपूर्वकरणादिक विषै गुणस्थानवत् छह, छह, एक, दोय, सोलह, तीस, बारह व्युच्छित्ति जाननी ।

असें होतें असंयत विषैं आहारकद्विक तीर्थंकर – ए अनुदय तीन, उदय एकसौ तीन। बहुरि व्युच्छित्ति वीस; तातैं देशसंयत विषैं अनुदय तेईस, उदय तियासी। बहुरि व्युच्छित्ति पांच का अनुदय, आहारकद्विक का उदय; तातैं प्रमत्त विषैं अनुदय छव्वीस, उदय अस्सी। बहुरि अप्रमत्तादिक विषैं नीचली व्युच्छित्ति मिलाएं अनुदय अनुक्रम तैं इकतीस, चौंतीस, चालीस, छियालीस, सैंतालीस, गुणचास जानना। बहुरि व्युच्छित्ति सोलह, तीर्थंकर का उदय; तातैं सयोगी विषैं अनुदय चौंसठि। बहुरि व्युच्छित्ति तीस; तातैं अयोगी विषैं अनुदय चौराणवैं। बहुरि अप्रमत्तादिक विषैं उदय अनुक्रम तैं पिचहत्तरि, बहत्तरि, छ्यासठि, साठि, गुणसठि, सत्तावन, वियालीस, बारह जानना ॥३२९॥

सेसाणं सगुणोघं, सण्णिस्सवि णत्थि तावसाहरणं।
थावरसुहुमिगिविगलं, असण्णिणोवि य ण मणुदुच्चं ॥३३०॥

वेगुव्वछ पणसंहदिसंठाण सुगमण सुभगआउतियं।
आहारे सगुणोघं, णवरि ण सव्वाणुपुव्वीओ ॥३३१॥

शेषाणां स्वगुणौघः, संज्ञिनोऽपि नास्ति आतपसाधारणं।
स्थावरसूक्ष्मैकविकल मसंज्ञिनोऽपि च न मनुद्विउच्चं ॥३३०॥

वैगूर्वषट् पंचसंहतिसंस्थानं सुगमनं सुभगायुस्त्रयं।
आहारे स्वगुणौघो, नवरि न सर्वानुपूर्व्यः ॥३३१॥

टीका – अवशेष मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र सम्यक्त्व विषैं अपने-अपने गुणस्थानवत् जानना। तहां मिथ्यारुचि विषैं मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवत् उदय योग्य प्रकृति एकसौ सतरह, गुणस्थान एक मिथ्यादृष्टि। सासादन रुचि विषैं सासादन गुणस्थानवत् उदय योग्य प्रकृति एक सौ ग्यारह, गुणस्थान एक सासादन। मिश्ररुचि विषैं मिश्र गुणस्थानवत् उदय योग्य प्रकृति सौ, गुणस्थान एक मिश्र।

बहुरि संज्ञी मार्गणा विषैं आतप, साधारण, स्थावर, सूक्ष्म, एकेंद्री, विकलत्रय, तीर्थंकर – इन विना उदय योग्य प्रकृति एक सौ तेरह, गुणस्थान मिथ्यादृष्ट्यादिक बारह। सयोगी - अयोगी मन रहित हैं; तातैं संज्ञी न कहिए। बहुरि तिर्यंच विना अन्यत्र असंज्ञी नाहीं कहना; तातैं असंज्ञी भी न कहिए। तहां व्युच्छित्ति

मिथ्यादृष्टि विषै मिथ्यात्व, अपर्याप्त – ए दोय, सासादन विषै अनन्तानुबंधी च्यारि मिश्र विषै मिश्रमोहनी । असंयतादिक विषैं गुणस्थानवत् क्रम तै सतरह, आठ, पांच, च्यारि, छह, छह, एक, दोय । क्षीणकषाय विषै सोलह अर सयोगी - अयोगी संबंधी तीर्थकरत्व बिना इकतालीस – अैसे सत्तावन व्युच्छित्ति हैं ।

अैसे होतै मिथ्यादृष्टि विषै मिश्रमोहनी, सम्यक्त्व मोहनी, आहारकद्विक – एवं अनुदय च्यारि, उदय एक सौ नव । बहुरि व्युच्छित्ति दोय, नारकानुपूर्वी का उदय नाही; तातै सासादन विषै अनुदय सात, उदय एक सौ छह । बहुरि व्युच्छित्ति च्यारि अर तिर्यंच – मनुष्य – देव आनुपूर्वी का उदय नाही, मिश्रमोहनी का उदय; तातै मिश्र विषैं अनुदय तेरह, उदय सौ । बहुरि व्युच्छित्ति एक का उदय नाही, सम्यक्त्व मोहनी, आनुपूर्वी च्यारि का उदय; तातै असंयत विषै अनुदय नव, उदय एक सौ च्यारि ।

बहुरि मूल में नव प्रकृति उदय योग्य नाही, तातै गुणस्थाननि के अनुदय तै नव - नव घाटि अनुदय, देशसयतादिक विषै जानना । सो देशसंयतादिक विषै क्रम तै छब्बीस, बत्तीस, सैंतीस, इकतालीस, सैंतालीस, तरेपन, चौवन, छप्पन अनुदय जानना । बहुरि देशसयतादिक विषै गुणस्थानवत् क्रम ते सित्यासी, इक्यासी, छिहंतरि, बहत्तरि, छयासठि, साठि, गुणसठि, सत्तावन उदय जानना ।

बहुरि असंज्ञी मार्गणा विषैं मनुष्यद्विक, उच्चगोत्र, देव - नारकगति वा आनुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर वा अंगोपांग – ए छह, आदि के सहनन पांच, आदि के सस्थान पांच, प्रशस्त विहायोगति, सुभगादिक तीन, नरक - मनुष्य - देवायु – ए छब्बीस प्रकृति मिथ्यादृष्टि सबंधी एक सौ सतरह, तिनमें घटाइए तब उदययोग्य प्रकृति इक्याणवै है । गुणस्थान दोय ।

तहा मिथ्यादृष्टि विषै व्युच्छित्ति गुणस्थानवत् पांच अर स्त्यानगृद्धित्रिक, परघात, उद्योत, उश्वास, दुःस्वर, अप्रशस्त विहायोगति – इनका उदय पर्याप्त अवस्था में होइ अर सासादन असैनी कै पर्याप्त अवस्था में होइ नाही; तातै इनकी भी व्युच्छिति मिथ्यादृष्टि विषै ही है अैसै व्युच्छित्ति है । सासादन विषै गुणस्थानवत् नव व्युच्छित्ति है । अैसे होतै मिथ्यादृष्टि विषै अनुदय शून्य, उदय इक्याणवै । बहुरि व्युच्छित्ति तेरह; तातै सासादन विषै अनुदय तेरह, उदय अठहत्तरि है ।

बहुरि आहारमार्गणा विषै च्यारि आनुपूर्वी बिना उदय योग्य प्रकृति एक सौ अठारह। गुणस्थान आदि के तेरह। तहां मिथ्यादृष्ट्यादिक तीन विषै व्युच्छित्ति गुणस्थानवत् पांच, नव, एक। असंयत विषै च्यारि आनुपूर्वी बिना तेरह। देशसंयतादिक विषैं गुणस्थानवत् आठ, पांच, च्यारि, छह, छह, एक, दोय, सोलह। सयोगी विषै बियालीस व्युच्छित्ति जाननी।

ऐसे होतै मिथ्यादृष्टि विषै गुणस्थानवत् अनुदय पांच, उदय एक सौ तेरह। बहुरि व्युच्छित्ति पांच, तातै सासादन विषै अनुदय दश, उदय एक सौ आठ। बहुरि व्युच्छित्ति नव का उदय नाही, मिश्रमोहनी का उदय; तातै मिश्र विषै अनुदय अठारह, उदय सौ। बहुरि व्युच्छित्ति एक का उदय नाहीं, सम्यक्त्व मोहनी का उदय; तातै असंयत विषै अनुदय अठारह, उदय सौ।

बहुरि मूल में च्यारि प्रकृति का उदय योग्य नाही; तातै गुणस्थानोक्त उदय तै देशसंयतादिक विषै अनुदय च्यारि - च्यारि घाटि जानना। उदय गुणस्थानोक्त ही जानना। तहां देशसंयतादिक विषै क्रम तै अनुदय इकतीस, सैंतीस, बियालीस, छियालीस, बावन, अठावन, गुणसठि, इकसठि, छिहंतरि जानना। बहुरि उदय सित्यासी, इक्यासी, छिहंतरि, बहत्तरि, छयासठि, साठि, गुणसठि, सत्तावन, बियालीस जानना ॥३३०-३३१॥

कम्मे व अणाहारे, पयडीणं उदयमेवमादेसे।
कहियमिणं बलमाहवचंदच्चियणेमिचंदेण ॥३३२॥

कार्मे इवानाहारे, प्रकृतिनामुदय एवमादेशे।
कथितोऽयं बलमाधवचंद्रार्चितनेमिचंद्रेण ॥३३२॥

टीका – बहुरि अनाहार मार्गणा विषै कार्मणकाययोगवत् निवासी प्रकृति उदय योग्य हैं। गुणस्थान पाच। तहां व्युच्छित्ति – मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत विषै कार्माणकाय योगवत् तीन, दश, इक्कावन जानना। सयोगी विषै साता - असाता मेंस्यों एक वेदनीय, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, तैजस, कार्माण, वर्णादिक, च्यारि, अगुरुलघु – ए तेरह व्युच्छित्ति हैं। अयोगी विषै गुणस्थानवत् बारह व्युच्छित्ति हैं।

ऐसे होतै मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत, सयोगी विषै अनुदय वा उदय कार्मणकाययोगवत् जानना। जहां अनुदय दोय, आठ, चौदह, चौसठि जानना। उदय

सित्यासी, इक्यासी, पिचहत्तरि, पचीस जानना । बहुरि सयोगी विषै व्युच्छित्ति तेरह; तातै अयोगी विषै अनुदय सतहत्तरि, उदय बारह ।

असै आदेश जो मार्गणास्थान तीहि विषै उदय है, सो **'बल'** कहिए बलभद्र अर **'माधव'** कहिए नारायण इन करि **'अर्चित'** कहिए पूजित असे **'नेमिचंद्र'** कहिए नेमिनाथ तीर्थंकर सो भया चंद्रमा ताकरि कह्या है । अथवा **'बल'** कहिए बलदेव अपना भाई अर **'माधव'** कहिए माधवचंद्र त्रैविद्यदेव इनकरि **'अर्चित'** पूजित असा नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती ताकरि कह्या है, सो जानना ।।३३२।।

इति उदयप्रकरण समाप्त ।

आगै सत्ता का निरूपण कीजिए है, तहां गुणस्थाननि विषै सत्त्व कहिए है—

तित्थाहारा जुगवं, सव्वं तित्थं ण मिच्छगादितिए ।
तस्सत्तकम्मियाणं, तग्गुणठाणं ण संभवदि ।।३३३।।

तीर्थहारा युगपत्सर्वं, तीर्थं न मिथ्यकादित्रये ।
तत्सत्त्वकर्मकाणां, तद्गुणस्थानं न संभवति ।।३३३।।

टीका – मिथ्यादृष्टि गुणस्थान विषै जाकै तीर्थकरत्व का सत्त्व होइ, ताकै आहारकद्विक का सत्त्व न होइ । जाकै आहारकद्विक का सत्त्व होइ, ताकै तीर्थकरत्व का सत्त्व न होइ । बहुरि दोऊनि का सत्त्व होतै मिथ्यात्व न होइ; तातै मिथ्यादृष्टि गुणस्थान विषै युगपत् एक जीव की अपेक्षा तीर्थंकरत्व, आहारकद्विक – इन दोऊनि का सत्त्व न होइ, एक ही का होइ । बहुरि अनुक्रम तै वा नाना - जीव की अपेक्षा तिन दोऊनि का सत्त्व पाइए है । बहुरि सासादन विषै एक जीव की अपेक्षा व अनेक जीव की अपेक्षा क्रम तै वा युगपत् तीर्थंकरत्व का अर आहारकद्विक का सत्त्व न पाइए है । बहुरि मिश्र विषै एक तीर्थकरत्व का सत्त्व न पाइए है; जातै इन प्रकृतिनि का जिनकै सत्त्व होइ, तिनकौ सो गुणस्थान न संभवै है ।।३३३।।

चत्तारिवि खेत्ताइं, आउगबंधेण होइ सम्मत्तं ।
अणुवदमहव्वदाइं, ण लहइ देवाउगं मोत्तुं ।।३३४।।

चतुर्णामपि क्षेत्राणामायुष्कबंधेन भवति सम्यक्त्वं ।
अणुव्रतमहाव्रतानि, न लभते देवायुष्कं मुक्त्वा ।।३३४।।

टीका – च्यारि जे 'क्षेत्र' कहिए गति तिन संबंधी जिनके आयु बंधी होइ, तिनकै सम्यक्त्व होइ । बहुरि देवायु बिना और गति संबंधी आयु जिनकै बंधी होइ ते तिर्यंच तौ अणुव्रत कौ अर मनुष्य अणुव्रत वा महाव्रत कौ न पावै ।

भावार्थ – जो पहिले च्यारि आयु विषै किसी आयु का बंध भया होइ अर पीछै सम्यक्त्व कौ धारे तौ धारौ किछू दोष नाही । बहुरि जो पहिले नरक, तिर्यंच, मनुष्यायु का बंध भया होइ तौ अणुव्रत, महाव्रतनि के धारने को समर्थ न होइ । एक देवायु का बंध पहिले भया होइ अर अणुव्रत, महाव्रत धारै तौ धारै, किछू दोष नाहीं । जातै और आयु का जिनकै बंध भया होइ, तिनकै व्रत परिणाम कौ कारण विशुद्ध रूप कषायनि के स्थानकनि का उदय संभवै नाही ।।३३४।।

णिरयतिरिक्खसुराउगसत्ते ण हि देससयलवदखवगा ।
अयदचउक्कं तु अणं, अणियट्टीकरणचरिमम्हि ।।३३५।।

जुगवं संजोगित्ता, पुणोवि अणियट्टिकरणबहुभागं ।
वोलिय कमसो मिच्छं, मिस्सं सम्मं खवेदि कमे ।।३३६।।

निरयतिर्यक्सुरायुष्क, सत्त्वे नहि देशसकलव्रतक्षपकाः ।
अयतचतुष्कस्तु अन मनिवृत्तिकरणचरमे ।।३३५।।

युगपद्विसंयोज्य, पुनरपि अनिवृत्तिकरणबहुभागं ।
व्यतीत्य क्रमशो मिथ्यं, मिश्रं सम्यक् क्षपयति क्रमेण ।।३३६।।

टीका – विद्यमान जिस आयु कौं भोगवै सो भुज्यमान अर आगामी जाका वंध किया सो वध्यमान, अैसे दोऊ प्रकार अपेक्षा करि नरकायु का सत्त्व होतै देशव्रत न होइ । नरक, तिर्यंचायु का सत्त्व होतै सकलव्रत न होइ । नरक, तिर्यंच, देवायु का सत्त्व होतै क्षपकश्रेणी न होइ । बहुरि अनंतानुबंधी च्यारि अर दर्शन मोहनी तीन – इन सातनि की सत्ता का असंयतादिक च्यारि गुणस्थाननि विषै किसी एक गुणस्थान विषै नाश करि क्षायिक सम्यग्दृष्टि होइ । सो कैसै नाश करै सो कहिए है—

प्रथम तीन करण करै, तहां अनिवृत्तिकरण का अतर्मुहूर्त काल ताका अंत समय विषै अनंतानुवंधी की चोकडी ताकौ कहा करै, सो कहिए है—

तिस अनतानुवंधी के चतुष्क कौ युगपत् एक ही वार विसंयोजन करै वारह कपाय वा नोकपाय रूप परिणमावै अैसे विसंयोजन करि अंतर्मुहूर्त काल विश्राम करै ।

तहां पीछैं दर्शन मोह का नाश का उद्यमी होइ पहिले बहुरि अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण करै, तहां अनिवृत्तिकरण का जो अतर्मुहूर्त मात्र काल, ताकौं संख्यात का भाग दीजिए, तामै एक भाग अवशेष रहै और बहुभाग सर्व व्यतीत होइ जाइ, तब तिस एक भाग का पहिला समयस्यो लगाइ पहिलै तौ मिथ्यात्व प्रकृति का क्षय करै। तहां पीछै मिश्रप्रकृति का क्षय करै, तहां पीछैं सम्यक्त्व प्रकृति का क्षय करै, तब क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो है।

सो अब गुणस्थाननि विषैं सत्ता कहिए है—

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान विषैं एक जीव की अपेक्षा आहारकद्विक अर तीर्थंकर का सत्त्व अनुक्रम करि पाइए है। कैसे ? कोई जीव ऊपरला गुणस्थाननि में आहारक का बंध करि मिथ्यात्व गुणस्थान विषै आय आहारकद्विक का उद्वेलन किया – बंध भया था ताकौ दूरि किया, पीछै नरकायु का बध किया। तहां पीछै असयत गुणस्थानवर्ती होइ तीर्थकर प्रकृति का बध किया, पीछै दूसरी वा तीसरी नरक पृथ्वी कौ जाने का काल विषै मिथ्यादृष्टि बहुरि भया। ऐसै एक जीव कै अनुक्रमकरि आहारकद्विक वा तीर्थकर का सत्त्व पाइए है।

बहुरि नाना-जीव की अपेक्षा युगपत् पाइए है। एक ही काल विषै कोई जीव कै आहारक द्विक का सत्त्व पाइए है, कोऊ जीव कै तीर्थंकरत्व का सत्त्व पाइए है। ऐसै मिथ्यादृष्टि विषै तीर्थकर, आहारक का सत्त्व पाइए है अर अन्य प्रकृति का सत्त्व प्रगट है ही; तातै मिथ्यादृष्टि विषै सत्त्व एक सौ अठतालीस है।

बहुरि सासादन विषै आहारक द्विक वा तीर्थकरत्व का सत्त्व किसी भी प्रकार नाही; तातै सत्त्व एक सौ पैतालीस है। बहुरि मिश्र विषै तीर्थकरत्व का सत्त्व कोई प्रकार नाही; तातै सत्त्व एकसौ सैतालीस है; और असयतादिक विषै जिनकै अनंतानुबंधी चतुष्क, दर्शन मोह तीन इनकी सत्ता पाइए है, असे उपशमी वा क्षायोपशमी सम्यग्दृष्टि जीव तिनकै असंयत विषै तौ सत्त्व एक सौ अठतालीस। देशसंयत विषै नरकायु बिना सत्त्व एक सौ सैतालीस। प्रमत्त विषै नरकायु, तिर्यंचायु बिना सत्त्व एक सौ छियालीस। अप्रमत्त विषै भी तैसै ही सत्त्व एक सौ छियालीस है। बहुरि क्षायिक सम्यग्दृष्टि कै इन गुणस्थाननि विषै सात-सात प्रकृति घाटि सत्त्व जानना। बहुरि अपूर्वकरणादिक विषै दोय श्रेणी है – एक क्षपक श्रेणी, एक उपशमक श्रेणी।

तहां प्रथम क्षपक श्रेणी अपेक्षा कथन कीजिए है–

तहां अपूर्वकरण विषैं सत्त्व एकसौ अठतीस, जातै सात प्रकृतिनि का असंयतादिक किसी एक गुणस्थान विषै क्षय किया है अर नरक, तिर्यंच, देवायु का याकैं सत्त्व न होइ; जातैं जाकै आयुबंध न भया होइ, सोई क्षपक श्रेणी मांडै है असें एक सौ अडतीस की सत्ता है ।।३३६।।

आगें अनिवृत्तिकरणादिक विषैं क्षययोग्य प्रकृतिनि का अनुक्रम कहैं हैं—

सोलट्ठेक्किगिछक्कं, चदुसेक्कं बादरे अदो एक्कं ।
खीणे सोलसऽजोगे, बावत्तरि तेरुवत्तंते ।।३३७।।

षोडशाष्टैकैकषट्कं, चतुर्ष्वेकं बादरे अत एकं ।
क्षीणेषोडशायोगे, द्वासप्ततिस्त्रयोदश उपरिमांते ।।३३७।।

टीका – इहां प्रकृतिनि की सत्त्व-व्युच्छित्ति कहैं है । सो जहां जिन प्रकृतिनि की व्युच्छित्ति होइ, तिसतैं ऊपरि तिन प्रकृतिनि की सत्ता का अभाव जानना । तहां अनिवृत्तिकरण गुणस्थान विषै अनुक्रम तै सोलह, आठ, एक, एक छह अर च्यारि विषै एक-एक प्रकृति सत्ता तै व्युच्छित्ति है । बहुरि सूक्ष्मसांपराय विषै एक, क्षीण-कषाय विषैं सोलह, सयोगी विषैं शून्य, अयोगी का अंत का दोय समयनि विषैं द्विचरमसमय विषै बहत्तरि, बहुरि अंतसमय विषैं तेरह सत्त्व तैं व्युच्छित्ति है ।।३३७।।

ते सोलह कौं आदि देकर प्रकृति कौन ? सो कहैं हैं—

णिरयातिरिक्खदु वियलंथीणतिगुज्जोवतावएइंदी ।
साहरणसुहुमथावर, सोलं मज्झिमकसायट्ठं ।।३३८।।

निरयतिर्यग्द्वि विकलस्त्यानत्रिकमुद्योतातपैकेंद्रियं ।
साधारणसूक्ष्मस्थावरं, षोडश मध्यमकषायाष्टौ ।।३३८।।

टीका – नरकगति वा आनुपूर्वी, तिर्यंचगति वा आनुपूर्वी, विकलत्रिक, स्त्यानगृद्धित्रिक, उद्योत, आतप, एकेंद्री, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर – ए सोलह अनिवृत्तिकरण का पहिला भाग विषै व्युच्छित्ति है । बहुरि अप्रत्याख्यान कषाय च्यारि, प्रत्याख्यान कषाय च्यारि – ए मध्यम आठ कषाय दूसरा भाग विषैं व्युच्छित्ति है ।।३३८।।

संढिथि छक्कसाया, पुरिसो कोहो य माण मायं च ।
थूले सुहुमे लोहो, उदयं वा होदि खीणम्हि ।।३३९।।

षंढस्त्री षट् कषायाः, पुरुषः क्रोधश्च मानं माया च ।
स्थुले सूक्ष्मे लोभ, उदयो वा भवति क्षीणे ।।३३९।।

टीका – बहुरि नपुंसक वेद तीसरा भाग विषै, स्त्रीवेद चौथा भाग विषै, छह नोकषाय पांचवां भाग विषै, पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, सज्वलन मान, संज्वलन माया, – ए च्यारि छठां, सातवां, आठवां, नवा भाग विषै अनुक्रम तै व्युच्छित्ति है । असैं स्थूल कहिए अनिवृत्तिकरण, तामै छत्तीस प्रकृति व्युच्छित्ति हैं । बहुरि सूक्ष्मसांपराय विषैं संज्वलन-लोभ व्युच्छित्ति है । क्षीणकषाय विषै उदय व्युच्छित्ति उदयवत् पांच ज्ञानावरण, च्यारि दर्शनावरण, पांच अंतराय, निद्रा, प्रचला – ए सोलह व्युच्छित्ति हैं । सयोगी विषै व्युच्छित्ति नास्ति है ।।३३९।।

देहादीफस्संता, थिरसुहसरसुरविहायदुग दुभगं ।
णिमिणाजसऽणादेज्जं, पत्तेया पुण्ण अगुरुचऊ ।।३४०।।

अणुदयतदियं णीचमजोगिदुचरिमम्मि सत्तवोच्छिण्णा ।
उदयगबार णराणू, तेरस चरिमम्हि वोछिण्णा ।।३४१।।

देहादिस्पर्शांताः, स्थिरशुभस्वरसुरविहायोद्विकं दुर्भगं।
निर्माणायशोनादेयं, प्रत्येकापूर्णमगुरुचत्वारि ।।३४०।।

अनुदयतृतीयं नीचमयोगिद्विचरमे सत्त्वव्युच्छिन्नाः
उदयगद्वादश नरानुः, त्रयोदश चरमे व्युच्छिन्नाः ।।३४१।।

टीका – पांच शरीर, पांच बंधन, पाच सघात, छह संस्थान, तीन अंगोपांग, छह संहनन, पांच वर्ण, दोय गध, पाच रस, आठ स्पर्श, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, देवगति वा आनुपूर्वी, प्रशस्त-अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, निर्माण, अयशस्कीर्ति, अनादेय, प्रत्येक, अपर्याप्त, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उस्वास, जाका उदय न पाइए असी ,साता व असाता विषै एक वेदनीय, नीचगोत्र – ए बहत्तरि प्रकृति अयोगी का द्विचरम समय विषै व्युच्छित्ति है ।

वहुरि जिनका उदय अयोगी विषैं पाइए असे साता वा असाता वेदनीय एक, मनुष्यगति, पंचेंद्री, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थंकरत्व, मनुष्यायु, उच्चगोत्र – ए बारह अर मनुष्यानुपूर्वी – एवं तेरह प्रकृति अयोगी का अंत के समय व्युच्छित्ति भई।

असें होतै असत्त्व-सत्त्व कहिए है—

जो जिन प्रकृतिनि की सत्ता न पाइए सो असत्त्व कहिए। जिनकी सत्ता पाइए सो सत्त्व कहिए। सो अनिवृत्तिकरण का पहिला भाग विषै असत्त्व दश, सत्त्व एक सौ अठतीस। वहुरि व्युच्छित्ति सोलह; तातैं अनिवृत्तिकरण का दूसरा स्थान विषै असत्त्व छब्बीस, सत्त्व एक सौ बाईस। बहुरि व्युच्छित्ति आठ; तातै तिस ही का तीसरा स्थान विषै असत्त्व चौंतीस, सत्त्व एक सौ चौदह। वहुरि व्युच्छित्ति एक; तातै चौथा स्थान विषै असत्त्व पैंतीस, सत्त्व एक सौ तेरह। वहुरि व्युच्छित्ति एक; तातै पांचवां स्थान विषै असत्त्व छत्तीस, सत्त्व एक सौ वारह। वहुरि व्युच्छित्ति छह; तातैं छठा स्थान विषैं असत्त्व वियालीस, सत्त्व एक सौ छह। वहुरि व्युच्छित्ति एक; तातै सातवां स्थान विषैं असत्त्व तियालीस, सत्त्व एक सौ पांच। वहुरि व्युच्छित्ति एक; तातै आठवां स्थान विषै असत्त्व चवालीस, सत्त्व एक सौ च्यारि। वहुरि व्युच्छित्ति एक; तातै अनिवृत्तिकरण का नवमां स्थान विषैं असत्त्व पैंतालीस, सत्त्व एक सौ तीन।

वहुरि व्युच्छित्ति एक; तातैं सूक्ष्मसांपराय विषै असत्त्व छियालीस, सत्त्व एक सौ दोइ। वहुरि व्युच्छित्ति एक; तातैं क्षीणकषाय विषै असत्त्व सैंतालीस, सत्व एक सौ एक। वहुरि व्युच्छित्ति सोलह; तातै सयोगी विषै असत्त्व तरेसठि, सत्त्व पिच्यासी। वहुरि व्युच्छित्ति नास्ति; तातै अयोगी का द्विचरम समय पर्यंत असत्त्व तरेसठि, सत्त्व पिच्यासी। वहुरि व्युच्छित्ति वहत्तरि; तातै अयोगी का अंत समय विषै असत्त्व एक सौ पैंतीस, सत्त्व तेरह ॥३४०-३४१॥

असैं कह्या जो सत्त्व-असत्त्व तिन कौं आचार्य कहैं हैं—

णभतिगिणभइगि दोद्दो, दस दससोलट्ठगादिहीणेसु।
सत्ता हवंति एवं, असहायपरक्कमुद्दिट्ठं ॥३४२॥

नभस्त्र्येकनभ एकं द्वे द्वे, दश दश षोडशाष्टकादिहीनेषु।
सत्ता भवंति एवमसहायपराक्रमोद्दिष्टं ॥३४२॥

टीका – असत्त्व मिथ्यादृष्टि विषै शून्य, सासादन विषै तीन, मिश्र विषै एक, असंयत विषै शून्य, देशसंयत विषै एक, प्रमत्त विषै दोय, अप्रमत्त विषै दोय, अपूर्वकरण विषै दश, अनिवृत्तिकरण का पहिला भाग में दश, दूसरा, तीसरा भागादिक में सोला, आठ इत्यादिक मिलाएं असत्त्व हो है।

सो सर्व प्रकतिनि मेंस्यों असत्त्वप्रकृति घटाएं तिस-तिस गुणस्थान विषै सत्त्वप्रकृति पुर्वोक्त अनुक्रम करि जाननी; ऐसे सहाय जाकौ न चाहिए ऐसे पराक्रम के धारी श्रीवर्धमान स्वामी ने कह्या है।

इहां अनिवृत्तिकरणवाला बादर लोभ कौ खिपावै है – तिस लोभ की सूक्ष्मकृष्टि करै है। ते वे सूक्ष्मकृष्टि सूक्ष्मसांपराय विषै उदय हो है, ऐसा जानना। इस क्षपणाविधान विषैं उदय कौ प्राप्त जे पुरुषवेद आदि, तिनका एक निषेक तौ एक समय स्थिति लीएं है। दोय निषेक दोय समय स्थिति लीए हैं, ऐसे अनुक्रम जानना। बहुरि उदय कौ प्राप्त नाहीं जे नपुसक वेद आदि, तिनकी क्षय भएं पीछे अवशेष उच्छिष्ट रही सर्वस्थिति, समय अधिक आवली प्रमाण है, जातै तहां एक निषेक दोय समय स्थिति लीएं है, दोय निषेक तीन समय स्थिति लीए है, इत्यादि अनुक्रम का सद्भाव है; तातैं उच्छिष्टावली तै एक समय अधिक स्थिति जाननी।

बहुरि उदय कौं प्राप्त नाही जे नपुंसक वेद आदि परमुख उदय करि समान समयनि विषै उदय रूप एक-एक निषेक कह्या अनुक्रम करि संक्रमणरूप होइ प्रवर्तै है। ऐसे स्वमुख-परमुख उदय का विशेष जानना।

जो प्रकृति आपरूप ही होय उदय आवै तहां स्वमुख उदय है। जो प्रकृति अन्य प्रकृति रूप होइ उदय होय तहां परमुख उदय है। विशेष स्वरूप आगे क्षपणासार अनुसारि इस भाषाटीका विषै कथन करैगे, तहा जानना ॥ ३४२ ॥

आगे उपशम श्रेणीवाला कै मोह की सात प्रकृति तौ पूर्वै उपशम भई थी, अवशेष इकईस प्रकृति का उपशमावने का विधान कहै है—

खवणं वा उवसमणे, णवरि य संजलणपुरिसमज्झम्हि ।
मज्झिमदोद्दो कोहादीया कमसोवसंता हु ॥३४३॥

क्षपणामिवोपशमने, नवरि च संज्वलनपुरुषमध्ये ।
मध्यमद्वौ द्वौ क्रोधाधिकौ क्रमश उपशांतौ हि ॥३४३॥

टीका – क्षपणावत् उपशमविधान विषै भी अनुक्रम है । परंतु विशेष इतना है, जो संज्वलन कषाय अर पुरुष वेदी के बीचि, मध्यम-बीचि के जे अप्रत्याख्यान वा प्रत्याख्यान क्रोधादिक ते अनुक्रम तै उपशमै है । सोई कहिए है—

नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, हास्यादिक छह, पुरुषवेद इनका अनुक्रम तै उपशम हो है। पीछे पुरुषवेद का उपशमने के अनतरि तीहि पुरुषवेद का नवकबंध सहित मध्यम जो अप्रत्याख्यान वा प्रत्याख्यान क्रोध युग्म, ताकौ उपशमावै है।

इहां जो तत्काल नवीन बंध भया ताका नाम **नवकबंध** जानना । सो पुरुषवेद का जो नवीन बंध भया, ताके निषेक पुरुषवेद कौं उपशमावने के काल विषै उपशमावने योग्य न भए; जातैं अचलावली विषै कर्म प्रकृति कौ अन्यथा परणमावनें कौ असमर्थपना है, तातै पुरुषवेद के निषेक मध्यम क्रोधयुग्म कौं उपशमावने के काल विषै उपशमाइए है – ऐसै ही संज्वलन क्रोधादिक का भी नवकबंध का स्वरूप यथावस्थित जानना ।

वहुरि ताके अनंतरि संज्वलन क्रोध कौ उपशमावै है । बहुरि ताके अनंतरि तीहि संज्वलन क्रोध का नवकबंध सहित मध्यम जो अप्रत्याख्यान वा प्रत्याख्यान मान युग्म, ताकौं उपशमावै है । बहुरि ताके अनंतरि संज्वलन मान कौ उपशमावै है । वहुरि ताके अनंतरि तीहि संज्वलन मान का नवकबंध सहित मध्यम जो अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान माया युग्म, ताकौं उपशमावै है । बहुरि ताके अनंतरि संज्वलन माया कौ उपशमावै है । वहुरि ताके अनंतरि तीहि संज्वलन माया कौ नवकवंध सहित मध्यम जो अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान लोभ युग्म ताकौं उपशमावै है । बहुरि ताके अनंतरि वादर संज्वलन लोभ कौं उपशमावै है ।

असा विशेष मोहनीय कर्म ही का जानना; जातै मोहनीय विना और कर्मनि का उपशम विधान नाहीं है ।

ऐसै उपशमश्रेणी विषै मोह कौं उपशमावै है । सत्ता नाश न हो है; तातै अपूर्वकरणादिक उपशांतकपाय गुणस्थानपर्यंत उपशमश्रेणीवाले कै नरकायु, तिर्यंचायु विना एक सौ छियालीस प्रकृति की सत्ता जाननी । वहुरि क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणीवाले कै एक सौ अडतीस की सत्ता अपूर्वकरणादि उपशांत कषाय पर्यंत जाननी । तथा जाके आयु वंध न भया होइ तिस क्षायिक सम्यग्दृष्टि कै असंयतादिक च्यारि गुणस्थाननि विषै भी एक सौ अडतीस ही की सत्ता जाननी ॥३४३॥

णिरयादिसु पयडिट्ठिदिअणुभागपदेसभेदभिण्णस्स ।
सत्तस्स य सामित्तं, णेदव्वमिदो जहाजोग्गं ॥३४४॥

निरयादिषु प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदभिन्नस्य ।
सत्त्वस्य च स्वामित्वं, नेतव्यमितो यथायोग्यं ॥३४४॥

टीका – इहांतै आगै नरकगत्यादिक मार्गणानि विषै प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश – च्यारि प्रकार भेदकौं लीए कर्मनि का जो सत्त्व सो यथायोग्य प्राप्त करना ॥३४४॥

आगै परिभाषा कहै हैं—

तिरिए ण तित्थसत्तं, णिरयादिसु तिय चउक्क चउ तिण्णि ।
आऊणि होंति सत्ता, सेसं ओघादु जाणेज्जो ॥३४५॥

तिरश्चि न तीर्थसत्वं, निरयादिषु त्रीणि चतुष्कं चत्वारि त्रीणि ।
आयूंषि भवंति सत्ताः, शेषमोघाज्ज्ञातव्यं ॥३४५॥

टीका – तिर्यंच विषै तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व नाही है । बहुरि नरकगति विषैं भुज्यमान नरकायु, बध्यमान तिर्यचायु वा मनुष्यायु – असैं तीन आयु हीं का सत्त्व है, देवायु का नाही । बहुरि तिर्यचगति विषै भुज्यमान तिर्यचायु, बध्यमान नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, देवायु – असैं च्यारयों आयु का सत्त्व है । बहुरि मनुष्यगति विषै भुज्यमान मनुष्यायु; बध्यमान नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, देवायु – असैं च्यार्यों आयु का सत्त्व है । बहुरि देवगति विषै भुज्यमान देवायु; बध्यमान तिर्यंचायु, मनुष्यायु – असैं तीन आयु का सत्त्व है ।

जाकौ भोगवै है, ताकौ भुज्यमान कहिए, आगामी उदय होने कौ योग्य जाका बंध भया होइ सो बध्यमान कहिए ।

बहुरि अवशेष प्रकृतिनि का सत्त्व, गुणस्थानवत् जानना ॥३४५॥

तहां नरकगति विषै सत्त्व कहै हैं—

ओघं वा णेरइये, ण सुराऊ तित्थमत्थि तदियोत्ति ।
छट्ठित्ति मणुस्साऊ, तिरिए ओघं ण तित्थयरं ॥३४६॥

ओघ इव नैरयिके, न सुरायुस्तीर्थमस्ति तृतीय इति ।
षष्ठ इति मनुष्यायुस्तिरश्चि ओघो न तीर्थकरं ।।३४६।।

टीका – नरकगति विषै गुणस्थानवत् है । तहां देवायु का सत्त्व नाहीं, तातै सत्त्व योग्य एक सौ सैंतालीस है । तहां भी तीर्थंकर का सत्त्व तीसरी पृथ्वी ताईं है; तातै चौथी आदि पृथ्वीनि विषै सत्त्व एक सौ छियालीस है । तहां भी मनुष्यायु का सत्त्व छठी पृथ्वी ताईं है, तातै सातवीं माघवी पृथ्वी विषै एक सौ पैंतालीस ही का सत्त्व है ।

तहां धर्मादिक तीन पृथ्वीनि विषै सत्त्व एक सौ सैंतालीस, सो मिथ्यादृष्टि विषै असत्त्व नास्ति, सत्त्व एक सौ सैंतालीस । सासादन विषै आहारकद्विक, तीर्थंकर – ए असत्त्व तीन; सत्त्व एक सौ चवालीस । मिश्र विषै असत्त्व एक तीर्थंकर, सत्त्व एक सौ छियालीस । असंयत विषैं असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ सैंतालीस ।

बहुरि अंजनादिक तीन पृथ्वीनि विषै सत्त्व एक सौ छियालीस, तहां मिथ्यादृष्टि विषै असत्त्व नास्ति, सत्त्व एक सौ छियालीस । सासादन विषैं असत्त्व आहारकद्विक, सत्त्व एक सौ चवालीस । मिश्र-अविरत विषै असत्त्व नास्ति, सत्त्व एक सौ छियालीस ।

बहुरि माघवी-सातवीं पृथ्वी विषै सत्त्व एक सौ पैंतालीस । तहां मिथ्यादृष्टि, मिश्र, अविरत विषै असत्त्व नास्ति, सत्त्व एक सौ पैंतालीस । सासादन विषै असत्त्व आहारकद्विक, सत्त्व एक सौ तियालीस जानना ।

बहुरि तिर्यंचगति विषैं तीर्थंकर विना गुणस्थानवत् सत्त्व एक सौ सैंतालीस । तहां मिथ्यादृष्टि, मिश्र, अविरत विषै असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ सैंतालीस । सासादन विषै असत्त्व आहारकद्विक, सत्त्व एक सौ पैंतालीस । बहुरि असंयत विषै नरकायु, मनुष्यायु की व्युच्छित्ति भई, जातै इनका सत्त्व होतै अणुव्रत न होइ; तातै देशव्रत विषैं असत्त्व नरकायु, मनुष्यायु – दोय, सत्त्व एक सौ पैंतालीस है ।।३४६।।

एवं पंचतिरिक्खे, पुण्णिदरे णत्थि णिरयदेवाऊ ।
ओघं मणुसतियेसुवि, अपुण्णगे पुण अपुण्णेव ।।३४७।।

एवं पंचतिरश्चि, पूर्णेतरस्मिन् नास्ति निरयदेवायुः ।
ओघो मनुष्यत्रयेष्वपि, अपूर्णके पुनरपूर्ण इव ।।३४७।।

टीका – असे ही सामान्य तिर्यंच, पचेंद्री तिर्यंच, योनिमत् तिर्यंच, पर्याप्त तिर्यंच विषै जानना । विशेष इतना – जो लब्धि अपर्याप्तक विषै नरकायु, देवायु का सत्व नाही; तातैं सत्व एक सौ पैंतालीस, गुणस्थान एक मिथ्यादृष्टि ही है । जातै **'णहि सासणो अपुण्णे'** इस वचन तै ताकै सासादन भी न होइ ।

बहुरि मनुष्यगति विषैं सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, योनिमत् मनुष्य विषै **ओघः** – गुणस्थानवत् है । तहा योनिमत् मनुष्य विष क्षपकश्रेणी विषै विशेष है । जातै सामान्य मनुष्य अर पर्याप्त मनुष्य विषै मिथ्यादृष्ट्यादि अयोगी गुणस्थान पर्यंत सर्व सत्व, असत्व – गुणस्थान रचनावत् जानना । विशेष इतना जो देशसंयत गुणस्थान विषै तिर्यंचायु की भी सत्ता नाही; तातैं तहां सत्व एक सौ छियालीस, असत्व दोय कहना । अन्य सर्व कथन समान जानना ।

बहुरि योनिमत् मनुष्य विषै क्षपकश्रेणी विषै तीर्थंकर सत्तावाले कै अप्रमत्त गुणस्थान तें ऊपरी स्त्रीवेदीपणा का अभाव है; तातै अपूर्वकरण विषै सत्व एक सौ सैंतीस, असत्व दश । असैं ही अनिवृत्तिकरण का नवभाग वा सूक्ष्मसांपरायादिक अयोगी पर्यंत विषै गुणस्थानोक्त सत्व तें एक-एक घाटि सत्व जानना, असत्व गुणस्थानोक्त ही जानना ।

बहुरि लब्धि अपर्याप्तक मनुष्य विषै लब्धि अपर्याप्तक तिर्यंचवत् तीर्थंकर, नरकायु, देवायु बिना सत्व एक सौ पैंतालीस, गुणस्थान एक मिथ्यादृष्टि जानना ॥३४७॥

आगै देवगति विषैं कहै हैं—

ओघं देवे ण हि णिरयाउ सारोत्ति होदि तिरियाऊ ।
भवणतियकप्पवासियइत्थीसु ण तित्थयरसत्तं ॥३४८॥

ओघो देवे न हि निरयायुः सार इति भवति तिर्यगायुः ।
भवनत्रयकल्पवासिकस्त्रीषु न तीर्थंकरसत्वं ॥३४८॥

टीका – देवगति विषै नरकायु बिना सामान्यवत् सत्व प्रकृति एक सौ सैंतालीस हैं । बहुरि तिर्यंचायु का सत्व सहस्रार पर्यंत ही है ऊपरि नाही है, सो सौधर्मादिक सहस्रार पर्यंत बारह स्वर्गनि विषै सत्व एक सौ सैंतालीस । तहां **'किण्हदुगसुहतिलेस्सय वामेविणितित्थयरसत्तं'** इस वचन करि तीर्थंकर का सत्व विना मिथ्यादृष्टि विषै सत्व एक सौ छियालीस, असत्व एक । सासादन विषै तीर्थंकर,

आहारकद्विक – ए असत्व तीन, सत्व एक सौ चवालीस । मिश्रविषै असत्व एक तीर्थंकर, सत्व एक सौ छियालीस । असयत विषै असत्व नास्ति, सत्व एक सौ सेतालीस है ।

बहुरि आनतादि च्यारि स्वर्ग अर नव ग्रैवेयक इनविषै नरकायु, तिर्यंचायु विना सत्व एक सौ छियालीस । तहा मिथ्यादृष्टि, मिश्र विषै असत्व एक तीर्थंकर, सत्व एक सौ पैंतालीस । सासादन विषै तीर्थंकर, आहारकद्विक – ए असत्व तीन, सत्व एक सौ तियालीस । असयत विषै असत्व नास्ति, सत्व एक सौ छियालीस ।

बहुरि नवानुदिश, पचानुत्तरविमान विषै नरकायु, तिर्यंचायु विना सत्व प्रकृति एक सौ छियालीस । गुणस्थान एक असयत ही है ।

बहुरि भवनत्रिक देव. कल्पवासिनी स्त्री – इनविषै तीर्थंकर, नरकायु विना सत्व एक सौ छियालीस । तहां मिथ्यादृष्टि विषै सत्व एक सौ छियालीस, असत्व शून्य सासादन विषै असत्व आहारकद्विक, सत्व एक सौ चवालीस । मिश्र-असंयत विषै असत्व शून्य, सत्व एक सौ छियालीस जानना ।।३४८।।

आगे इंद्रिय, कायमार्गणा विषै कहै है—

ओघं पंचक्खतसे,[1] सेसिंदियकायगे अपुण्णं वा ।
तेउदुगे ण णराऊ सव्वत्थुव्वेल्लणावि हवे ।।३४९।।

ओघः पंचाक्षत्रसे, शेषेंद्रियकायके अपूर्णं वा ।
तेजोद्विके न नरायुः, सर्वत्रोद्वेल्लनापि भवेत् ।।३४९।।

१–पचेंद्रियत्रसकायिकयोर्योग्या. सत्त्वप्रकृतय. १४८

व्यु	मि०	सा०	मि०	अ०	दे१	प्र०	अ८	अ०	अ१६	अं८	[illegible]१	१
स	१४८	१४५	१४७	१४८	१४३	१४६	१४६	१३८	१३८	१२२	११४	११३
अ	०	३	१	०	१	२	२	१०	१०	२६	३४	३५

व्यु	६	१	१	१	१	सू१	३	०	क्षी१६	स०	अ७२	१३
स	११२	१०६	१०५	१०४	१०३	१०२	१४६	१३८	१०१	८५	८५	१३
अ	३	४२	४३	४४	४५	४६	२	१०	४७	६३	६३	१३५

टीका – इद्रियमार्गणा अर कायमार्गणानि विषै पचेद्री अर त्रसकाय इनविषै सामान्यवत् सत्व प्रकृति एक सौ अठतालीस, गुणस्थान सब चौदह । तिन विषै सर्व रचना गुणस्थानवत् जाननी, किछू विशेष नाही ।

बहुरि अवशेष एकेंद्री, वेद्री, तेद्री, चौद्री मार्गणा अर पृथ्वी, अप, वनस्पती कायमार्गणा इनविषै लब्धि अपर्याप्तवत् तीर्थंकर, नरकायु, देवायु बिना सत्व प्रकृति एक सौ पैंतालीस । तहा मिथ्यादृष्टि विषै सत्व एक सौ पैंतालीस, असत्व शून्य । सासादन विषै असत्व आहारकद्विक, सत्व एक सौ तियालीस ।

बहुरि तेजकाय, वातकाय विषै मनुष्यायु भी नाही, तातै सत्व प्रकृति एक सौ चवालीस, गुणस्थान एक मिथ्यादृष्टि है । बहुरि सर्वत्र इंद्रियमार्गणा अर कायमार्गणा विषै उद्वेलना भी हो है ।

उद्वेलना कहा कहिए ?

जैसै जेवरा बल देइ करि वट्या था पीछेहूं बलकरि उधेडिए, तैसै जिन प्रकृतिनि का बंध किया था, पीछै तिनकौ उद्वेलन भागहार तै अपकर्षण करि अन्य प्रकृतिपर्वे कौं प्राप्त करि नाश करना उद्वेलन कहिए ।।३४९।।

ते उद्वेलन प्रकृति कौन है ? सो कहैं हैं—

हारदु सम्मं मिस्सं, सुरदुग णारयचउक्कमणुक्कमसो ।
उच्चागोदं मणुदुगमुव्वेल्लिज्जंति जीवेहिं ।।३५०।।

हारद्वि सम्यक् मिश्रं, सुरद्विकं नारकचतुष्कमनुक्रमशः ।
उच्चैर्गोत्रं मनुद्विकमुद्वेल्ल्यते जीवैः ।।३५०।।

टीका – उद्वेलना का विधान आगै विस्तार तै कहिएगा, तथापि इहां भी प्रसंग पाइ किछू कहिए है – आहारकद्विक, सम्यक्त्व मोहनी, मिश्र मोहनी, देवगति वा आनुपूर्वी, नरकगति वा आनुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर वा अगोपाग – ए वैक्रियिक चतुष्क वा नारक चतुष्क की च्यारि, उच्चगोत्र, मनुष्यगति वा आनुपूर्वी – तेरह प्रकृति अनुक्रम तै उद्वेलना रूप कीजिए है ।।३५०।।

कौन जीव किस प्रकृति की उद्वेलना करै, सो कहिए है—

चदुगदिमिच्छे चउरो, इगिविगले[1] छप्पि तिण्णि तेउदुगे[2] ।
सिय अत्थि णत्थि सत्तं, सपदे उप्पण्णठाणेवि ॥३५१॥

चतुर्गतिमिथ्ये चतस्र, एकविकले षडपि तिस्रस्तेजोद्विके ।
स्यादस्ति नास्ति सत्वं, स्वपदे उत्पन्नस्थानेऽपि ॥३५१॥

टीका – च्यार्‍यों गतिवाले मिथ्यादृष्टि-जीवनि विषै च्यारि अर एकेंद्री, विकलेंद्री विषै छह अर तेज, वातकाय विषै तीन प्रकृति स्वस्थान अर उत्पन्न स्थान विषै स्यादस्ति, स्यान्नास्ति कहिए; कोई प्रकार सत्व है, कोई प्रकार सत्त्व नाही है । जो उद्वेलना न भई होइ, तो सत्व पाइए अर जो उद्वेलना भई होय, तो सत्व न पाइए । सो कहिए है--

तीर्थंकर, नरकायु, देवायु इनकी सत्ता जाकै न पाइए ऐसें चतुर्गतिवाले संक्लेशपरिणामी मिथ्यादृष्टि जीव, ताकै उद्वेलना भए बिना सत्व तो एक सौ पैंतालीस पाइए । बहुरि आहारकद्विक की उद्वेलना भएं एक सौ तियालीस का सत्व पाइये । बहुरि सम्यक्त्वमोहनी की उद्वेलना भए सत्व एक सौ बियालीस पाइए । बहुरि मिश्र मोहनी की उद्वेलना भए एक सौ इकतालीस का सत्व पाइए – ऐसें स्वस्थान विषै सत्व जानना ।

बहुरि उत्पन्न स्थान विषै एकेंद्री, बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, पृथ्वी, अप, वनस्पतिकाय विषै ते च्यारि पूर्वोक्त प्रकार करि एक सौ पैंतालीस, एक सौ तियालीस, एक सौ बिया-

तेजोद्विक योग्य १४४

(१)

	ए	द्वि	त्रि	च	पृ	अ	व	योग्य	१४५
	आ° २	स° १	मि° १	सु° २	नार° ४	उत्पन्न			
१४५	१४३	१४२	१४१	१३९	१३५	१३३	१३१		

(२)

	आ° २	सं° १	मि° १	सु° २	ना° ४	उ° १	स° २
१४४	१४२	१४१	१४०	१३८	१३४	१३३	१३१

लीस, एक सौ इकतालीस का सत्व पाइए है । बहुरि देवगति वा आनुपूर्वी – इन दोऊनि की उद्वेलना भए स्वस्थान विषै तिन एकेंद्रियादिकनि कै एक सौ गुणतालीस का सत्व है । बहुरि वैक्रियिक चतुष्क की उद्वेलना भएं एक सौ पैंतीस का सत्व है ।

बहुरि उत्पन्नस्थान विषै तेज:काय, वातकाय विषैं मनुष्यायु का भी सत्व नाही; तातै बिना उद्वेलना भए सत्व एक सौ चवालीस । बहुरि आहारकद्विक की उद्वेलना भए क्रम से एक सौ बियालीस, एक सौ इकतालीस, एक सौ चालीस, सुरद्विक की उद्वेलना तै एक सौ अडतीस, वैक्रियिक चतुष्क की उद्वेलना तै एक सौ चौतीस सत्व पाइए ।

बहुरि स्वस्थान विषै तेज, वातकायिक कै उच्चगोत्र की उद्वेलना भए, सत्व एक सौ तेतीस का है । बहुरि मनुष्यद्विक की उद्वेलना भए, एक सौ इकतीस ही का सत्व पाइए है । ए अत के दोय सत्व एक सौ तेतीस वा एक सौ इकतीस का उत्पन्न-स्थान विषै एकेंद्री, वेद्री, तेद्री, चौद्री, पृथ्वी, अप, वनस्पति विषै भी जानना । यहा पूर्व पर्याय विषै जो बिना उद्वेलनातै वा उद्वेलनातै सत्व भया तिस सहित उत्तर पर्याय विषै उपजै, तहा उत्तर पर्याय विषै तिस सत्व कौ उत्पन्न स्थान विषै सत्व कहिए । बहुरि तिस विवक्षित पर्याय विषै बिना उद्वेलना वा उद्वेलनातै जो सत्त्व होय, ताकौ स्वस्थान विषै सत्त्व कहिये ।।३५१।।

आगें योगमार्गणा विषै कहै हैं—

पुण्णेक्कारसजोगे, साहारयमिस्सगेवि स गुणोघं ।
वेगुव्वियमिस्सेवि य, णवरि ण माणुसतिरिक्खाऊ ।।३५२।।

पूर्णैकादशयोगे, साहारकमिश्रकेऽपि स्वगुणौघः ।
वैगूर्विकमिश्रेऽपि च, नवरि न मानुषतिर्यगायुः ।।३५२।।

टीका – च्यारि मनोयोग, च्यारि वचनयोग, औदारिक, वैक्रियिक, आहारक योग, आहारक मिश्रयोग – इन विषै अपना-अपना गुणस्थानवत् रचना है । तहां च्यारि मनोयोग, च्यारि वचनयोग, औदारिक शरीर – इनविषै सत्व प्रकृति एक सौ अडतालीस, गुणस्थान बारह वा तेरह, तहां रचना गुणस्थानवत् जाननी, विशेष नाही ।

बहुरि आहारक, आहारकमिश्रयोग विषै नरकायु, तिर्यंचायु बिना सत्व एक सौ छियालीस, गुणस्थान एक प्रमत्त ।

बहुरि वैक्रियिक योग विषै सत्व प्रकृति एक सौ अडतालीस, गुणस्थान च्यारि। तहां मिथ्यादृष्टि विषै सत्व सर्व, असत्व नास्ति, जातै तीर्थंकर सत्तावाला तृतीय पृथ्वी पर्यंत जाय है। सासादन, मिश्र, अविरत विषै गुणस्थानवत् असत्व-सत्व जानना ।

बहुरि वैक्रियिकमिश्र विषै तिर्यन्चायु, मनुष्यायु विना सत्व प्रकृति एक सौ छियालीस । तहां मिथ्यादृष्टि अर असयत विषै असत्व नास्ति, सत्व सर्व । सासादन विषै आहारकद्विक, तीर्थकर, नरकायु – ए असत्व च्यारि, सत्व एक सौ बियालीस है ।।३५२।।

औदारिक मिश्रयोग विषै कहै हैं—

ओरालमिस्सजोगे, ओघं सुरणिरयआउगं णत्थि ।
तम्मिस्सवामगे ण हि, तित्थं कम्मेवि सगुणोघं ।।३५३।।

औरालमिश्रयोगे, ओघः सुरनिरयायुष्कं नास्ति ।
तन्मिश्रवामके न हि, तीर्थं कार्मेऽपि स्वगुणौघः ।।३५३।।

टीका – औदारिकमिश्रयोग विषै देवायु, नरकायु बिना सामान्यवत् सत्व प्रकृति एक सौ छियालीस । तहा 'तम्मिस्सवामगे ण हि तित्थ' इस वचन तै मिथ्यादृष्टि विषै असत्व एक तीर्थकर, सत्व एक सौ पैतालीस । सासादन विषै तीर्थकर, आहारकद्विक – ए असत्व तीन, सत्व एक सौ तियालीस । असयत विषै असत्व शून्य, सत्व एक सौ छियालीस । सयोगी विषै सत्व पिच्यासी, असत्व इकसठि ।

बहुरि कार्माणकाययोग विषै च्यार्यो भुज्यमान आयु संभवै है; तातै सत्व प्रकृति एक सौ अडतालीस । तहा मिथ्यादृष्टि, असयत विषै सत्व सर्व, असत्व नास्ति। सासादन विषै तीर्थकर, आहारकद्विक, नरकायु – ए असत्व च्यारि, सत्व एक सौ चवालीस । सयोगी विषै असत्व त्रेसठि, सत्व पिच्यासी ।।३५३।।

आगै वेदमार्गणादिक विषै कहै हैं–

वेदादाहारोत्ति य, सगुणोघं णवरि संढथीखवगे ।
किण्हदुगसुहतिलेस्सियवामेवि ण तित्थयरसत्तं ।।३५४।।

वेदादाहार इति च, स्वगुणौघ. नवरि षंढस्त्रीक्षपके ।
कृष्णद्विकशुभत्रिलेश्यिकवामेऽपि न तीर्थंकरसत्वं ॥३५४॥

टीका – वेदमार्गणा तै लगाय आहारमार्गणा पर्यंत अपने-अपने गुणस्थानवत् सामान्य रचना है । तहा पुरुषवेद विषै सत्व प्रकृति एक सौ अडतालीस, गुणस्थान चौदह । तहा रचना सर्व गुणस्थानवत् जाननी । बहुरि नपुसकवेद, स्त्रीवेद विषै सत्व प्रकृति एक सौ अडतालीस । तहा **'णवरि संढथी खवगे'** इस वचन करि क्षपक श्रेणी-विषै तीर्थंकर का सत्व नाही, तातै अपूर्वकरणादिक विषै सत्व प्रकृति गुणस्थानोक्त सत्व प्रकृति तै एक-एक घाटि जाननी । और सर्व रचना गुणस्थानवत् जाननी ।

बहुरि कषायमार्गणा विषै सत्व एक सौ अडतालीस, गुणस्थान क्रोधमान-माया विषै अनिवृत्तिकरण पर्यंत नव, लोभ विषै सूक्ष्मसापराय पर्यंत दश । तहा रचना सर्व गुणस्थानवत् जाननी ।

बहुरि ज्ञानमार्गणा विषै कुमति, कुश्रुत, विभग विषै सत्व एक सौ अडतालीस, गुणस्थान मिथ्यादृष्टि, सासादन – दोय, तहा रचना गुणस्थानवत् । बहुरि मति, श्रुत, अवधि विषै सत्व प्रकृति एक सौ अडतालीस, गुणस्थान असयतादिक नव । तहा रचना गुणस्थानवत् जाननी । बहुरि मन पर्यय विषै नरक, तिर्यचायु बिना सत्व प्रकृति एक सौ छियालीस, गुणस्थान प्रमत्तादिक सात । तहा सत्व गुणस्थानवत्, असत्व गुणस्थानोक्त असत्व तै दोय-दोय घाटि जानना । बहुरि केवलज्ञान विषै सत्व प्रकृति पिच्यासी, गुणस्थान सयोगी-अयोगी दोय । तहा सत्व गुणस्थानवत्, असत्व सयोगी विषै नास्ति, अयोगी विषै द्विचरम समय पर्यंत नास्ति, चरम समय विषै बहत्तरि ।

बहुरि सयममार्गणा विषै असंयत विषै सत्व एक सौ अडतालीस, गुणस्थान मिथ्यादृष्ट्यादिक च्यारि । तहां रचना गुणस्थानवत् जाननी । बहुरि देशसयत विषै नरकायु बिना सत्व एक सौ सैतालीस, गुणस्थान एक देशसयत । बहुरि सामायिक-छेदोपस्थापन विषै नरक, तिर्यचायु बिना सत्व एक सौ छियालीस । गुणस्थान प्रमत्तादिक च्यारि । तहां सत्व गुणस्थानोक्त, असत्व गुणस्थानोक्त तै दोय-दोय घाटि जानना ।

बहुरि परिहार-विशुद्धि विषै सत्व पूर्वोक्त एक सौ छियालीस गुणस्थान प्रमत्त-अप्रमत्त दोय । बहुरि सूक्ष्मसापराय विषै सत्व एक सौ दोय, गुणस्थान एक सूक्ष्म-साम्पराय । बहुरि यथाख्यात विषै गुणस्थान च्यारि, तहा उपशात-कषाय विषै सत्व

एक सौ छियालीस अथवा एक सौ अडतीस । क्षीणकषाय विषै एक सौ एक, सयोगी विषै पिच्यासी, अयोगी विषै द्विचरम-समय पर्यंत पिच्यासी, चरम-समय विषै तेरह है ।

बहुरि दर्शनमार्गणा विषै चक्षु-अचक्षुदर्शन विषै सत्व एक सौ अडतालीस, गुणस्थान आदि के बारह, तहा गुणस्थानोक्तवत् रचना है । बहुरि अवधिदर्शन विषै सत्व एक सौ अडतालीस, गुणस्थान असंयतादिक नव, तहां रचना गुणस्थानोक्त है । बहुरि केवलदर्शन विषै रचना केवलज्ञानवत् जाननी ।

बहुरि लेश्यामार्गणा विषैं कृष्ण, नील विषै सत्व प्रकृति एक सौ अडतालीस, गुणस्थान मिथ्यादृष्टचादिक च्यारि, तहा '**किण्हदुगेवामे ण तित्थयरसत्तं**' इस वचन तै मिथ्यादृष्टि विषै तीर्थंकर सत्व नाही, जातै तीन अशुभलेश्या विषै तीर्थंकर का प्रारभ न होय । बहुरि जाकै नरकायु बध्या होइ, सो दूसरी-तीसरी पृथ्वी विषै उपजै, तहां भी कापोतलेश्या पाइए; तातै एक सौ सैंतालीस का सत्व है । बहुरि सासादनादिक विषै गुणस्थानवत् रचना है ।

बहुरि कापोतलेश्या विषै सत्व एक सौ अडतालीस, गुणस्थान च्यारि आदि के, तहा रचना गुणस्थानवत् जाननी ।

बहुरि तेज.-पद्म लेश्या विषै सत्व एक सौ अडतालीस, गुणस्थान सात आदि के, तहा '**सुहतियलेस्सियवामे वि ण तित्थयरसत्त**' इस वचन तै मिथ्यादृष्टि विषै तीर्थंकर सत्व नाही, जातै तीर्थंकर सत्तावाला जो नरक जाने को सन्मुख होइ तिसही के सम्यक्त्व की विराधना होइ है ।

तीनो शुभलेश्या विषै सम्यक्त्व की विराधना होइ नाहीं; तातै तहां सत्व एक सौ सैंतालीस । बहुरि सासादन विषै गुणस्थानवत् रचना जाननी ।

बहुरि शुक्ल-लेश्या विषै सत्व एक सौ अठतालीस, गुणस्थान मिथ्यादृष्टचादिक तेरह । तहां मिथ्यादृष्टि विषै तीर्थंकर की सत्ता नाही; तातै सत्व एक सौ सैंतालीस । सासादनादिक विषै गुणस्थानवत् रचना जाननी ।

बहुरि भव्य-मार्गणा विषै सत्व एक सौ अडतालीस, गुणस्थान चौदह, तहां रचना गुणस्थानवत् जाननी ॥३५४॥

अभव्वसिद्धे णत्थि हु, सत्तं तित्थयरसम्ममिस्साणं ।
आहारचउक्कस्सवि, असण्णिजीवे ण तित्थयरं ॥३५५॥

अभव्यसिद्धे नास्ते हि, सत्त्वं तीर्थंकरसम्यग्मिश्राणां ।
आहारचतुष्कस्यापि, असंज्ञिजीवे न तीर्थंकरं ॥३५५॥

टीका – अभव्य मार्गणा विषैं तीर्थंकर, सम्यक्त्व मोहनी, मिश्र मोहनी, आहारकशरीर अंगोपांग, बंधन, संघात – ए च्यारि – इन सात का सत्व नाही, जातै वाकै कदाचित् सम्यग्दर्शनादिक की प्रगटता नाही; तातै सत्व एक सौ इकतालीस, गुणस्थान एक मिथ्यादृष्टि ।

बहुरि सम्यक्त्व मार्गणा विषैं मिथ्यारुचि विषै सत्व एक सौ अडतालीस, गुणस्थान एक मिथ्यादृष्टि, सासादन रुचि विषैं तीर्थंकर, आहारकद्विक बिना सत्व एक सौ पैंतालीस, गुणस्थान एक सासादन । मिश्र-रुचि विषै तीर्थंकर बिना सत्व एक सौ सैंतालीस, गुणस्थान एक मिश्र । उपशम-सम्यक्त्व विषै सत्व प्रकृति एक सौ अडतालीस, गुणस्थान असंयतादिक आठ । तहां असंयत विषै असत्व नास्ति, सत्व सर्व । देशसंयत विषै असत्व नरकायु, सत्व एक सौ सैंतालीस । प्रमत्तादि उपशांत-मोह पर्यंत विषैं असत्व नरकायु, तिर्यंचायु – दोय, सत्व एक सौ छियालीस ।

बहुरि वेदक-सम्यक्त्व विषै सत्व एक सौ अडतालीस, गुणस्थान अविरतादिक च्यारि, तहां रचना गुणस्थानवत् ।

बहुरि क्षायिक-सम्यक्त्व विषै च्यारि अनंतानुबंधी, तीन दर्शन-मोहनी का अभाव है; तातै सत्व प्रकृति एक सौ इकतालीस, गुणस्थान असंयतादिक ग्यारह । तहां असंयत विषै असत्व नास्ति, सत्व एक सौ इकतालीस । इहां ही नरकायु, तिर्यंचायु की व्युच्छित्ति भई, जातै क्षायिकसम्यक्त्वी तिर्यंच देशगुणस्थानवर्ती न होंइ; यातै देशसंयत विषै असत्व दोय, सत्व एक सौ गुणतालीस । बहुरि प्रमत्त-अप्रमत्त विषैं भी एक सौ गुणतालीस सत्व है । बहुरि अपूर्वकरण विषै दोऊ श्रेणीनि की अपेक्षा सत्व एक सौ अठतीस है । बहुरि अनिवृत्तिकरणादिक विषै गुणस्थानवत् कथन जानना ।

बहुरि संज्ञीमार्गणा विषै सत्व एक सौ अडतालीस, गुणस्थान मिथ्यादृष्ट्यादिक बारह, रचना गुणस्थानवत् जाननी । बहुरि असंज्ञी-मार्गणा विषै 'ण तित्थयरं' इस

वचन तै तीर्थंकर विना सत्व एक सौ सैंतालीस । तहां मिथ्यादृष्टि विषै असत्व नास्ति, सत्व सर्व । सासादन विषै असत्व आहारक द्विक अर सत्व एक सौ पैंतालीस है ।

बहुरि आहारकमार्गणा विषै सत्व एक सौ अडतालीस, गुणस्थान सयोगी पर्यंत तेरह, तहां रचना गुणस्थानवत् जाननी ।।३५५।।

कम्मेवाणाहारे,[1] पयडीणं सत्तमेवमादेसे ।
कहियमिणं बलमाहवचंदच्चियणेमिचंदेण ।।३५६।।

कार्मे एवानाहारे, प्रकृतीनां सत्वमेवमादेशे ।
कथितमिदं बलमाधवचंद्रार्चितनेमिचंद्रेण ।।३५६।।

टीका – अनाहार-मार्गणा विषै कार्माणकाययोगवत् रचना जाननी । तहां मिथ्यादृष्टि, सासादन, अविरत, सयोगी विषै कार्माणकाययोगवत् रचना है, अर अयोगी विषै अयोगी गुणस्थानवत् रचना है ।

ऐसे यहु मार्गणास्थान विषै प्रकृतिनि का सत्व, सो प्रत्यक्ष वंदनेवाले ऐसे वलभद्र अर माधव कहिए वासुदेव तिन कर अर्चित पूजित ऐसा जु नेमिचद्र तीर्थंकर देव ताकरि निरूपण किया है । अथवा वलदेव अपना भाई अर माधवचद्र त्रैविद्यदेव इन करि पूजित ऐसा जु नेमिचद्र सिद्धातचक्रवर्ती ताकरि निरूपण किया है ।।३५६।।

सो मे तिहुवणमहियो, सिद्धो बुद्धो णिरंजणो णिच्चो ।
दिसदु वरणाणलाहं, बुहजणपरिपत्थणं परमसुद्धं ।।३५७।।

स मे त्रिभुवनमहितः, सिद्धो बुद्धो निरंजनो नित्यः ।
दिशतु वरज्ञानलाभं, बुधजनपरिप्रार्थनं परमशुद्धं ।।३५७।।

१–गाथा ३५६ के आधार से—

अनाहारयोग्य १४८

व्यु	मि	सा	अ६३	स	अ७२	१३
स	१४८	१४४	१४८	८५	८५	१३
अ	०	४	०	६३	६३	१३५

टीका – सो श्रीनेमिचंद्र स्वामी तीन भुवन करि पूजित है, सिद्ध है, बुद्ध है, निरंजन है, नित्य है, सो जाकौ बुध-ज्ञानी जन प्रार्थना करै, जाचै, बहुरि जो परम शुद्ध होइ अैसा वर-उत्कृष्ट ज्ञान-लाभ कौ मोकू द्यो – प्राप्त करो ।

सोरठा—**बंध, उदय फुनि सत्त्व, इस अधिकार विषै कहे ।**
इनका जाने तत्त्व, सो ज्ञानी शिव पद लहे ।।२।।

इति आचार्य श्रीनेमिचद्रविरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पचसग्रह-ग्रथ की
जीवतत्वप्रदीपिका नाम सस्कृतटीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञानचाद्रिका
नाम भाषाटीका विषै बधोदयसत्वनिरूपण नामा
दूसरा अधिकार संपूर्ण भया ।।२।।

करणानुयोग का व्याख्यान विधान

करणानुयोग मे यद्यपि वस्तु के क्षेत्र, काल, भावादिक अखडित है, तथापि छद्मस्थ को हीनाधिक ज्ञान होने के अर्थ प्रदेश, समय, अविभाग-प्रतिच्छेदादिक का कल्पना करने का उनका प्रमाण निरूपित करते हैं। तथा एक वस्तु मे भिन्न-भिन्न गुणो का व पर्यायो का भेद करके निरूपण करते है। तथा जीव पुद्गलादिक यद्यपि भिन्न-भिन्न है, तथापि सम्बन्धादिक द्वारा अनेक द्रव्य से उत्पन्न गति, जाति आदि भेदो को एक जीव के निरूपित करते हैं—इत्यादि व्याख्यान व्यवहारनय की प्रधानता सहित जानना, क्योकि व्यवहार के बिना विशेष नही जान सकता। तथा कही निश्चयवर्णन भी पाया जाता है। जैसे—जीवादिक द्रव्यो का प्रमाण निरूपण किया, वहाँ भिन्न-भिन्न इतने ही द्रव्य हैं।

– आचार्यकल्प पं० टोडरमल

– मोक्षमार्ग-प्रकाशक, अध्याय-आठ, पृष्ठ-२७५

ॐ नमः

अथ सत्त्वस्थानभंगाधिकार ॥३॥

दोहा—करि विशेष सत्ता सहित, अष्टकर्म अरि नाश ।
महावीर जयवंत जगि, धारैं ज्ञान प्रकाश ॥

णमिऊण वड्ढमाणं, कणयणिहं देवरायपरिपुज्जं ।
पयडीण सत्तठाणं, ओघे भंगे समं वोच्छं ॥३५८॥

नत्वा वर्धमानं, कनकनिभं देवराजपरिपूज्यं ।
प्रकृतीनां सत्त्वस्थानमोघे भंगेन समं वक्ष्यामि ॥३५८॥

टीका – कनक जो सोना तीहि सारिखा वर्णसंयुक्त, वहुरि देवनि का राजा जो इंद्र ताकरि सर्व प्रकार पूज्य असा वीर-वर्धमान तीर्थंकर-देव कौं नमस्कार करि, ओघ जो गुणस्थान तिन विषै भंगनिकरि सहित प्रकृतिनि का सत्व-स्थान कहूंगा । तहां स्थान कहा ? अर भंग कहा ? सो कहिए हैं—

संख्या-भेद करि एकै काल, एकै जीव विषैं जो प्रकृतिनि का समूह संभवै सो **स्थान** है । वहुरि एक संख्या रूप जे प्रकृति तिनविषै प्रकृतिनि का पलटना सो **भंग** है । अथवा संख्या-भेदकरि एकत्व विषैं प्रकृति भेद करि **भंग** हो है ।

भावार्थ – एक जीव कै, एक काल विषैं, जितनी प्रकृतिनि की सत्ता पाइए, तिनके समूह का नाम **स्थान** कहिए, सो जहां अन्य-अन्य संख्या कौं लीएं प्रकृतिनि की सत्ता पाइए, तहां अन्य-अन्य स्थान कहिए हैं ।

जैसे केई जीवनि की एक सौ छियालीस की सत्ता पाइए, केई जीवनि कै एक सौ पैंतालीस की सत्ता पाइए – तो इहां दोय स्थान भए – असैं ही सर्वत्र जानवा । वहुरि जहां एक ही स्थान विषै प्रकृतिनि का बदलना संभवै, सो भंग कहिए । जैसे केई जीवनि कै मनुष्यायु अर देवायु की सत्ता सहित एक सौ पैंतालीस की सत्ता पाइए है । केई जीवनि कै तिर्यचायु, नरकायु की सत्ता सहित एक सौ पैंतालीस की सत्ता पाइए है, सो यहां स्थान तो एक ही भया, जातैं संख्या एक है । वहुरि भंग अन्य

भया, जातै प्रकृति बदली गई । तहा मनुष्यायु, देवायु की सत्ता है, वहा तिर्यचायु, नरकायु की सत्ता है – सो ऐसै ही सर्वत्र अन्य-अन्य प्रकृतिनि की सख्या तै स्थान-भेद हो है । बहुरि एक-स्थान विषै कोई प्रकृति अन्य-अन्य होने तै भंग भेद हो – ऐसै जानना ।।३५८।।

आगै गुणस्थाननि विषै स्थान अर भंग कहने का विधान कहै हैं—

आउगबंधाबंधणभेदमकाऊण वण्णणं पढमं ।
भेदेण य, भंगसमं, परूवणं होदि बिदियम्हि ।।३५९।।

आयुष्कबंधाबंधनभेदमकृत्वा वर्णनं प्रथमं ।
भेदेन च भंगसमं, प्ररूपणं भवति द्वितीयस्मिन् ।।३५९।।

टीका – आयु के बध का वा आयु के अबध का भेद कौ न करि पहिला वर्णन है, बहुरि दूसरा वर्णन विषै आयु का बध का वा अबंध का भेद सहित प्ररूपण है ।।३५९।।

तहां प्रथम पक्ष विषै आयु का बध, अबंध विशेष बिना किये, जो सामान्य वर्णन, तीहि विषै कैसै सत्ता पाइए, सो कहै हैं—

सव्वं तिगेग सव्वं, चेगं छसु दोण्णि चउसु छद्दस य दुगे ।
छस्सगदालं दोसु तिसट्ठी परिहीण पडि सत्तं जाणे ।।३६०।।

सर्वं त्रिकैकं सर्व, चैकं षट्सु द्वयं चतुर्षु षट् दश च द्विके ।
षट्सप्तचत्वारिंशत् द्वयोस्त्रिषष्टिः परिहीनं प्रति सत्त्वं जानीहि ।।३६०।।

टीका – मिथ्यादृष्टि विषै सत्व सर्व एक सौ अडतालीस है । सासादन विषै तीर्थकर, आहारकद्विक – इन तीन बिना एक सौ पैतालीस सत्व है । मिश्र विषै एक तीर्थकर बिना एक सौ सैतालीस सत्व है । असयत विषै सर्व एक सौ अडतालीस सत्व है । देशसंयत विषै एक नरकायु बिना एक सौ सैतालीस सत्व है । प्रमत्तादिक छह गुणस्थान विषै उपशम-सम्यक्त्व अपेक्षा नरकायु, तिर्यचायु – इन दोय बिना एक सौ छियालीस सत्व है । बहुरि अपूर्वकरणादिक च्यारि गुणस्थाननि विषै अनतानुबंधी विसयोजना करने की अपेक्षा नरकायु, तिर्यचायु, अनतानुबधी चतुष्क इन छहो बिना एक सौ बियालीस का भी सत्व पाइए है ।

बहुरि क्षपक-श्रेणी अपेक्षा अपूर्वकरणादिक दोय गुणस्थाननि विषै नरकायु, तिर्यचायु, देवायु, तीन दर्शन-मोह, अनतानुबन्धी चतुष्क – इन दश बिना एक सौ अडतीस सत्व है। सूक्ष्मसांपराय विषै अनिवृत्तिकरण मे व्युच्छित्ति भई सोलह, आठ, एक, एक, छह, एक, एक, एक, एक, तिन सहित छियालीस विना एक सौ दोय सत्व है। क्षीणकपाय विषैं लोभ सहित सैतालीस बिना एक सौ एक सत्व है। सयोगी, अयोगी विषै घातियानि की सैतालीस, नामकर्म की तेरह, तीन आयु – इन तरेसठि बिना पिच्च्यासी सत्व है, चकार तैं अयोगी का अतसमय विषैं एक सौ पैंतीस विना तेरह सत्व हैं।

ऐसैं सत्व जानहु ॥३६०॥

आगैं जे ए प्रकृति घटाई तिनके नाम कहै हैं—

सासणमिस्से[1] देसे, संजददुग सामगेसु णत्थी य ।
तित्थाहारं तित्थं, णिरयाऊ णिरयतिरियआउअणं ॥३६१॥

सासादनमिश्रे देशे, संयतद्विके शामकेषु नास्ति च ।
तीर्थाहारं तीर्थं, निरयायुर्निरयतिर्यगायुरनं ॥३६१॥

१–गाथा ३६१ के आधार से—

	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	उ०	क्षी०	सू०	उ०	क्षी०
स	१४८	१४५	१४७	१४८	१४७	१४६	१४६	१४६	१४२	१३८	१४६	१४२	१०२
अ	०	३	१	०	१	२	२	२	६	१०	२	६	४६

उ०		क्षी०	स०	अ०	चरम
१४६	१४२	१०१	८५	८५	१३
२	६	४७	६३	६३	१३५

टीका – सासादन विषै, मिश्र विषै, देशसयत विषै, संयतद्विक प्रमत्त-अप्रमत्त तिन विषै, उपशमश्रेणी विषै – अनुक्रम तै तीर्थंकर, आहारकद्विक – ए तीन, बहुरि तीर्थकर, बहुरि नरकायु, बहुरि नरकायु-तिर्यचायु – ए दोय, बहुरि नरकायु-तिर्यचायु, अनतानुबंधी – ए छह – ऐसे सत्व विषै घटाई हुई प्रकृति जाननी । 'चकार' तै क्षपक-श्रेणी विषै **'दश य दुगे'** इत्यादि पूर्वोक्त प्रकार घाटि प्रकृति जाननी ।।३६१।।

आगे गुणस्थान विषै आयु के बध-अबंध का भेद लीएं विशेप वर्णन कहै है, तहां स्थान-संख्या दोय गाथानि करि कहै है—

बिगुणणव चारि अट्ठं, मिच्छतिये अयदचउसु चालीसं ।
तिय उवसमगे संते, चउवीसा होंति पत्तेयं ।।३६२।।

चउछक्केदि चउअट्ठं, चउछक्क य होंति सत्तठाणाणि ।
आउगबंधाबंधे, अजोगिअंते तदो भंगा ।।३६३।।

द्विगुणनव चत्वारि अष्ट, मिथ्यत्रये अयतचतुर्षु चत्वारिंशत् ।
त्रीणि ऊपशामके शांते, चतुर्विंशतिः भवंति प्रत्येकं ।।३६२।।

चतुः षट्कृतिः चतुरष्ट, चतुःषट्कं च भवंति सत्त्वस्थानानि ।
आयुष्कबंधाबंधे, अयोग्यंते ततो भंगाः ।।३६३।।

टीका – मिथ्यादृष्टि विषै नव के दूणे अठारह सत्व-स्थान है । सासादन विषै च्यारि है । मिश्र विषै आठ है । असयतादिक च्यारि गुणस्थाननि विषै प्रत्येक चालीस-चालीस सत्व-स्थान है । अपूर्वकरणादिक तीन उपशमश्रेणी युक्त अर उपशांत-कषाय इनविषै प्रत्येक चौबीस-चौबीस सत्व स्थान है । क्षपकश्रेणी विषै अपूर्वकरण विषै तो च्यारि, अनिवृत्तिकरण विषै छत्तीस, सूक्ष्मसांपराय विषै च्यारि, क्षीणकषाय विषै आठ, सयोगी विषै च्यारि, अयोगी विषै छह सत्व स्थान है । ऐसे आयु का बध वा अबध की विवक्षा विषै अयोगी पर्यत गुणस्थाननि विषै सत्व-स्थान है । ।।३६२-३६३।।

ताके आगै इन स्थाननि के भगनि की सख्या कहै है—

पण्णास बार छक्कदि, वीससयं अट्ठदाल दुसु दालं ।
अडवीसा बासट्ठी, अडचउवीसा य अट्ठ चउ अट्ठ ।।३६४।।

पंचादश द्वादश षट्कृतिः, विंशशतं अष्टचत्वारिंशत् द्वयोः चत्वारिंशत् ।
अष्टाविंशतिः द्वाषष्टिः, अष्टचतुर्विंशतिः च अष्ट चत्वारि अष्ट ।।३६४।।

टीका – मिथ्यादृष्टि के अठारह स्थानकनि के पचास भग है। सासादन के च्यारि स्थानकनि के बारह भग है। मिश्र के आठ स्थानकनि के छत्तीस भग हैं। असयत के चालीस स्थानकनि के एक सौ वीस भंग है। देशसंयत के चालीस स्थानकनि के अडतालीस भंग है। प्रमत्त-अप्रमत्त के चालीस-चालीस स्थानकनि के चालीस-चालीस भंग है। दोऊ श्रेणीरूप अपूर्वकरण के अठाईस स्थानकनि के अठाईस भंग है। दोऊ श्रेणीरूप अनिवृत्तिकरण के साठि स्थानकनि के बासठि भंग हैं। दोऊ श्रेणीरूप सूक्ष्मसांपराय के अठाईस स्थानकनि के अठाईस भंग है। उपशांतकषाय के चौबीस स्थानकनि के चौबीस भंग है। क्षीणकषाय के आठ स्थानकनि के आठ भंग है। सयोगी के च्यारि-स्थानकनि के च्यारि भंग है। अयोगी के छह-स्थानकनि के आठ भंग हैं ।।३६४।।

आगे मिथ्यादृष्टि विषै अठारह स्थानकनि विषै प्रकृतिनि की संख्या आयु का वंध की वा अवंध की विवक्षाकरि कहै हैं—

दुतिछस्सत्तट्ठणवेक्कारस सत्तरसमूणवीसमिगिवीसं ।
हीणा सव्वे सत्ता, मिच्छे बद्धाउगिदरमेगूणं ।।३६५।।

द्वित्रिषट्सप्ताष्टनवैकादश-सप्तदशोनविंशमेकविंशं ।
हीना सर्वा सत्ता, मिथ्ये बद्धायुष्कमितरदेकोनं ।।३६५।।

टीका – जाकै आगामी-आयु का वंध भया होइ, ताकौ बद्धायु कहिए। बहुरि जाकै आगामी-आयु वंध न भया होइ, ताकौं अबद्धायु कहिए । तहां बद्धायु मिथ्यादृष्टि विषै सर्व सत्वरूप एक सौ अडतालीस प्रकृतिनि तै दोय प्रकृति घाटि पहिला स्थान है । द्वितीयादिक स्थान अनुक्रम तै तीन, छह, सात, आठ, नव, ग्यारह, सतरह, उगणीस, इकईस प्रकृति घाटि जानने ।

ए दश-स्थान तौ वद्धायु के हैं ।

बहुरि अबद्धायु के स्थाननि तै एक-एक अधिक प्रकृति घाटि स्थान जानने ।

ऐसै इन वीस स्थाननि विषै पुनरुक्त दोय स्थानक घटाए मिथ्यादृष्टि विषै नव अठारह स्थान जानने । ।।३६५।।

आगै घटाई जे प्रकृति तिनके नाम कहै है—

तिरियाउगदेवाउगमण्णदराउगदुगं तहा तित्थं ।
देवतिरियाउसहियाहारचउक्कं तु छच्चेदे ॥३६६॥

आउदुगहारतित्थं, सम्मं मिस्सं च तह य देवदुगं ।
णारयछक्कं च तहा, णराउउच्चं च मणुवदुगं ॥३६७॥

तिर्यगायुष्कदेवायुष्कमन्यतरायुष्कद्विकं तथा तीर्थं ।
देवतिर्यगायुस्सहित, माहारचतुष्कं च षट् चैताः ॥३६६॥

आयुर्द्विकाहारतीर्थं, सम्यं मिश्रं च तथा च देवद्विकं ।
नारकषट्क च तथा, नरायुरुच्चं च मानवद्विकं ॥३६७॥

टीका – जो जीव कैं तिर्यंचायु, देवायु बिना एक सौ छियालीस की सत्ता पाइए सो बद्धायु का एक स्थान तौ यहु है । बहुरि भुज्यमान, बध्यमान दोइ आयु बिना कोई दोय आयु अर तीर्थंकर – इन तीन बिना एक सौ पैंतालीस का सत्त्व पाइए, सो एक यहु स्थान है । बहुरि देवायु, तिर्यंचायु अर आहारक-चतुष्क – इन छह बिना एक सौ बियालीस का सत्त्व पाइए, सो यहु एक स्थान है । बहुरि कोऊ दोय आयु, आहारक चतुष्क, तीर्थंकर – इन सात बिना एक सौ इकतालीस का सत्त्व पाइए, सो एक यहु स्थान है । बहुरि पूर्वोक्त सात अर सम्यक्त्व मोहनी – इन आठ बिना एक सौ चालीस का सत्त्व पाइए, सो एक यहु स्थान है । बहुरि पूर्वोक्त आठ अर मिश्र-मोहनी – इन नव बिना एक सौ गुणतालीस का सत्त्व पाइए, सो एक यहु स्थान है । बहुरि पूर्वोक्त नव अर देवगति वा आनुपूर्वी – इन ग्यारह बिना एक सौ सैंतीस का सत्त्व पाइए, एक यहु स्थान है । बहुरि पूर्वोक्त ग्यारह अर नरकगति वा आनुपूर्वी, वैक्रियिक-शरीर अंगोपांग-बंधन-संघात – ए नारक षट्क – इन सतरह बिना एक सौ इकतीस का सत्त्व पाइए, सो एक यहु स्थान है । बहुरि पूर्वोक्त सतरह अर नरायु, उच्च गोत्र – इन उगणीस बिना एक सौ गुणतीस का सत्त्व पाइए, सो एक यहु स्थान है । बहुरि पूर्वोक्त उगणीस अर मनुष्यगति वा आनुपूर्वी – इन इकईस बिना एक सौ सत्ताईस का सत्त्व पाइए, सो एक यहु स्थान है ।

ऐसै बद्धायु के स्थान दश जानने ।

बहुरि अबद्धायु के भुज्यमान आयु ही की सत्ता पाइए बध्यमान आयु की सत्ता न पाइए; तातै पूर्वोक्त सत्त्व तै एक-एक बध्यमान आयु करि हीन असै अबद्धायु के दश स्थान जानने । तहां पुनरुक्त दोय स्थान दूर कीजिए, असै अठारह स्थान मिथ्यादृष्टि विषै है ।

भावार्थ – इहां यहु है – जो मिथ्यादृष्टि विषै इस प्रकार प्रकृतिनि की सत्ता एक जीव कै एक काल विषै पाइए, अन्य प्रकार कदाचित् न पाइए । इहां विद्यमान जिस आयु कौ भोगवै है, सो भुज्यमान आयु कहिए । बहुरि जिस आगामी आयु का बंध किया होइ, ताकौ बध्यमान आयु कहिए ।

सो अब इन अठारह-स्थाननि के पचास भंग रचना के अनुसारि परमगुरु के उपदेश करि कहिए है—

तहां पूर्वे नरकायु बंध जाकै भया होइ, ऐसा मिथ्यादृष्टि मनुष्य सो वेदक सम्यक्त्व कौ अंगीकार करि असंयत गुणस्थानवर्ती होय केवली, श्रुतकेवली के निकटि षोडश भावनानि करि तीर्थंकर प्रकृति के बंध का प्रारंभ करि तीर्थंकर प्रकृति की सत्तायुक्त होइ मरण काल विषैं भुज्यमान मनुष्यायु का अंतर्मुहूर्त काल अवशेष रहैं मिथ्यादृष्टि भया, तिस जीव कै तिर्यंचायु, देवायु के सत्व का अभाव है; तातैं एक सौ छियालीस प्रकृतिरूप सत्वस्थान पाइए। इहां भंग भी एक ही पाइए, जातै जिनकै बध्यमान – तिर्यंचायु, मनुष्यायु होइ अर भुज्यमान-मनुष्यायु होइ, तिन असंयत-सम्यग्दृष्टिनि कैं तीर्थंकर-बंध का प्रारंभ न होइ । बहुरि बध्यमान देवायु, भुज्यमान मनुष्यायु युक्त जे असंयतादिक च्यारि गुणस्थानवर्ती जीव सम्यक्त्व तै भ्रष्ट होइ मिथ्यादृष्टि होते नाहीं ।

बहुरि भुज्यमान नरकायु, बध्यमान मनुष्यायु असा भंग नरकायु का छह महीना अवशेष रहैं संभवै, तहां गर्भावतरण कल्याण के सद्भाव तै मिथ्यादृष्टिपना संभवै नाही, तातै भुज्यमान मनुष्यायु, बध्यमान नरकायु असा एक ही भंग संभवै है । अन्य प्रकार प्रकृति के वदलने तै एक सौ छियालीस का सव न पाइए है ।

बहुरि अबद्धायु के भुज्यमान एक आयु का सत्त्व विना अन्य आयु का सत्व संभवै नाही; तातैं देवायु, मनुष्यायु, तिर्यंचायु विना एक सौ पैतालीस का सत्वरूप स्थान होइ । तहां भी भंग एक भुज्यमान नरकायु रूप ही जानना । जातै सोई बध्य-

मान नरकायु तीर्थंकर सत्तावाला मनुष्य मरि नारकी भया, ताकै निर्वृत्ति अपर्याप्त अवस्था विषै अंतर्मुहूर्त पर्यंत मिथ्यादृष्टि पना रहै है । तहां अबद्धायुपना तै भुज्यमान एक नरकायु का सत्त्व बिना अन्य सत्त्व नाही है । तिस जीव कै एक सौ पैंतालीस का सत्त्व स्थान संभवै है, अन्य कै ऐसा सत्त्व न पाइए ।

बहुरि बद्धायु का दूसरा स्थान भुज्यमान-बध्यमान दोय आयु अर तीर्थंकर इन तीन बिना एक सौ पैंतालीस प्रकृतिनि का सत्त्व रूप जानना । तहां भंग कहिए हैं—

१ भुज्यमान नरकायु, बध्यमान तिर्यंचायु, २ भुज्यमान नरकायु, बध्यमान मनुष्यायु; ३ भुज्यमान तिर्यंचायु, बध्यमान नरकायु; ४ भुज्यमान तिर्यंचायु, बध्यमान तिर्यंचायु; ५ भुज्यमान तिर्यंचायु, बध्यमान मनुष्यायु, ६ भुज्यमान तिर्यंचायु, बध्यमान देवायु; ७ भुज्यमान मनुष्यायु, बध्यमान नरकायु; ८ भुज्यमान मनुष्यायु, बध्यमान तिर्यंचायु; ९ भुज्यमान मनुष्यायु, बध्यमान मनुष्यायु, १० भुज्यमान मनुष्यायु, बध्यमान देवायु; ११ भुज्यमान देवायु, बध्यमान तिर्यंचायु, १२ भुज्यमान देवायु, बध्यमान मनुष्यायु – असैं बारह भंग भए ।

इन विषै भुज्यमान तिर्यंचायु, बध्यमान तिर्यंचायु अर भुज्यमान मनुष्यायु, बध्यमान मनुष्यायु – ए दोऊ भंग पुनरुक्त हैं, जातै भुज्यमान तिर्यंचायु, बध्यमान तिर्यंचायु इस भंग विषै एक तिर्यंचायु ही की सत्ता आई और दूसरी प्रकृति नाही । असें ही भुज्यमान मनुष्यायु, बध्यमान मनुष्यायु विषै भी जानना । यातै ए दोऊ भंग न गिने. अवशेष दश रहे तिन विषै भुज्यमान तिर्यंचायु, बध्यमान नरकायु कै अर भुज्यमान नरकायु, बध्यमान तिर्यंचायु के समानता है, जातै दोऊ भंगनि विषै नरकायु तिर्यंचायु ही की सत्ता पाइए; यातै दोऊ भंगनि का एक ही भंग गिनिए ।

असैं ही भुज्यमान मनुष्यायु, बध्यमान नरकायु अर भुज्यमान नरकायु, बध्यमान मनुष्यायु विषै; बहुरि भुज्यमान मनुष्यायु, बध्यमान तिर्यंचायु अर भुज्यमान तिर्यंचायु, बध्यमान मनुष्यायु विषै; बहुरि भुज्यमान देवायु, बध्यमान तिर्यंचायु अर भुज्यमान तिर्यंचायु अर बध्यमान देवायु विषै; बहुरि भुज्यमान देवायु, बध्यमान मनुष्यायु अर भुज्यमान मनुष्यायु, बध्यमान देवायु विषै समानता है, तातै एक-एक ही भंग गिन्या । असैं एक सौ पैंतालीस बद्धायु सत्ता विषै पंच भंग जानने ।

यहां भंगनि का यहु भावार्थ है—

भुज्यमान-बध्यमान तिर्यंचायु, नरकायु वाले कैं तो तिर्यञ्चायु, नरकायु की सत्ता सहित एक सौ पैंतालीस सत्त्वस्थान पाइए, सो एक तो यहु भंग भया। वहुरि भुज्यमान-बध्यमान, मनुष्यायु-नरकायुवाले कैं मनुष्यायु-नरकायु सहित एक सौ पैंतालीस सत्त्व-स्थान पाइए सो दूसरा यहु भंग भया। सो उस भंग विषै तिर्यंचायु अर इस भंग विषै मनुष्यायु अैसै एक प्रकृति बदली गई; तातै अन्य-अन्य भंग कह्या। अैसे ही अन्यत्र भी भंगनि का स्वरूप जानि लेना। बहुरि अबद्धायु का दूसरा स्थान एक सौ पैंतालीस में बध्यमान एक आयु की सत्ता घटाइए एक सौ चवालीस प्रकृति रूप है, यातै च्यारों गति का जीव भुज्यमान की अपेक्षा च्यारि भंग है।

भुज्यमान तिर्यंचायुवाले कै तिर्यंचायु सहित एक सौ चवालीस का सत्त्व स्थान है अर भुज्यमान नरकायुवाले कै नरकायु सत्ता सहित एक सौ चवालीस रूप सत्त्व स्थान पाइए। अैसे प्रकृति बदलनै तै इहां भी अन्य-अन्य भंग जानने। अैसें ही अन्यत्र भी भंग जानने।

बहुरि कोई मिथ्यादृष्टि जीव पहिलै अप्रमत्त गुणस्थान कौ प्राप्त होइ, तहां आहारक चतुष्टय का बंध न किया; तातै ताकै आहारक चतुष्टय का सत्त्व नाहीं है। अथवा अप्रमत्त गुणस्थान विषै आहारक चतुष्टय का बंध करि पीछै मिथ्यादृष्टि होइ आहारक चतुष्टय की उद्वेलना करी; तातैं आहारक चतुष्टय का सत्त्व रहित भया, अैसा मनुष्य, नरकायु का बंध पहिलै करि, पीछै वेदक सम्यक्त्व कौ धारि असंयत गुणस्थानवर्ती होइ केवली, श्रुतकेवली के निकटि षोडशकारण करि तीर्थंकर बंध का प्रारंभ करि तीर्थंकर सत्त्व सहित होइ भुज्यमान आयु का अंतर्मुहूर्त अवशेष रहैं दूसरी, तीसरी पृथ्वी विषैं गमन कौ योग्य मिथ्यादृष्टि होइ।

जिस जीव कै तीसरा बद्धायुस्थान तिर्यंचायु, देवायु, आहारक चतुष्क बिना एक सौ बियालीस प्रकृति रूप पाइए, तहां भंग एक ही है। इस ही प्रकार एक सौ त्रियालीस का सत्त्व पाइए अन्य प्रकार नाहीं। जातै मनुष्यायु, तिर्यंचायु का पहिलैं बंध भया होइ, ताकै तीर्थंकर का बंध न होइ। देवायु का जाकै बंध भया होइ, ताकै तीर्थंकर का सत्त्व होइ, पर मिथ्यादृष्टि न होइ।

इहां प्रश्न – जो मनुष्य ही विषै तीर्थंकर बंध का प्रारंभ कह्या, तो देव, नारकी कै असंयत विषै तीर्थंकर बंध कैसे कह्या है ?

तार्का समाधान – जो पहिलैं तीर्थंकर बंध का प्रारंभ तौ मनुष्य ही कै होइ, पीछै जो सम्यक्त्वस्यो भ्रष्ट न होइ, तो समय-समय प्रति अंतर्मूहूर्त अधिक आठ वर्ष घाटि दोय कोडि पूर्व अधिक तेतीस सागर पर्यंत उत्कृष्टपनै तीर्थंकर प्रकृति का बध समयप्रबद्ध विषै हुआ करै; तातै देव, नारकी विषै भी तीर्थंकर का बध सभवै है ।

बहुरि तीसरा अबद्धायुस्थान मनुष्यायु का भी सत्त्व रहित है, तातै तिर्यंच, मनुष्य, देव – ए तीन आयु आहारक चतुष्टय – इन सात बिना एक सौ इकतालीस प्रकृति रूप जानना । इहां सो तीर्थंकर सत्तावाला मरि दूसरी, तीसरी नरक पृथ्वी विषै प्राप्त भया । तहां अपर्याप्त अवस्था विषै मिथ्यादृष्टि ही रहै, ताकै भुज्यमान नरकायु का सत्त्व बिना अन्य आयु का सत्त्व नाही है । तिस ही जीव कैं असी सत्ता पाइए; तातै भग एक ही जानना अन्य प्रकार असी सत्ता न होइ ।

बहुरि चौथा बद्धायुस्थान भुज्यमान-बध्यमान बिना दोय आयु, आहारक चतुष्क, तीर्थंकर – इन सात बिना एक सौ इकतालीस प्रकृति रूप जानना । तहां पूर्वोक्त बारह भगनि विषै दोय पुनरुक्त अर पच समान भगनि बिना अवशेप पच भंग जानने । बहुरि चौथा अबद्धायुस्थान भुज्यमान बिना तीन आयु, आहारक, चतुष्क, तीर्थंकर बिना एक सौ चालीस प्रकृति रूप जानना । तहां भुज्यमान च्यारि गति की अपेक्षा च्यारि भंग है ।

बहुरि पाचवां बद्धायुस्थान भुज्यमान-बध्यमान बिना दोय आयु, आहारक चतुष्क, तीर्थंकर, सम्यक्त्व मोहनी – इन आठ बिना एक सौ चालीस प्रकृतिरूप जानना । तहां पूर्वोक्त प्रकार बारह भगनि विषै पाच भंग जानने । बहुरि पाचवा अबद्धायुस्थान पूर्वोक्त एक सौ चालीस मे बध्यमान आयु बिना एक सौ गुणतालीस प्रकृतिरूप जानना । तहां च्यारि गति के भेद ते भग च्यारि जानने ।

बहुरि छठा बद्धायुस्थान भुज्यमान-बध्यमान बिना आयु दोय, तीर्थंकर, आहारक चतुष्क, सम्यक्त्व मोहनी, मिश्र मोहनी – इन बिना एक सो गुणतालीस प्रकृतिरूप जानना । तहां भग पूर्वोक्त प्रकार पच जानने । बहुरि छठा अबद्धायुस्थान पूर्वोक्त एक सौ गुणतालीस मे बध्यमान आयु विना एक सौ अठतीस प्रकृतिरूप जानना । तहा भंग च्यारि गति की अपेक्षा च्यारि जानना ।

बहुरि सातवां बद्धायुस्थान देवद्विक की उद्वेलना जिनकै भई असे एकेंद्री विकलत्रय जीवनि कै भुज्यमान तिर्यचायु, बध्यमान मनुष्यायु बिना अवशेष देव ग

अर नरकायु । बहुरि आहारक चतुष्क, तीर्थकर, सम्यक्त्व मोहनी, मिश्र मोहनी, देवगति वा आनुपूर्वी – इन बिना एक सौ सैंतीस प्रकृतिरूप जानना । तहां भुज्यमान एकेंद्री, त्रिकलेंद्री सबधी तिर्यचायु, बध्यमान तिर्यचायु । बहुरि भुज्यमान तिर्यचायु, बध्यमान मनुष्यायु – ए दोय भग है ।

तिन विषै भुज्यमान तिर्यचायु, बध्यमान तिर्यचायु यहु पुनरुक्त भग है, सो न गिन्या; तातै भंग एक ही जानना ।

इहां उद्वेलना का स्वरूप पूर्वै कह्या है सो जानना ।।३६६-३६७।।

उव्वेल्लिददेवदुगे, बिदियपदे चारि भंगया एवं
सपदे पढमो बिदियं, सो चेव णरेसु उप्पण्णो ।।३६८।।

वेगुव्वअट्ठरहिदे, पंचिंदियतिरियजादिसुववण्णे ।
सुरछब्बंधे तदियो, णरेसु तब्बंधणे तुरियो ।।३६९।।

उद्वेल्लितदेवद्विके, द्वितीयपदे चत्वारो भंगा एवं ।
स्वपदे प्रथमो द्वितीयः, स चैवं नरेषु उत्पन्नः ।।३६८।।

वैगूर्वाष्टरहिते, पंचेद्रियतिर्यग्जातिषूपपन्ने ।
सुरषड्बधे तृतीयो, नरेषु तद्बंधने तुरीयः ३६९।।

टीका – बहुरि सातवा अबद्धायु-स्थान एक सौ छत्तीस प्रकृति रूप है । तहां देवद्विक की उद्वेलना जाकै भई ऐसा एकेंद्री वा विकलत्रय-मिथ्यादृष्टि जीव, ताकै तिस ही पर्याय विषै आहारक-चतुष्क, तीर्थकर, सम्यक्त्व-मोहनी, मिश्रमोहनी, देवगति वा आनुपूर्वी – नव तौ ए अर भुज्यमान-तिर्यचायु बिना अवशेष तीन आयु – इन बारह बिना सत्त्व एक सौ छत्तीस का पाइए – सो एक तौ यहु भग है ।

बहुरि सोई देवद्विक की उद्वेलना जाकै भई ऐसा एकेंद्री, विकलत्रय मिथ्या-दृष्टि-जीव सो मरि करि मनुष्य उपजा । तहां अपर्याप्त-अवस्था विषै मिथ्यादृष्टिपनां तै सुरचतुष्क का बध नाही; तातै पूर्वोक्त नव अर भुज्यमान मनुष्यायु बिना तीन आयु – ऐसे बारह बिना एक सौ छत्तीस का सत्त्व पाइए – सो यहु दूसरा भंग है ।

बहुरि जाकै वैक्रियिक-अष्टक की उद्वेलना भई ऐसा कोई एकेंद्री, विकलत्रय-जीव मरि करि पचेंद्री-तिर्यच विषै उपज्या, तहां पर्याप्त-दशा विषै देवगति वा आनु-

पूर्वी, वैक्रियिक-शरीर वा अंगोपांग, बंधन, संघात इस सुरषट्क का तो बंध किया अर नरकगति वा आनुपूर्वी का बंध तहां किया, तहा आहारक-चतुष्क, तीर्थकर, सम्यक्त्व मोहनी, मिश्रमोहनी, नरकगति वा आनुपूर्वी – नव तो ए अर भुज्यमान-तिर्यचायु बिना तीन आयु – असें बारह बिना-एक सौ छत्तीस का सत्त्व पाइए, सो यहु तीसरा भग है।

बहुरि सोई जीव मरि करि मनुष्य विषै उपज्या, तहा सुरषट्क का वध होतें पूर्वोक्त नव अर भुज्यमान-मनुष्यायु बिना तीन आयु – असें बारह बिना एक सौ छत्तीस का सत्त्व पाइए, सो यहु चौथा भंग है। असें च्यारि भग भए। इहा सब भंगनि विषै एक सौ छत्तीस ही की सख्या पाइए; तातैं स्थान एक कह्या अर प्रकृति बदलने तें च्यारि प्रकार पाइए, तातैं भग च्यारि कहे।

बहुरि आठवां बद्धायुस्थान नारकषट्क की उद्वेलना भए एकेंद्री, विकलत्रय-जीव कैं हो है। सो भुज्यमान-तिर्यचायु, बध्यमान-मनुष्यायु बिना देव, नरक दोय आयु, आहारक-चतुष्क, तीर्थकर, सम्यक्त्वमोहनी, मिश्रमोहनी, देवगति वा आनुपूर्वी, नरकगति वा आनुपूर्वी, वैक्रियिक-शरीर-अंगोपाग-बधन-सघात – ए नारक षट्क – इन सतरह बिना एक सौ इकतीस प्रकृतिरूप जानना। तहा भग दोय भुज्यमान-तिर्यचायु, बध्यमान-तिर्यचायु (१); भुज्यमान तिर्यचायु, बध्यमान मनुष्यायु (२)। तहां भुज्यमान-तिर्यचायु, बध्यमान-तिर्यचायु यहु भग पुनरुक्त है, तातैं ग्रहण न करना – एक ही भंग जानना ॥३६८-३६९॥

णारकछक्कुव्वेल्ले, आउगबंधुज्झिदे दुभंगा हु
इगिविगलेसिगिभंगो, तम्मि णरे बिदियमुप्पण्णे ॥३७०॥

नारकषट्कोद्वेल्ये, आयुर्बंधोज्झिते द्विभंगौ हि।
एकविकलेष्वेकभंगस्तस्मिन्नरे द्वितीयमुत्पन्ने ॥३७०॥

टीका – बहुरि सो आठवा-अबद्धायुस्थान भुज्यमान-आयु विना तीन आयु अर आहारक-चतुष्टयादिक पंद्रह – इन विना एक सौ तीस प्रकृति रूप जानना। तहा भंग दोय, नारक-षट्क की उद्वेलना भए एकेंद्री, विकलत्रय-जीव कैं तिर्यचायु विना तीन आयु, आहारक-चतुष्टयादि पद्रह – इन विना एक सौ तीस का सत्त्व पाइए, सो एक तो यहु भग है।

बहुरि सोई एकेंद्री, विकलत्रय-जीव मरि करि मनुष्य उपजा, तहां अपर्याप्त-काल विषै मनुष्यायु बिना तीन आयु, आहारक-चतुष्टयादि पद्रह – इन विना एक सौ तीस का सत्त्व पाइए, सो यहु दूसरा भग है ।

बहुरि नवमां बद्धायुस्थान उच्च गोत्र की उद्वेलना भए तेज कायिक, वात-कायिक जीवनि विषै पाइए, सो पूर्वोक्त एक सौ तीस मेंस्यो उच्च गोत्र का अभाव भया; तातै एक सौ गुणतीस प्रकृतिरूप जानना ।

तहा भग एक भुज्यमान-तिर्यचायु, बध्यमान-तिर्यचायु सो यहु भंग पुनरुक्त है, तथापि इहा अन्य प्रकार कोई भंग नाही; तातै इस ही का ग्रहण करना । बहुरि नवमां अबद्धायु-स्थान भी एक सौ गुणतीस प्रकृतिरूप ही है, सो यहु स्थान बद्धायु-स्थान के समान है; तातै पुनरुक्त है; तातै इस स्थान का ग्रहण न करना ।

बहुरि दसवा बद्धायुस्थान मनुष्यद्विक की उद्वेलना भए तेजः-कायिक, वात-कायिक जीव कै पाइए, सो पूर्वोक्त एक सौ गुणतीस में मनुष्यगति वा मनुष्यानुपूर्वी विना एक सौ सत्ताईस का सत्त्व रूप जानना । तहां भग एक ही है, सो यहु भग पुनरुक्त है । तथापि ग्रहण करना । पूर्वै पुनरुक्त भग अबद्धायु-स्थान विषै गर्भित हो गये थे; तातै ग्रहण न किए थे इहा अबद्धायु स्थान का ग्रहण ही न किया; तातै पुनरुक्त भग का ग्रहण किया । बहुरि दसवां अबद्धायुस्थान भी तैसे ही एक सौ सत्ता-ईस प्रकृतिरूप जानना, सो इस बद्धायुस्थान अबद्धायुस्थान विषै किछू संख्या वा प्रकृति विशेष नाही; तातै यहु स्थान ग्रहण न करना ।।३७०।।

आगे कहे जे अठारह-स्थान तिनके पुनरुक्त अर समभंग बिना जे भग कहे, तिनकी सख्या गाथाकरि कहैं है—

बिदिये तुरिये पणगे, छट्ठे पंचेव सेसगे एक्कं ।
बिगचउपणछस्सत्तय, ठाणे चत्तारि अट्ठगे दोण्णि ।।३७१।।

द्वितीये चतुर्थे पंचमे, षष्ठे पंचैव शेषके एकः ।
द्विकचतुःपंचषट्सप्तम, स्थाने चत्वारः अष्टमे द्वौ ।।३७१।।

टीका – दूसरा, चौथा, पांचवां, छठा बद्धायुस्थान विषै पांच-पांच भंग जानने । अवशेष पहिला, तीसरा, सातवां, आठवां, नवमां, दशवां बद्धायुस्थान विषै एक-एक

भग जानना । बहुरि अबद्धायुस्थान विषै दूसरा, चौथा, पाचवा, छठा, सातवा विषै च्यारि-च्यारि, आठवा विषै दोय, अवशेष पहिला, तीसरा विषै एक-एक भंग जानने ।

ऐसे मिथ्यादृष्टि गुणस्थान विषै सत्त्वस्थान अठारह, भग पचास जानने । ।।३७१।।

आगै सासादन-मिश्र विषै स्थान अर भगनि की संख्या च्यारि गाथानि करि कहै है—

सत्ततिगं आसाणे, मिस्से तिगसत्तसत्तएयारा ।
परिहीण सव्वसत्तं, बद्धस्सियरस्स एगूणं ।।३७२।।

सप्तत्रिकमासाने, मिश्रे त्रिकसप्तसप्तैकादश ।
परिहीनं सर्वसत्त्वं, बद्धस्येतरस्यैकोनं ।।३७२।।

टीका — सासादन विषै सर्व सत्त्व में सातकरि हीन अर तीनकरि हीन — दोय स्थान जानने । बहुरि मिश्र विषै तीन करि हीन, सात करि हीन, सात करि हीन, ग्यारह करि हीन — च्यारि स्थान जानने — सो ए बद्धायु के स्थान है । बहुरि अबद्धायु के स्थान बद्धायु के स्थाननि तै एक-एक बध्यमान-आयु करि हीन स्थान जानने ।।३७३।।

ते हीन प्रकृति कौन-कौन ? सो सासादन विषै कहै है—

तित्थाहाराचउक्कं, अण्णदराउगदुगं च सत्तेदे ।
हारचउक्कं वज्जिय, तिण्णि य केइं समुद्दिट्ठं ।।३७३।।

तीर्थाहारचतुष्क, मन्यतरायुष्कद्विकं च सप्तैताः ।
आहारकचतुष्कं वर्जयित्वा, तिस्रश्च केचित्समुद्दिष्टं ।।३७३।।

टीका — सासादन विषै तीर्थकर, आहारकचतुष्क, भुज्यमान-बध्यमान बिना दोय आयु — इन सात बिना एक सौ इकतालीस रूप प्रथम स्थान जानना । बहुरि तिन सात में आहारक-चतुष्क न गिनिए, तब एक सौ पैतालीस रूप दूसरा स्थान जानना । सो इस एक सौ पैतालीस का स्थान विषै जो आहारक-चतुष्क का सत्त्व कह्या, सो केई आचार्यनि करि कह्या है, तातै कह्या है । बहुरि केई आचार्य सासादन विषै आहारक-चतुष्क के सत्त्व का अभाव ही कहैं हैं तिस अपेक्षा एक सौ इकतालीस का ही एक-स्थान है ।।३७३

आगें मिश्र विषै कहैं है—

तित्थण्णवराउदुगं, तिण्णिवि अणसहिय तह य सत्तं च ।
हारचउक्के सहिया, ते चेव य होंति एयारा ॥३७४॥

तीर्थान्यतरायुर्दिकं, तिस्रः अपि अनसहिताः तथा च सत्त्वं च ।
आहारचतुष्केण सहिता, स्ताः चैव च भवंति एकादश ॥३७४॥

टीका – मिश्र विषै तीर्थंकर अर भुज्यमान, बध्यमान विना दोय आयु – इन तीन विना एक सौ पैंतालीसरूप प्रथम स्थान है । बहुरि तीन ए अर च्यारि अनंतानुबंधी अथवा आहारक-चतुष्क – इन सात विना एक सौ इकतालीसरूप दूसरा, तीसरा स्थान है । बहुरि तीन पूर्वोक्त, च्यारि अनतानुबंधी, आहारक-चतुष्क – इन ग्यारह विना एक सौ सैंतीस रूप चतुर्थ स्थान है – ऐसे बद्धायु के स्थान कहे । इन विषै एक-एक बध्यमान-आयु घटाए, अबद्धायु के स्थान हो हैं ॥३७४॥

आगें इन विषै भंग-संख्या कहैं हैं—

साणे पण इगि भंगा, बद्धस्सियरस्स चारि दो चेव ।
मिस्से पण पण भंगा, बद्धस्सियरस्स चउ चऊ णेया ॥३७५॥

साने पंच एको भंगा, बद्धस्येतरस्य चत्वारो द्वौ चैव ।
मिश्रे पंच पंच भंगा, बद्धस्येतरस्य चत्वारश्चत्वारो ज्ञेयाः ॥३७५॥

टीका – सासादन भंग विषै बद्धायुस्थान के पांच अर एक भंग है इतर अबद्धायुस्थान के च्यारि अर दोय भंग हैं । बहुरि मिश्र विषैं बद्धायुस्थान के पांच-पांच भग अर अबद्धायुस्थान के च्यारि-च्यारि भंग है । सोई कहिए है—

सासादन विषैं एक सौ इकतालीसरूप बद्धायुस्थान विषै च्यारि गति का बद्धायु जीवनि की अपेक्षा पूर्वोक्त प्रकार बारह भंगनि विषै समभंग पुनरुक्त भंग विना पांच भग जानने । बहुरि एक सौ चालीस प्रकृतिरूप अबद्धायुस्थान विषै भुज्यमान च्यारि आयु की अपेक्षा च्यारि भंग जानने । बहुरि एक सौ पैंतालीसरूप बद्धायुस्थान विषै आहारक-चतुष्क का बंध जाकै भया, तिस किसी को सासादन की प्राप्ति हो है । इस उपदेश की अपेक्षा एक भंग ही है ।

बहुरि एक सौ चवालीसरूप अबद्धायुस्थान विषै दोय भंग है । तहां भुज्यमान मनुष्यवाला उपशम-सम्यग्दृष्टि आहारक-चतुष्क का बंध करि मरि सासादन भया,

सो एक तौ यहु भंग । बहुरि पूर्वै देवायु का बध जाकै भया था, असा उपशम-सम्यग्दृष्टि आहारक-चतुष्क का बध करि मरि देव होइ सासादन भया, तहा भुज्यमान-देवायु का सत्त्व पाइए, सो यहु दूसरा भंग है । बहुरि मिश्र विषै बद्धायु के चारयो स्थानकनि विषैं पूर्वोक्त प्रकार बारह-भगनि मेंस्यों पच-पच भग जानने । अबद्धायु के चारयों-स्थानकनि विषैं भुज्यमान च्यारि-आयु की अपेक्षा च्यारि-च्यारि भंग जानने ।

इहां प्रश्न – जो मिश्र विषै अनतानुबंधी का सत्त्व कैसे न पाइए ?

ताकां समाधान – असंयतादिक च्यारि गुणस्थान विषै कही तीन करणकरि अनंतानुबधी का विसयोजन किया । बहुरि दर्शनमोहनी का क्षपणा करने कौं तो सन्मुख न भया अर संक्लेश परिणाम करि मिश्रमोहनी के उदय तै मिश्र-गुणस्थान-वर्ती भया, ताकै अनंतानुबधी का सत्त्व न पाइए है, नवीन बध तै सत्त्व होइ, सो नवीन-बंध का सासादन विषै ही व्युच्छेद हुआ है ।।३७५।।

आगे असंयत विषै चालीस-स्थाननि का प्रकार अर तिनके एक सौ वीस भग छह गाथानि करि कहै है—

दुग छक्क सत्त अट्ठं, णवरहियं तह य चउपंडि किच्चा ।
णभमिगि चउ पण हीणं, बद्धस्सियरस्स एगूणं ।।३७६।।

द्विकं षट्कं सप्त अष्ट, नवरहितं तथा च चतु पंक्तीः कृत्वा ।
नभं एकं चतुष्कं पंच हीनं, बद्धस्येतरस्यैकोनं ।।३७६।।

टीका – दोय, छह, सात, आठ, नव प्रकृतिनि करि रहित पच-स्थानक बरोबरि लिखने । बहुरि असै ही पच-पच - स्थाननि कौं च्यारि पंक्ति नीचै-नीचै लिखनी । तहां प्रथम पंक्ति पच-स्थानकनि विषै तौ शून्य घटावनी ते पांचौ-स्थानक ज्यौं के त्यौ सर्व प्रकृतिनि मेंस्यो दोय, छह, सात, आठ, नव प्रकृति रहित जानने । बहुरि दूसरी पंक्ति विषै एक-एक प्रकृति और घटावनी, ते पाचो-स्थानक सर्व प्रकृतिनि मेंस्यो तीन, सात, आठ, नव, दश प्रकृति रहित जानने । बहुरि तीसरी पंक्ति विषै च्यारि-च्यारि प्रकृति घटावनी । ते पाचो-स्थानक छह, दश, ग्यारह बारह, तेरह प्रकृति रहित जानने । बहुरि चौथी पंक्ति विषै पांच-पाच प्रकृति घटावनी, ते पांचो स्थानक सात, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह प्रकृति रहित जानने ।

इहां जहां दोय प्रकृति घटाईं, तहां एक सौ छियालीस की सत्तारूप स्थान जानना । छह घटाई तहां एक सौ बियालीस की सत्तारूप स्थान जानना । ऐसें जेती-जेती प्रकृति घटाईये, तितनी-तितनी एक सौ अडतालीस में स्यों घटाएं जेती रहे तितनी सत्तारूप स्थान जानना । सो ऐसें वद्धायु के वीस सत्तारूप स्थान भए । बहुरि जे वद्धायु के स्थानक वीस कहे थे, तिनमें जेती-जेती प्रकृतिनि की सत्ता कही थी, तिनमें वध्यमान-आयुरूप एक-एक प्रकृति और घटाएं जेती-जेती रहे, तितनी-तितनी सत्तारूप वीस स्थान अवद्धायु के जानने ।

सर्व मिलि असंयत विषें चालीस सत्ता-स्थान भए ।

असंयत विषें स्थान भंगनि का यंत्र । कोठेनि विषै ऊपरि प्रकृतिनि का प्रमाण, नीचे भंगनि का प्रमाण जाननां ।

बद्धायु का यन्त्रस्थान २० भंग ६० ।

ती० आ० सहित	१४६ २	१४२ २	१४१ २	१४० २	१३९ २
तीर्थ० रहित	१४५ ५	१४१ ५	१४० ३	१३९ ३	१३८ ४
आ० रहित	१४२ २	१३८ २	१३७ २	१३६ २	१३५ २
ती० आ० रहित	१४१ ५	१३७ ५	१३६ ३	१३५ ३	१३४ ४

अबद्धायु का यंत्रस्थान २० भंग ६०।

ती० आ० सहित	१४५ ३	१४१ ३	१४० १	१३६ ३	१३८ ३
तीर्थ० रहित	१४४ ४	१४० ४	१३६ १	१३८ ४	१३७ ४
आ० रहित	१४१ ३	१३७ ३	१३६ १	१३५ ३	१३४ ३
ती० आ० रहित	१४० ४	१३६ ४	१३५ १	१३४ ४	१३३ ४

आगे च्यार्यो पंक्ति विषै तीर्थंकर, आहारक की अपेक्षा विशेष है सो कहै है—

तित्थाहारे सहियं, तित्थूणं अह य हारचउहीणं।
तित्थाहारचउक्के णूणं इति चउपढिट्ठाणं ॥३७७॥

तीर्थाहारेण सहितं, तीर्थोनमथ चाहारचतुर्हीनं।
तीर्थाहारचतुष्कं, णोनमिति चतुःपंक्तिस्थानं ॥३७७॥

टीका – बद्धायु की अर अबद्धायु की पहिली दोय पंक्ति, तिनके पाच-पाच स्थान, ते तीर्थंकर अर आहारक-चतुष्क सहित जानने, तातै पहिली पंक्ति विषै शून्य घटाया। जेती की तेती ही प्रकृति तहा कही। बहुरि बद्धायु अर अबद्धायु की दूसरी दोय पंक्तिनि के पच-पच स्थान ते तीर्थंकर प्रकृति रहित जानने; तातै दूसरी पंक्ति विषैं एक-एक प्रकृति घटाई। बहुरि बद्धायु अर अबद्धायु की तीसरी दोय पंक्ति के पंच-पच स्थान ते आहारक-शरीर-अंगोपाग-बंधन-सघात रहित जानने; तातै तीसरी पंक्ति विषै च्यारि-च्यारि प्रकृति घटाई। बहुरि बद्धायु अर अबद्धायु की चौथी दोय पंक्ति के पंच-पच स्थान ते आहारक-चतुष्क अर तीर्थंकर रहित जानने, तातै चौथी पंक्ति विषै पाच-पांच प्रकृति घटाई।

ऐसे च्यारि पंक्तिरूप स्थान जानने ॥३७७॥

आगे एक पंक्ति विषै दोय छह ने आदि देकरि जे प्रकृति घटाई, तिनके नाम कहै है—

अण्णदरआउसहिया, तिरिगाऊ ते चा तह य अणसहिया।
मिच्छं मिस्सं सम्मं, कमेण खविदे हवे ठाणा ॥३७८॥

अन्यतरायु:सहितं, तिर्यगायुस्ते च तथा च अनसहिते ।
मिथ्यं मिश्रं सम्यक्त्वं, क्रमेण क्षपिते भवेत्स्थानं ।।३७८।।

टीका – तिर्यचायु अर एक कोई अन्य आयु – ए दोय तो प्रकृति जानना । बहुरि दोय तो ए अर अनतानुबंधी चतुष्क – ए छह जाननी । बहुरि मिथ्यात्वमोहनी सहित ते सात जाननी । मिश्रमोहनी सहित आठ जाननी । सम्यक्त्वमोहनी सहित ते नव जाननी, ऐसे घटाई जे प्रकृति ते जाननी ।

भावार्थ—बद्धायु का प्रथम-पक्ति का पहिला-स्थानक दोय आयु विना एक सौ छियालीस प्रकृतिरूप है । दूसरी पक्ति का पहिला स्थानक तीर्थंकर बिना एक सौ पैंतालीस-प्रकृति रूप है । तीसरी पंक्ति का पहिला-स्थानक आहारक-चतुष्क विना एक सौ ब्यालीस प्रकृतिरूप है चौथी पंक्ति का पहिला-स्थानक आहारक-चतुष्क, तीर्थंकर विना एक सौ इकतालीस प्रकृति रूप है । इनमें बध्यमान-आयु रूप एक-एक प्रकृति और घटाए अवद्धायु के च्यारि स्थानक हो है – ऐसे आठ स्थान भए ।

इन सबनि विषै अनंतानुबधी चतुष्क रूप च्यारि प्रकृति घटाए दूसरे आठ स्थान हो हैं । इन विषै भी मिथ्यात्व घटाए तीसरे आठ स्थान हो हैं । इन विषै भी भी मिश्रमोहनी घटाए चौथे आठ स्थान हो है । इन विषैं भी सम्यक्त्व-मोहनी घटाए पांचवे आठ स्थान हो है ।

ऐसे सर्व मिलि असंयत विषै चालीस सत्ता स्थान जानने ।।३७८।।

आगे इन विषै भग दोय गाथानि करि कहै हैं—

आदिमपंचट्ठाणे,[1] दुगदुगभंगा हवंति बद्धस्स ।
इयरस्सवि णादव्वा, तिगतिगइगि तिण्णितिण्णेव ।।३७९।।

आदिमपंचस्थाने, द्विकद्विकभंगौ भवतो बद्धस्य
इतरस्यापि ज्ञातव्या, त्रिकत्रिकैकं त्रयस्त्रय एव ।।३७९।।

टीका – पहिली पक्ति संबंधी वद्धायु के पत्र-स्थान तिन विषै दोय-दोय भग हैं । सो ए दश भग भए । वहुरि अवद्धायु के पंच-स्थानक, तिन विषैं अनुक्रम तै तीन तीन, एक, तीन, तीन भग हैं – सो ए तेरा भग भए ।।३७९।।

---

१ इसका शोधन पृष्ठ ३८६ पर देखें ।

बिदियस्सवि पणठाणे, पण पण तिग तिण्णि चारि बद्धस्स ।
इयरस्स होंति णेया, चउचउइगिचारि चत्तारि ॥३८०॥

द्वितीयस्यापि पंचस्थानं, पंच पंच त्रिकं त्रयश्चत्वारो बद्धस्य ।
इतरस्य भवंति ज्ञेया, चतुश्चतुरेकचत्वारश्चत्वारः ॥३८०॥

टीका – दूसरी पंक्ति सबधी बद्धायु के पंच-स्थान, तिन विषै अनुक्रम तै पाच, पांच, तीन, तीन, च्यारि – भग है – सो ए बीस भग भए। बहुरि अबद्धायु के पंच-स्थान तिन विषै अनुक्रम तै च्यारि, च्यारि, एक, च्यारि, च्यारि भग हैं – सो ए सतरह भंग भए ॥३८०॥

आदिल्लदससु सरिसा, भंगेण य तिदियदसयठाणाणि ।
बिदियस्स चउथस्स य, दसठाणाणि य समा होंति ॥३८१॥

गाथा ३७९ का कोष्टक ।

०	०२	०६	०७	०८	०९
ब	१४६ २	१४२ २	१४१ २	१४० २	१३९ २
अ	१४५ ३	१४१ ३	१४० १	१३९ ३	१३८ ३
ब	१४५ ५	१४१ ५	१४० ३	१३९ ३	१३८ ४
अ	१४४ ४	१४० ४	१३९ १	१३८ ४	१३७ ४
ब	१४२ २	१३८ २	१३७ २	१३६ २	१३५ २
अ	१४१ ३	१३७ ३	१३६ १	१३५ ३	१३४ ३
ब	१४१ ५	१३७ ५	१३६ ३	१३५ ३	१३४ ४
अ	१४० ४	१३६ ४	१३५ १	१३४ ४	१३३ ४

आद्यवशसु सदृशा, भंगेन च तृतीयदशकस्थानानि ।
द्वितीयस्य चतुर्थस्य च, दश स्थानानि च समानि भवंति ॥३८१॥

टीका – पहिली पंक्ति संबंधी पंच बद्धायु के अर पच अबद्धायु के जे दश स्थान तिन विषै जे भंग कहे । तिन ही के समान तीसरी पंक्ति के दश स्थान विषै भी भंग जानने ।

भावार्थ—तीसरी पंक्ति विषै प्रथम पंक्तिवत् बद्धायु के दश, अबद्धायु के तेरह भंग जानने । बहुरि दूसरी पंक्ति का अर चौथी पंक्ति का दश स्थाननि विषै भंग समान जानने ।

भावार्थ—चौथी पंक्ति विषै द्वितीय पंक्तिवत् बद्धायु के वीस अबद्धायु के सतरह भंग जानने ।

ऐसे सर्व मिलि असंयत विषै चालीस सत्ता स्थाननि विषै एक सौ बीस भंग भए । अब इनका भेद कहिए हैं—

बद्धायु असंयत सम्यग्दृष्टि के पहली पंक्ति संबंधी जे पंच स्थान ते तीर्थंकर प्रकृति सहित है अर तिर्यंच विषै तीर्थंकर सत्ता का अभाव है; तातै प्रथम पंक्ति का पहिला स्थान एक तो भुज्यमान वा बध्यमान-तिर्यंचायु अर एक कोई अन्य आयु – इन दोऊ विना एक सौ छियालीस प्रकृतिरूप है । तहां भुज्यमान-मनुष्यायु; बध्यमान-नरकायु १, भुज्यमान-मनुष्यायु, बध्यमान-देवायु २; भुज्यमान-नरकायु, बध्यमान-मनुष्यायु ३; भुज्यमान-देवायु, बध्यमान-मनुष्यायु ४; – ऐसे च्यारि भंग भए ।

इहां भुज्यमान-मनुष्यायु, बध्यमान-नरकायु अर भुज्यमान-नरकायु, बध्यमान-मनुष्यायु – इन दोऊ भंगनि विषैं प्रकृति समान है; तातै एक ही भंग ग्रह्या, अर भुज्यमान-मनुष्यायु, बध्यमान-देवायु अर भुज्यमान-देवायु, बध्यमान-मनुष्यायु इन दोऊनि विषै प्रकृति समान है; तातै एक ही भंग ग्रह्या – ऐसे दोय भंग जानने ।

बहुरि प्रथम पंक्ति के अनंतानुबंधी का जाकै विसंयोजन भया होइ, ताकै अनंतानुबंधी-च्यारि, तिर्यंचायु एक, अन्य कोऊ आयु – इन छह विना एक सौ बियालीस रूप दूसरा स्थान । बहुरि जाकै मिथ्यात्व-प्रकृति का क्षय भया होइ, ताकै एक सौ इकतालीस प्रकृतिरूप तीसरा स्थान । बहुरि जाकै मिश्रमोहनी का भी क्षय भया होइ, ताकै एक सौ चालीस प्रकृतिरूप चौथा स्थान । बहुरि जाकै सम्यक्त्व-मोहिनी का भी क्षय भया होइ, ताकै एक सौ गुणतालीस प्रकृतिरूप पांचवां स्थान ।

सो इन चारयों स्थानकनि विषै भुज्यमान-मनुष्यायु, बध्यमान-नरकायु १; भुज्यमान-मनुष्यायु, वध्यमान-देवायु – ए दोय-दोय भग जानने ।

वहुरि अवद्धायु के प्रथम पक्ति सवधी पच स्थान तिन विषै प्रथम स्थान एक सौ पैंतालीरा प्रकृतिरूप अर अनंतानुवधी का विसंयोजन भए दूसरा स्थान एक सौ इकतालीस प्रकृतिरूप इन दोऊ विषै भुज्यमान-नरकायु. मनुष्यायु-देवायु की अपेक्षा – तीन भंग है। वहुरि मिथ्यात्व का क्षय भए तीसरा स्थान एक सौ चालीस प्रकृतिरूप, तहां भुज्यमान-मनुष्यायु – ऐसा एक ही भंग है। बहुरि मिश्रमोहनी का क्षय भएं एक सौ गुणतालीसरूप चौथा स्थान, तहां भुज्यमान-नरकायु, मनुष्यायु-दे वायु की अपेक्षा – तीन भंग है, जातै कृतकृत्य-वेदक-सम्यग्दृष्टि तीर्थकर सत्तावाला मनुष्य मरि नरक, देवगति विषै उपजै; तहां नरक, देवगति विषै भी ऐसी सत्ता पाइए।

वहुरि सम्यक्त्व-मोहनी का अभाव भए एक सौ अठतीस की सत्तारूप पांचवा-स्थान, तहां भी भुज्यमान-मनुष्यायु, देवायु, नरकायु की अपेक्षा तीन भंग पाइए।

तहां मनुष्यायु सहित एक सौ अडतीस सत्तास्थान वाला जो यहु क्षायिक-सम्यग्दृष्टि, सो तिस ही भव विषै जो घातिया-कर्म नाशि केवली होइ, तौ इस जीव के गर्भ-कल्याण, जन्माभिषेक-कल्याण न होइ, तप आदि तीन ही कल्याण होंइ। वहुरि जो तीसरा-भव विषै घातिकर्म का नाश करै तौ नियम करि देवायु ही कौं वांधै, तहां देवपर्याय विषै देवायुसहित एक सौ अडतीस सत्त्व पाइए, तिसके छह-महीना अवशेष रहै मनुष्यायु का बंध होइ, अर पंच-कल्याण ताकै होंइ।

बहुरि जाकै मिथ्यादृष्टि विषै नरकायु का बंध भया था अर तीर्थंकर का सत्त्व होइ तौ वह जीव नरक-पृथ्वी विषै उपजै, तहा नरकायु सहित एक सौ अठतीस सत्त्व पाइए। तिसकै छह महीना आयु का अवशेष रहे मनुष्यायु का बंध होइ अर नारक-उपसर्ग का निवारण होइ अर गर्भ कल्याणादिक होइ।

वहुरि दूसरी पंक्ति संबंधी बद्धायु के पचस्थान तिन विषै भुज्यमान, बध्यमान बिना दोय आयु अर तीर्थंकर – इन बिना एक सौ पैंतालीस प्रकृतिरूप प्रथम स्थान है और अननानुबधी का विसयोजन भए एक सौ इकतालीस प्रकृति रूप दूसरा स्थान है। इन दोऊनि विषै मिथ्यादृष्टि गुणस्थान विषै एक सौ पैंतालीस का सत्त्व स्थान विषै जैसे च्यार्यो गति सबधी बारह भंगनि विषै समभग, पुनरुक्त भग विना पच भग कहे थे, तैसैं पच-पच भग जानने ।

वहुरि मिथ्यात्व का क्षय भए एक सौ चालीस प्रकृतिरूप तीसरा स्थान है, तहां भुज्यमान-मनुष्यायु अर वध्यमान-नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, देवायु भेद तैं च्यारि भंग हो हैं। तहां भुज्यमान-मनुष्यायु, वध्यमान-मनुष्यायु – यहु भंग पुनरुक्त है, जातैं एक ही प्रकृति है – सो इस विना तीन भंग जानने। वहुरि मिश्र-मोहनीय का क्षय भए एक सौ गुणतालीस प्रकृतिरूप चौथा स्थान है तहां भी तैसै ही तीन भंग जानने।

वहुरि सम्यक्त्व-मोहनीय का क्षय भए एक सौ अठतीस प्रकृतिरूप पांचवां स्थान है। तहां भुज्यमान-नरकायु, वध्यमान-मनुष्यायु १; भुज्यमान-तिर्यंचायु, वध्यमान-देवायु २; भुज्यमान-मनुष्यायु, वध्यमान-नरकायु ३; भुज्यमान-मनुष्यायु, वध्यमान-तिर्यंचायु ४; भुज्यमान-मनुष्यायु, वध्यमान-मनुष्यायु ५, भुज्यमान-मनुष्यायु, वध्यमान-देवायु ६, भुज्यमान-देवायु, वध्यमान-मनुष्यायु ७ – इन सात भंगनि विषै पांचवां-भंग तौ पुनरुक्त है, जातै एक मनुष्यायु ही है अर पहिला-भंग, तीसरा-भंग समान है अर सातवां-भंग, छठा-भंग समान है, जातै प्रकृतिनि की समानता पाइए है। सो ऐसे तीन-भंग विना च्यारि भंग जानने। च्यारचों गति संवंधी वारह भंग पूर्वै कहे थे, तिन विषै इहां पंच भंग संभवै नाहीं; तातै सात ही कहे।

वहुरि दूसरी पंक्ति संवंधी अवद्धायु के पंच-स्थान तिन विषै भुज्यमान-आयु विना तीन-आयु अर तीर्थंकर विना एक सौ चवालीस प्रकृति रूप पहिला स्थान है अर अनंतानुवंधी का विसंयोजन भए एक सौ चालीस प्रकृतिरूप दूसरा-स्थान है। इन दोऊनि विषै भुज्यमान च्यारि आयु की अपेक्षा च्यारि-च्यारि भंग हैं।

वहुरि मिथ्यात्व का क्षय भएं एक सौ गुणतालीसरूप तीसरा स्थान है। तहां भुज्यमान-मनुष्यायु विना और भंग का अभाव है; तातै एक ही भंग है। वहुरि मिश्र-मोहनी का क्षय भए एक सौ अठतीस प्रकृतिरूप चौथा स्थान है। तहां भुज्यमान-मनुष्यायु अर कृतकृत्य-वेदक-सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा भुज्यमान-नरकायु, तिर्यचायु, देवायु – ऐसै च्यारि भंग हैं। वहुरि सम्यक्त्वमोहनी का क्षय भए क्षायिक-सम्यग्दृष्टि के एक सौ सैंतीस प्रकृतिरूप पांचवां-स्थान है। तहां भुज्यमान च्यारि आयु की अपेक्षा च्यारि-भंग हैं।

वहुरि तीसरी पंक्ति विषै पहिली पंक्ति का वद्धायु-अवद्धायुरूप दश-स्थानकनि विषैं आहारक-चतुष्क रूप च्यारि-च्यारि प्रकृति घटाए दश स्थान होइ तहां प्रथम पंक्तिवत् तेईस भंग जानने।

बहुरि चौथी पंक्ति विषै दूसरी पक्ति का बद्धायु-अबद्धायुरूप दश स्थानकनि विषै आहारक-चतुष्करूप च्यारि-च्यारि प्रकृति घटाए दश स्थान होइ । तहां द्वितीय पंक्तिवत् सैंतीस भंग जानने ।

ऐसें सर्व मिलि असंयत विषै चालीस सत्त्व-स्थाननि विषै एकसौ बीस भंग हैं ॥३०१॥

देसतियेसुवि एवं, भंगा एक्केक्क देसगस्स पुणो ।
पडिरासि बिदियतुरियस्सादीबिदियम्मि दो भंगा ॥३८२॥

देशत्रयेष्वपि एवं भंगा एकैकं देशकस्य पुनः ।
प्रतिराशि द्वितीयचतुर्थस्यादिद्वितीयस्मिन् द्वौ भंगौ ॥३८२॥

टीका – देशसंयत, प्रमत्त, अप्रमत्त - इन तीन गुणस्थाननि विषै ऐसें ही असंयतवत् चालीस-चालीस स्थान जानने । तहां सर्व-स्थानकनि विषै एक-एक भंग जानना । विशेष इतना – जो देशसंयत विषै बद्धायु-अबद्धायु की दूसरी दोय पंक्ति अर चौथी दोयपंक्ति, तिनके पहिला अर दूसरा स्थान विषै दोय-दोय भंग हैं । सोई कहिए है—

देशसंयतादिक तीन गुणस्थाननि विषै भी असंयतवत् दोय, छह, सात, आठ, नव प्रकृति रहित पच-स्थान बरोबरि लिखि, तिनके नीचै-नीचै च्यारि पक्ति बद्धायु की करनी । अर तिनके नीचै बध्यमान एक-एक आयु घटाइ च्यारि पंक्ति अबद्धायु की करनी । तिन पंक्तिनि विषै पहिली पक्ति तीर्थंकर, आहारक सहित है; तातै शून्य घटावना । दूसरी पंक्ति विषै तीर्थंकर प्रकृति घटावनी । तीसरी पक्ति विषै तीर्थंकर मिलाइ, आहारक-चतुष्क घटावना । चौथी पक्ति विषै तीर्थंकर, आहारक चतुष्क घटावना ।

ऐसै बद्धायु-अबद्धायु की आठ पंक्तिनि के चालीस स्थान भए, तहां जे बद्धायु के बीस स्थान है, तहा भुज्यमान-मनुष्यायु, बध्यमान-देवायु ऐसा एक-एक ही भंग है, जातै और तीन-आयु का बध भएं देशव्रत-महाव्रत न होंइ ।

अर अबद्धायु के बीस स्थान है, तहा भुज्यमान-मनुष्यायु ऐसा एक-एक ही भग है । तहां इतना विशेष है – जो देशसंयत विषै तीर्थंकर रहित दूसरी पक्ति के दश स्थाननि विषै और चौथी पंक्ति के दश स्थाननि विषै पहिला अर दूसरा स्थान

विषै दोय-दोय भंग है । तहां बद्धायु का दूसरी, चौथी पक्ति का पहिला, दूसरा स्थान विषै तो भुज्यमान मनुष्यायु, बध्यमान-देवायु १, भुज्यमान-तिर्यचायु, बध्यमान देवायु १ – ऐसै दोय-दोय भग है ।

बहुरि अबद्धायु का दूसरी-चौथी पंक्ति का पहिला-दूसरा स्थान विषै भुज्यमान मनुष्यायु, भुज्यमान-तिर्यचायु – ऐसै दोय-दोय भंग है ।

ऐसै देशसंयत विषै चालीस स्थाननि के अठतालीस भंग है ।

प्रमत्त, अप्रमत्त विषै चालीस-चालीस स्थाननि के चालीस-चालीस भंग हैं ॥३८२॥

आगै उपशम श्रेणी संबंधी च्यारि गुणस्थाननि विषै स्थान-भंग कह्या चाहै हैं, तहां प्रथम अपूर्वकरण विषै कहै हैं—

दुगछक्कतिण्णिवग्गे, णूणापुव्वस्स चउपडिं किच्चा ।
णभमिगिचऊपणहीणं, बद्धस्सियरस्स एगूणं ॥३८३॥

द्विकषट्कत्रिवर्गेणोनानि अपूर्वस्य चतुःप्रति कृत्वा ।
नभएकचतुः पंचहीनं, बद्धस्येतरस्यैकोनं ॥३८३॥

टीका – उपशमक अपूर्वकरण विषैं दोय, छह, तीन का वर्ग नव इन प्रकृतिनि करि रहित तीन स्थान, तिनकी च्यारि पंक्ति करनी । पूर्ववत् प्रथम पक्ति विषैं शून्य घटावना । दूजी पंक्ति विषै तीर्थंकर एक प्रकृति घटावनी । तीजी पंक्ति विषै आहारक-चतुष्क घटावना । चौथी पंक्ति विषै तीर्थंकर, आहारक-चतुष्क – ए पांच प्रकृति घटावनी ।

ऐसै बद्धायु के बारह स्थान भए, अर अबद्धायु के च्यारचों पंक्ति विषै सर्व स्थाननि विषै अपने-अपने नीचे एक-एक बध्यमान आयु घटाएं बारह स्थान हो है ।

ऐसै आठ पक्तिनि के प्रत्येक तीन-तीन स्थान होंइ सर्व चौईस स्थान हो हैं । ॥३८३॥

आगै घटाई जे प्रकृति तिनके नाम अर स्थाननि विषै भग कहै है—

णिरयतिरियाउ दोण्णिवि, पढमकसायाणि दंसणतियाणि ।
हीणा एदे णेया, भंगे एक्केक्कगा होंति ॥३८४॥

निरयतिर्यगायुषी द्वे अपि, प्रथमकषाया दर्शनत्रीणि ।
हीनानि एतानि ज्ञेयानि, भंगा एकैकका भवंति ।।३८४।।

टीका – नरकायु, तिर्यंचायु – ए दोय प्रकृति घटाएं एक सौ छियालीस रूप प्रथम स्थान है । बहुरि दोय तौ ए अर अनंतानुबंधी का चतुष्क – ए छह प्रकृति घटाएं एक सौ बियालीस रूप दूसरा स्थान है । बहुरि छह तो ए अर तीन दर्शनमोह – ए नव घटाए एक सौ गुणतालीस रूप तीसरा स्थान है । इन तीनों स्थानकनि की च्यारि पंक्ति करनी ।

तहां प्रथम पंक्ति विषै तो इतनी-इतनी प्रकृति रूप ही तीन स्थान जानने । दूजी पंक्ति विषै तीर्थंकर एक-एक प्रकृति घाटि तीन स्थान जानने । तीजी पंक्ति विषै आहारक-चतुष्क रूप च्यारि-च्यारि प्रकृति घाटि तीन-स्थान प्रकृति घाटि तीन-स्थान जानने । तीजी-पंक्ति विषै आहारक-चतुष्क तीर्थंकर इन पंच-पंच प्रकृति घाटि तीन स्थान जानने ।

ऐसे ए बारह स्थान बद्धायु के भए ।

इन सबनि विषै बध्यमान आयु एक-एक घटाए अबद्धायु के बारह स्थान हो है । सो इन चौबीसो स्थानकनि विषै भंग एक-एक ही है । तहा बद्धायु स्थानकनि विषै तौ भुज्यमान-मनुष्यायु, बध्यमान देवायु ऐसा ही एक भंग जानना अर अबद्धायु स्थाननि विषै भुज्यमान-मनुष्यायु ऐसा ही एक भंग जानना ।

ऐसें उपशमक-अपूर्वकरण विषै स्थान चौईस है अर भंग भी चौईस है ।।३८४।।

एवं तिसु उवसमगे, खवगापुव्वम्मि दसहिं परिहीणं ।
सव्वं चउपडि किच्चा, णभमेक्कं चारि पण हीणं ।।३८५।।

एवं त्रिषु उपशमकेषु, क्षपकापूर्वे दशभिः परिहीनं ।
सर्वं चतुः प्रतिकं कृत्वा, नभमेकं चत्वारि पंच हीनं ।।३८५।।

टीका – ऐसे ही उपशमक-अपूर्वकरणवत् उपशमक-अनिवृत्तिकरण, उपशमकसूक्ष्मसांपराय, उपशांत मोह इन तीनो विषै भी स्थान वा भंग चौईस-चौईस जानने । बहुरि क्षपक अपूर्वकरण विषै भुज्यमान-मनुष्यायु बिना तीन आयु, अनंतानुबंधी चतुष्क, दर्शनमोह तीन – इन दश करि रहित एकसौ अठतीस प्रकृति रूप

एक सत्त्वस्थान की च्यारि पंक्ति करनी। तहां पूर्ववत् पहिली पंक्ति विषैं तौ शून्य, दूसरी पंक्ति विषैं तीर्थंकर, तीसरी पंक्ति विषैं आहारक चतुष्क, चौथी पंक्ति विषैं तीर्थंकर, आहारक-चतुष्क घटाएं एकसौ अठतीस, एक सौ सैंतीस, एकसौ चौंतीस, एक सौ तैंतीस प्रकृति रूप च्यारि स्थान हो हैं। इन विषैं भुज्यमान-मनुष्यायु असैं एक-एक ही भंग है, तातैं भंग भी च्यारि ही है ।।३८५।।

एदे सत्तट्ठाणा, अणियट्टिस्सवि पुणोवि खविदेवि।
सोलस अट्ठेक्केक्कं, छक्केव एक्कमेक्क तहा ।।३८६।।

एतानि सत्त्वस्थानानि, अनिवृत्तेरपि पुनरपि क्षपितेऽपि।
षोडशाष्टैकैकं, षट्कैकमेकमेकं तथा ।।३८६।।

टीका – ए क्षपक अपूर्वकरण विषै जे च्यारि स्थान कहे ते क्षपक अनिवृत्तिकरण विषै भी पाइए है। बहुरि अनिवृत्तिकरण विषै अनुक्रमतै पूर्वोक्त सोलह, आठ, एक, एक, छह, एक, एक, एक प्रकृति खिपावै है; तातै एकसौ बाईस, एकसौ चौदह, एकसौ तेरह, एकसौ बारह, एकसौ छह, एकसौ पांच, एकसौ च्यारि, एकसौ तीन प्रकृतिरूप आठ स्थान हो है।

तिनकी च्यारि पक्ति करि प्रथम पंक्ति विषै शून्य घटावना। द्वितीय पंक्ति विषै तीर्थंकर घटावनी। तीसरी पंक्ति विषै आहारक-चतुष्क घटावना। चौथी पक्ति विषै तीर्थंकर, आहारक-चतुष्क घटावना। असै च्यारचों पक्ति विषै बत्तीस स्थान भए अर च्यारि अपूर्वकरणवत् स्थान कहे थे, सब मिलि क्षपक-अनिवृत्तिकरण विषै छत्तीस स्थान भए ।।३८६।।

आगे इन विषै भंग दोय गाथानि करि कहै हैं—

भंगा एक्केक्का पुण, णउंसयक्खविदचउसु ठाणेसु।
बिदियतुरियेसु दो दो, भंगा तित्थयरहीणेसु ।।३८७।।

भंगाः एकैकः पुन, नपुंसकक्षपितचतुर्षु स्थानेषु।
द्वितीयतुरीययोर्द्वौ द्वौ, भंगौ तीर्थंकरहीनयोः ।।३८७।।

टीका – ए क्षपक-अनिवृत्तिकरण के छत्तीस स्थान, तिन विषै एक-एक भग है। तहा इतना विशेष–जो नपुंसक वेद का जहां क्षय कह्या, असे च्यारी पंक्ति संबंधी

च्यारी स्थान, तिन विषें तीर्थंकर सत्त्व रहित पहिली (?) वा चौथी पक्ति संबंधी जे दोय स्थान तिन विषे दोय दोय भंग है ।।३८७।।

सोई कहिए है—

थीपुरिसोदयचडिदे, पुव्वं संढं खवेदि थी अत्थि ।
संढस्सुदये पुव्वं, थीखविदं संढमत्थित्ति ।।३८८।।

स्त्रीपुरुषोदयचटिते, पूर्वं षंढं क्षपयति स्त्री अस्ति ।
षंढस्योदये पूर्व, स्त्रीक्षपितं षंढमस्तीति ।।३८८।।

टीका – जे जीव स्त्री वा पुरुष-वेद का उदय सहित क्षपक श्रेणी चढै है, ते पहिलै नपुसक वेद कौ खिपावै है । तिनकै तो पूर्वोक्त दोऊ स्थानकनि विषै स्त्री-वेद का सत्त्व पाइए है । बहुरि नपुसक-वेद का उदय सहित क्षपक-श्रेणी चढै है, ते पूर्वै स्त्री वेद कौ खिपावै है, तिसकै पूर्वोक्त दोऊ स्थानकनि विषै नपुसक-वेद का सत्त्व पाइए है । असै दोय स्थानकनि विषै दोय-दोय भंग हैं ।

असै क्षपक के छत्तीस-स्थानकनि के अठतीस-भग भए, अर चौईस उपशमक के थे, सब मिलि अनिवृत्तिकरण विषै बासठि भग भए ।

इस पक्षविषै माया का सत्त्व रहित च्यारि पक्ति का च्यारि स्थान कहे है । **'चदुसेक्के बादरे'** इत्यादि गाथा आगै कहैगे । तिस पक्षकरि ते च्यारि स्थान पाइए है, सो कथन आगै करैगे ।।३८८।।

आगें क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय अर क्षीणकषाय विषै कहै है—

अणियट्टिचरिमठाणा, चत्तारिवि एक्कहीण सुहुमस्स ।
ते इगिदोण्णिविहीणं, खीणस्सवि होंति ठाणाणि ।।३८९।।

अनिवृत्तिचरमस्थानानि, चत्वार्यपि एकहीनं सूक्ष्मस्य ।
तानि एकद्विविहीनं, क्षीणस्यापि भवंति स्थानानि ।।३८९।।

टीका – क्षपक-अनिवृत्तिकरण विषै संज्वलन-मान रहित एकसौ तीन प्रकृतिरूप स्थान कह्या था । ताकी च्यारि पंक्ति विषै शून्य, एक, च्यारि, पांच घटावनेतै च्यारि स्थान कहे थे । इन च्यारचों विषै सज्वलन माया घटाइये, तव एकसौ दोय, एकसौ एक, अठ्याणवै, सत्याणवै, प्रकृतिरूप, च्यारि-स्थान क्षपक-सूक्ष्म

सांपराय के हो हैं। बहुरि इन च्यारों स्थाननि विषै संज्वलन-लोभ घटाइए, तव एकसौ एक, एकसौ, सत्याणवै, छिनवे प्रकृतिरूप क्षीणकषाय का अंत का दोय-समय अवशेष रहै, तहां पर्यंत च्यारि स्थान है, अर इन च्यारयों-स्थाननि विषै निद्रा-प्रचला ए दोय घटाइए, तब निन्याणवै, अठ्याणवै, पच्याणवै, चौराणवै प्रकृतिरूप क्षीणकषाय का अंत समय विषैं च्यारि स्थान हो है ॥३८९॥

आंगें सयोगी-अयोगी विषै कहै हैं—

ते चोद्दसपरिहीणा, जोगिस्स अजोगिचरिमगेवि पुणो ।
बावत्तरिमडसट्ठिं, दुसु दुसु हीणेसु दुगदुगा भंगा ॥३९०॥

तानि चतुर्दशपरिहीनानि, योगिन अयोगिचरमकेऽपि पुनः ।
द्वासप्ततिरष्टषष्टिः, द्वयोर्दयो, हीनयोः द्विकद्विकौ भंगा ॥३९०॥

टीका – ते क्षीणकपाय का अंत समय संवंधी च्यारि-च्यारि स्थान, तिन विषैं ज्ञानावरण पांच, दर्शनावरण च्यारि, अंतराय पांच – ए चौदह प्रकृति घटाए पिच्यासी, चौरासी, इक्यासी, असी प्रकृतिरूप सयोगी अर अयोगी का अंत का दोय समय अवशेप रहै, तहा पर्यंत च्यारि स्थान पाइए है। बहुरि तिन विपै पहिला, दूसरा स्थान विपै तौ सामान्य-सत्ता विपै कही बहत्तरि प्रकृति, ते घटाइए, तव तेरह वा बारह प्रकृतिरूप दोय-स्थान होई, अर तीसरा, चौथा विषै आहारक-चतुष्क विना अडसठि प्रकृति घटाइए, तव तेरह वा वारह प्रकृतिरूप दोय स्थान होइ।

इन चारयों स्थानकनि विषै तेरह-तेरह का स्थान दोय वार कहे, तातैं पुनरुक्त भया; तातैं एक स्थान ही ग्रहण करना। अैसे ही एक वारह का स्थान अंगीकार करना। अैसैं अयोगी का अंत-समय विपै दोय स्थान पाइए, तहां जाकै साता-वेदनी का उदय पाइए, ताकै साता ही का सत्त्व है अर असाता का सत्त्व नाहीं, अर जाकैं असाता का उदय पाइए, ताकै असाता हो का सत्त्व है, साता का सत्त्व नाही; तातै तिन दोऊ स्थानकनि विषै साता-असाता प्रकृति बदलने तै दोय-दोय भंग जानने।

अैसे गुणस्थाननि विषैं सत्त्व-स्थान भंग सहित कहे ॥३९०॥

आगे 'दुगछक्कतिण्णिवग्गे' इत्यादि गाथा करि पूर्वं अनंतानुवंधी सहित आठ स्थान उपशम श्रेणी वालों के कहे, ते अपने पक्ष विषैं नाही है, इत्यादि विशेष वा तिनके भंग-संख्यानि कौं च्यारि गाथानि करि कहै हैं—

णत्थि अणं उवसमगे, खवगापुव्वं खवित्तु अट्ठा य।
पच्छा सोलादीणं, खवणं इदि केइं णिद्दिट्ठं ॥३९१॥

नास्ति अनमुपशमके, क्षपकापूर्वं क्षपयित्वा अष्टौ च ।
पश्चात् षोडशादीनां, क्षपणमिति कैर्निर्दिष्टं ॥३९१॥

टीका – श्रीकनकनंदि सिद्धांतचक्रवर्ती तिनका संप्रदाय विषै असें कहैं है–जो उपशम का च्यारि गुणस्थाननि विषै अनतानुबंधी का सत्त्व सहित एकसौ छियालीस का सत्त्व नै आदि देकरि बद्धायु, अबद्धायु की च्यारि पक्तिनि विषै आठ स्थान कहे ते नाही है; तातै चौबीस स्थान कहे थे, ते सोला ही स्थान है ।

बहुरि क्षपक-अनिवृत्तिकरण वाले पहिली तौ अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान कषायरूप आठ प्रकृति खिपावैं है, पीछै सोलह आदि प्रकृतिनि कौ खिपावै है, असें केई आचार्यनि करि कहिए ॥३९१॥

अणियटिट्गुणट्ठाणे, मायारहिदं च ठाणमिच्छंति ।
ठाणा भंगपमाणा, केई एवं परूवेंति ॥३९२॥

अनिवृत्तिगुणस्थाने, मायारहितं च स्थानमिच्छंति ।
स्थानानि भंगप्रमाणानि, केचिदेवं प्ररूपयंति ॥३९२॥

टीका – अनिवृतिकरण गुणस्थान विषै माया-कषाय रहित च्यारि स्थान केई आचार्य कहै है । इसप्रकार केई आचार्य स्थान वा भगनि का प्रमाण प्ररूपण करै है ॥३९२॥

असें होतें स्थाननि की अर भंगनि की सख्या कहा, सो कहै हैं—

अट्ठारह चउ अट्ठं, मिच्छतिये उवरि चाल चउठाणे ।
तिसु उवसमगे संते, सोलस सोलस हवे ठाणा ॥३९३॥

अष्टादश चत्वारि अष्ट, मिथ्यत्रये उपरि चत्वारिंशत् चतुःस्थानानि ।
त्रिषु उपशमके शांते, षोडश भवंति स्थानानि ॥३९३॥

टीका – मिथ्यादृष्टयादिक तीन गुणस्थाननि विषै क्रम तै पूर्वोक्त प्रकार अठारह, च्यारि, आठ स्थान है । बहुरि उपरि असंयतादिक च्यारि गुणस्थाननि विषै

भी पूर्वोक्त चालीस-चालीस स्थान हैं। बहुरि उपशमक-अपूर्वकरणादिक तीन अर उपशांत मोह इन विषै अनंतानुबंधी सत्त्व रहित बद्धायु, अबद्धायु संबंधी च्यारि पंक्तिनि के आठ-आठ स्थान हैं; तातैं सोलह-सोलह स्थान ही हैं। बहुरि क्षपक-अपूर्वकरण विषैं पूर्वोक्त च्यारि स्थान हैं। बहुरि क्षपक-अनिवृत्तिकरण विषै छत्तीस स्थान तौ पूर्वोक्त अर संज्वलन माया रहित च्यारि स्थान जे सूक्ष्मसांपराय विषै कहे थे, ते अनिवृत्तिकरण विषै ही कहिए अैसे चालीस-स्थान हैं। बहुरि क्षपक-सूक्ष्मसांपराय विषैं च्यारि, क्षीणकषाय विषैं आठ, सयोगी विषै च्यारि, अयोगी विषै छह पूर्वोक्त स्थान जानने ॥३९३॥

पण्णेकारं छक्कदि, वीससयं अट्ठदाल दुसु तालं।
वीसडतिण्णं वीसं, सोलट्ठ य चारि अट्ठेव ॥३९४॥

पंचाशदेकादश षट्कृतिः, विंशशतमष्टचत्वारिंशत् द्वयोश्चत्वारिंशत्।
विंशाष्टत्रिंशत् विंशं, षोडशाष्ट च चत्वारः अष्टैव ॥३९४॥

टीका – तिन स्थाननि के भंग पूर्वोक्त प्रकार मिथ्यादृष्टि विषैं पचास, बहुरि सासादन विषैं बारह, तिनमें बद्धायुस्थान विषैं देव-अपर्याप्तक भेद दूर कीजिए, तब ग्यारह भंग होंइ।

इहां जाकैं देवायु बंध भया, अैसा द्वितीयोपशम-सम्यग्दृष्टि जीव, ताका सासादन विषैं मरण नाहीं, अैसें केई आचार्य कहे हैं, तिनकी अपेक्षा ग्यारह ही भंग हैं।

बहुरि मिश्र विषै छत्तीस, असंयत विषैं एकसौ वीस, देशसंयत विषैं अठतालीस, सप्रमत्त-अप्रमत्त विषैं चालीस-चालीस, अपूर्वकरण विषैं उपशमक विषैं सोलह, स्थान कहे; तातैं सोलह अर क्षपक विषै च्यारि अैसा सर्व वीस। अनिवृत्तिकरण विषै उपशमक विषैं सोलह, क्षपक विषैं पूर्वोक्त छत्तीस-स्थाननि के नपुंसकवेद क्षपणा का च्यारि स्थाननि विषै तीर्थंकर रहित दूसरा, चौथा स्थान विषै स्त्री-नपुंसकवेद; बदलनें तैं दोय-दोय भंग भए, तातैं अठतीस अर मायारहित च्यारि स्थाननि के च्यारि भंग एवं बियालीस मिलिकरि सर्व अठावन।

बहुरि सूक्ष्म-सांपराय विषैं उपशमक विषैं सोलह, क्षपक विषैं च्यारि मिलि करि सर्व वीस। बहुरि उपशांत-कषाय विषै सोलह, क्षीणकषाय विषैं आठ स्थाननि के आठ, सयोगी विषै च्यारि, अयोगी विषै छह स्थाननि के आठ अैसें भंग जानना।

प्रत्यक्ष केवली, श्रुतकेवली के अभाव तैं एक निश्चय होता नाही, तातैं यहां अनेक प्रकार कथन कीया है ॥३९४॥

एवं सत्तट्ठाणं, सवित्थरं वण्णियं मए सम्मं ।
जो पढइ सुणइ भावइ, सो पावइ णिव्वुदिं सोक्खं ॥३९५॥

एवं सत्त्वस्थानं, सविस्तरं वर्णितं मया सम्यक् ।
यः पठति शृणोति भावयति स प्राप्नोति निर्वृतिं सौख्यं ॥३९५॥

टीका – असैं सत्त्व-स्थान विस्तार सहित मैं वर्णन कीया है । सम्यक् प्रकार जो पढै, सुनै, भावै सो निर्वाणसुख कौ प्राप्त हो है ॥३९५॥

वरइंदणंदिगुरुणो, पासे सोऊण सयलसिद्धंतं ।
सिरिकणयणंदिगुरुणा, सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं ॥३९६॥

वरेंद्रनंदिगुरोः, पार्श्वे श्रुत्वा सकलसिद्धांतं ।
श्रीकनकनंदिगुरुणा, सत्त्वस्थानं समुद्दिष्टं ॥३९६॥

टीका – आचार्यनि में प्रधान ऐसे श्रीमत् इंद्रनंदी नामा भट्टारक, ताके पास सकल-सिद्धांत कौ सुणि करि श्री 'कनकनंदी' नामा सिद्धांतचक्रवर्ती करि यहु सत्त्व-स्थान सम्यक् प्रकार प्ररूपण कीया है ॥३९६॥

जह चक्केण य चक्की, छक्खंडं साहियं अविग्घेण ।
तह मइचक्केण मया, छक्खंडं साहियं सम्मं ॥३९७॥

यथा चक्रेण च चक्रिणा, षट्खंडं साधितमविघ्नेन ।
तथा मतिचक्रेण मया, षट्खंडं साधितं सम्यक् ॥३९७॥

टीका – जैसें चक्रकरि चक्रवर्ती छह-खंड क्षेत्र निर्विघ्नपनैं करि साध्या, तैसैं मैं मतिरूपी चक्रकरि जीवस्थान, क्षुद्रक- बंध, बंधस्वामी, वेदनाखंड, वर्गणाखंड, महाबंध भेद लीए षट्रूप-सिद्धांत-शास्त्र भले प्रकार करि साध्या है ॥३९७॥

इति आचार्य श्रीनेमिचन्द्रविरचित गोम्मटसार द्वितीय नामा पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्व-प्रदीपिका नाम संस्कृतटीका के अनुसारि इस सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा भाषाटीका विषै कर्मकांड विषै कनकनंदि आचार्यकृत सत्त्वस्थानभंगप्ररूपण नामा तीसरा अधिकार संपूर्ण भया ॥३॥

अथ त्रिचूलिका अधिकार ॥४॥

दोहा—तीन भवन चूडारतन, सम श्री जिनके पाय ।
नमत पाइए आप पद, सबविधि बंध नसाय ॥४॥

असहाय जिणवरिंदे, असहायपरक्कमे महावीरे ।
पणमिय सिरसा वोच्छं, तिचूलियं सुणह एयमणा ॥३६८॥

असहायजिनवरेंद्रानसहायपराक्रमान् महावीरान् ।
प्रणम्य शिरसा वक्ष्यामि, त्रिचूलिकं शृणुतैकमनसः ॥३९८॥

टीका – इंद्रियादिक का सहाय रहित है ज्ञानादि शक्तिरूप पराक्रम जिनि का असे महावीर गुरु अर वृषभादिक जिनवरेंद्र तीर्थंकर तीनकौं मस्तक नमाय-नस्कार करि नवप्रश्न, पंचभागहार, दशकरण नाम कौ लीए त्रिचूलिका-अधिकार कहोंगा, सो तुम एकाग्रचित्त होतै सते सुणो ।

चूलिका कहा कहिए ? जो अर्थ कह्या वा न कह्या वा विशिष्टरूप न कह्या ताका जो चिंतवन सो चूलिका कहिए । सो इस अधिकार विषै तीन-चूलिका का व्याख्या है, तातैं त्रिचूलिका कहिए ॥३९८॥

तहां प्रथम ही नवप्रश्नचूलिका कौं कहै है—

किं बंधो उदयादो, पुव्वं पच्छा समं विणस्सदि सो ।
सपरोभयोदयो वा, णिरंतरो सांतरो उभयो ॥३६६॥

को बंधो उदयात्पूर्वं पश्चात् समं विनश्यति सः ।
स्वपरोभयोदयो वा, निरंतरः सांतर उभयः ॥३९९॥

टीका – पूर्वै जो प्रकृति कहीं, तिन विषैं उदय की व्युच्छिति के पहिलें बंध की व्युच्छित्ति कौन प्रकृतिनि की हो है ? बहुरि उदय की व्युच्छित्ति के पीछे बंध की व्युच्छित्ति कौन प्रकृतिनि की हो है ? बहुरि उदय-व्युच्छित्ति की साथि युगपत् बंध की व्युच्छित्ति कौन प्रकृतिनि की हो है ? असैं तीन प्रश्न तो ए भए ।

बहुरि जिनका अपना उदय होत संतै बंध होए, ते प्रकृति कौन है ? बहुरि जिनका अन्य-प्रकृतिनि का उदय होतै बंध होइ ते प्रकृति कौन है ? बहुरि जिनका अपना वा अन्य-प्रकृतिनि का उदय होतै बध होइ, ते प्रकृति कौन है ? असैं तीन प्रश्न ए भए ।

बहुरि जिनका निरतर-बध होई, ते प्रकृति कौन हैं ? बहुरि जिनका सातर-बंध होई, कदाचित् होइ, कदाचित् न होइ, ते प्रकृति कौन है ? बहुरि जिनका निरंतर वा सांतर दोऊ प्रकार बध होइ, ते प्रकृति कौन है ? असै तीन प्रश्न ए भए ।

असै नव प्रश्न है ।।३९९।।

तिनविषै पहिलै तीन प्रश्ननि की प्रकृति दोय गाथानि करि कहै है—

देवचउक्काहारदुगज्जसदेवाउगाण सो पच्छा ।
मिच्छत्तादावाणं, णराणुथावरचउक्काणं ।।४००।।

पण्णरकसायभयदुगहस्सदुचउजाइपुरिसवेदाणं ।
सममेक्कत्तीसाणं, सेसिगिसीदाण पुव्वं तु ।।४०१।।

देवचतुष्काहारद्विकायशोदेवायुष्काणां स पश्चात् ।
मिथ्यात्वातापानां, नरानुस्थावरचतुष्काणां ।।४००।।

पंचदशकषायभयद्विकहास्यद्विचतुर्जातिपुरुषवेदानां ।
सममेकत्रिंशतां, शेषैकाशीतेः पूर्वं तु ।।४०१।।

टीका – देवगति वा आनुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर वा अगोपांग, ए च्यारि आहारक-शरीर वा अंगोपाग, अयशस्कीर्ति, देवायु, इन आठ-प्रकृतिनि की उदय व्युच्छित्ति के पीछे बंधव्युच्छित्ति हो है । सोई कहिए है—

देव-चतुष्क की उदय-व्युच्छित्ति तो असंयत विषै भई अर बंध-व्युच्छित्ति अपूर्वकरण का छठा-भाग विषै भई । आहारकद्विक की उदयव्युच्छित्ति प्रमत्तविषै भई, बंध-व्युच्छित्ति अपूर्वकरण का छठा भाग विषै भई । अयशस्कीर्ति की उदय-व्युच्छित्ति असयत विषै भई, बध-व्युच्छित्ति प्रमत्त विषै भई, देवायु की उदय व्युच्छित्ति असयत विषै भई, बध-व्युच्छित्ति अप्रमत्त विषै भई ।

ऐसें ही जिनकी युगपत् बंध व्युच्छित्ति, उदय व्युच्छित्ति है वा बंध-व्युच्छित्ति के पीछे उदय व्युच्छित्ति है, तिनका भी कथन गुणस्थाननि विषे उदय, बंध का कथन पूर्वं कह्या, तातैं जानि लेना ।

सो मिथ्यात्व, आतप, मनुष्यानुपूर्वी, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारण, संज्वलन-लोभ बिना १५ कषाय, भय, जुगुप्सा, हास्य, रति, एकेंद्रियादि जाति च्यारि, पुरुष वेद, इन इकतीस प्रकृतिनि की उदय-व्युच्छित्ति अर बंध व्युच्छित्ति युगपत् हो है ।

इहां महाधवल के अनुसार तै स्थावर, एकेद्री, विकलत्रय की व्युच्छित्ति मिथ्यात्व विषे हो है, तीस अपेक्षा कथन जानना ।

बहुरि अवशेष ज्ञानावरण पांच, दर्शनावरण नव, वेदनीय दोय, संज्वलन लोभ, स्त्री-नपुसक वेद, अरति,शोक, नरक-तिर्यंच-मनुष्यायु, नरक, तिर्यंच, मनुष्यगति तीन, पंचेद्री जाति, औदारिक तैजस-कार्माण शरीर ३, छह संहनन, औदारिक-अंगोपाग, षट् संस्थान, वर्णादिक च्यारि, नरक तिर्यंच-आनुपूर्वी२, अगुरुलघु आदि च्यारि, उच्छ्वास, विहायोगति दोय, त्रस-चतुष्क, स्थिरद्विक, शुभद्विक, सुभगद्विक, सुस्वरद्विक, आदेयद्विक, यशस्कीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर, गोत्रद्विक, अंतराय पांच – इन इक्यासी प्रकृतिनि की उदय व्युच्छित्ति पीछे हो है । पहिलै बंध व्युच्छित्ति हो है ।

व्युच्छित्ति नाम अभाव होने का जानना ।।४००-४०१।।

आगे दूजे तीन-प्रश्ननि की प्रकृति कहै है—

सुरणिरयाऊ तित्थं, वेगुव्वियछक्कहारमिदि जेसिं ।
परउदयेण य बंधो, मिच्छं सुहुमस्स घादीओ ।।४०२।।

सुरनिरयायुषी तीर्थं, वैर्गूविकषट्काहारमिति यासां ।
परोदयेन च बंधो, मिथ्यं सूक्ष्मस्य घातिन्यः ।।४०२।।

टीका – देव नरक आयु दोय, तीर्थंकर, वैक्रियिक-शरीर वा अगोपांग, देव-नरक-गति वा आनुपूर्वी ए छह, आहारक शरीर वा अगोपांग, इन ग्यारह प्रकृतिनि का पर उदय तै बंध है । इन प्रकृतिनि का उदय होतै इन प्रकृति का बंध न हो है । बहुरि मिथ्यात्व, सूक्ष्मसापराय विषे जिनकी व्युच्छित्ति भई, ऐसे पंच ज्ञानावरण, च्यारि-दर्शनावरण, पाच अतराय मिलि घातियन की चौदह ।।४०२।।

तेजदुगं वण्णचऊ, थिरसुहजुगलगुरुणिमिणधुवउदया ।
सोदयबंधा सेसा, बासीदा उभयबंधाओ ।।४०३।।

तेजोद्विकं वर्णचत्वारि, स्थिरशुभयुगलागुरुनिर्माणध्रुवोदयाः ।
स्वोदयबंधाः शेषाः, द्व्यशीतिरुभयबंधाः ।।४०३।।

टीका – तैजस, कार्माण, वर्णादिक च्यारि, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, अगुरुलघु, निर्माण – ए बारह प्रकृति ध्रुवोदय है । इनका निरंतर-उदय पाइए है । इनविषै पूर्वोक्त पंद्रह मिलाए सताईस प्रकृति भई, ते ए स्वोदय है, अपना सवधी उदय होतै संतै ही इनका बंध हो है । बहुरि इनका उदय है, सो इनका वध न होतै भी हो हैं, जैसै चौदह प्रकृतिनि का बध तो दशवां गुणस्थान पर्यंत है, उदय बारह्वा पर्यंत है, असै अन्य प्रकृतिनि का भी जानना ।

बहुरि अवशेष पच-निद्रा, दोय वेदनीय, मोहनी-पचीस, तिर्यंच-मनुष्य आयु, तिर्यंच-मनुष्यगति, जाति पाच, औदारिक शरीर वा अंगोपाग, छह सहनन, छह-संस्थान, तिर्यच-मनुष्य आनुपूर्वी, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, विहायोगति द्विक, त्रसद्विक, बादर द्विक, पर्याप्तद्विक, प्रत्येक साधारण, सुभगद्विक, सुस्वरद्विक, आदेयद्विक, यशस्कीर्तिद्विक, गोत्रद्विक, ए बियासी-प्रकृति उभयोदयबधी है । इनका उदय होतै सतै भी इनका बध हो है अर इनका उदय न होतै भी इनका बध हो है ।।४०३।।

आगै तीजे तीन प्रश्ननि की प्रकृति च्यारि गाथानि करि कहै है—

सत्तेताल धुवावि य, तित्थाहाराउगा णिरंतरगा ।
णिरयदुजाइचउक्कं, संहदिसंठाणपणपणगं ।।४०४।।

दुग्गमणादावदुगं, थावरदसगं असादसंढित्थि ।
अरदीसोगं चेदे, सांतरगा होंति चोत्तीसा ।।४०५।।

सप्तचत्वारिंशत् ध्रुवा अपि च, तीर्थाहारायुष्का निरंतरका ।
निरयद्विजातिचतुष्कं, संहतिसंस्थानपंचपंचकं ।।४०४।।

दुर्गमनातापद्विकं, स्थावरदशकमसातषंढस्त्री ।
अरतिः शोकं चैताः, सांतरका भवंति चतुस्त्रिंशत् ।।४०५।।

टीका – पांच ज्ञानावरण, नव दर्शनावरण, पांच अंतराय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, अगुरुलघु द्विक, निर्माण, वर्णादिक च्यारि – ए सैंतालिस प्रकृतिनि का अपनी-अपनी व्युच्छित्ति पर्यंत सदा उदय पाइए तातैं – ए ध्रुवोदयी ध्रुवबंधी है । अर तीर्थंकर, आहारकद्विक आयु च्यारि ए – सात मिलिकिरि चौवन प्रकृति भई, ते निरंतर-बंधी है । तहां सैंतालीस प्रकृतिनि का तो व्युच्छित्ति तैं पहिलैं समय-समय निरंतर बंध सदा पाइए अर तीर्थंकर, आहारक का प्रारम्भ भएं पीछैं जन गुणस्थाननि विषै इनका बंध पाइए, तहां निरंतर समय-समय बंध पाइए है । बहुरि आयु का जिस काल विषै आयु बंध होना योग्य है, तहां आयु बंध भए पीछैं तिस काल विषै समय-समय निरंतर बंधै है, तातैं इननौं निरंतरबंधी कही है ।

बहुरि नरक गति वा आनुपूर्वी, एकेंद्रियादिक च्यारि जाति, वज्रवृषभ-नाराच बिना पांच संहनन, समचतुरस्र बिना पांच संस्थान, अप्रशस्त-विहायोगति, आतप, उद्योत, स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारण-अस्थिर-अशुभ-दुर्भग-दुस्वर अनादेय अयशस्कीर्ति – ए स्थावर-दशक, असाता वेदनीय, स्त्री नपुंसक वेद, अरति, शोक – ए चौंतीस प्रकृति सांतरबंधी हैं ।

जैसे किसी समय नरक-गति का बंध होई, किसी समय विषै अन्य गतिनि का बंध होइ । जाति विषै किसी समय विषै एकेंद्री जाति का बंध होइ, किसी समय बेंद्रियादिक जाति का बध होइ इत्यादिक असैं ए प्रकृति सांतरबंधी जाननी ।।४०४–४०५।।

सुरणरतिरियोरालियवेगुव्वियदुगपसत्थगदिवज्जं ।
परघाददुसमचउरं, पंचिंदिय तसदसं सादं ।।४०६।।

हस्सरदिपुरिसगोददु, सप्पडिवक्खम्मि सांतरा होंति ।
णट्ठे पुण पडिवक्खे, णिरंरतां होंति बत्तीसा ।।४०७।।

सुरनरतिर्यगौरालिकवैगूर्विकद्विकप्रशस्तगतिवज्रं ।
परघातद्विसमचतुरस्रं, पंचेंद्रियं त्रसदशं सातं ।।४०६।।

हास्यरतिपुरुषगोत्रद्विकं, सप्रतिपक्षे, सांतरा भवंति ।
नष्ट पुनः प्रतिपक्षे, निरंतरा भवंति द्वात्रिंशत् ।।४०६।।

टीका – देवगति वा आनुपूर्वी, मनुष्यगति वा आनुपूर्वी, तिर्यंचगति वा आनुपूर्वी, औदारिक शरीर वा अंगोपांग २, वैक्रियिक शरीर वा अंगोपांग २, प्रशस्त विहायोगति, वज्रवृषभ नाराच, परघात, उच्छ्वास, समचतुरस्र संस्थान, पंचेंद्री, त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येक-स्थिर-शुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशस्कीर्ति– ए त्रस दशक, साता-वेदनीय, हास्य, रति, पुरुषवेद, गोत्रद्विक ए बत्तीस प्रकृति सातर वा निरंतर उभय-बंधी है। तहां प्रतिपक्षी होतैं संतै सातरबंधी है, प्रतिपक्षी जहां नाहीं तहा निरंतर-बंधी है।

जैसें अन्य गति का जहां बंध पाइए, तहा तो देवगति सप्रतिपक्षी है, सो तहा कोई समय देवगति का बंध होइ, कोइ समय अन्य गति का बंध होइ, तातैं सातरबंधी है। बहुरि जहां अन्य गति का बंध नाहीं केवल देवगति का बंध है, तहां देवगति निष्प्रतिपक्षी है, सो तहां समय-समय देवगति ही का बंध पाइए, तातैं निरंतरबंधी है, तातैं देवगति कौं उभयबंधी कहिए।

अैसें ही अन्य- प्रकृतिनि कैं उभयबंध जानना।

अब ए प्रकृति सप्रतिपक्षी कही है। नि प्रतिपक्षी कहा है, सो कहिए है—

देवगति वा आनुपूर्वी हैं, सो मिथ्यादृष्टि विषैं तो नरक, तिर्यंच, मनुष्य का द्विक करि, सासादन विषैं तिर्यच, मनुष्य का द्विक करि, मिश्र-असंयत विषैं मनुष्य का द्विककरि सप्रतिपक्ष है। ऊपरि अपूर्वकरण का छठा भाग पर्यंत वा भोगभूमि विषैं केवल देवद्विक ही का बंध है, तातैं तहां निष्प्रतिपक्ष है।

बहुरि मनुष्यद्विक है सो 'सदरसहस्सारगोत्ति तिरियदुगं' इस वचन तै आनत आदि स्वर्ग वा ग्रैवेयकादि विषैं निष्प्रतिपक्ष है। बहुरि नीच-गोत्र अर तिर्यंचद्विक ये सातवीं नरक-पृथ्वी विषैं वा तेजोकायिक, वातकायिक विषैं निष्प्रतिपक्ष है। बहुरि उच्चगोत्र अर औदारिकद्विक है, सो नारक देवगति विषैं निष्प्रतिपक्ष है। बहुरि उच्चगोत्र अर वैक्रियिकद्विक–ए मनुष्य, तिर्यंच असंयतादिक विषैं वा भोगभूमि विषैं निष्प्रतिपक्ष है।

बहुरि प्रशस्त-विहायोगति है, सो अप्रशस्त-विहायोगति [illegible] सासादन ही [illegible] बंधव्युच्छित्ति भई, तातैं मिश्रादिक अपूर्वकरण का [illegible] निष्प्रतिपक्ष है। बहुरि वज्रवृषभ-नाराच मिथ्यादृष्टि, सासादन विषैं तो सप्रतिपक्ष है, मिश्र, असंयत [illegible] विषैं निष्प्रतिपक्ष है। बहुरि परघात, उच्छ्वास [illegible]

अपर्याप्त प्रकृति की साथि इनका बंध न हो है । अर अपर्याप्त-प्रकृति की मिथ्यादृष्टि विषै ही व्युच्छित्ति भई; तातै परघात, उस्वास सासादनादिक अपूर्वकरण का छठा भाग पर्यंत निष्प्रतिपक्ष है ।

बहुरि आतप मिथ्यादृष्टि विषै अपर्याप्त प्रकृति का बंध होतै सप्रतिपक्षी है, जातै अपर्याप्त का बंध होतै याका बंध न हो है, बहुरि बधै है । पर्याप्त अपेक्षा निष्प्रतिपक्ष है । बहुरि समचतुरस्र-संस्थान मिश्रादिक अपूर्वकरण का छठा भाग पर्यंत निष्प्रतिपक्ष है । पंचेंद्रिय-प्रकृति मिथ्यादृष्टि विषै सप्रतिपक्ष है । सासादनादिक अपूर्वकरण का छठा भाग पर्यंत निष्प्रतिपक्ष है । बहुरि त्रस बादर, पर्याप्त, प्रत्येक ए च्यारि मिथ्यादृष्टि विषै स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण का भी बंध है, तातै तहां सप्रतिपक्ष हैं । ऊपरि अपूर्वकरण का छठा भाग पर्यंत निष्प्रतिपक्ष हैं ।

बहुरि स्थिर, शुभ, यशस्कीर्ति ए तीन प्रमत्त पर्यंत अस्थिर, अशुभ, अयशस्कीर्ति का बंध है, तातै तहां सप्रतिपक्ष हैं । ऊपरि अपूर्वकरण का छठा भागपर्यंत निष्प्रतिपक्ष हैं, तहां यशस्कीर्ति सूक्ष्मसांपरायपर्यंत निष्प्रतिपक्ष है । बहुरि सुभग, सुस्वर, आदेय है, सो सासादन पर्यंत दुर्भगादिक तीन का बंध है; तातै तहां सप्रतिपक्ष है । बहुरि मिश्रादिक अपूर्वकरण का छठा भाग पर्यंत निष्प्रतिपक्ष है । बहुरि सातावेदनीय है, सो प्रमत्तपर्यंत असाता का बंध है, तातै सप्रतिपक्ष है । ऊपरि सयोगी पर्यंत निष्प्रतिपक्ष है ।

बहुरि हास्य-रति ए दोऊ प्रमत्त पर्यंत अरति, शोक का बंध है, तातै तहां सप्रतिपक्ष हैं । ऊपरि अपूर्वकरण का अंतसमय पर्यंत निष्प्रतिपक्ष हैं । बहुरि पुरुषवेद सासादन पर्यंत सप्रतिपक्ष है, जातै मिथ्यादृष्टि विषैं नपुंसक, स्त्रीवेद का अर सासाद विषै स्त्रीवेद का भी बंध है । ऊपरि अनिवृत्तिकरण का सवेदभाग पर्यंत निष्प्रतिपक्ष है । बहुरि उच्चगोत्र सासादनपर्यंत नीचगोत्र का बंध है, तातै तहां सप्रतिपक्ष है । ऊपरि सूक्ष्मसांपरापराय पर्यंत निष्प्रतिपक्ष है ।

असै जहां स्वजाति अन्यप्रक्रिति का भी बंध पाइए, तहां सप्रतिपक्ष कहिए तहां सांतरबंधी है । बहुरि जहां केवल आप ही का बंध पाइए, तहा निष्प्रतिपक्षी कहिए, सो तहां निरंतरबंधी है ।

असै उभयबंधी प्रकृति जाननी ।।४०६–४०७।।

।। इति नवप्रश्नचूलिका समाप्ता ।।

अथ पंचभागहारचूलिका

जत्थ वरणेमिचंदो, महणेण विणा सुणिम्मलो जादो ।
सो अभयणंदिणिम्मलसुओवही हरउ पावमलं ॥४०८॥

यत्र वरनेमिचंद्रो, मथनेन विना सुनिर्मलो जातः ।
स अभयनंदिनिर्मलश्रुतोदधिर्हरतु पापमलं ॥४०८॥

टीका – जिस विषै उत्कृष्ट नेमिचंद्र, मंथन विना ही निर्मल भया, सो अभयनंदी का निर्मल शास्त्रसमुद्र है, सो जीवनि के पापमल को दूरि करो ।

भावार्थ – लोकोक्ति असी है, जो समुद्र मथिकरि चंद्रमा निकास्या, सो अभयनंदि नामा आचार्य का उपदेश्या शास्त्र-समुद्र विषै बिना ही मंथन कीए नेमिचंद्र-आचार्यरूपी चंद्रमा निर्मल प्रगट भया । बहुत तिस शास्त्र का अभ्यास न कीया थोरे ही अभ्यास तै निर्मल भया, असा निर्मलता कौ कारण सो शास्त्र-समुद्र है, सो सब जीवनि के पापमल कौ हरो, असा आशीर्वादात्मक मंगल इहां कीया है ॥४०८॥

उव्वेलणविज्झादो, अधापवत्तो गुणो य सव्वो य ।
संकमदि जेहिं कम्मं, परिणामवसेण जीवाणं ॥४०९॥

उद्वेल्लनविध्यातः, अधःप्रवृतः गुणश्च सर्वश्च ।
संक्रामति यैः कर्म, परिणामवशेन जीवानां ॥४०९॥

टीका – जिन भागहारनि करि शुभकर्म वा अशुभकर्म ससारी-जीवनि के अपने परिणामनि के वश तै संक्रमण करै अन्य प्रकृतिरूप होइकरि परिणमै ते भागहार पंच प्रकार है – उद्वेलन, विध्यात, अधःप्रवृत्त, गुणसक्रम, सर्वसंक्रम – ए पंच भागहारनि के नाम है ।

भावार्थ – जो उद्वेलन-प्रकृति है, ताके जितने परमाणु हैं, तिनको उद्वेलन नामा भागहार का जो प्रमाण, ताका भाग दीए जो प्रमाण आवै, तितनी परमाणू जहा अन्य प्रकृतिरूप होइ परिणमै, तहा उद्वेलन जानना । असे ही अन्य भागहारनि का स्वरूप जानना । इनका प्रमाण आगे कहैंगे ॥४०९॥

सक्रमण का स्वरूप कहै है—

बंधे संकामिज्जदि, णोबंधे णत्थि मूलपयडीणं ।
दंसणचरित्तमोहे, आउचउक्के ण संकमणं ॥४१०॥

बधे संक्रामति, नोवंधे नास्ति मूलप्रकृतीनां ।
दर्शनचारित्रमोहे, आयुश्चतुष्के न संक्रमणं ॥४१०॥

टीका – **बंधे** कहिए जिस प्रकृति का वध होइ तिस प्रकृति विषै संक्रमण होइ अन्य प्रकृति तद्रूप होइ परिणमै है, यहु सामान्य कथन है, जातै कही जाका वंध नाहीं, तिसविषै भी संक्रमण हो है । वहुरि **'नो बंधे'** कहिए जाका वंध नाही, तिहिविषैं नाहीं संक्रमण करै है । ऐसा वचन कहने का अभिप्राय यहु है–जो दर्शन-मोहनी विना अवशेष प्रकृति जाका वंध होइ, तिहिविषै संक्रमण हो है, ऐसा नियम जानना ।

वहुरि मूलप्रकृति के परस्पर संक्रमण नाही है । ज्ञानावरण, दर्शनावरणादिक रूप न हो है, इत्यादिक जानना ।

वहुरि उत्तर प्रकृति विषैं संक्रमण है । ज्ञानावरण की पंच प्रकृतिनि विषै परस्पर संक्रमण पाइए । ऐसे सवनि विषै जानना ।

तहां भी दर्शनमोह अर चारित्र मोह विषै परस्पर संक्रमण नाही है । दर्शन-मोह की प्रकृति चारित्रमोह की प्रकृति रूप होइ परिणमै नाही, चारित्रमोह की प्रकृति दर्शनमोह की प्रकृति रूप होइ परिणमैं नाही ।

वहुरि च्यारि आयु तिनकै परस्पर संक्रमण नाही देवायु, मनुष्यायु आदि रूप होंइ न परिणमें इत्यादि ।

ऐसै संक्रमण का स्वरूप जानना ॥४१०॥

सम्मं मिच्छं मिस्सं, सगुणट्ठाणम्मि णेव संकमदि ।
सासणमिस्से णियमा, दंसणतियसंकमो णत्थि ॥४११॥

सम्यं मिथ्यं मिश्र, स्वगुणस्थाने नैव संक्रामति ।
सासनमिश्रे नियमाद्दर्शनत्रिकसंक्रमो नास्ति ॥४११॥

टीका – सम्यक्त्व मोहनी, मिथ्यात्व-मोहनी, मिश्रमोहनी अपना-अपना असंयतादिक वा मिथ्यादृष्टि वा मिश्र गुणस्थान विषै संक्रमण नाही करै हैं ।

बहुरि सासादन अर मिश्र विषै नियम करि तीनो ही दर्शन-मोह का सक्रमण नाही, असंयतादिक च्यारि गुरणस्थान विषै सक्रमण है ।।४११।।

मिच्छे सम्मिस्साणं, अधापवत्तो मुहुत्तअंतोत्ति ।
उव्वेलणं तु तत्तो, दुचरिमकंडोत्ति णियमेण ।।४१२।।

मिथ्ये सम्यग्मिश्रयोरध.प्रवृतो मुहूर्तांतरिति ।
उद्वेलनं तु ततो, द्विचरमकांड इति नियमेन ।।४१२।।

टीका – मिथ्यात्व कौ प्राप्त होतै संतै सम्यक्त्वमोहनी अर मिश्रमोहनी इनकै अधःप्रवृत्त नामा सक्रमरण अंतर्मुहूर्त पर्यत्त प्रवर्तै है । बहुरि उद्वेलना, भागहार नामा संक्रमरण उपांत काडक पर्यंत वर्तै है नियम करि । तहा अध प्रवृत्त संक्रमरण फालिरूप करि वर्तै है । उद्वेलना-सक्रमरण-कांडकरुप करि वर्तै है । एक समय विषै संक्रमरण होइ सो फालि कहिए । बहुत समय समुदाय विषै सक्रमरण होइ सो काडक कहिए ।

इनका विशेष वर्णन आगै इस भाषा विषै लब्धिसार, क्षपणासार अनुसारि कथन लिखेगे तहा जानना ।।४१२।।

उव्वेलणपयडीणं, गुणं तु चरिमम्हि कंडये णियमा ।
चरिमे फालिम्मि पुणो, सव्वं च य होदि संक्रमणं ।।४१३।।

उद्वेलनप्रकृतीनां गुणं तु चरमे कांडके नियमात् ।
चरमे फाली पुनः, सर्वं च भवति संक्रमणं ।।४१३।।

टीका – जे उद्वेलनप्रकृति है तिनके द्विचरम-काडक पर्यंत तौ उद्वेलन-संक्रमण है । बहुरि अंत का काडक विषै नियमकरि गुरण-सक्रमरण है । बहुरि अंत फालि विषै सर्व-सक्रमरण है, तातै सम्यक्त्व-मोहनी अर मिश्रमोहनी भी उद्वेलन-प्रकृति है, सो इनके भी चरम-कांडक विषै गुरणसकमरण अर चरम फालि विषै सर्व-संक्रमण सिद्ध भया । इहा पंच प्रकार सक्रमरण का स्वरूप कहिए है—

जो अधःप्रवृत्त आदि तीन करण रूप परिणाम बिना ही कर्म-परमाणूनि का अन्य-प्रकृति रूप परिरणमना सो उद्वेलन-संक्रमण है ।

वहुरि 'विध्यातविशुद्धकस्से कहिए मंद है विशुद्धता जाकै अैसा जो जीव, ताकै स्थिति-अनुभाग के घटावने रूप कांडक वा गुणश्रेणि आदि परिणाम, तिनकौं होइ गए संते जो प्रवर्तै सो विध्यात-संक्रमण है ।

वहुरि वंधरूप भई जे प्रकृति तिनका अपने वंध विषै संभवती-प्रकृतिनि विषैं परमाणूनि का जो संक्रमण होना सो अधःप्रवृत्त-संक्रमण है ।

वहुरि समय-समय प्रति जहां श्रेणी जो पंक्ति, तींहि रूप असंख्यात-असंख्यात गुणे परमाणू अन्य प्रकृतिरूप होइ परिणमैं सो गुणसंक्रमण है ।

वहुरि अंत का कांडक का जो अंत का फालि सर्व प्रदेशनि विषैं जो पीछैं ही पीछै अन्य प्रकृति रूप न भया-अैसा परमाणू तिसका जो अन्य-प्रकृति रूप होना सो सर्वसंक्रमण है ।

अैसे पंच-संक्रमण जानने ।।४१३।।

आगै सर्व-संक्रमण प्रकृतिनि विषै तिर्यक् एकादश है, ताकौं कहै हैं—

तिरियदुजाइचउक्कं, आदावुज्जोवथावरं सुहुमं ।
साहारणं च एदे, तिरियेयारं मुणेदव्वा ।।४१४।।

तिर्यग्द्विजातिचतुष्कमातापोद्योतस्थावरं सूक्ष्मं ।
साधारणं चैताः तिर्यगेकादश मंतव्याः ।।४१४।।

टीका – तिर्यंचगति वा आनुपूर्वी, एकेंद्रियादिक जाति च्यारि, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म साधारण इन ग्यारह प्रकृतिनि का तिर्यच ही विषैं उदय है । तातैं इनका तिर्यगेकादश नाम जानना ।।४१४।।

आगै उद्वेलना-प्रकृति कहै हैं—

आहारदुगं सम्मं, मिस्सं देवदुगणारयचउक्कं ।
उच्चं मणुदुगमेदे, तेरस उव्वेलणा पयडी ।।४१५।।

आहारद्विकं सम्यं, मिश्रं देवद्विकनारक चतुष्कं ।
उच्चं मनुद्विकमेताः, त्रयोदश उद्वेल्लनाप्रकृतयः ।।४१५।।

टीका – आहारक-द्विक, सम्यक्त्वमोहनी, मिश्रमोहनी, देवद्विक, नरकगति वा आनुपूर्वी वैक्रियिकशरीर वा अंगोपांग – ए च्यारि, उच्चगोत्र, मनुष्यद्विक – ए तेरह उद्वेलना-प्रकृति हैं ।।४१५।।

बंधे अधापवत्तो, विज्झादं सत्तमोत्ति हु अबंधे ।
एत्तो गुणो अबंधे, पयडीणं अप्पसत्थाणं ।।४१६।।

बंधे अधः प्रवृत्तो; विध्यातः सप्तम इति हि अबंधे ।
इतो गुणः अबंधे, प्रकृतीनामप्रशस्तानां ।।४१६।।

टीका – प्रकृतिनि के बंध कौं होतें संतें अपनी-अपनी बंधव्युच्छित्ति पर्यंत अध.प्रवृत्त संक्रमण है । तहां मिथ्यात्व का नाहीं है; जातें **'सम्मं मिच्छं मिस्सं'** इत्यादि गाथा विषै मिथ्यात्व का संक्रमण मिथ्यादृष्टि-गुणस्थान विषै निषेध कीया है अर मिथ्यात्व का बंध मिथ्यादृष्टि विषैं ही है, तातैं मिथ्यात्व को नाही कह्या । बहुरि बंध की व्युच्छित्ति कौ होत संतै असंयतादिक अप्रमत्त पर्यंत विध्यात नामा सक्रमण है । बहुरि यातें अप्रमत्त-गुणस्थान के ऊपरि उपशात-कषाय पर्यंत वध रहित जे अप्रशस्त-प्रकृति तिनकैं गुणसंक्रमण हैं; तातैं अन्यत्र भी प्रथमोपशम-सम्यक्त्व के ग्रहण का प्रथम-समय तै लगाय अतर्मुहूर्त पर्यंत गुण-संक्रमण है । बहुरि मिश्रमोहनी, सम्यक्त्व-मोहनी का पूरण-काल विषै मिथ्यात्व कौ क्षय करने विषैं अपूर्वकरण परिणाम है, तातै मिथ्यात्व का अंत का कांडक का द्विचरम फालि पर्यंत गुणसंक्रमण है । चरम-फालि विषै सर्वसंक्रमण है ।।४१६।।

तिन सर्वसंक्रमण रूप प्रकृतिनि कौ कहै हैं—

तिरियेयारुव्वेल्लणपयडी संजलणलोहसम्ममिस्सूणा ।
मोहा थीणतिगं च य बावण्णे सव्वसंकमणं ।।४१७।।

तिर्यगेकादशोद्वेल्लन प्रकृतयः संज्वलनलोभसम्यग्मिश्रोनाः ।
मोहाः स्त्यानत्रिकं च, द्वापंचाशत् सर्वसंक्रमणं ।।४१७।।

टीका – पूर्वोक्त तिर्यगेकादश की ग्यारह, उद्वेलना-प्रकृति तेरह, संज्वलन लोभ-सम्यक्त्व-मिश्र इन तीन विना मोहनीय की पचीस, स्त्यानगृद्धयादिक तीन ए, बावन प्रकृतिनि विषै सर्व-संक्रमण हो है ।।४१७।।

आगे प्रकृतिनि के संक्रमण का नियम कहै है—

उगुदालतीससत्तयवीसे एक्केक्कबारतिचउक्के ।
इगिचदुदुगतिगतिगचदु,पणदुगदुगतिण्णि संकमणा ।।४१८।।

एकोनचत्वारिंशत्त्रिंशत्सप्तकविंशे एकैकद्वादशत्रिचतुष्के ।
एकचतुर्द्विकत्रिकत्रिक, चतुः पंचद्विकत्रयःसंक्रमणाः ।।४१८।।

टीका – गुणतालीस प्रकृतिनि विषैं, तीस विषैं, सात विषैं, वीस विषैं, एक विषैं, बारह विषैं, च्यारि विषैं, च्यारि विषैं, च्यारि विषैं अनुक्रमतैं एक, च्यारि दोय, तीन, तीन, च्यारि, पाच, दोय, तीन सक्रमण पाइए है ।।४१८।।

आगे तिन प्रकृतिनि कौ क्रमतैं सात गाथानि करि कहैं है—

सुहुमस्स बंधघादी, सादं संजलणलोह पंचिंदी ।
तेजदुसमवण्णचऊ, अगुरुगपरघादउस्सासं ।।४१९।।

सत्थगदी तसदसयं, णिमिणुगुदाले अधापवत्तो दु ।
थीणतिबारकसाया, संढित्थी अरइ सोगो य ।।४२०।।

सूक्ष्मस्य बंधघातिन्यः, सातं संज्वलनलोभ पंचेंद्रियं ।
तेजोद्विसमवर्णचतुर, गुरुकपरघातोच्छ्वासं ।।४१९।।

शस्तगतिः त्रसदशकं, निर्माणमेकोनचत्वारिंशत्सु अध प्रवृत्तस्तु ।
स्त्यानत्रिद्वादशकषायाः, षंढस्त्री अरतिः शोकश्च ।।४२०।।

टीका – पांच ज्ञानावरण, च्यारि दर्शनावरण, पच अतराय, सातावेदनीय, सज्वलन-लोभ, पचेद्री, तैजस, कार्माण, समचतुरस्र, वर्णादिक च्यारि, अगुरुलघु, परघात, उस्वास, प्रशस्त-विहायोगति, त्रसबादर-पर्याप्त-प्रत्येक-स्थिर-शुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशस्कीर्ति ए दश, निर्माण ए गुणतालीस प्रकृति उद्वेलन रहित है, तातैं इन विषैं उद्वेलन-सक्रमण नाही । बहुरि 'विज्झादं सत्तमोत्ति हु अबंधे' इस अनुसार तैं अप्रमत्तगुणस्थान के नीचैं इनकी बंध-व्युच्छित्ति नाही; तातैं विध्यात-संक्रमण भी इन विषैं नाही ।

बहुरि 'एत्तो गुणो अबंधे' इस अनुसार तैं गुण संक्रमण भी नाही । बहुरि बावन-प्रकृति सर्व-सक्रमणरूप कही, तिनविषैं ये प्रकृति न कही; तातैं इन विषैं

सर्वसंक्रमण भी नाही, तौ इन गुणतालीस प्रकृतिनि विषै एक अध. प्रवृत्त नामा सक्रमण ही सभवै है ।

ऐसै ही अन्य प्रकृतिनि विषै सक्रमण कहिए है, तहां भी विचार करि लेना ।

मिथ्यात्व कै मिथ्यादृष्टि-गुणस्थान विषै अध प्रवृत्त-सक्रमण क्यों न कहो ?

ताका उत्तर– 'सम्मं मिच्छं मिस्सं सगुणट्ठाणम्मि णेव संकमदि' इस गाथा करि पहिली ही कह्या था, सो जानना ।

बहुरि स्त्यानगृद्धयादिक तीन, बारह कषाय, नपुसक-स्त्री-वेद, अरति, शोक और ॥४१९—४२०॥

आगै कहै है—

तिरियेयारं तीसे, उव्वेलणहीणचारि संकमणा ।
णिद्दा पयला असुहं, वण्णचउक्कं च उवघादे ॥४२१॥

सत्तण्हं गुणसंकमसधापवत्तो य दुक्खमसुहगदी ।
संहदिसंठाणदस, णीचापुण्णथिरछक्कं चं ॥४२२॥

तिर्यगेकादश त्रिशत्सु, उद्वेल्लनहीनचत्वारः संक्रमणाः ।
निद्रा प्रचला अशुभं, वर्णचतुष्क च उपघातं ॥४२१॥

सप्तानां गुणसंक्रमोऽधः प्रवृत्तश्च दुःखमशुभगतिः ।
संहृतिसंस्थान दश, नीचा पूर्णमस्थिषट्कं च ॥४२२॥

टीका – तिर्यगेकादश की ग्यारह, इन तीस प्रकृतिनि विषै उद्वेलना बिना च्यारि सक्रमण पाइए है । बहुरि निद्रा, प्रचला, अशुभ वर्णादिक च्यारि, उपाघात, इन सप्तनि विषै गुण-सक्रमण अर अध प्रवृत्त सक्रमण – ए दोय पाइए हैं । बहुरि असाता-वेदनीय, अप्रशस्त-विहायोगति, पहिला बिना पांच-सहनन, पाच सस्थान, नीचगोत्र, अपर्याप्त, अस्थिर-अशुभ-दुर्भग-दु स्वर-अनादेय-यशस्कीर्ति – ए छह ऐसें बीस भई ॥

वीसण्हं विज्झादं, अधापवत्तो गुणो य मिच्छत्ते ।
विज्झादगुणे सव्वं, सम्मे विज्झादपरिहीणा ॥४२३॥

विंशानां विध्यातोऽधःप्रवृत्तो गुणश्च मिथ्यात्वे ।
विध्यातगुणौ सर्वः, सम्यञ्चि विध्यातपरिहीनाः ।।४२३।।

टीका – तिन बीसनि विषै विध्यात, अधःप्रवृत्त, गुणसंक्रमण – ए तीन पाइए है। बहुरि मिथ्यात्व विषै विध्यात-संक्रमण, गुण सक्रमण, सर्व-संक्रमण ये तीन पाइये हैं । बहुरि सम्यक्त्व-मोहनीय विषै विध्यात बिना च्यारि संक्रमण पाइए हैं ।।४२३।।

सम्मविहीणुव्वेल्ले, पंचेव य तत्थ होंति संकमणा ।
संजलणतिये पुरिसे, अधापवत्तो य सव्वो य ।।४२४।।

सम्यग्विहीनोद्वेल्ये, पंचैव च तत्र भवंति संक्रमणाः ।
संज्वलनत्रये पुरुषे, अधःप्रवृत्तश्च सर्वश्च ।।४२४ ।।

टीका – सम्यक्त्व-मोहनी बिना उद्वेलना-प्रकृति बारह, तिन विषै पांचौ संक्रमण पाइए हैं। बहुरि सज्वलन क्रोध-मान-माया, पुरुष वेद इन च्यारिनि विषै अधःप्रवृत्त, सर्व संक्रमण – ए दोय पाइए है। इन प्रकृतिनि कै बंध-व्युच्छित्ति होतैं भी गुणसंक्रमण की प्राप्ति नाहीं है ।।४२४।।

ओरालदुगे वज्जे, तित्थे विज्झादधापवत्तो य ।
हस्सरदिभयजुगुच्छे, अधापवत्तो गुणो सव्वो ।।४२५।।

औरालद्विके वज्रे, तीर्थे विध्यातोऽधः प्रवृत्तश्च ।
हास्यरतिभयजुगुप्सायामधः प्रवृत्तो गुणः सर्वः ।।४२५।।

टीका – औदारिक शरीर वा अंगोपांग, वज्रवृषभनाराच, तीर्थंकर – इनविषैं विध्यात-सक्रमण, अधःप्रवृत्त-संक्रमण – ए दोय पाइए हैं। ए प्रशस्त-प्रकृति है; तातै इन विषै गुण-संक्रमण नाही है। इहां तीर्थंकर विषै विध्यात-संक्रमण कह्या है, सो नरक जाने कौ सन्मुख भया मनुष्य वा मरिकरि भया नारकी अपर्याप्त तिस मिथ्यादृष्टि जीव कै जानना। बहुरि हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, इन च्यारि विषै अधःप्रवृत संक्रमण, गुण-संक्रमण, सर्व संक्रमण – ए तीन पाइए हैं।

ऐसै प्रकृतिनि विषै संक्रमण कह्या ।।४२५।।

सम्मत्तूणुव्वेलणथीणतितीसं च दुक्खवीसं च ।
वज्जोरालदुतित्थं, मिच्छं विज्झादसत्तट्ठी ।।४२६।।

सम्यक्त्वोनोद्वेल्लनस्त्यानत्रित्रिंशच्च दु:खविंशश्च ।
वज्रोरालद्वितीर्थं, मिथ्य विध्यातसप्तषष्टि ॥४२६॥

टीका – सम्यक्त्व-मोहनी बिना बारह उद्वेलना-प्रकृति, स्त्यानगृद्धि त्रयादिक तीस, असातावेदनीय आदि बीस, वज्रवृषभनाराच, औदारिक द्विक, तीर्थंकर, मिथ्यात्व – ए सतसठि प्रकृति विध्यात-संक्रमण संयुक्त जाननी ॥४२६॥

मिच्छूणिगिवीससयं, अधापवत्तस्स होंति पयडीओ ।
सुहुमस्स बंधघादिप्पहुदी उगुदालुरालदुगतित्थं ॥४२७॥

मिथ्योनैकविंशशतमध प्रवृत्तस्य भवंति प्रकृतय ।
सूक्ष्मस्य बंधघातिप्रभृतय एकोनचत्वारिंशदौरालद्विकतीर्थं ॥४२७॥

टीका – मिथ्यात्व बिना एक सौ इकईस प्रकृति अध प्रवृत्त-संक्रमण संयुक्त जाननी । बहुरि सूक्ष्मसांपराय विषै जिनिका बंध असी घातियानि की चौदह-प्रकृति आदि दे करि गुणतालीस (३९), औदारिक द्विक, तीर्थंकर ॥४२७॥

वज्जं पुंसंजलणति,ऊणा गुणसंकमस्स पयडीओ ।
पणहत्तरिसंखाओ, पयडीणियमं विजाणाहि ॥४२८॥

वज्रं पुंसंज्वलनत्रिकमूना गुणसंक्रमस्य प्रकृतय ।
पंचसप्ततिसंख्या:, प्रकृतिनियमं विजानीहि ॥४२८॥

टीका – वज्रवृषभ-नाराच, पुरुष-वेद, संज्वलन क्रोध-मान-माया – इन सैंतालीस-प्रकृति बिना एकसौ बाईस प्रकृति मेंस्यों पिचहत्तरि प्रकृति गुण-संक्रमण संयुक्त जाननी । असैं प्रकृतिनि विषै नियम जानना ॥४२८॥

आगे स्थिति-अनुभाग बंध के अर प्रदेश-बंध का संक्रमण कै गुणस्थाननि की संख्या कहै है—

ठिदिअणुभागाणं पुण, बंधो सुहुमोत्ति होदि णियमेण ।
बंधपवेसाणं पुण, संकमणं सुहुमरागोत्ति ॥४२९॥

स्थित्यनुभागयो: पुन:, बंध सूक्ष्म इति भवति नियमेन ।
बंधप्रदेशानां पुन:, संक्रमणं सूक्ष्मराग इति ॥४२९॥

टीका – स्थिति-अनुभागनि का बंध सूक्ष्मसांपराय पर्यंत ही है, जातैं स्थिति-अनुभाग कौ कारण कषाय ही है। बहुरि सूक्ष्म-सापराय के ऊपरि साता वेदनीय का बंध भी है, सो प्रकृतिवध, प्रदेशबंध मात्र ही है। बहुरि बंध रूप भए जे परमाणू, तिनका संक्रमण भी सूक्ष्मसापराय पर्यंत ही है। 'बंधे अधापवत्तो' इस सूत्र के अभिप्राय तैं स्थितिबंध पर्यंत ही संक्रमण संभवै है ।।४२९।।

आंगे पंचभागहारनि का अल्पबहुत्व छह गाथानि करि कहै हैं--

सव्वस्सेक्कं रूवं, असंखभागो दु पल्लछेदाणं।
गुणसंकमो दु हारो, ओकट्टुक्कट्टणं तत्तो ।।४३०।।

हारं अधापवत्तं, तत्तो जोगम्हि जो दु गुणगारो।
णाणागुणहाणिसला, असंखगुणिदक्कमा होंति ।।४३१।।

तत्तो पल्लसलायच्छेदहिया पल्लछेदणा होंति।
पल्लस्स पढमभूलं, गुणहाणीवि य असंखगुणिदकमा ।४३२।।

अण्णोण्णब्भत्थं पुण, पल्लमसंखेज्जरूवगुणिदकमा।
संखेज्जरूवगुणिदं, कम्मुक्कस्सट्ठिदी होदि ।।४३३।।

अंगुलअसंखभागं, विज्झादुव्वेल्लणं असंखगुणं।
अणुभागस्स य णाणागुणहाणिसला अणंताओ ।।४३४।।

गुणहाणिअणंतगुणं, तस्स दिवड्ढं णिसेयहारो य।
अहियकमाणण्णोण्णब्भत्थो रासी अणंतगुणो ।।४३५।।

सर्वस्यैकं रूपमसंख्यभागस्तु पल्यच्छेदानां।
गुणसंक्रमस्तु हारः, अपकर्षणोत्कर्षणं ततः ।।४३०।।

हारोऽधःप्रवृत्तस्ततो योगे यस्तु गुणकारः।
नानागुणहानिशला, असंख्यगुणितक्रमा भवंति ।।४३१।।

ततः पल्यशलाकच्छेदाधिकाः पल्यच्छेदना भवंति।
पल्यस्य प्रथममूलं, गुणहानिरपि चासंख्यगुणितक्रमा ।।४३२।।

अन्योन्याभ्यस्तं पुन , पल्यमसंख्येयरूपगुणितक्रमं ।
संख्येयरूपगुणिता, कर्मोत्कृष्टस्थितिर्भवति ।।४३३।।

अंगुलासंख्यभागं, विध्यातोद्वेल्लनमसंख्यगुणं ।
अनुभागस्य च नानागुणहानिशला अनंता ।।४३४।।

गुणहान्यनतगुणा, तस्या द्व्यर्ध निषेकहारश्च ।
अधिकक्रमाणामन्योन्याभ्यस्तो राशिरनंतगुण ।।४३५।।

टीका – सर्व-संक्रमण नामा भागहार सर्व तै स्तोक है, तिसका प्रमाण एक रूप है । अंत फालि विषै जेति परमाणू अवशेष रही थी, ताकौ इस भागहार का प्रमाण एक, ताका भाग दीए सर्व परमाणू जहां ही आए ते अन्य प्रकृतिरूप परिणमै, तहां सर्वसंक्रमण जानना । बहुरि यातै असख्यात गुणा ऐसा पल्य का अर्धच्छेदनि के असंख्यातवैं भाग प्रमाण गुण-सक्रमण नामा भागहार है । सो गुणसक्रमण रूप जे प्रकृति ताके जे परमाणु, तिनकौ इस भागहार का प्रमाण का भाग दीए जो परिमाण आवै, तितनी परमाणू यथायोग्य काल विषै समय-समय प्रति असख्यात गुणी होइ अन्य प्रकृतिरूप परिणमै, तहां गुणसक्रमण कहिए । बहुरि यातै उत्कर्षण-भागहार वा अपकर्षण-भागहार असख्यात गुणे है, तथापि ए दोन्यो जुदे-जुदे पल्य के अर्धच्छेदनि के असंख्यातवैं भाग प्रमाण है । सो इन पच-भागहारनि विषै इनका कथन नाहीं, तथापि जहां उत्कर्षण-भागहार का वा अपकर्षण-भागहार का कथन आवै, तहा ऐसा प्रमाण जानना ।

बहुरि यातै अध:प्रवृत्तसक्रमण भागहार असख्यात गुणा है, तथापि सो भी पल्य के अर्धच्छेदनि के असख्यातवे भाग प्रमाण है, सो जो अध प्रवृत्तसक्रमण रूप प्रकृति है, ताके परमाणूनि कौ याका भाग दीए जो प्रमाण आवै, तितनी परमाणू अन्य प्रकृति रूप होइ जहां परिणमै, तहा अध प्रवृत्त-सक्रमण कहिए । बहुरि यातै योगनि का कथन विषै जो गुणाकार कह्या है सो असख्यात गुणा है, तथापि सो भी पल्य के अर्धच्छेदनि के असंख्यातवे भाग ही है । जघन्य-योगस्थान कौ याकरि गुणैं उत्कृष्ट-योगस्थान हो है ।

बहुरि यातै कर्म की जो स्थिति, ताकी नानागुणहानि शलाका का प्रमाण सो असख्यात गुणा है, सो पल्य की वर्ग शलाका का अर्धच्छेद पल्य का अर्धच्छेदनि मे घटाए जो परिमाण रहै, तितना है, बहुरि यातै पल्य का अर्धच्छेदनि का प्रमाण

अधिक है, सो पल्य की वर्ग शलाका का जितने अर्धच्छेद, तितना अधिक है । वहुरि यातें पल्य का प्रथम वर्गमूल असंख्यात गुणा है, जातै द्विरूप वर्गधारा विर्षं पल्य के अर्धच्छेद रूप स्थान तै असंख्यात-स्थान गए पल्य का प्रथम मूल हो है ।

वहुरि यातै कर्म की स्थिति की जो एक गुणहानि, ताके समयनि का प्रमाण असंख्यात गुणा है, जातै सातसै कौं च्यारि वार कोडि करि गुणं जो प्रमाण होई, ताकरि गुण्या असा पल्य ताकौ स्थिति की नानागुणहानि का प्रमाण का भाग दीएं यहु प्रमाण आवै है । वहुरि यातै कर्म की स्थिति की अन्योन्याभ्यस्त-राशि का प्रमाण असंख्यात गुणा है, जातैं नाना-गुणहानि का प्रमाण दोय का अंक मांडि परस्पर गुणै अन्योन्याभ्यस्त-राशि का प्रमाण हो है ।

वहुरि यातें पल्य का प्रमाण असंख्यात गुणा है, जातै तिस अन्योन्याभ्यस्त-राशि के प्रमाण कौं पल्य की वर्गशलाका तै गुणे पल्य हो है । वहुरि यातै कर्म की उत्कृष्ट-स्थिति का प्रमाण संख्यात गुणा है, जातै एक सागर के दश-कोडाकोडी पल्य हैं, तौ सत्तरि कोडाकोडी सागरनि की च्यारि वार कोडि करि सातसै कौं गुणिए इतनी पल्य भई ।

वहुरि यातै विध्यात संक्रम नामा भागहार असंख्यात गुणा है सो सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है, सो विध्यात संक्रम रूप प्रकृतिनि के परमाणूनि कौं याका भाग दीएं जो परिमाण होइ, तितनी परमाणू अन्य प्रकृतिरूप होइ जहां परिणमै, तहां विध्यात-संक्रम जानना ।

वहुरि यातै उद्वेलन-भागहार असंख्यात गुणा है, सो भी सूच्यंगुल के असंख्यातवैं भाग प्रमाण है। सो उद्वेलन प्रकृतिनि के परमाणूनि कौं याका भाग दीएं जो परिमाण आवै, तितनी परमाणू जहां अन्य प्रकृति रूप होइ परिणमै, तहां उद्वेलन-संक्रम जानना ।

वहुरि यातै कर्मनि का अनुभाग का कथन विर्षं नानागुणहानि शलाका अनंत प्रमाण है। वहुरि यातै तिस अनुभाग की एक गुणहानि का आयाम का प्रमाण अनंत गुणा है । वहुरि यातै तिसही की द्वयर्धगुणहानि का प्रमाण तिसका आधा प्रमाण करि अधिक है। वहुरि यातैं तिसही की दोगुणहानि का प्रमाण आधा गुणहानिका आयाम का प्रमाण करि अधिक है। वहुरि यातै तिस अनुभाग की अन्योन्याभ्यस्त-राशि का प्रमाण अनंत गुणा जानना ।

अैसें पंचभागहारनि का अल्पबहुत्व का प्रसंग पाइ अन्य का भी अल्प-बहुत्व निरूपण किया ।।४३०—४३५।।

इति पंचभागहार चूलिका समाप्ता ।

अथ दशकरण चूलिका चौदह गाथानि करि कहने कौ उद्यम करै है । तहां प्रथम ही अपने श्रुत-गुरु कौं नस्कार करै है--

जस्स य पायपसायेणणंतसंसारजलहिमुत्तिण्णो ।
वीरिंदणंदिवच्छो, णमामि तं अभयणंदिगुरुं ।।४३६।।

यस्य च पादप्रसादेनानंतसंसारजलधिमुत्तीर्णः ।
वरेंद्रनंदिवत्सो, नमामि तमभयनंदिगुरुं ।।४३६।।

टीका – जिस शास्त्र-शिक्षादायक गुरु के चरणनि के प्रसाद करि वीरेंद्रनंदि नामा आचार्य का वत्स-शिष्य जो मै (ग्रंथकर्ता) सो ससार समुद्र कौ पार भया, तिस 'अभयनंदि' नामा श्रुतगुरु कौ मै नमस्कार करौ हौ ।।४३६।।

बंधुक्कट्टणकरणं, संकममोकट्टुदीरणा सत्तं ।।
उदयुवसामणिधत्ती, णिकाचणा होदि पडिपयडी ।।४३७।।

बंधोत्कर्षणकरणं, संक्रममपकर्षणोदीरणा सत्त्वं ।
उदयोपशांतनिधत्ति, निष्काचना भवति प्रतिप्रकृति ।।४३७।।

टीका – १ बंध, २ उत्कर्षण, ३ संक्रम, ४ अपकर्षण, ५ उदीरणा, ६ सत्त्व, ७ उदय, ८ उपशम, ९ निधत्ति, १० निःकाचना- ए दश करण प्रकृति-प्रकृति प्रति संभवै हैं ।।४३७।।

कम्माणं संबंधो, बंधो उक्कट्टणं हवे वड्ढी ।
संकमणमणत्थगदी, हाणी ओकट्टणं णाम ।।४३८।।

कर्मणां सबंधो, बंध उत्कर्षणं भवेद्वृद्धि ।
संक्रमणमन्यत्रगतिर्हानिरपकर्षणं नाम ।।४३८।।

टीका – मिथ्यात्वादिक परिणामनि करि जो पुद्गल-द्रव्य ज्ञानावरणादिक रूप होइ परिणमै, सो ज्ञानादि कौ आवरै अैसा इत्यादिक सबंध का होना सो बंध

कहिए। वहुरि जो स्थिति-अनुभाग पूर्वे था, तिसतै स्थिति-अनुभाग की वृद्धि जो अधिकता, ताका होना सो उत्कर्षण कहिए। वहुरि जो प्रकृति पूर्वे बधने मे आई थी, सो प्रकृति अन्य प्रकृतिरूप होइ परिणमै-तिस प्रकृति के परमाणू अन्य प्रकृतिरूप होइ सो संक्रमण कहिए। वहुरि जो स्थिति अनुभाग पूर्वे था, तिसतै स्थिति-अनुभाग की हानि जो घटावना सो अपकर्षण कहिए ॥४३८॥

अण्णत्थठियस्सुदये, संथुहणमुदीरणा हु अत्थित्तं ।
सत्तं सकालपत्तं, उदओ होदित्ति णिद्दिट्ठो ॥४३९॥

अन्यत्र स्थितस्योदये, संस्थापनमुदीरणा हि अस्तित्वं ।
सत्त्वं स्वकालप्राप्तमुदयो भवतीति निर्दिष्टः ॥४३९॥

टीका – उदयावली के वाह्य तिष्ठता जो द्रव्य ताकौ अपकर्षण के वश तै उदयावली विषै मिलावना, सो उदीरणा कहिए।

भावार्थ – जिन प्रकृतिनि के निषेकनि का उदय काल न आया है, उदयावली तै अधिक काल है, तिनकी स्थिति कौ घटाइ करि जे निषेक आवली मात्र काल विषै उदय आवै, तिन विषै तिनके परमाणूनि कौ मिलावना, तिनके साथि ही उनका भी उदय होइ सो उदीरणा है। वहुरि अस्तित्व कहिए पुद्गलनि का कर्म रूप रहना, सो सत्त्व कहिए। वहुरि जो कर्म की स्थिति तिस स्थिति कौ प्राप्त होना, सो उदय कहिए, ऐसा कह्या है ॥ ४३९ ॥

उदये संकममुदये, चउसुवि दादुं कमेण णो सक्कं ।
उवसंतं च णिधत्ति, णिकाचिदं होदि जं कम्मं ॥४४०॥

उदये संक्रमोदययोः, चतुर्ष्वपि दातुं क्रमेण नो शक्यं ।
उपशांत च निधत्तिः, निकाचितं भवति यत्कर्म ॥४४०॥

टीका – जो कर्म उदयावली विषै प्राप्त करने कौ समर्थ न हूजे, सो उपशांत कहिए। वहुरि जो कर्म उदयावली विषै प्राप्त करने कौं वा अन्य-प्रकृति रूप संक्रमण करने कौ समर्थ न हूजे, सो निधत्ति कहिए। वहुरि जो कर्म उदयावली विषै प्राप्त करने कौं वा अन्य प्रकृतिरूप संक्रमण करने कौं वा उत्कर्षण वा अपकर्षण करने कौं समर्थ न हूजे, सो निकाचित कहिए ॥४४०॥

ऐसे दश करण निरूपण करि प्रकृतिनि विषै वा गुणस्थाननि विषै जो ए करण संभवै, ते कहिए है—

संकमणाकरणूणा, णवकरणा होंति सव्वआऊणं ।
सेसाणं दसकरणा, अपुव्वकरणोत्ति दसकरणा ॥४४१॥

संक्रमणकरणोनानि, नवकरणानि भवंति सर्वायुषां ।
शेषाणां दशकरणान्यपूर्वकरण इति दशकरणानि ॥४४१॥

टीका – च्यारि आयु तिनकैं संक्रमण-करण विना नव करण पाइए हैं, जातै चारयों आयु परस्पर परिणमें नाहीं । अवशेष सर्व प्रकृतिनि के दश-करण पाइए है । बहुरि मिथ्यादृष्ट्यादिक अपूर्वकरण पर्यंत तो दश-करण पाइए है ॥४४१॥

आदिमसत्तेव तदो, सुहुमकसाओत्ति संकमेण विणा ।
छच्च सजोगित्ति तदो, सत्तं उदयं अजोगित्ति ॥४४२॥

आदिमसप्तैव ततः, सूक्ष्मकषाय इति संक्रमेण विना ।
षट् च सयोगीति ततः, सत्त्वमुदयः अयोगीति ॥४४२॥

टीका – तिस अपूर्व-करण गुणस्थान के ऊपरि सूक्ष्म-सांपराय पर्यंत उपशांत, निधत्ति, निकाचित बिना आदि के सात करण ही पाइए है । तहा भी संक्रम-करण बिना सयोगी पर्यंत छह करण ही पाइए है । तिसतैं ऊपरि अयोगी विषै सत्त्व, उदय – ए दोय ही करण पाइए हैं ॥४४२॥

णवरि विसेसं जाणे, संकममवि होदि संतमोहम्मि ।
मिच्छस्स य मिस्सस्स य, सेसाणं णत्थि संकमणं ॥४४३॥

नवरि विशेषं जानीहि, संक्रममपि भवति शांतमोहे ।
मिथ्यस्य च मिश्रस्य च, शेषाणां नास्ति संक्रमणं ॥४४३॥

टीका – उपशांत-कषाय विषै विशेष है, सो कहा ? मिथ्यात्व, मिश्र इन दोऊ प्रकृतिनि कै तहां संक्रम-करण भी पाइए है । इनके परमाणूनि कौं सम्यक्त्वमोहनी रूप परिणमाव है । अवशेष प्रकृतिनि के छह ही करण है । ऐसें अपूर्वकरण विषै तौ उपशम, निधत्ति, निकाचित – ए तीन करण व्युच्छित्ति भए ।

अनिवृत्ति-करण, सूक्ष्मसांपराय विषै व्युच्छित्ति शून्य । उपशांत-कषाय विषै मिथ्यात्व, मिश्र इनके सात करण, औरनि के संक्रमण बिना छह करण है । क्षीणकषाय विषै व्युच्छित्ति शून्य, सयोगी विषै बंध, उत्कर्षण, अपकर्षण, उदीरणा – ए च्यारि करण व्युच्छित्ति भए । अयोगी विषै सत्व, उदय – ए दोय करण व्युच्छित्ति भए । अवशेष कथन सर्व सुगम है ।।४४३।।

बंधुक्कट्टकरणं, सगसगबंधोत्ति होदि णियमेण ।
संकमणं करणं पुण सगसगजादीण बंधोत्ति ।।४४४।।

बंधोत्कर्षणकरणं, स्वकस्वकबंध इति भवति नियमेन ।
संक्रमणं करणं पुनः, स्वकस्वकजातीनां बंध इति ।।४४४।।

टीका – बंध-करण अर उत्कर्षण-करण – ए तो दोऊ जिस-जिस प्रकृतिनि की जहां बंधव्युच्छित्ति भई, तिस-तिस प्रकृति का तहां ही पर्यंत जानने नियम करि । बहुरि जिस-जिस प्रकृति के जे-जे स्वजाति है, जैसे ज्ञानावरण की पांचों प्रकृति परस्पर स्वजाति है-अैसे स्वजाति-प्रकृतिनि की बंध की व्युच्छित्ति जहां भई, तहां पर्यंत तिन प्रकृतिनि के संक्रमण-करण जानना ।।४४४।।

ओक्कट्टणकरणं पुण अजोगिसत्ताण जोगिचरिमोत्ति ।
खीणं सुहुमंताणं, खयदेसं सावलीयसमयोत्ति ।।४४५।।

अपकर्षणकरणं पुनरयोगिसत्त्वानां योगिचरम इति ।
क्षीण सूक्ष्मांतानां, क्षयदेशं सावलिक समय इति ।।४४५।।

टीका – बहुरि अयोगी विषै सत्व-रूप कही पिच्यासी प्रकृति तिनके सयोगी का अंत समय पर्यंत अपकर्षण-करण जानना । बहुरि क्षीण-कषाय विषै सत्व तै व्युच्छित्ति भई सोलह अर सूक्ष्मसांपराय विषै सत्व तै व्युच्छित्ति भया सूक्ष्म-लोभ इन सतरह-प्रकृतिनि के क्षयदेशपर्यंत अपकर्षण-करण जानना ।

तहां क्षयदेश कहा ? सो कहिए हैं—

जे प्रकृति अन्य प्रकृति रूप उदय देइ विनसै है, अैसी परमुखोदयी प्रकृति है, तिनकै तो अंत-कांडक को अंत फालिक्षयदेश है । बहुरि अपने ही रूप उदय देइ विनसै है, अैसी स्वमुखोदयी-प्रकृति तिनकै एक-एक समय अधिक आवली प्रमाण काल क्षय-देश

है, तातें तिन सतरह प्रकृतिनि के एक समय अधिक आवली काल पर्यंत अपकर्षण-करण पाइए है ।।४४५।।

ठवसंतोत्ति सुराऊ, मिच्छत्तिय खवगसोलसाणं च ।
खयदेसोत्ति य खवगे, अट्ठकसायादिवीसाणं ।।४४६।।

उपशांत इति सुरायुर्मिथ्यत्रयं क्षपकषोडशानां च ।
क्षयदेश इति च क्षपके, अष्टकषायादिविंशानां ।।४४६।।

टीका – उपशांत-कषाय पर्यंत देवायु के अपकर्षण-करण है । बहुरि मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व-प्रकृति ए तीन अर 'णिरयतिरिक्ख' इत्यादिक सूत्रोक्त अनिवृत्तिकरण विषै क्षय भई सोलह-प्रकृति इनकै क्षय-देश पर्यंत अपकर्षण-करण है– अंत-कांडक का अंत का फालि पर्यंत है औसा अर्थ जानना । बहुरि आठ कषायनै आदि देकरि अनिवृत्ति-करण विषै क्षय भई औसी बीस-प्रकृति तिन कैं अपने-अपने क्षयदेश पर्यंत अपकर्षण-करण है । जिस स्थानक क्षय भया सो क्षयदेश कहिए है ।।४४६।।

मिच्छतियसोलसाणं, उवसमसेढिम्मि संतमोहोत्ति ।
अट्ठकसायादीणं, उवसमियट्ठाणगोत्ति हवे ।।४४७।।

मिथ्यत्रयषोडशानामुपशमश्रेण्यां शांतमोह इति ।
अष्टकषायादीनामुपशमिकस्थानक इति भवेत् ।।४४७।।

टीका – उपशम-श्रेणी विषैं मिथ्यात्व, मिश्र, सम्यक्त्व-प्रकृति तीन अर नरक-द्विकादिक सोलह इनकै उपशांत-कषाय पर्यंत अपकर्षण-करण है । बहुरि अष्टकषायादिक तिनकै अपने-अपने उपशमनै के ठिकाने पर्यंत अपकर्षण करण है । प्रकृतिनि के नाम पूर्वै सत्ता कथन विषै कहे ही थे ।।४४७।।

पढमकसायाणं च विसंजोजक वोत्ति अयददेसोत्ति ।
णिरयतिरियाउगाणमुदीरणसत्तोदया सिद्धा ।।४४८।।

प्रथमकषायाणां च विसंयोजकं वा इति अयतदेश इति ।
निरयतिर्यगायुषोरुदीरणसत्वोदया. सिद्धाः ।।४४८।।

टीका – अनंतानुबंधीचतुष्क के असंयत, देशसंयत प्रमत्त, अप्रमत्तनि विषै यथासंभव जहां विसंयोजन होइ, तहां पर्यंत अपकर्षण-करण है। बहुरि नरकायु कौं असंयत पर्यंत, तिर्यंचायु के देश-संयत पर्यंत उदीरणाकरण, सत्त्वकरण, उदयकरण ए प्रसिद्ध है–पूर्वं कथन कीया ही था ।।४४८।।

मिच्छस्स य मिच्छोत्ति य उदीरणा उवसमाहिमुहियस्स।
समयाहियावलित्ति य सुहुमे सुहुमस्स लोहस्स ।।४४९।।

मिथ्यस्य च मिथ्येति चोदीरणा उपशमाभिमुखस्य ।
समयाधिकावलीति च सूक्ष्मे सूक्ष्मस्य लोभस्य ।।४४९।।

टीका – मिथ्यात्व-प्रकृति के मिथ्यादृष्टि-गुणस्थान विषै उपशम-सम्यक्त्व कौं सन्मुख भया जीव कै एक समय अधिक आवली काल पर्यंत उदीरणा-करण हो है, तितने ही तिसका उदय है। बहुरि सूक्ष्म-लोभ कै सूक्ष्मसांपराय विषै ही उदीरणा करण है; जातै अन्यत्र तिसका उदय नाही है ।।४४९।।

उदये संकममुदये चउसुवि दादुं कमेण णो सक्कं।
ठवसंतं च णिधत्ति णिकाचिदं तं अपुव्वोत्ति ।।

उदये संक्रमोदययोः चतुर्ष्वपि दातुं क्रमेण नो शक्यं ।
उपशांतं च निधत्तिः निकाचितं तत् अपूर्व इति ।।४५०।।

टीका – जो उदयावली विषैं प्राप्त करने कौं समर्थ न हूजै असा उपशांत द्रव्य, बहुरि जो संक्रम वा उदय कौं प्राप्त करणे कौं समर्थ न हूजै असा निधत्ति-करण द्रव्य, बहुरि जो उदयावली संक्रम, उत्कर्षण, अपकर्षण कौ प्राप्त करने कौं समर्थ न हूजै – असा निकाचित-करण द्रव्य – सो ए तीनौं अपूर्व-करण गुणस्थान पर्यंत ही है, ऊपरि यथासंभव उदयावली आदि विषै प्राप्त करने कौ समर्थ हूजै, असे ही कर्म-परमाणू पाइए है ।।४५०।।

इति दशकरणचूलिका ।

इति आचार्य श्रीनेमिचंदविरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रन्थ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत-टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नाम भाषा टीका विषै कर्मकांड विषै त्रिचूलिका नामा चौथा-अधिकार संपूर्ण भया ।।४।।